मार्कण्डेय पुराण के द्वितीय खण्ड की विषय-सूची

दो शब्द

भारतीय धार्मिक साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसमें अध्यात्म, नीति, चरित्र से लेकर इतिहास, भूगोल, उद्योग-धन्धे, कला-कौशल सब विषयों का समावेश किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय मनीषियों ने जीवन की प्रत्येक गति-विधि का सम्बन्ध धर्म से माना है और अपने अनुयाइयों को सदैव यही शिक्षा दी है कि वे कभी धर्मविमुख आचरण न करें। शास्त्रों मे मानव जन्म के जो चार बडे पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष गिनाये गये हैं, उनमे भी धर्म को प्रथम स्थान इसी उद्देश्य से दिया गया है कि मनुष्य जीवन निर्वाह और सासारिक सुख प्राप्त करने के लिये अवश्य ही अर्थ का उपार्जन करे और उसके द्वारा भोगो का भी उपभोग करे पर उसकी कर्म-पद्धति सदैव धर्म द्वारा नियन्त्रित होनी आवश्यक है तभी वे जीवन के अन्तिम लक्ष्य—मोक्ष तक पहुँचने में समर्थ हो सकेंगे।

पुराणो की सबसे बडी विशेषता यही है कि वे इन सिद्धातो को नित्य प्रति की साधारण और असाधारण घटनाओं के रूप मे ऐसे ढङ्ग से हमको सुनाते है जिससे हम जान सकें कि ससार के छोटे बडे सामान्य असामान्य और आकस्मिक कर्तव्यो का पालन किस प्रकार धार्मिक आदेशो की रक्षा करते हुए किया जा सकता है। इस विवेचन को हर श्रेणी का—बिल्कुल साधारण बुद्धि का और अनपढ व्यक्ति भी सुन और समझ सके, इसके लिये उन्होने उसे मनोरजक कथाओ का रूप दिया है और बहुत ही सरल वर्णन शैली का प्रयोग किया गया है। ऐसी दशा मे जो आलोचक प्रवृत्ति के सज्जन पुराणो की एक एक बात को इतिहास, तर्क और तथ्यो की कसौटी पर कसने का प्रयत्न करते हैं, उनका समय और श्रम प्राय व्यर्थ ही जाता है। वे अपनी समझ से पौराणिक कथाओ का खण्डन करके कोई बडा काम करते हैं। पर पुराणो के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता विद्वान् लोग तो इस प्रकार की लम्बी-चौडी आलोचनाओ को निरर्थक समझते हैं, और केवल श्रद्धाभाव से कथा सुनने वाली अनपढ जनता पर भी उसका कोई प्रभाव नहीं पडता। वे प्राचीन ऋषि महर्षियो

के नाम पर लिखे धर्म ग्रन्थों के विरुद्ध कोई बात सुनना ही नहीं चाहते और ऐसे लेखकों को 'नास्तिक' या 'अधार्मिक' की पदवी देकर ठुकरा देते हैं।

मार्कण्डेयपुराण के इस खण्ड में जो कथायें आई हैं, उनमें से अधिकांश राज्यवंशों के कुछ विशिष्ट राजाओं की कार्यवाहियों से सम्बन्ध रखती हैं। हो सकता है उनमें से कुछ राजाओं के नाम यथार्थ हों—और किन्हीं युद्धों की घटना भी न्यूनाधिक परिमाण में किसी समय घटी हो, पर उनका वर्तमान रूप एक धार्मिक कहानी के समान ही मानना चाहिए। अनेक ऐतिहासिक, उपन्यासों और कहानियों के पात्रों तथा स्थानों के नाम सच्चे होते हैं और कुछ घटनायें भी मूल रूप में ठीक होती हैं, पर पूरा कथानक लेखक की कल्पना-शक्ति से प्रसूत होता है। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह पात्रों का जो कथोपकथन दे रहा है या उनके मनोभावों का जो चित्रण कर रहा है, वह किसी प्रत्यक्षदर्शी के बयान के आधार पर ज्यों का त्यों लिखा गया है। इसके विपरीत लेखक उस कहानी के माध्यम से पाठकों को जो कुछ लाभकारी शिक्षा देना चाहता है उसी के अनुसार कथानक को ढाल दिया जाता है। पुराणों के विषय में भी यही बात ठीक समझनी चाहिये।

एक बात और भी है। अनेक पौराणिक कथाओं में अनीति, अनुचित कर्म, दुराचरण का भी खुलकर वर्णन किया है जिसकी कुछ लोग निन्दा किया करते हैं। पर उसका उद्देश्य भी यही है कि पाठकों को जीवन के उत्तम और निकृष्ट, प्रशंसनीय और निन्दनीय दोनों पहलू दिखा दिये जायें, जिससे भले की अच्छाई और बुरे की बुराई की शिक्षा उनके मन पर अङ्कित हो जाय। फिर अन्त में मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार तो भलाई अथवा बुराई की ओर ही झुकता ही है। यदि पुराणों से भी कोई निन्दनीय कर्मों को ही पसन्द करके उन्हीं को ग्रहण करना चाहता है तो यह उसका अपना ही दोष माना जायगा। पुराण तो जन-समूह को सद्मार्ग और परोपकारमय जीवन का ही उपदेश देते आये हैं और देते रहेंगे।

—सम्पादक

मार्कण्डेय पुराण

(द्वितीय खंड)

५१—भद्राश्वादिवर्ष वर्णन

एवंतुभारतवर्षंयथावत्कथितमुने ।
कृतत्रेताद्वापरचनथातिष्यचतुष्टयम् ॥१
अत्रैवैतद्युगानान्तुचातुर्वर्ण्यंचवैद्विज ।
चत्वारिनीणिद्वे चैवकथंकंक शरच्छतम् ॥२
जीवन्त्यत्रनराब्रह्मन्कृतत्रेतादिषुक्रमात् ।
देवकूटस्यपूर्वस्यशलेन्द्रस्यमहात्मन ॥३
पूर्वेणयस्त्थितवर्षंभद्राश्व तन्निबोधमे ।
श्वेतपर्णश्चनीलशंवालश्चाचलोत्तम ॥४
कौरश्च पर्णशालाग्र पचैतेहिकुलाचला ।
तेषाप्रसूतिरन्ययेवहव क्षुद्रपवता ॥५
तें विशिष्टाजनपदानानारूपा महस्रश ।
तत कुमुदसकाशा शुद्धसानुसुमङ्गला ॥६
इत्येवमादयोऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रश ।
मीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७
नद्योऽथबह्वचाविस्तीर्णा शीततायौघवाहिका ।
अत्रवर्षेनरा शङ्खशुद्धहेमसमप्रभा ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—भारतवर्ष का यह वास्तविक वर्णन किया गया, इसी भारतवर्ष में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह चारों युग विद्यमान है ॥१॥ इसी स्थान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के भेद से चार वर्ण है, यहीं सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के भेद से मनुष्यगण क्रमश चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ की आयु पाते है, पूर्व दिशा देवकूट नामक विशाल पर्वत के ॥२-३॥ पूर्व की ओर जो वर्ष अवस्थित हैं, उसे भद्राश्ववर्ष कहते हैं, अब उसके विषय में कहता हूं, श्वेतपर्ण, नील शैवाल ॥४ कौरञ्ज, पर्णशालाग्र यह पाँच कुलाचल इस वर्ष में स्थित हैं तथा इसी वर्ष में इन सब पर्वतों से उत्पन्न हुए अनेक छोटे पर्वत भी स्थित हैं ॥५॥ कुमुद, सकाश, शुद्धसानु, सुमङ्गल आदि अन्यान्य सहस्रों जनपद विभिन्न प्रकार से इस वर्ष में ही स्थित हैं, सीता, शखावती, भद्रा और चक्रावत आदि ॥६-७॥ बहुत-सी अत्यन्त शीतल जल वाली नदियाँ इस में प्रवहमान हैं, इस वर्ष में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य शख तथा स्वच्छ स्वर्ण के समान प्रभा सम्पन्न हैं ॥८॥

दिव्यसगमिन पुण्यादशवर्षशतायुष ।
अधमोत्तमनतेष्वस्तिसर्वेतेसमदर्शना ॥९
तितिक्षादिभिरष्टाभि प्रकृत्यात्मगुणैर्युता ।
तत्राप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्जनार्दन ॥१०
शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तश्चाक्षित्रयान्वित. ।
तस्याप्यर्थंवविपयाविज्ञेयाजगत प्रभो ॥११
केतुमालमतोवर्षनिबोधममपश्चिमम् ।
विशाल.कम्बल कृष्णोजयन्तोहरिपर्वत ॥१२
विशोकोवर्द्धमानश्चसप्तैतेकुलपर्वता ।
अन्येसहस्रश शैलायेषुलोकगण:स्थित ॥१३
मौलयस्तेमहाकाया शाकपोतकरम्भका ।
अङ्गुलप्रमुखाश्चापिवसन्तिशतशोजना ॥१४

वे सत्ता सहित पवित्रता पूर्वक निवास करते हुए सहस्र वर्ष पर्यंत जीवित रहते हैं उनमें कोई श्रेष्ठ अथवा अधम नहीं है ॥९॥ वहाँ के सब

मनुष्य सभी प्रकार के गुणवान् होते हैं, इस वर्ष मे चतुर्भुजी भगवान् हयग्रीव स्वरूप मे।१०। शिर,हृदय,मेढ्, चरण हाथ और अक्षित्रयान्वित होकर अवस्थित है, उन जगदीश्वर का सम्पूर्ण विषय इसी प्रकार समझो ॥११॥ अब सुमेरु के पश्चिम मे स्थित केतुमालवर्ष का वर्णन सुनो—इस वर्ष मे जो सात कुलाचल है वे विशाल, कम्वल, कृष्ण, जयन्त, हरि पर्वत ॥१२॥ विशोक और वर्द्धमान नामक हैं, इनके अतिरिक्त और भी हजारो विशाल पर्वत हैं, जिनमे अनेक प्राणी निवास करते हैं ॥१३॥ उनमे शाक, पोत, करम्भक और अच्चुलाद्यादि अनेक प्रकार के लोगो का निवास है ॥१४॥

येपिवन्तिमहानद्योवक्षुश्यामास्वकम्बलाम् ।
अमोघाव।मिनीश्यामातथैवान्या.सहस्रश ॥१५
अत्राप्यायु.समपूर्वैरत्रापिभगवान्हरिः ।
वराहरूपीपादोस्यहृत्पृष्ठेपार्श्वतस्तथा ॥१६
(मुखेनासादतश्चैवकण्ठत पुच्छतस्तथा) ।
त्रिनक्षत्रयुतेदेशेनक्षत्राणियुतानिच ।
इत्येतत्केतुमालतेकथितमुनिसत्तम ॥१७
अत परकुरून्वक्ष्येनिवोधेहममोत्तरान् ।
तत्रवृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगा ॥१८
वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ।
सर्वकामप्रदास्तेहिसर्वकालफलप्रदाः ॥१९
भूमिमणिमयीवायु सुगध सर्व्वदासुख. ।
जायन्तेमानवास्तत्रदेवलोकपरिच्युताः ॥२०
मिथुनानिप्रसूयन्तेसमकालस्थितानिच ।
अन्योन्यमनुरक्तानिचक्रवाकोपमानिच ॥२१

जिन महानदियो के जल का यह लोग पान करते हैं, वे वक्षु, श्यामा, कम्वला, अमोघा, कामिनी सुमेधा नाम की महानदी हैं, इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रो नदियाँ वहाँ प्रवाहित हैं ॥१५॥ मनुष्यो की आयु वहाँ भी पूर्वोक्त ही है, उस देश मे भगवान् श्रीहरि का निवास वाराह रूप से है, उनके चरण,

हृदय, मुख, पृष्ठ देश तथा पार्श्व मे मुख, नासिका, कण्ठ, दाँत और पूँछ सहित तीन नक्षत्रो से पूर्ण हो कर सम्पूर्ण देश अवस्थित है, वहाँ भी नक्षत्र शुभाशुभ को सूचित करते रहते है ॥१६॥ हे मुने ! इस प्रकार केतुमाल वर्ष का वर्णन भी कर दिया गया ॥१७॥ अब उत्तर कुरुदेश का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो— इस देश मे सब ऋतुओ के फल, पुष्प आदि से युक्त सर्व कामना एव सर्व फल के देने वाले वृक्ष ॥१८॥ वस्त्र उत्पन्न करते है तथा उनके सब फलो से आभरण उत्पन्न होते हैं ॥१६॥ वहाँ की भूमि मणियुक्त, सुन्दर सुगंधित वायु से सम्पन्न तथा सुख के देने वाली है स्वर्गलोक से भ्रष्ट हुए व्यक्ति ही वहाँ मनुष्य रूप मे जन्म लेते हैं ॥२०॥ उनमे चक्रवाक के समान पारस्परिक प्रेम रहता है तथा समकाल मे बालको को उत्पन्न करते है ॥२१॥

चतुर्दशसहस्राणितेपासार्द्धानिर्वैस्थिति. ।
चन्द्रकान्तश्चशैलेन्द्र सूर्य्यकान्तस्तथापर. ॥२२
तस्मिन्कुलाचलेवर्पतन्मध्येचमहानदी ।
भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यापुण्यामलजलोघिनी ॥२३
सहस्रशस्सथं वान्यानद्योवर्षेऽपिचोत्तरे ।
तथान्या.क्षीरवाहिन्योघृतवाहिन्यएवच ॥२४
दघ्नोह्रदास्तयातत्रतथान्येचानुपर्व्वता ।
अमृतास्वादकल्पानिफलानिविविधानिच ॥२५
वनेषुतेपुरम्याणिशतशोऽथसहस्रश. ।
तत्रापिभगवान्विष्णु प्राक्शिरामत्स्यरूपवान् ॥२६
विभक्तोनवधाविप्रनक्षत्राणात्रयत्रयम् ।
देशास्तत्रापिनवधाविभक्तामुनिसत्तम ॥२७
चन्द्रद्वीप समुद्रे चभद्रद्वीपतस्थापर: ।
तत्रापिपुण्योविख्यात समुद्रान्तर्महामुने ॥२८
इत्येतत्कथितब्रह्मन्कुरुवर्षमयोत्तरम् ।
शृणुकिंपुरुषादीनिवर्षाणिगदतोमम ॥२९

वह साढ़े चौदह हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं, इस वर्ष में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो कुलाचल स्थित हैं ॥२२॥ उस पर्वत में भद्रसोमा नाम की स्वच्छ जल वाली महानदी प्रवाहित है ॥२३॥ इसके अतिरिक्त अन्य सहस्रों छोटी छोटी नदियाँ बहा हैं, अन्य नदियों में कोई दुग्ध वाहिनी और कोई घृत वाहिनी है ॥२४॥ तथा कोई दही के ताल से युक्त है, सात कुलाचलों के अतिरिक्त अन्य क्षुद्र पर्वत बहुत से हैं, उत्तर कुरु में स्थित इन सहस्र वर्नो के मध्य स्थित सभी वृक्षों में विभिन्न प्रकार के सुस्वादु फल लगते हैं, इसी स्थान में पूर्व की ओर मस्तक करके मत्स्यरूप से श्रीनारायण भगवान् का वास है ॥२५-२६॥ इस उत्तर कुरु में नक्षत्र नौ भागों में बँट कर तीन-तीन के क्रम से रहते हैं, इसी प्रकार सब देश नौ भागों में विभाजित हैं ॥२७॥ इस वर्ष में चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो पवित्र द्वीप हैं, जो समुद्र के मध्य में स्थित हैं ॥२८॥ हे ब्रह्मन् यह उत्तर कुरु वर्ष का वर्णन हुआ, अब किम्पुरुषादि के विषय में कहता हूँ ॥२९॥

५२–किम्पुरुषादि वर्णन

यत् किम्पुरुषवर्षंनत्प्रवक्ष्याम्यहद्विज ।
तत्रायुर्द समाहस्र पुरुषाणावपुष्मताम् ॥१
अनामयाह्यशोकाश्चनारायत्रतयास्त्रिय ।
प्लक्ष खण्डश्चयत्रोक्त सुमहान्नन्दनोपम ॥२
तस्यतेवं फलरसपिवन्तःपुरुषा सदा ।
स्थिरयौवननिष्पन्नाम्स्त्रियश्चोत्पलगन्धिका ॥३
अनःपरंकिम्पुरुषाद्धरिहर्षंप्रचक्षते ।
महारजतसकाशाजायतेनत्रमानवा ॥४
देवलोकच्युनासर्वं देवरूपाश्चसर्वं श ।
हरिवर्षेनरा सर्वे पिवन्तीक्षुरसंशुभम् ॥५

नजरावाधतेतत्रनजीर्यन्तेत्कर्हिचित् ।
तावन्तमेवतेकालजीवन्त्यथनिरामया ॥६
मेरुवर्षमयाप्रोक्त मध्यमर्यादलावृतम् ।
नतत्रसूर्यस्तपतिनतेजीयन्तिमानवाः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! अब किम्पुरुष नामक वर्ष का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो—वहाँ देहधारी मनुष्यों की आयु दश हजार वर्ष की है ॥१॥ वहा के सभी स्त्री पुरुष नीरोग तथा शोक रहित होते हैं वहाँ नन्दन वन के समान एक महान् प्लक्ष खण्ड स्थित है ॥२॥ उन वृक्षों के रस का पान करते ही मनुष्य स्थिर यौवन वाले एवं नारियां पद्मगन्धा होती हैं ॥३॥ इस वर्ष के पृष्ठ भाग मे हरि वर्ष नामक एक अन्य वर्ष है ॥४॥ देव लोक से पतित हुए प्राणी हरि वर्ष मे मनुष्य रूप मे उत्पन्न होते हैं तथा वहा श्रेष्ठ ईख का रस पान करते हैं ॥५॥ वृद्धावस्था उनको पीडित नही करती, इसलिये जीर्णता को कोई भी प्राप्त नही होता, वे जब तक जीवित रहते हैं तब तक यौवनावस्था स्थित रहती है तथा वे सदा नीरोग रहते हैं ॥६॥ मेरुवर्ष नामक मध्यम वर्ष को इलावृत भी कहते हैं, वहाँ का सूर्य ताप रहित है और मनुष्य वहाँ भी वृद्धावस्था से जीर्ण नही होते ॥७॥

लभन्तेनात्मनाभचरद्मयश्चन्द्रसूर्ययो ।
नक्षत्राणाग्रहाणाचमेरोस्तत्रपराद्यु ति ॥८
पद्मप्रभा पद्मगन्धाजम्बूफलरसाशिन ।
पद्मपत्रायताक्षास्तुजायन्तेतत्रमानवा ॥९
वर्षाणान्तुसहस्राणितत्राप्यायुस्त्रयोदश ।
शरावाकारसंस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥१०
मेरुस्तत्रमहानीलस्तदाख्यातमिलावृतम् ।
रम्यकवर्षमस्माद्वक्ष्याम्येनिबोधतम् ॥११
वृक्षस्तत्रापिचोत्तुङ्गोन्यग्रोधोहरितच्छदः ।
तस्यापितेफलान्यत्तिपिबन्तोवर्तयन्तिवै ॥१२

वर्षायुतायुषस्तत्रनराम्नरफलभोगिन ।
रतिप्रधानविमलाजरादौर्गन्ध्यवर्जिना ॥१३
तस्मादथोत्तरवर्षनाम्नाख्यातहिरण्मयम् ।
हिरण्वतीनदीयत्रप्रभूतकमलोज्ज्वला ॥१४
महाबला सतेजस्काजायन्तेतत्रमानवा ।
महाकायामहासत्वाधनिन प्रियदर्शना ॥१५

चन्द्रमा, सूर्य,ग्रह और सब नक्षत्रों की किरणें वहाँ उज्ज्वलता को प्राप्त नहीं हो पाती, क्यों कि वहा सुमेरु का तीव्र प्रकाश रहता है ॥८॥ जो मनुष्य उस मेरु वर्ष मे उत्पन्न होते हैं, वह सभी कमल के समान प्रभात युक्त, पद्मगन्ध और पद्म पत्र के समान विस्तीर्ण नेत्र वाले तथा जामुन के फलो का रस पान करने वाले होते है ॥९॥ वे मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, उस इलावृत्त के बीच मे जो मेरु पर्वत स्थित है उसका आकार सकोरे के समान है ॥१०॥ उस वर्ष मे वह महापर्वत मेरु ही प्रसिद्ध हैं, अब तुम्हें रम्यक वर्ष के विषय म सुनाता हू, उसे श्रवण करो ॥११॥ उस रम्यक वर्ष में एक अत्यन्त ऊँचा न्यग्रोध नामक वृक्ष है, उसके समस्त पत्र हरे रग के हैं, उन वृक्ष के रस पान द्वारा ही वहाँ के मनुष्य जीवन धारण करते हैं ॥१२॥ उसके फलों के रस का पान करने वालो की आयु दस सहस्र वर्ष होती है, वह रति क्रिया मे चतुर, सुन्दर तथा दुर्गंधि और जरावस्था से रहित होते हैं ॥१३॥ उसके उत्तर मे हिरण्यमय वर्ष स्थित है इसमें अनेक कमल पुष्पो से सुशोभित हिरण्वती नदी हिरण्ययुक्त जल से परिपूर्ण प्रवाहित है ॥१४॥ वहाँ उत्पन्न होने वाले मनुष्य अत्यन्त बली, तेजस्वी, सत्व सम्पन्न, प्रिय दर्शन, विशाल काय तथा धनवान् होते हैं ॥१५॥

५४–स्वारोचिष मन्वन्तरारम्भ (२)

कथितभवताममयत्सृष्टोऽस्मिमहामुने ।
भूसमुद्रादिसंस्थानप्रमाणानियथाग्रहा ॥१

तेषाचैवप्रमाणयन्नक्षत्राणाचसस्थिति ।
भूरादयस्तथालोका पातालान्यखिलान्यपि ॥२
स्वायम्भुव तथाख्यातमुनेमन्वन्तरमम ।
तदन्तराण्यहश्रोतुमिच्छेमन्वन्तराणिवं ॥
मन्वन्तराधिपान्देवानृषीस्तत्तनयान्नृपान् ॥३
मन्वन्तरमयाख्याततवस्वायम्भुवचयत् ।
स्वारोचिपाख्यमन्यत्तु श्रणुतस्मादनन्तरम् ॥४
कश्चिद्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ।
वरुणायास्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥५
मृदुस्वभाव सद्वृत्तोवेदवेदागपारग ।
सदातिथिप्रियोरात्रावागतानासमाश्रय ॥६
तस्यबुद्धिरियत्वासीदहपश्येवसुन्धराम् ।
प्रतिरम्यवनोद्यानानानानगरशोभिताम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हेमहामुने ! आपने मेरे समस्त प्रश्न का भले प्रकार समाधान किया पृथिवी और समुद्रादि की स्थिति, विस्तार एव ग्रह का परिमाण ॥१॥ नक्षत्रादि की स्थिति और परिमाण, भूरादि सप्तलोक, सप्त पाताल ॥२॥ तथा स्वायमुव नामक प्रख्यात मन्वन्तर आदि का भी वृत्तान्त कहा है, अब उक्त मन्वन्तर के पश्चात् अन्य सब मन्वन्तर, उनके अधिपति, उनके वशीय राजा गण देवता एव ऋषियो की कथा सुनने की मुझे उत्कट इच्छा है ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—जिस स्वायभुव मनु का विषय तुम्हारे प्रति कहा है, अब उसके पश्चात् स्वारोचिष मन्वन्तर का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ दोनो अश्विनिकुमारो से भी अधिक रूपवान् शान्त स्वभाव वाला, चरित्रवान्, वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता एक ब्राह्मण वरुणा नदी के तट पर स्थित अरुणास्पद नामक नगर मे रहता था, वह अतिथि के आगम पर अत्यन्त प्रसन्न होता था तथा रात्रि के समय आने वाले व्यक्तियों के लिये वह आश्रय स्वरूप था ॥५-६॥ उसके मन मे एक इच्छा बलवती थी कि मैं अत्यन्त सुरम्य वनो और उपवनो से सम्पन्न और अनेक नगरों से सुशोभित इस पृथिवी को सम्पूर्ण रूप से देखूँ ॥७॥

अथागतोऽतिथिःकश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ।
नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रविद्याविशारदः ॥८
अभ्यर्थितस्तुतेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा ।
तस्याचख्यौसदेशांश्चरम्याणिनगराणिच ॥९
नदीवनानिशैलांश्चपुण्यान्यायतनानिच ।
सततोविस्मयाविष्ट प्राहतद्विजसत्तमम् ॥१०
अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ।
त्वं नातिवृद्धोवयसानातिवृत्तश्चयौवनात् ।
कथमल्पेनकालेनपृथिवीमटसिद्विज ॥११
मन्त्रौषधिप्रभावेणविप्राप्रतिहतागतिः ।
योजनानांसहस्रं हिदिनार्द्धेनव्रजाम्यहम् ॥१२
ततःसविप्रस्तंभूयःप्रत्युवाचेदमादरात् ।
श्रद्दधानोवचस्तस्यब्राह्मणस्यविपश्चितः ॥१३
ममप्रसादं भगन्कुरुमन्त्रप्रभावजम् ।
द्रष्टुमेताममहीमतीवेच्छाप्रवर्तते ॥१४

एक दिन उसके घर मे सब औषधियों के प्रभाव का ज्ञाता तथा मन्त्र विद्या मे विद्वान् एक अतिथि का आगमन हुआ ॥८॥ ब्राह्मण द्वारा श्रद्धायुक्त मन से प्रश्न करने पर उसके अतिथि ने उसे अनेक देश, रमणीक नगर ॥९॥ वन, नदी, पर्वत और सभी पवित्र स्थानों का वर्णन सुनाया तब उससे वह भरणास्पद नगर निवासी ब्राह्मण आश्चर्य मे कहने लगा ॥१०॥ हे द्विज ! आपने अनेक देशों को देखा है, तो भी आप श्रमाक्रान्त प्रतीत नहीं होते, आप न तो वृद्ध हैं और न अधिक तरुण ही हैं, आपकी आयु भी अधिक प्रतीत नहीं होती, तो आपने इस अल्प अवस्था मे ही सब पृथिवी मे कैसे भ्रमण कर लिया ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा—हे ब्रह्मन् मन्त्रों और औषधियों के प्रभाव से मुझे अप्रतिहत गति की प्राप्ति हुई है और इस कारण मैं आधे दिन मे सहस्र योजन चल सकता हूँ ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण विद्वान् अतिथि के वचन मे श्रद्धा युक्त मन हो कर उससे सादर निवेदन किया ॥१३॥ हे

भगवन् ! आप मुझे भी औषधि प्रदान करने की कृपा करिये, क्योंकि इस पृथिवी को देखने के लिये मैं अत्यन्त उत्कंठित हूँ ।।१४।।

प्रादात्सब्राह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधी ।
अभिमन्त्रयामासदिशतेनास्याताचयत्नतः ।।१५
तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विसत्तम ।
हिमवन्तमगाद्द्रष्टु नानाप्रस्रवणान्वितम् ।।१६
सहस्रयोजनानाहिदिनार्धेनव्रजामियत् ।
आयास्यामीतिसचिन्त्यतदर्द्धेनापरेणहि ।।१७
सप्राप्तोहिमवत्पृष्ठ नातिश्रान्ततनुर्द्विज ।
विचचारततस्तत्रतुहिनाचलभूतले ।।१८
पादाक्रान्तेनतस्याथतुहिनेनविलीयता ।
प्रक्षालित पादलेप परमौषधिसंभव ।।१९
ततोजडगतिःसोऽथइतश्चेतश्चपर्यटन् ।
ददर्शातिमनोज्ञानिसानूनिहिमभूभृत ।।२०
सिद्धगन्धर्वजुष्टानिकिन्नरैरभिरतानिच ।
क्रीडाविहाररम्याणिदेवादीनामितस्तत ।।२१

यह सुन कर उस उदार चेता अतिथि ने उस ब्राह्मण के पाँव में औषधि का लेप कर दिया और अभिमन्त्रण पूर्वक उसे दिशादि का ज्ञान दिया ।।१५।। जब अतिथि ने ब्राह्मण के पाँव में लेप लगादिया तब वह सोचने लगा कि 'अब मैं दिन के पूर्वार्द्ध में एक हजार योजन गमन करूँगा तथा अपराह्न में वहाँ से लौट आऊँगा, ऐसे विचार कर वह अनेक झरनों वाले हिमालय पर्वत को देखने की इच्छा से चला ।।१६-१७।। वह सहज में ही हिमालय के पृष्ठ देश पर पहुँच कर उस हिमभूमि में भ्रमण करने लगा ।।१८।। वहाँ घूमते-घूमते उसके पाँव में अत्यन्त शीतलता के लगने से औषधियुक्त लेप धुल गया ।।१९।। और उस ब्राह्मण की जड़ गति हो गई, फिर वह इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ के मनोहर सानुओं का भाग देखने लगा ।।२०।। उसने देखा सिद्ध,

गन्धर्व, किन्नर वहाँ विहार कर रहे है तथा पर्वत के किनारे ही देवताओ के क्रीडा और विहार करने के लिये अत्यन्त मनोहर स्थान निर्मित हैं ॥२१॥

दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ।
नातृप्यतद्विजश्रेष्ठ प्रोद्भूतपुलकोमुने ॥२२
क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ।
प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥२३
दात्यूहकोयष्टिकाद्यै:क्वचिच्चातिमनोहरै: ।
पुस्कोकिलकलापैश्चश्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४
प्रफुल्लतरुगन्धेनवासितानिलवीजितम् ।
मुदायुक्त सदद्दर्शेहिमवन्तमहागिरिम् ॥२५
दृष्ट्वाचैतद्विजसुतोहिमवन्तमहाचलम् ।
श्वोद्रक्ष्यामीतिसचिन्त्यमतिंचक्रे गृहप्रति ॥२६
विभ्रष्टपादलेपोऽथचिरणंजडितक्रम ।
चिन्तयामासकिमिदमयाज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७
यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमवारिणा ।
शैलोऽतिदुर्गमश्चायदूरचाहमिहागत: ॥२८

उसने उस स्थान को सैकडो अप्सराओ से भरा हुआ देखा जिससे उसका शरीर पुलकित हो गया और वह अपने मन की किसी प्रकार भी तृप्ति नही कर पाया ॥२२॥ उसने देखा कि यह पर्वत कही तो पर्वतो से गिरती हुई जलराशि से सुशोभित है कही नृत्य करते हुए मयूरो के रव से शब्दायमान है तथा कही विभिन्न प्रकार के पक्षी मन को लुभाने वाली बोली बोल रहे है ॥२३॥ कही पपीहा कोयष्टि, टिटीहरी आदि से वह पर्वत व्याप्त है और कही कोयल के समान मधुर ध्वनि से प्रतिध्वनित है ॥२४॥ कही वृक्षो के प्रफुल्लित पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हुई वायु से सुगन्धित है इस प्रकार वह उस पर्वत की शोभा देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥२५॥ फिर वह हिमाचल को देख कर सोचने लगा कि कल प्रात काल आकर पुन: देखूँगा और फिर उसने चलने का विचार किया ॥२६॥ परन्तु पाँवो का लेप छूटने से जडगति हुआ वह

ब्राह्मण सोचने लगा कि मैंने अज्ञान के वशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ अब मेरा पद लेप धुल चुका है, अब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयास्यामिक्रियाहानिरग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमत्रकरिष्यामिविकटमहदागतम् ॥२९
इदम्परमिदरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।
सक्तादृष्टिरहंतृप्तिंनयास्येऽब्दशतैरपि ॥३०
किन्नराणांचसंलापाःसमन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरुगन्धाश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥३१
सुखस्पर्शस्तथावायुःफलानिरसवन्तिच ।
हरन्तिप्रसभंचेतोमनोज्ञानिसरांसिच ॥३२
एवंगतेतुपश्येयंयदिकंचित्तपोनिधिम् ।
समेमोपदिशेन्मार्गंगमनायगृहंप्रति ॥३३
सएवंचिन्तयन्विप्रोबभ्रामसहिमाचले ।
भ्रष्टादौषधिबलोदैवाच्च पदमगात ॥३४
सददर्शंभ्रमन्तमथमुनिश्रेष्ठं वरूथिनी ।
वराप्सरासमहाभागामौलेयारूपशालिनी ॥३५

चिंता पूर्वक हिमालय में घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहाँ घूमते हुए वरूथिनी नाम की मौलेया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्दृष्टे तत.साभूद्द्विजवर्येवरूथिनी ।
मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितक्षणात् ॥३६
चिन्तयामासकोन्वेपरमणीयतमाकृतिः ।
सफलमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७
अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोस्यललितागतिः ।
अहोगम्भीरताहष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥३८
दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९
यथाहमस्मिन्मय्येपसानुरागस्तथायदि ।
भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृत.पुण्यसचय ॥४०
यद्येपर्मायसुस्निग्धादृष्टिमद्यनिपातयेत् ।
कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनितातत: ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुष कौन है ? यदि यह मेरा आदर करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर चाल, इसकी गम्भीर दृष्टि में कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुष कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परंतु उनमें इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनों लोक में मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एव संचिन्तयन्तीसादिव्ययोपित्स्मरातुरा ।
आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

ब्राह्मण सोचने लगा कि मैंने अज्ञान के वशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ जब मेरा पद लेप धुल चुका है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयास्यामिक्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमत्रकरिष्यामिसंकटमहदागतम् ॥२९
इदम्परमिदरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।
सक्तदृष्टिरहतृप्तिनयास्येऽब्दशतैरपि ॥३०
किन्नराणांकलालापाःसमन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरुगन्धाश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति ।३१
सुखस्पर्शस्तथावायु फलानिरसवन्तिच ।
हरन्तिप्रसभचेतोमनोज्ञानिसरासिच ॥३२
एवगतेतुपश्येययदिकचित्तपोनिधिम् ।
सममोपदिशेन्मार्गगमनायगृहप्रति ॥३३
सएवचिन्तयन्विप्रोबभ्रामचहिमाचले ।
भ्रष्टपादौषधिबलोवैक्लव परमगत ॥३४
तददर्शं भ्रमन्तचमुनिश्रेष्ट वरुथिनी ।
वराप्सारामहाभागामौलेयारूपशालिनी ॥३५

अब तो महान् संकट आगया है, यहाँ अग्नि सेवादि का कार्य कैसे करूँगा ? इस प्रकार तो नित्य कर्म भी नष्ट हो गया ॥२९॥ 'यह भी मनोहर है, यह भी' इत्यादि सोचता हुआ पर्वत के देखने की इच्छा को सौ वर्ष में भी पूर्ण नहीं कर सकता ॥३०॥ सब ओर से किन्नरों का कर्ण-सुखप्रद मधुरालाप सुनाई पड रहा है और पुष्पित वृक्षों से आती हुई सुगंधि से नासिका भी तृप्त हो गई है ॥३१॥ यहाँ सुख-स्पर्श पवन चल रहा है, सभी प्रकार के फलों में रस है, और सुरम्य सरोवर से मन खिंचा जा रहा है ॥३२॥ अब इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर यहाँ किसी तपोधन का दर्शन करूँ तो उनसे घर जाने का उपाय पूछूँ ॥३३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पाद मले लेप के धुल जाने से औषधिशक्ति का क्षय हुआ जान कर अत्यन्त दुःखित हुआ ब्राह्मण

चिंता पूर्वक हिमालय में घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहां घूमते हुए वरूथिनी नाम की मौलिया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्दृष्टे तत.साभूद्द्विजवर्येवरूथिनी ।
मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥३६
चिन्तयामासकोन्वेपरमणीयतमाकृतिः ।
सफलमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७
अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोस्यललितागतिः ।
अहोगम्भीरतादृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥३८
दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९
यथाहमस्मिन्मय्येपसानुरागस्तथायदि ।
भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृत.पुण्यसचयः ॥४०
यद्येपमयिसुस्निग्धादृष्टिमद्यनिपातयेत् ।
कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनितातत. ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुष कौन है ? यदि यह मेरा आदर करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर चाल, इसकी गम्भीर दृष्टि मे कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुष कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परतु उनमे इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनों लोक में मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोपित्स्मरातुरा ।
आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

तानुदृष्ट्वाद्विजसुतश्चारुरूपावरूथिनीम् ।
सोपचारसमागम्यवाक्यमेतदुवाचह ॥४३
कात्वं कमलगर्भाभिकस्यकिंवानुतिष्ठसि ।
ब्राह्मणोऽहमिहायातोनगरादरुणास्पदात् ॥४४
पादलेपोऽत्रमेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा ।
यस्यानुभावादत्राहमागतोमदिरेक्षणे ॥४५
मौलेयाहमहाभागानाम्नाख्यातावरूथिनी ।
विचरामिसदैवात्ररमणीयमहाचले ॥४६
साहंत्वद्दर्शनाद्विप्रकामवैकल्यतागता ।
प्रशाधियन्मयाकार्यंत्वदधीनास्मिसाप्रतम् ॥४७
येनोपायेनगच्छेयनिजगेहंशुचिस्मिते ।
तन्ममाचक्ष्वकल्याणिहानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥४८
नित्यनैमित्तिकानातुमहाहानिर्द्विजन्मनः ।
भवत्यतस्त्वंहेभद्रेमामुद्धरहिमालयात् ॥४९

मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्यबाला वरूथिनी कामातुर हुई इसी प्रकार विचार करती-करती उस ब्राह्मण को अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखाने लगी ॥४२॥ उस रूपवती को उस ब्राह्मण ने जैसे ही देखा वैसे ही विधि पूर्वक पाद्यादि उपचार के सहित उसके पास जा कर बोला ॥४३॥ हे सुन्दरे ! तुम्हारा वर्ण पद्म-गर्भ जैसा मनोहर है, तुम कौन, किसकी पत्नी हो ? यहाँ क्या कर रही हो ? मैं ब्राह्मण हूँ और यहाँ अरुणास्पद नगर से आ पहुँचा हूँ ॥४४॥ मैं जिस औषधिमय पद लेप के द्वारा यहाँ आया था, वह शीतल जल से धुल गया है और मैं अब इसमें विलीन हो गया हूँ ॥४५॥ वरूथिनी ने कहा—हे महाभाग मेरा नाम वरूथिनी है, मैं अप्सरा हूँ इस सुरम्य पर्वत पर सदा भ्रमण करती रहती हूँ ॥४६॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हें देख कर मैं काम के वश में हुई हूँ, मैं आपके अधीन हूँ, मुझे आज्ञा दीजिए कि आपका क्या प्रिय करूँ ? ॥४७॥ ब्राह्मण बोला—हे शुचिस्मिते ! मैं जिस प्रकार अपने घर लौट सकूँ, वह उपाय करो, क्योंकि यहाँ रहने से मेरे नित्य नैमित्तिक कर्म नष्ट हो रहे हैं ॥४८॥ ब्राह्मण

तुम्हारे समक्ष उपस्थित करूँगी, क्योंकि मैं काम से पराजित हो कर तुम्हारे अधीन हो गई हूँ ॥५६॥

वीणावेणुस्वनगीतकिन्नराणामनोरमम् ।
अङ्गाह्लादकरोवायुरुष्णान्नमुदकशुचि ॥५७
मनोभिलषिताशय्यासुगंधमनुलेपनम् ।
इहासतोमहाभागगृहेकिंतेनिजेऽधिकम् ॥५८
इहासतोनैवजराकदाचित्तेभविष्यति ।
त्रिदशानामियभूमियौंवनोपचयप्रदा ॥५६
इत्युक्त्वासानुरागासासहसाकमलेक्षणा ।
आलिलिङ्गप्रसोदेतिवदन्तीकलमुन्मना. ॥६०
मामास्प्राक्षीर्व्रजान्यत्रदुष्टेय सदृशस्तव ।
मयान्यथायाचितास्त्वमन्यथैवाम्युपैषिमाम् ॥६१
सायंप्रातर्हुतंहव्यलोकान्यच्छतिशाश्वतान् ।
त्रैलोक्यमेतदखिलमूढेहव्येप्रतिष्ठितम् ॥६२
तमुपायसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ।
किंतेनाहप्रियाविप्रमणीयोमर्कगिरिः ।
गन्धर्वान्किन्नरादीश्चत्यक्त्वाभिष्टोहिकस्तव ॥६३

इस स्थान मे रहन से वीणा और वेणु का शब्द, किन्नरो का सुमधुर सगीत, प्रसन्नता देने वाली समीर, उष्ण भोजन और शीतल जल ॥५७॥ मन-चाही शय्या, सुगन्धित अनुलेप तुम्हे उपलब्ध होंगे, इससे अधिक तुम्हारे गृह म और क्या होगा ? ॥५८॥ यहाँ रहकर तुम कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नही होगे, क्योंकि यह देवभूमि यौवन के बढाने वाली है ॥५६॥ इतना कहकर पद्मनयना वरूथिनी व्याकुलता पूर्वक 'प्रसन्न होओ' कहती हुई सहसा ब्राह्मण से आलिंगित हुई ॥६०॥ तब ब्राह्मण बोला—अरी दुष्टे ! मेरा स्पर्श न कर, तू अपने योग्य के ही निकट जा, तू मेरी प्रार्थना के कारण ऐसा विपरीत विचार एव चेष्टा कर रही है ॥६१॥ प्रात साय होम करने से सभी शाश्वत लोको की प्राप्ति होती है यह तीनों लोक होम के प्रभाव से ही प्रतिष्ठित हैं ॥६२॥ इसलिये उसके

है तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ वरूथिनी ने कहा—तुम अवश्य ही यहां से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६६॥ ब्राह्मण बोला—हे वरूथिनी ? ब्राह्मण को सुख भोग की आज्ञा शास्त्र नही देता क्यो कि स्त्री की चेष्टा से ब्राह्मण इहलोक मे क्लेश और परलोक मे भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्त्राणं म्रियमाणायाममक्त्वापरत्रते ।
पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१
एवन्द्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहमृत्यु त्वचपापमवाप्स्यसि ॥७२
परस्त्रियनाभिलपेदित्यूचुर्गुरवोमम ।
तेनत्वानाभिवाञ्छामिकामविलुलपव्यवा ॥७३
इत्युक्त्वासमहाभाग स्पृष्ट्वाप प्रयत शुचि ।
प्राहेदप्रणिपत्याग्निगार्हपत्यमुपाशुना ॥७४
भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वसर्वकर्मणाम् ।
त्वत्तआहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यतः ॥७५
युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टिमस्यादिहेतव. ।
भवन्तिसस्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६
एवत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत् ।
तथाहमघस्वगेहपश्येयसतिभास्करे ॥६७
यथावैदिककर्मस्वकालेनोज्झितमया ।
तेसत्येनपश्येयगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥७८
यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमतिः ।
कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७९
एवतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपावक ।

वरूथिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा करने के कारण परलोक मे तुम्हें उसी के समान पुण्य फल मिलेगा और अगले जन्म मे तुम्हें उसी के अनेक भोगों की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक मे

है तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ वरूथिनी ने कहा—तुम अवश्य ही यहाँ से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६६॥ ब्राह्मण बोला—हे वरूथिनी ? ब्राह्मण को सुख भोग की आज्ञा शास्त्र नहीं देता क्यों कि स्त्री की चेष्टा से ब्राह्मण इहलोक में क्लेश और परलोक में भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्त्राणंम्रियमाणायाममकृत्वापरत्रते ।
पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१
एवंचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहमृत्यु त्वंचपापमवाप्स्यसि ॥७२
परस्त्रियंनाभिलषेदित्यूचुर्गु रवोमम ।
तेनत्वांनाभिवाञ्छामिकामंविशुलपष्यवा ॥७३
इत्युक्त्वासमहाभाग स्पृष्ट्वाप प्रयत शुचि ।
प्राहेदंप्रणिपत्याग्निंगार्हपत्यमुपांशुना ॥७४
भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वंसर्वकर्मणाम् ।
त्वत्तआहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यत ॥७५
युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टिसस्यादिहेतव ।
भवन्तिसस्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६
एवंत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत् ।
तथाहमद्यस्वगेहेपश्येयंसतिभास्करे ॥६७
यथावैवैदिकंकर्मस्वकालेनोज्झितमया ।
तेसत्येनपश्येयंगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥७८
यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमति. ।
कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७६
एवंतुवदतस्तस्य द्विजपुत्रस्यपावक ।

वरूथिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा करने के कारण परलोक में तुम्हें उसी के समान पुण्य फल मिलेगा और अपर जन्म में तुम्हें उसी के अनेक भोगों की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक में

ततःक्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यसः ।
यथाप्रोक्तद्विजश्रेष्ठश्चकारसकलाःक्रियाः ॥६

अथसाचारुसर्वाङ्गीतत्रासक्तात्ममानसा ।
निश्वासपरमानिन्येदिनशेषंतथानिशाम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार निवेदन करते हुए ब्राह्मण पुत्र के गार्हपत्याग्नि अधिष्ठित हुई ॥१॥ उसकी प्रभा के मध्य मे स्थित हो कर वह ब्राह्मण साक्षात् अग्नि समान तेजस्वी हो कर उस स्थान को प्रकाशित करने लगा ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! वरूथिनी ने जब उस ब्राह्मण का ऐसा स्वरूप देखा तब वह अत्यन्त अनुराग से और भी मोह युक्त हुई ॥३॥ जब उस ब्राह्मण मे अग्नि ने अधिष्ठान किया तब वह पहिले के समान शक्ति युक्त हो कर गमन मे प्रवृत्त हुआ ॥४॥ उस समय वरूथिनी खड़ी हुई देख रही थी कि तभी वह ब्राह्मण द्रुतगति से चल दिया, जब वह अदृश्य हो गया, तब वरूथिनी दीर्घ श्वास लेती हुई कांपने लगी ॥५॥ वह श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षण भर मे ही अपने घर पहुच गया और वहा अपनी नित्य नैमित्तिक क्रिया के करने मे लगा ॥६॥ इधर उस सर्वाङ्ग सुन्दरी वरूथिनी ने उस ब्राह्मण मे अनुरागवती रह कर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए उस दिन का शेष भाग एव रात्रि काल व्यतीत किया ॥७॥

निश्वसन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमुहुः ।
मन्दभाग्येतिचात्मानंनिनिन्दमदिरेक्षणा ॥८
नविहारेनचाहारेरमणीयेनचावने ।
नकन्दरेषुरम्येषुसाबबन्धतदारतिम् ॥९

रमणीयमभूद्यत्तु स्कोकिलनिनादितम् ।
तेनहीनतदेवतद्दहतीवाद्यमामलम् ।।१३
इत्थमामदनाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् ।
ववृधेचतदारागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ।।१४

वह अप्सरा घोर रुदन करती हुई दीर्घश्वास छोड़ने लगी और अपने को मन्द भाग समझ कर अपनी निन्दा करने लगी ।।८।। आहार, विहार, सुरम्य वन, मनोहर गिरि कन्दरा किसी से भी उसको तृप्ति न हो रही थी ।।९।। चक्रवाकों का विहार देख कर रति कर्म में उसे स्पृहा हुई, वह ब्राह्मण द्वारा त्यागी जाने के कारण अपनी युवावस्था को कोसने लगी ।।१०।। मैं दुष्ट दैव के वश से ही इस पर्वत में आई थी अन्यथा वह सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष जो मुझे दिखाई दिया था, उसका देखा जाना क्या कभी सभव था ? मैं उसे क्या जानती थी ? ।।११।। यदि वह महाभाग इस समय मुझे न मिलेगा, तो दु सह कामाग्नि में दग्ध होकर मुझे अपने जीवन का परित्याग करना पड़ेगा ।।१२।। जो कोकिला का शब्द मेरे कानों को मनोरजक प्रतीत होता था, वह आज अग्नि के समान ही मुझे भस्म कर रहा है ।।१३।। म र्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार कामासक्त हुई वरूथिनी ने उस मुनि श्रेष्ठ को मन से देखा तो उसका अनुराग क्षण क्षण में उसके प्रति वृद्धि को प्राप्त होता रहा ।।१४।।

कलिर्नाम्नातुगन्धर्व सानुरागोनिराकृत ।
तयापूर्वमभूत्सोऽयतदवस्याददर्शताम् ।।१५
सचिन्तयामासतदाकिन्वेयागजगामिनी ।
निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरूथिनी ।।१६
मुनिशापक्षताकिनुकेनचित्किंविमानिता ।
बाष्पवारिपरिक्लिन्नमियधत्तेयतोमुखम् ।।१७
तत सदध्यौसुचिरतमर्थंकौतुकात्कलि ।
ज्ञातवाश्चप्रभावेणसमाधे सयथातथम् ।।१८
पुन सचिन्तयामासतद्विज्ञायमुने कलि ।
ममोपपादितसाधुभाग्यैरतेपुराकृतैः ।।१९

मयैपासानुरागेणवहुश प्रार्थितासती ।
निराकृतवतीसेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥२०
मानुषेसानुरागेयतत्रतद्रूपधारिणि ।
रस्यतेमय्यसन्दिग्धकिंकालेनकरोमितत् ॥२१

इस अप्सरा के प्रति पहिले एक कलि नामक गन्धर्व आसक्त था, परन्तु इसने उसका निरादर किया था, उसने इस अप्सरा को ऐसी दशा में देखा तो ॥१८॥ सोचने लगा कि यह गजगामिनी इस पर्वत में दीर्घ श्वास छोड़ती हुई प्रतिक्षण म्लान होती जा रही है, क्या यह वरूथिनी ही है ? ॥१६॥ क्या यह किसी मुनि के शाप से ग्रस्त हुई है अथवा किसी ने इसका निरादर किया है, क्यों कि इसके मुख पर अश्रु बिन्दु दिखाई दे रहे हैं ॥१७॥ फिर उस गन्धर्व ने कुतूहल पूर्वक बहुत समय तक ध्यान किया और उसके द्वारा सब वृत्तान्त उसे ज्ञात होगया ॥१८॥ वृत्तान्त ज्ञात होने पर उसने सोचा कि मेरे पूर्वकृत पुण्य के फल स्वरूप मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई है ॥१६॥ जिसने मेरी अनुरागमयी विनय को ठुकरा दिया था, यह वही वरूथिनी अब मुझे सहज से प्राप्त हो जायगी ॥२०॥ अब यह जिस मनुष्य के प्रति प्रीतिमती हुई है, मैं उसी मुनि का रूप धारण करूँ तो यह मुझ से भी प्रीति करेगी, इसलिये अब देर क्यों करूँ ॥२१॥

आत्मप्रभावेणततस्तस्यरूपद्विजन्मनः ।
कृत्वाचचारयत्रास्तेनिषण्णासावरूथिनी ॥२२
सातदृष्ट्वावरारोहाकिंचिदुत्फुल्ललोचना ।
समेत्यप्राहतन्वंगीप्रसीदेतिपुन पुनः ॥२३
त्वयात्यक्तानसन्देह परित्यक्ष्यामिजीवितम् ।
तत्राधर्म मह्त्तरःक्रियालोपोभविष्यति ॥२४
मयासमेत्यरम्येऽस्मिन्महात्मन्वनकन्दरे ।
मत्परित्राणजधर्ममवश्यप्रतिपत्स्यसे ॥२५
आयुषःसावशेषमेनूनमस्तिमहामते ।
निवृत्तस्तेननूनहिहृदयाह्लादकारकः ॥२६

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् उसने आत्म प्रभाव से उन ब्राह्मण का रूप धारण किया और जहाँ वरूथिनी बैठी थी, वहाँ जाकर घूमने लगा ॥२२॥ वरूथिनी ने जैसे ही उस मुनि वेशधारी कलि को देखा तभी आह्लादयुक्त नेत्रों से उसे देख और निकट पहुँचकर उससे बारम्बार प्रसन्न होओ कहने लगी ॥२३॥ और बोली कि यदि तुम मेरा त्याग करोगे तो मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँगी, जिससे अधर्म होगा और तुम्हारी सम्पूर्ण क्रिया का भी लोप हो जायगा ॥२४॥ यदि इस हिमालय की सुरम्य कन्दरा में मेरे साथ विहार करोगे तो उससे मेरी रक्षा होगी और उसका धर्म फल तुम्हें प्राप्त होगा ॥२५॥ हे महात्मन्! मेरी आयु अभी तक शेष नहीं हुई है, इसीलिए तुम निवृत्त होकर मेरे हृदय में आनन्द का संचार कर सके हो ॥२६॥

किंकरोमिक्रियाहानिर्भवत्यनसतोमम ।
त्वमप्येवविधवाक्यब्रवीपितनुमध्यमे ॥२७
सदहसंकटप्राप्तोनद्ब्रवीमिकरापितत् ।
यदिस्यात्मगमोमेद्यभवत्यामहनान्यथा ॥२८
प्रमोदयद्ब्रवीपित्वनत्करोमिमनतेमृपा ।
ब्रवीम्येतदनाशङ्क्य यद्वत्कार्यंमयाधुना ॥२९
नाद्यमभागममयेद्रष्टव्योहत्वयावने ।
निमीलिताक्ष्या ससर्गस्तवसुभ्रु मयासह ॥३०
एवभवतुभद्र तेयथेच्छसितथास्तुतत् ।
मयासर्वप्रकारहिवशेस्थेयतवाधुना ॥३१

कलि बोला—हे सुन्दरी! समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? यहाँ रहने से मेरे कर्म का लोप हो जायगा, परन्तु तुम भी इस प्रकार से अनुरोध कर रही हो ॥२७॥ ऐसे सङ्कट में पड़कर ही मुझे तुम्हारी बातों से सहमत होना पड़ा है, परन्तु मैं जो कहता हूँ, वह बात तुम्हें स्वीकार हो तभी तुम्हारे साथ संयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता ॥२८॥ वरूथिनी ने कहा—आप कहो, जो कहोगे वही मैं करूँगी इसमें असत्य

नहीं है जो कहते हो वह सभी करूँगी ॥२९॥ मनि बोला—तुम विहार के समय मुझे न देखना, संसर्ग काल में तुम्हें नेत्र बन्द किये रहना होगा ॥३०॥ वरूथिनी ने कहा—यही होगा, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा, मैं सब प्रकार से तुम्हारे अधीन हूँ, तुम्हारा मंगल हो ॥३१॥

५५—स्वरोचि का जन्म और विवाह

ततःसहतयारेमेसगिरिसानुषु ।
फुल्लपद्मवनाढ्येषुमनोज्ञेषुसरःसुच ॥१
कन्दरेषुचरम्येषुनिम्नगापुलिनेषुच ।
मनोज्ञेषुतथान्येषुदेशेषुमुदितोद्विज ॥२
वह्निनापिद्विजस्यासीद्दत्तस्यतेजसा ।
दर्पितानङ्गेणतानिमीलितविलोचना ॥३
तत्र गान्धर्वगर्भमवापमुनिसत्तम ।
तत्पश्चाद्यैनोऽप्यकनकनान्यद्विजन्मनः ॥४
तापसं धारिणीसोऽथ्यस्मानन्तरविस्मापयन्विनीम् ।
विद्रूपधारोमावज्ञानवाचीत्याविमर्जित. ॥५

तेजोजमय स्वरूप का चिन्तन करने के कारण, उसी ब्राह्मण के समान उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ ब्राह्मण रूप धारी वह गधर्व वरूथिनी को समझाकर वहाँ से चला गया ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य की किरणों से सभी दिशाएँ प्रकाशित होती है, वैसे ही शरीर के तेज मे चारो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए उस बालक ने समय पाकर जन्म लिया ॥६॥ अपने शरीर की प्रभा से भास्कर जैसी दीप्ति प्राप्त करने के कारण उस बालक का नाम स्वरोचि हुआ ॥७॥

ववृधेचमहाभागोवयसानुदिनतथा ।
गुणौघैश्चयथाबाल कलाभि शशलाञ्छन ॥८
सजग्राहधनुर्वेदवेदाश्चं वयथाक्रमम् ।
विद्याश्चैवमहाभागस्तदायौवनगोचर ॥९
मन्दराद्रौकश्चित्सविचरश्चारुचेष्टित ।
ददर्शकातदाकन्यागिरिप्रस्थेभयातुराम् ॥१०
त्रायस्वेतिनिरीक्ष्यैनसातदावाक्यमब्रवीत् ।
माभैषीरितिसप्राहभयविप्लुतलोचनाम् ॥११
किमेतदितितेनोक्ते वीरवाक्येमहात्मना ।
सत साकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२
अहमिन्दीवराख्यस्यसुताविद्याधरस्यवै ।
नाम्नामनोरमाजातासुतायामरुधन्वन ॥१३
मन्दारविद्याधरजासखीममविभावरी ।
कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुने ॥१४

हे महाभाग ! जैसे शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा की कला प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त होती है, वैसे ही उस बालक के गुणो मे प्रतिदिन वृद्धि होने लगी ॥८॥ इस स्वरोचि ने चारो वेद, सभी शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके युवावस्था मे प्रवेश किया ॥९॥ उस सुन्दर गति वाले स्वरोचि को किसी एक समय मंदराचल पर भ्रमण करते हुए एक भयातुरा कन्या दिखाई दी ॥१०॥ उसने इसे देखकर 'रक्षा करो' कहा और इसने भी कन्या

को भयातुरा देखकर 'भय नहीं' यह कर आश्वस्त किया ॥११॥ फिर उसने धीरोचित शब्दों में 'तुम्हें क्या भय हुआ है?' यह पूछा, इस पर श्वास छोड़ती हुई उस कन्या ने अस्फुट शब्दों में उत्तर दिया ॥१२॥ वह बोली—मैं इन्दीवर नामक विद्याधर की मरुधन्वा-सुता के गर्भ से उत्पन्न पुत्री हूँ, मेरा नाम मनोरमा है ॥१३॥ मेरी दो सखी विभावरी और कलावती नाम की हैं, इनमें प्रथम मन्दार विद्याधर की और द्वितीय पार मुनि की कन्या है ॥१४॥

ताभ्यां सहमयायाता कैलासतटमुत्तमम् ।
तत्र दृष्टो मुनिः कश्चित्तपसातिकृशाकृतिः ॥१५
क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षितारकः ।
मयावहसितः स तु मन्दभाग्यतयापह ॥१६
ततः शशाप मां किञ्चित्स्फुरिताधरपल्लवः ।
त्वयावहसितो यस्मादनार्ये दुष्टतापसि ॥१७
तस्मात्त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभिभविष्यति ।
दत्तशापो मत्सखीभ्यामनुनिर्भर्त्सितो मुनिः ॥१८
धिक्ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या हृतं ते निखिलं तपः ।
अमर्षेणैव भिन्नोऽसि तपसा नातिकर्शितः ॥१९
क्षान्त्याधारं हि ब्राह्मण्यं क्रोधसंयमनं तपः ।
तच्छ्रुत्वा च ददौ शापं तयोरप्यमितद्युतिः ॥२०
एकस्याः कुष्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्याः क्षयस्तथा ।

थी ॥१८॥ तुम्हारे जैसे क्षमाहीन ब्राह्मण को धिक्कार है और सम्पूर्ण तप निरर्थक है, तुम्हारा शरीर तप के कारण दुबला हुआ प्रतीत नहीं होता, क्रोध से ही हुआ होगा ॥१९॥ ब्राह्मण तो क्षमा के आश्रय रूप और क्रोध पर नियन्त्रण ही उनका तप है, तुम तप मे परिपक्व नही हो पाये, क्योंकि क्रोध ने तुम्हें क्षीण कर दिया है, उनकी ऐसी बात सुनकर उस मुनि ने उन्हें भी शाप दे दिया ॥२०॥ एक से कहा 'तू सर्वाङ्ग मे कुष्ठ से पीड़ित होगी' दूसरी से कहा—'तू क्षय रोग से पीड़ित होगी' मुनि द्वारा शाप देते ही उन दोनों के वे रोग तत्काल उत्पन्न हो गये ॥२१॥

ममाप्येवमहद्रक्ष ममुपैतिपदानुगम् ।
नशृणोपिमहानादतस्याद्‌दूरेऽपिगर्जतः ॥२२
तृतीयमद्यादिवमयन्मेपृष्ठनमु चति ।
अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयशाहमद्यते ॥२३
तप्रयच्छामिमारक्षरक्षमोऽस्मान्महामते ।
प्रादात्स्वायम्भुवस्वयरुद्र. साक्षात् पिनाकधृक् ॥२४
स्वायम्भुवोवसिष्ठायसिद्धवर्यायदत्तवान् ।
तेनापिदत्तमम्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥२५
प्रादादौद्वाहिकसोऽपिमित्पिश्वशुर स्वयम् ।
मयापिशिक्षितवीरसकाशाद्वालयापितु ॥२६
हृदयसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ।
तदिदगृह्यताशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७
ततोजहिदुरात्मानमेनराक्षससमागतम् ॥२८

तभी एक महाराक्षस प्रकट होकर मेरे पीछे भी दौड पड़ा, वह तीन दिन से मेरे पीछे लगा है, देखो समीप मे ही गरज रहा है, क्या आप उस शब्द को नही सुन रहे हैं? मैं अब सभी अस्त्रों का सार रूप यह प्रधान अस्त्र ॥२२-२३॥ आपको दे रही हूँ, इसी से आप मेरी रक्षा करें, पुराकाल मे यह अस्त्र स्वायम्भुव मनु को स्वयं रुद्र ने प्रदान किया था ॥२४॥ यह परमोत्तम सिद्ध अस्त्र स्वायम्भुव ने वसिष्ठ को प्रदान किया और वसिष्ठ से इसे मेरे नाना

चित्रायुध ने प्राप्त किया ॥२५॥ और उन्होने विवाह के दहेज मे मेरे पिता को दिया, सब अस्त्रो के सारभूत इस अस्त्र की शिक्षा मैंने बाल्यावस्था मे अपने पिता से प्राप्त की थी ॥२६॥ यह अस्त्र सभी अस्त्रो का हृदय एवं शत्रु नाशक है, इसे शीघ्र ग्रहण करिये, इसके द्वारा सभी अस्त्रो से होने वाले कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥२७॥ इसके ग्रहण पूर्वक इस राक्षस का वध करिये, जो कि विप्र शाप से मेरा पीछा कर रहा है ॥२८॥

तथेत्युक्तेततस्तेनवार्य्युपस्पृश्यतस्यतत् ।
अस्त्राणाहृदयप्रादात्सरहस्यनिवर्तनम् ॥२९
एतस्मिन्नन्तरेरक्षस्तत्तदाभीषणाकृति ।
नर्दमानमहानादमाजगामत्वरान्वितम् ॥३०
मयाभिभूतांस्त्राणमुपेतिद्रुतमेहिमे ।
भक्षार्यकिचिरेणेतिव्रुवाणतद्ददर्शसः ॥३१
स्वरोचिश्चिन्तयामासदृष्ट्वातमुपागतम् ।
गृह्णात्येवच मरयतस्यास्त्विति महामुने. ॥३२
जग्राहममुपेत्यैनात्वरयासोऽपिराक्षसः ।
त्राहित्राहीतिकरणविलपन्तीसुमध्यमाम् ॥३३
ततःस्वरोचिः संक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ।
दृष्ट्वानिवेश्यतद्रक्षोददर्शानिमिषेक्षणः ॥३४
तदाभिभूत'सतदातामुत्सृज्यनिशाचर ।
प्रसीदशाम्यतामस्त्रश्रूयतांचेत्यभाषत ॥३५

मुनि का शाप सत्य हो सकता है ॥३२॥ स्वरोचि के ऐसा विचार करते ही राक्षस ने तुरन्त उस विद्याधरी को पकड लिया, इस पर वह त्राहि-त्राहि करती हुई रोने लगी ॥३३॥ तब स्वरोचि ने क्रोध मे भर कर उस प्रचण्डास्त्र को धनुष पर चढाया और उस राक्षस की ओर देखा ॥३४॥ उन्हें इस प्रकार उद्यत देखकर राक्षस भय-विह्वल हो गया और कन्या को छोडकर स्वरोचि से बोला—आप अस्त्र का परित्याग करिये, मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा वृत्तान्त सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ ॥३५॥

मोक्षितोऽहत्वयाशापादतिघोरान्महाद्युते ।
प्रदत्तादतितीव्रेणब्रह्ममित्रेणधीमता ॥३६
उपकारोनमेत्वत्तं महाभागाधिकोपरः ।
येनाहसुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३७
ब्रह्ममित्रेणमुनिनाकिन्निमित्तंमहात्मना ।
शप्तस्त्वकीदृशश्चैवशापोदत्तोऽभवत्पुरा ॥३८
ब्रह्ममित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ।
त्रयोदशाधिकारचप्रगृह्याथर्वणोद्विज ॥३९
अहचेन्दीवराक्षेतिख्यातोऽस्याजनकोऽभवम् ।
विद्याधरपते.पुत्रोनलनाभस्यखाङ्गिन ॥४०
मयाचयाचित पूर्वब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ।
आयुर्वेदमशेषमेभगवन्दातुमर्हसि ॥४१
यदासुबहुशोवीरप्रश्रयावनतस्यमे ।
नप्रादाद्याचितोविद्यामायुर्वेदात्मिकामम ॥४२

हे तेजस्विन् ! अत्यन्त तेज सम्पन्न ब्रह्ममित्र मुनि ने मुझे एक बार घोर शाप दिया था, आपने मुझे शाप से मुक्त कर दिया है ॥३६॥ हे महाभाग ! मेरा ऐसा उपकार करने वाला कोई उपकारी आपके समान नहीं है, क्योंकि आप ही ने मुझे घोर क्लेशप्रद ब्रह्म शाप से मुक्त किया है ॥३७॥ स्वरोचि बोले—मुनिवर ब्रह्ममित्र ने तुम्हें जो शाप दिया था, वह कैसा तथा किसलिये दिया था ? ॥३८॥ राक्षस बोला—उन मुनिवर ब्रह्ममित्र ने अथर्व के तेरह

अधिकार मे ज्ञान प्राप्त किया था तथा आठ भाग वाले सम्पूर्ण आयुर्वेद को पढा था ।।३९।। मेरा नाम इन्दीवर है, मैं खड्गनल नाभ नामक विद्याधर का पुत्र तथा इस कन्या का पिता हूँ ।।४०।। मैंने उन ब्रह्ममित्र से निवेदन किया था कि मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान दीजिये ।।४१।। परन्तु बारम्बार विनय पूर्वक निवेदन करने पर भी मुनि ने मुझे आयुर्वेद का ज्ञान नही दिया ।।४२।।

शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ।
आयुर्वेदात्मिकाविद्यागृहीताभूत्तदानघ ।।४३
गृहीतायातुविद्यायामासैरष्टाभिरन्तरात् ।
ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीवपुनःपुन ।।४४
प्रत्यभिज्ञायमाहासान्मुनिःकोपसमन्वित ।
विकम्पिकन्धर प्राहमामिदपरुषाक्षरम् ।।४५
राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽदृश्येनदुर्मते ।
हृताविद्यावहासश्चमामवज्ञायवैकृत ।।४६
तस्मात्त्वराक्षस पापमच्छापेननिराकृत ।
भविष्यसिनसन्देह सप्तरात्रेणदारुण ।।४७
इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादित. ।
समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानस ।।४८

तब, जब वे अपने शिष्य को आयुर्वेद का ज्ञान दे रहे थे, उस समय छिप कर मैंने उस विद्या को प्राप्त किया ।।४३।। जब आठ महीने मे मुझे सपूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान होगया, तब मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और मैं बारम्बार हँसने लगा ।।४४।। मुनि ने जब मेरा इस प्रकार हँसना जाना तो उन्होने क्रोध से कम्पित कण्ठ होकर यह कठोर वचन कहे ।।४५।। हे दुर्मते ! तूने राक्षस के समान छिप कर विद्या को चुराया है और अवज्ञा पूर्वक मेरी हँसी उडाई है ।।४६।। इसलिये तू मेरे शाप से अधिकार च्युत होकर सात रात्रि मे ही घोर राक्षस हो जायगा ।।४७।। इस प्रकार का शाप सुनकर मैंने मुनि को विनम्रता पूर्ण उपचारों से प्रसन्न किया तो वह तुरन्त प्रसन्न होगये और बोले ।।४८।।

यन्मयोक्तमवश्यतद्भाविगन्धर्वनान्यथा ।
किन्तुत्वराक्षसोभूत्वापुनस्त्वप्राप्स्यसेवपु ॥४९
नष्टस्मृतिर्यदाक्रुद्ध स्वमपत्यचिन्वादिषु ।
निशाचरत्वेगन्तासितदन्त्रानलतापित. ॥५०
पुन सज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसिनिजवपु ।
तथैवस्वदर्मधिष्ठानलोकेगन्धर्वसज्ञिते ॥५१
सोऽहत्वयामहाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ।
निशाचरत्वाद्घोरतेनमेप्रार्थनाकुरु ॥५२
इमातेतनयाभार्याप्रयच्छामिप्रतीच्छनाम् ।
आयुर्वेदश्चसकलस्त्वष्टाङ्गोयोमयातत ।
मुनेसकाशात्प्राप्तस्तगृह्णीष्वमहामते ॥५३
इत्युक्त्वाप्रददौविद्यामचदिव्याम्बरोज्ज्वल ।
स्रग्भूषणधरोदिव्यपौराणवपुरास्थित ॥५४
दत्त्वाविद्यानत कन्यासदातुमुपचक्रमे ।
तमाहसातदाकन्याजनितारस्वरूपिणम् ॥५५

हे गन्धर्व ! मेरा कहा हुआ तो मिथ्या नहीं होगा, परन्तु तू राक्षस होने के पश्चात् पुन अपने शरीर को प्राप्त होगा ॥४९॥ जब तू राक्षस होकर पुरानी बात भूलता हुआ क्रोधवश अपनी ही पुत्री का भक्षण करने को तत्पर होगा, तभी अस्त्रानल से सन्तप्त होकर ॥५०॥ पुनः स्मृति लाभ करेगा और अपने उसी शरीर, गन्धर्वलोक और अधिकार को पूर्ववत् प्राप्त करेगा ॥५१॥ हे महाभाग ! आपने मुझे इस घोर राक्षसत्व से मुक्त किया है, इसलिये मुझसे वर माँगो ॥५२॥ हे महामते ! इस कन्या को मैं आपको प्रदान करता हूँ, इसे पत्नी रूप में स्वीकार करो तथा मुनि से मुझे जिस अष्टाङ्ग आयुर्वेद की प्राप्ति हुई है, उसे भी मुझसे ग्रहण करो ॥५३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्य वसन, दिव्य भूषण एवं माला तथा पूर्ववत् दिव्य देह को धारण किये हुए उस गन्धर्व ने ऐसा कहकर स्वरोचि को ॥५४॥ सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्या प्रदान की तथा

उसने अब कन्यादान का उद्यम किया तभी उस कन्या ने अपने स्वरूप को प्राप्त हुए पिता से कहा ॥५५॥

अनुरागोममाऽप्यत्रतातातीवमहात्मनि ।
दर्शनादेवसंजातोविशेषेणोपकारिणी ॥५६
किन्त्वेषामेमसखीसाचमत्कृतेदु खपीडिते ।
अनेनाभिलषभोगान्भोक्नुमतेनधीसमम् ॥५७
पुरंधरपिनोदायथावक्तुं मित्यनृशंसता ।
स्वभावश्चिरंमोहवयस्योपित्वरिष्यति ॥५८
गाहृयमातेदु ग्यात्तिमत्कृतेश न्यवेपित ।
तथान्यास्या मिदु ग्यानांतच्छोकानलतापिता ॥५६
आयुर्वेदप्रमादेनतेषरिष्येपुनर्नव ।
गन्धोमयमहा..किममुरमृजमुमध्यमे ॥६०
तन.पिताम्बयदत्तानाय न्यामविधानतः ।
[illegible] ॥६१

सचापिमहृतस्तन्यातद्गानतदाययौ ।
कन्यकायुगलयनतच्छापात्यनदातुरम् ॥६२
ततस्तयो मतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौपधैरसैः ।
चकारनीरजेदेहेस्वरोचिरपराजित- ॥६४
ततोऽतिशोभनेकन्येविमुक्तेव्याधित शुभे ।
स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागचक्रातेनन्महीधरम् ॥६५

कन्यादान करके गन्धर्व उस हर प्रकार से समझा कर दिव्य विमान पर चढ कर अपने लोक को गया ॥६२॥ इधर स्वरोचि अपनी पत्नी के सहित वहाँ गए, जहाँ मनोरमा की दोनो सखियाँ रोगाक्रान्त हुई उद्यान मे रह रही थी ॥६३॥ और आयुर्वेद के तत्वज्ञाता स्वरोचि ने रोग नाशक औषधियों के रसों से उन दोनों के शरीर को रोग रहित किया ॥६४॥ तब उन अत्यन्त रूपवती कन्याओ की देह कान्ति से पर्वत की सभी दिशाएँ प्रकाशित होने लगी ।६५।

५६ - स्वरोचि के अन्य विवाह

एवंविमुक्तरोगातुकन्यकातमुदान्विता ।
स्वरोचिपमुवाचेदशृणुष्ववचनप्रभो ॥१
मन्दारविद्याधरजानाम्नाख्याताविभावरी ।
उपकारिण्यमात्मानप्रयच्छामिप्रतीच्छमाम् ॥२
विद्याचतुभ्यदास्यामिनिर्वभूतस्यानिते ।
ययाभिव्यक्तिमेष्यन्तिप्रसादप्रवणोभव ॥३
एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ।
द्वितीयातुतदाकन्याइदवचनमब्रवीत् ॥४
कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारानामपितामम ।
ब्रह्मर्पि सुमहाभागोवेदवेदाङ्गपारग ॥५

तस्यपुस्कोकिलालापरमणीयेमधौपुरा ।
आजगामाप्सरोम्याशप्रख्यातापुञ्जिकस्थला ॥६
कामवैक्लव्यतानीत मतदामुनिपुङ्गव ।
तत्सयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामत्रमहाचले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—मनोरमा की दोनो सखियो मे से एक ने रोग-मुक्ति की प्रसन्नता से स्वरोचि के प्रति कहा कि मेरी बात सुनिये ॥१॥ मैं मन्दार नामक विद्याधर की कन्या विभावरी हूँ, आपने मेरा महान् उपकार किया है, उसके बदले मे आपको अपना आत्मा ही अर्पित करती हूँ ॥२॥ तथा जिस विद्या के द्वारा सब प्राणियो के स्वर का ज्ञान होता है, वह भी आपको देती हूँ, उसे आप ग्रहण करिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—धर्मज्ञाता स्वरोचि ने विभावरी की बात को स्वीकार कर लिया, इसके पश्चात् दूसरी कन्या ने उनसे कहा ॥४॥ मेरे पिता कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य का आलम्बन करने वाले, वेद वेदाग के ज्ञाता ब्रह्मर्षि पार हैं ॥५॥ एक समय जब बसत ऋतु प्राप्त हुई सब कामीजनो के मन को हरण करने वाले पुस्कोकिल के मधुर स्वर से तपोवन गूँज रहा था तभी एक पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा ने उनके निकट आगमन किया ॥६॥ इससे वह मुनिवर काम के वश मे होगये और तब उस अप्सरा के गर्भ से मैं इसी महापर्वत मे उत्पन्न हुई ॥७॥

विहायमागतासाचमातास्मिन्निर्जनेवने ।
बालामेकामहीपृष्ठेव्यालश्वापदसकुले ॥८
तत कलाभि सोमस्यवर्द्धन्तीभिरहःक्षये ।
आप्यायमानाहरहोवृद्धियातास्मिसत्तम ॥९
तत कलावतीत्येतन्ममनाममहात्मना ।
गृहीताया कृतपित्रागन्धर्वेणशुभात्मना ॥१०
नदत्ताहतदातेनयाचितेनमहात्मना ।
देवारिणानिवासुरस्ततोमेधातित पिता ॥११
ततोऽहमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता ।
निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥१२

माशुचःसुभ्रु भर्त्तातेमहाभागोभविष्यति ।
स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति ॥१३
आज्ञाचनिधयः सर्वे करिष्यन्तितवादृताः ।
यथाभिलषितवित्तप्रदास्यन्तितवशुभे ॥१४

फिर मेरी माता मुझे इन हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण निर्जन वन में एकाकी पड़ी छोड़ कर चली गयी ॥८॥ तब एक महात्मा गन्धर्व ने मेरा पालन किया, वहाँ शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हुई शशिकला से परिपुष्ट होती हुई मैं बढ़ने लगी, परन्तु कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के क्षय होने पर भी मेरा क्षय न होता हुआ देखकर उस गन्धर्व ने मेरा नाम कलावती रखा ॥९-१०॥ कुछ काल के पश्चात् अग्नि नामक एक राक्षस मेरे पिता के पास आकर मुझे माँगने लगा और जब मेरे पिता ने उसकी याचना स्वीकार न की तो उसने रात्रि में *शयन करते हुए मेरे पिता का वध कर दिया ॥११॥ मैं तब दुःख से सन्तप्त* होकर आत्मघात को उद्यत हुई, तब भगवान् शिव की भार्या सती ने मुझे रोका ॥१२॥ उन्होंने कहा—तुम शोक को छोड़ दो, महाभाग स्वरोचि तुम्हारे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा ॥१३॥ सभी निधियाँ तुम्हारी आज्ञा का सदैव पालन करेंगी और तुम्हारे लिए इच्छित धन देंगी ॥१४॥

यस्यावत्सेप्रभावेणविद्यायास्तांगृहाणमे ।
पद्मिनीनामविद्येयमहापद्माभिपूजिता ॥१५
इत्याहमांदक्षसुतासतीसत्यपरायणा ।
स्वरोचिस्त्वञ्चसुभ्रुवदेवीनान्यथावदिष्यति ॥१६
साहंप्राणप्रदायाद्यतांविद्यांत्वत्कृतेप्रभु ।
प्रयच्छामिप्रतीच्छत्वंप्रसादसुमुखोभव ॥१७
एवमस्त्वितितामाहननुकन्यांकलावतीम् ।
विभावरीं कलावत्या स्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः ॥१८
जग्राहसततःपाणिंतनयोरम्बरद्युति ।
ननन्दुर्देवतूर्याणिपुनृत्यन्तीस्त्वप्सरसश्च ॥१९

सत्य परायणा दक्ष सुता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता,इसलिये आप अवश्य ही वह स्वरोचि हैं ।।१६।। मैं आपको अपना शरीर, प्राण और विद्या समर्पित करती हूँ, आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करिये ।।१७।। मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर स्वरोचि ने 'ऐसा ही हो' कहा और विभावरी एवं कलावती दोनों की अनुमति से ।।१८।।(स्वरोचि ने उस कन्या का भी पाणिग्रहण कर लिया, उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे और अप्सरायें नाचने लगी ।।१९।।)

५७—चक्रवाक और मृग का तिरस्कार

ततः सताभिः सहितःपत्नीभिरमरद्युतिः ।
ररामतस्मिञ्छैलेन्द्रे रम्य काननिर्झरे ।।१
सर्वोपभोगरत्नानिमधूनिमधुराणिच ।
निधय समुपाजग्मु पद्मिन्यावशवर्तिनः ।।२
स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्गधाढ्यमनुलेपनम् ।
आसनान्यतिशुभ्राणिकाचनानियथेच्छया ।।३
सौवर्णानिमहाभागकरकान्भाजनानिच ।
तथाशय्याश्चविविधादिव्यैरास्तरणैर्युताः ।।४
एवसताभिःसहितोदिव्यगन्धाधिवासिते ।
ररामस्वरचिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते ।।५
ताश्चापिसहतेनेतिलेभिरेमुदमुत्तमाम् ।
रममाणाययास्वर्गेतयातत्रशिलोच्चये ।।६
कलहसीजगादैकाचक्रवाकीजलेसतीम् ।
तस्यतासाचललितेसम्बन्धेचस्पृहावती ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर अमर दीप्ति वाले स्वरोचि अपनी तीनों पत्नियों के साथ मलयाचल में उस सुरम्य वन एवं निर्झर स्थानों में विहार करने लगे ।।१।। पद्मिनी विद्या के वश में हुईं निधियाँ उपभोगार्थ नाना प्रकार

ये रस एवं मधुर मद्य ॥२॥ माला, वस्त्राभूषण, सुगन्धित लेप, आसन, चाँदी एवं स्वर्ण ॥३॥ तथा स्वर्ण के विभिन्न पात्र, दिव्य बिछौनों से युक्त शय्या एवं अन्य द्रव्य उन्हें प्रदान करने लगी ॥४॥ इस प्रकार वह स्वरोचि दिव्य गंधादि से सुवासित और रत्नादि से सुशोभित पर्वतीय प्रदेश में तीनों पत्नियों के साथ विहार-रत हुए ॥५॥ उस स्वर्ग तुल्य रमणीक क्षेत्र पर्वत में विहार करती हुई तीनों भार्या भी अत्यन्त सुखी हुईं ॥६॥ उस समय उनको इस प्रकार प्रणय युक्त विहार करते देखकर एक कलहंसी ने जल में स्थित अन्य चक्रवाकी के प्रति कहा ॥७॥

धन्योऽयमतिपुण्योऽयोऽयंयौवनगोचर ।
दयिताभि महेष्टाभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८
सन्तियौवनिन श्लाघ्यास्तरपत्न्योनातिशोभना ।
जगत्यामल्पका:पत्न्य पतयश्चातिशोभनाः ॥९
अभीष्टाकस्यचित्कान्तायान्तःकस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्य दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०
धन्योऽयदयिताभीष्टोह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ।
परस्परानुरागोहिधन्यानामेवजायते ॥११
एतन्निशम्यवचनकलहंसीसमीरितम् ।
उवाचचक्रवाकीतानातिविस्मितमानसा ॥१२
नायधन्योयतोलज्जानान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।
अन्यास्वियमयभुङ्क्तेनसर्वास्वस्यमानसम् ॥१३
चित्तानुरागएकस्मिन्नधिष्ठानेयतःसखि ।
ततोतिप्रीतिमानेषभार्यासुभविताकथम् ॥१४

इन स्त्रियों के साथ समस्त इच्छित भोगों को भोगने वाला यह युवक ही धन्य है ॥८॥ संसार में रूप और यौवन से सम्पन्न ऐसे अनेक पुरुष हैं, जिनकी भार्या असुन्दर हैं, ऐसे दम्पत्ति कोई विरले ही हैं, जो पति-पत्नी दोनों ही सौन्दर्य से शोभायमान हों ॥९॥ कोई पति अपनी पत्नी में और कोई पत्नी अपने पति में अनुरक्त हैं, परन्तु समान आसक्ति वाले स्त्री-पुरुष कठिनता से ही

मिलते हैं ॥१०॥ इसलिये अपनी पत्नियों के यह प्रियतम और इनकी प्रियतमा पत्नियाँ भी धन्य है क्योंकि कृतकृत्य प्राणियों में ही परस्पर अनुराग की उत्पत्ति होती है ॥११॥ कलहंसी की बात से चक्रवाकी अधिक विस्मित नहीं हुई, उसने कहा ॥१२॥ यह स्वरोचि धन्य नहीं हो सकते क्योंकि एक स्त्री के सामने ही दूसरी से विहार करते हैं, इसलिये इन्हें किंचित् भी लज्जा नहीं आती, सब पत्नियों के प्रति इनकी समान रुचि भी नहीं है ॥१३॥ जब चित्त का अनुराग एक ही में अवस्थान करता है, तब यह स्वरोचि सब पत्नियों में समान अनुराग कैसे रख सकते हैं ॥१४॥

एतानदयिता पत्युर्नैतासादयित पति ।
विनोदमात्रमेवतायथापरिजनोपर ॥१५
एतासाचयदीष्टोऽयतत्किंप्राणान्नमुञ्चति ।
आलिङ्गत्यपराकान्ताध्यातोवैकान्तयान्यया । १६
विद्याप्रदानमूल्येनक्रीतोह्येषभृत्यवत् ।
प्रवर्त्ततोनहिप्रेममवह्वीषुतिष्ठति ॥१७
कलहसिपतिर्धन्योममधन्याहमेवच ।
यस्यंकस्याचिरचित्तयस्याश्चैकत्रसस्थितम् ॥१८
बहुपत्नीपतिर्लोके कारणंपुण्यपापयोः ।
गृहासनामनार्थं श्रभूपर्णश्चसहागमं ॥१९
विपमें म्रियमाणेहियुज्यतेमहदेनसा ।
ज्येष्ठाक्नीयभावेनव निष्ठाज्येष्ठतानयेत् ॥२०
गुरवेनुवरंदत्वाहुत्वाग्न्यामभिधयथा ।
ऊढयासहकर्त्तव्यानित्यनैमित्तिकी क्रिया ॥२१

इनकी यह सब पत्नियाँ प्रियतमा नहीं हैं और न उन सबको ही यह समान रूप से प्रिय हैं, जैसे चित्त को विनोद प्राप्त हो सके उसी विनोद की सामग्री यह पत्नियाँ भी हैं ॥१५॥ यदि यह सब में समान प्रीति वाले होते तो सबको सब समय सन्तुष्ट करने में समर्थ होकर क्या इतने काल पर्यन्त जीवित रह सकते थे, इनमें परस्पर का अनुराग और समान प्रेम कहाँ से हो सकता

है ? ॥१६॥ यह स्वरोचि विद्या प्राप्ति के मूल्य में दिव्य कर पत्नियों के समक्ष सूच के समान ही हैं, सभी पत्नियों में प्रेम का समान भाव से रहना सम्भव नहीं है ॥१७॥ हे सखी ! धन्य तो मैं हूँ और मेरे पति हैं, क्योंकि मैं ही उनकी एकमात्र भार्या हूँ, उनके चित्त का अनुराग मेरे ही प्रति है और मैं भी उन्हीं में अनुरक्त हूँ ॥१८॥ अनेक भार्याओं का पति पुण्य और पाप का कारण है, गृह निवासिनी के सन्तापमान आभूषणों से और विषम शास्त्रों के द्वारा हुए निश्चय से ॥१९॥ युक्त मनुष्य विषमता के कारण महापापी होता है, तथा बड़ी को छोटी और छोटी को बड़ी मानने से ॥२०॥ तथा गृह को दक्षिणा के रूप में घर देकर समिधाओं के द्वारा हवन करने योग्य है, विवाहिता पत्नी के सहित नित्य नैमित्तिक कर्मों को करे ॥२१॥

जगादायान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः ।
सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौस्वरोचिरपराजितः ॥२२
निशम्यलज्जितोदध्यौसत्यमेवहिनानृतम् ।
ततोवर्षंगतेयातेरममाणोमहागिरौ ।
रममाण सभन्नाभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ॥२३
सुस्निग्धपीनावयवमृगीयूथविहारिणम् ।
वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिःपरिवारितम् ॥२४
आघ्राणपृष्ठकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः ।
उवाचसमृगोऽनवोलज्जात्यागेनगम्यताम् ॥२५
नाहंस्वरोचिस्सन्दीलोनचैवाहंसुलोचना ।
निर्लज्जाबहवःसन्तिताद्दृशास्तत्रगच्छत ॥२६
एकात्वनेनानुगतायथाहासाम्पदज्जने ।
अनेकाभिस्तथैवैषोभोगदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥२७
तस्यधर्मक्रियाहानिरहन्यहनिजायते ।
सक्तोऽन्यभार्यंयाचान्यस्तामासक्तः सदैवसः ॥२८
यस्मादृशोऽन्यस्तच्छील परलोकपराङ्मुखः ।
सकामयतभद्रं वानाहंतुल्यः स्वरोचिषा ॥२९

अन्य प्रकार से करने वाला पापी कहा जाता है, मार्कण्डेयजी ने कहा—सब जीवो की वार्ता को समझने वाले पराजय-रहित स्वरोचि ॥२२॥ उनकी बात सुनकर लज्जित हुए और विचारने लगे कि इसका वचन सत्य है, इसमें अनृत कुछ भी नही है, फिर भी उस महाचल मे पत्नियो के संग विहार करते हुए उन्हे सौ वर्ष व्यतीत होगये, तदनन्तर एक दिन जब पत्नियों के साथ विहार रत थे तभी उन्होने सामने स्थित ॥२३॥ एक स्थूलकाय, सर्वाङ्ग पुष्ट मृगी-यूथ के साथ विहार करने वाले एक मृग को देखा, वह चारो से अपनी समान आयु वाली मृगियो से घिरा हुआ था ॥२४॥ तब नासिका सिकोड कर मृग के शरीर को सूँघती हुई मृगियो को देखकर मृग ने उनसे कहा—अरी मृगियो ! तुमने लज्जा छोड दी है, इसलिये अब और कही जाओ ॥२५॥ हे सुन्दर नयन वालियो ! मैं स्वरोचि नही हूँ और न मेरा स्वभाव ही उनके जैसा है, उनके समान अनेक लज्जाहीन पुरुष मिल सकते हैं, तुम उन्ही के पास जाओ जैसे एक स्त्री अनेक पुरुषो की अनुगामिनी होने पर समाज मे हँसी के योग्य होती है, वैसे ही अनेक स्त्रियो से विहार करने वाला पुरुष भी हास्यास्पद होता है ॥२७॥ उसकी नित्यक्रिया नष्ट हो जाती है, वह पत्नी के साथ रहकर भी अन्य स्त्रियो की सदा इच्छा करता रहता है ॥२८॥ इसलिये परलोक से विमुख स्वभाव वाले स्वरोचि जैसा कोई अन्य पुरुष हो तुम उसी के पास जाओ, मैं वैसा नहीं हूँ ॥२९॥

५८—स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति

एवंनिरस्यमानास्ता हरिणेनमृगाङ्गना ।
श्रुत्वास्वरुचिरात्मानमेनेसपतितयथा ॥१
त्यागेचक्रारचमन सतासामुनिसत्तम ।
चक्रवाकोमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सित ॥२
समेरयताभिभूँ यश्चवर्द्धमानमनोभव ।
आक्षिप्तनिर्वेदवयोरेमेवर्षशतानिषट् ॥३

किन्तुधर्माविरोधेनकुर्वन्धर्माश्रिता क्रियाः ।
भुङ्क्तेस्वरोचिर्विषयान्सहताभिस्दारधी ॥४
ततश्चजज्ञिरेतस्यत्रय.पुत्रा स्वरोचिषः ।
विजयो मेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबल ॥५
मनोरमात्वविजयप्रासूतेन्दीवरात्मजा ।
विभावरीमेरुनन्दप्रभावचकलावती ॥६
पद्मिनीनामयाविद्यासर्वभोगोपपादिका ।
सतेपानत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार उस मृग के द्वारा वे हरिणियाँ निराश हुई और इस वार्ता को सुनकर स्वरोचि ने स्वय को पतित समझा ।१। हे मुनिवर ! चक्रवाकी और मृग द्वारा ऐसी निन्दा को पाकर तथा मृग के आचरण को देखकर अपने को निन्दित समझा और पत्नियों को त्यागने का विचार किया ।।२।। परन्तु पत्नियों से मिलते ही पुन. काम की प्रवृत्ति के सबल होने से उनका विरक्त भाव नष्ट होगया और इसके पश्चात् उन्होंने छ सौ वर्ष तक पत्नियों के साथ विहार किया ॥३॥ परन्तु जब वे विषय-रत होते तब वे अपने धर्म-मार्गानुसार सभी क्रिया यथा विधि सम्पन्न करते थे ॥४॥ फिर उनके विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नाम तीन अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव की उत्पत्ति हुई थी ॥६॥ सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या के प्रभाव से स्वरोचि ने तीन पुरों की रचना की ॥७॥

प्राच्यातुविजयनामकामरूपेनगोत्तमे ।
विजयायसुतायादौसददौपुरमुत्तमम् ॥८
उदीच्यामेरुनन्दस्यपुरीनन्दवतीमिति ।
ख्याताचकारप्रत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ॥९
कलावतीसुतस्यापिप्रभावस्यनिवेशितम् ।
पुरतालमितिख्यातदक्षिणापथमाश्रितम् ॥१०

एवनिवेश्यपुत्रान्सपुरेषुपुरुषर्षभः ।
रेमेताभि.समविप्रमनोज्ञास्वद्रिभूमिषु ॥११
एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सधनुर्द्धर. ।
चकर्षधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥१२
अथाहकाचिदभ्येत्यसततदाहरिणागना ।
मय्येवपात्यतावाण.प्रसीदेतिपुन पुन. ॥१३॥
किमनेनहतेनाद्यमामाशुविनिपातय ।
त्वयानिपातितोवाणोदु खान्मामोक्षयिष्यति ॥१४

पूर्व दिशा मे कामरूप पर्वत पर विजय नामक पुर बनाकर विजय को ॥८॥ उत्तर दिशा मे अत्यन्त ऊँची प्राचीरो वाला नन्दवती नामक पुर मेरु-नन्द को दिया ॥९॥ और दक्षिण मे ताल नामक पुर बनाकर प्रभाव को प्रदान किया ॥१०॥ इस प्रकार पुरुष श्रेष्ठ स्वरोचि ने तीनो पुत्रो उन तीनो पुरो मे बसा कर पत्नियो सहित अत्यन्त सुरम्य प्रदेश मे विहार किया ॥११॥ एक दिन धनुष ग्रहण करके विहार करते हुए बहुत दूर पर उन्होंने एक वाराह को देखकर शर सधान किया ॥१२॥ तभी एक हरिणी वहाँ आई और वह बारबार प्रार्थना करने लगी—'मुझ पर प्रसन्न होकर इस बाण को मुझ पर चलाओ. ॥१३॥ इस वाराह का वध किया जाना व्यर्थ होगा, इसलिये आप मुझ पर अपना बाण चला कर, मुझे दु ख से छुड़ाइये ॥१४॥

नतेशरीरसरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
किन्नुतत्कारणयेनत्वप्राणान्हातुमिच्छसि ॥१५
अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिश्चे त कृतास्पदम् ।
ममतेनविनामृत्युरौषधकिमिहापरम् ॥१६
कस्त्वानाभिलषेद्भीरुसानुरागासिकुत्रवा ।
यदप्राप्तोनिजान्प्राणान्परित्यक्तु व्यवस्यसि ॥१७
त्वामेवेच्छामिभद्र तेत्वयामेऽपहृतमन ।
वृणोम्यहमतोमृत्यु मयिवाणोनिपात्यताम् ॥१८

त्वमृगीचचलापागीनररूपधरावयम् ।
कथत्वयासमयोगोमद्विस्यभविष्यति ॥१९
यदिसापेक्षितचित्तमयितेमापरिष्वज ।
यदिवासाधुचित्ततेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥२०
एतावताहभवताभविष्याम्यनिमानिता ।
प्रालिलिंगततस्तासस्वरोचिर्हरिणागनाम् ॥२१

स्वरोचि बोले—तेरा देह किसी प्रकार भी रोग ग्रस्त प्रतीत नहीं होता फिर तू क्यों अपना देह त्यागना चाहती है ? ॥१५। मृगी ने कहा—मेरा चित्त उसके प्रति आसक्त है, जिसका चित्त किसी अन्य नारी में अनुरक्त हुआ है, इस लिये उसे प्राप्त न करने रूप रोग की एक मात्र औषधि आपके बाण से प्राण त्याग करना ही है ॥१६॥ स्वरोचि बोले—तुझे कौन नहीं चाहता ? तू किस के प्रति आसक्ति वाली हुई है ? जिसके प्राप्त न होने से तू प्राण त्याग करने को दृढ निश्चय है ॥१७॥ मृगी ने कहा—आपने मेरा चित्त चुरा लिया है मैं आपकी ही अभिलाषा करती हू, इसी लिये प्राण त्याग के लिये तत्पर हुई हूँ, आप शीघ्र ही मुझ पर बाण चलाइये ॥१८॥ स्वरोचि बोले—तू चपल अङ्ग वाली मृगी है और मैं मनुष्य शरीर में हूँ, इस लिये मेरा तुम्हारा सग किस प्रकार सभव है ? ॥१९॥ मृगी ने कहा—यदि मेरे प्रति आपके चित्त में भी अनुराग है तो मुझे आलिगन प्रदान करिये यदि आप साधु चित्त वाले हैं तो मैं आपके इच्छित कार्य को सम्पादित करूँगी ॥२०॥ इस प्रकार मैं आपके द्वारा अत्यन्त सम्मान को प्राप्त हूँगी, मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सुन कर स्वरोचि ने उस मृगी का आलिगन किया ॥२१॥

तेनचालिगितासद्य साभूद्दिव्यवपुर्धरा ।
ततःसविस्मयाविष्ट कात्वमित्यभ्यभाषत ॥२२
साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ।
अहमभ्यर्थितादेवैं काननस्यास्यदेवता ॥२३
उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ।
प्रीतिमत्यामयिसुतम्भूर्लोकपरिपालकम् ॥२४

तमुत्पादयदेवानात्वामहवचनाद्वदे ।
तत सतस्यातनयसर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५
तेजस्विनमिवात्मानजनयामासतत्क्षणात् ।
जातमात्रस्यतस्याथदेववाद्यानिसस्वनु :
जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥२६
सिषिचु शीकरैर्मेघाऋषयश्चतपोधना ॥२७
देवाश्चपुष्पवर्षचमुमुचश्चसमन्तत ।
तस्यतेज समालोक्यनामचक्रे पितास्वयम् ॥२८
द्यु तिमानितियेनास्यतेजसाभासितादिश ।
सबालोद्यु तिमान्नामहावलपराक्रम ॥२९

उनका आलिंगन प्राप्त करते ही वह मृगी उसी समय दिव्य शरीर धारण करके एक सुन्दर नारी हो गई, इस पर स्वरोचि ने अत्यन्त विस्मय पूर्वक उससे कहा 'तुम कौन हो ? ॥२२॥ तब उस मृगी ने लज्जा और प्रेम से गद्गद हो कर कहा कि मैं इस वन की अधिष्ठात्री देवी हूँ और देवताओं से प्रार्थित हो कर तुम्हारे निकट आई हूँ ॥२३॥ हे महामते ? मैं तुम पर अनुरक्त हुई हूं मुझ से तो मनु को उत्पन्न करना तुम्हारे लिये कर्त्तव्य है, इस लिये उस भूर्लोक परिपालक पुत्र को मुझ में उत्पन्न करिये ॥२४॥ यह बात मैंने देवताओं के वचनों के अनुसार ही कही है, मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर स्वरोचि ने उस वन देवी के गर्भ से अपने ही समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, उसके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण वाद्य बजने लगे, गन्धर्वपति गायन करने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥२५–२६॥ दिशाओं से हाथी जल सींचने लगे और तपोधन ऋषि ॥२७॥ तथा देवता सब ओर पुष्प बरसाने लगे उस बालक के तेज से सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी, ऐसी अग दीप्ति देख कर स्वरोचि ने अपने पुत्र का ॥२८॥ नाम द्युतिमान् रखा , यह बालक अत्यन्त बली और पराक्रमी हुआ ॥२९॥

स्वरोचिष सुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् ।
सचापिविचरग्रम्येकदाचिद्गिरिनिर्झरे ॥३०

स्वरोचिर्ददृशेहंसनिजपत्नीसमन्वितम् ।
उवाचसनदाहंसीनाभिलाषापुनःपुनः ॥३१
उपसंह्रियतामात्माचिरतक्रीडितमया ।
किंसर्वकालभोगैस्तेप्रासन्नं चरमवय ॥३२
परित्यागस्यकालोमेतवचापिजलेचरि ।
अकालःकोहिभोगानामर्वभागात्मकजगत् ॥३३
यज्ञा क्रियन्तेभोगार्थब्राह्मणै संयतात्मभि ।
दृष्टादृष्टान्यथाभोगान्वाञ्छमानाविवेकिन ॥३४
दानानिचप्रयच्छन्तिपूतान्धर्मा श्रकुर्वते ।
सत्वनेच्छसिकिंभोगान्भोगश्रेष्ठफलन्नृणाम् ॥३५

स्वरोचि का पुत्र होने के कारण उसे स्वारोचिष भी कहा जाने लगा, फिर किसी एक समय सुरम्य पर्वत और निर्झर में भ्रमण करते हुए ॥३०॥ उन स्वरोचि ने अपनी भार्या के सहित एक हंस को देखा, वह हंस्या हँसी से कह रहा था ॥३१॥ हे हंसी ! अपने मन को अब निवृत्त कर, मैंने तेरे साथ बहुत समय तक विहार किया है, अब सदैव ही भोग-रत रहने से क्या लाभ है, क्योंकि वृद्धावस्था आ गई है ॥३२॥ यह हमारे द्वारा विषय भोगों के त्यागने का समय उपस्थित है, इस पर हंसी ने कहा—भोग का समय-असमय क्या है, देखो यह सम्पूर्ण विश्व भोगमय ही है ॥३३॥ क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मण भोग की इच्छा से ही यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं तथा ज्ञानीजन भी दृष्ट-अदृष्ट भोगों की अभिलाषा करते हुए ॥३४॥ दान और पूर्त के धर्म में लगे रहते हैं, जब ऐसे व्यक्तियों का भी कर्म फल भोग ही है तो तिर्यक् योनि वालों के विषय में कहा ही क्या जाय ? ॥३५॥

विवेकिनानिरस्त्वार्थकिंपुन संयतात्मनाम् ।
भोगेष्वासक्तचित्तानापरमार्थान्वितामति ।
भविष्यतिषदानगमुपेतानाचवन्धुषु ॥३६
पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ता सीदन्तिजन्तव ।
सर पङ्कार्णवेमग्नाजीर्णावनगजाइव ॥३७

किंनपश्यसित्वाभद्रे जातसङ्गम्स्वरोचिषम् ।
आबाल्यात्काममसक्त मग्नस्नेहाम्बुकर्दमे ॥३८
यौवनेऽनीवभार्यासुसाम्प्रतपुत्रनप्तृषु ।
स्वरोचिषोमनोमग्नमुद्धारप्राप्स्यतेकुन ॥३९
नाहस्वरोचिषतुल्य स्त्रीवस्योवाजलेचरि ।
विवेकदाश्चभोगानानिवृत्तोऽस्मिचसाम्प्रतम् ॥४०
स्वरोचिरेतदाकर्ण्यजातोद्वेग खगेरितम् ।
आदायभार्यास्तपसेययावन्यत्तपोवनम् ॥४१
तत्रतप्त्वातपोघोरसहताभिरुदारधी ।
जगामलोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मष ॥४२

इस लिये तुम उस भोग को क्यो नही चाहते ? हस बोला—भोगो में जिनकी चित्त वृत्ति नही, उनकी मति परमात्मा की अनुगामिनी है, बांधवो के ममत्व वाले मनुष्य की बुद्धि क्या कभी इस प्रकार की हो सकती है ? ॥-६॥ पुत्र, मित्र और कलत्र मे आसक्ति वाले जीव सरोवर के पक म फसे हुए जगली हाथी के समान सदा दु खित रहते हैं ॥३७॥ हे भद्रे ! क्या तुमने बाल्यावस्था से कामासक्त एव स्नेह पक म फँसे हुए स्वरोचि को नही देखा है ? ॥३८॥ यौवनवती पत्नियो,पुत्रो और पौत्रो मे डूबे हुए उस स्वरोचि का मन किस प्रकार उद्धार को प्राप्त हो सकेगा ? ॥३९॥ उस स्वरोचि क समान मैं स्त्रियो के अधीन नही हूँ और अब भोगो का परित्याग करता हूँ ॥४०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हस के यह वचन सुन कर स्वरोचि अपनी तीनो पत्नियो को साथ लेकर तप करने के उद्देश्य से तपोवन को प्राप्त हुए ॥४१॥ वहाँ उन्होने पत्नियो के सहित घोर तप किया और सभी पापो से मुक्त हो कर मल-रहित लोक को गये ॥४२॥

५६–स्वारोचिष मन्वन्तर कथन

तत स्वारोचिषनाम्नाद्युतिमन्तप्रजापतिम् ।
मनु चकारभगवास्तस्यमन्वन्तरश्रृणु ॥१
तत्रान्तरेतुयेदेवामुनयस्तत्सुताश्चये ।
भूपाला क्रौष्टुकेयेतान्गतस्त्वनिशामय ॥२
देवा पारावतास्तत्रनर्यवनुषिताद्विज ।
स्वारोचिषेऽन्तरेचेन्द्रोविपश्चिदितिविश्रुत ॥३
ऊर्जस्तम्बस्तथाप्राणोवत्तोलिऋषभस्तथा ।
निश्चरश्चार्ववीराश्चतत्रसप्तर्षयोऽभवत् ॥४
चैत्रकिंपुरुषाद्यश्चसुतास्तस्यमहात्मन ।
सप्तासन्सुमहावीर्या पृथिवीपरिपालका ॥५
तस्यमन्वन्तरयावत्तावत्तद्व शविस्तरे ।
भक्तेयमवनि सर्वाद्वितीयवतदन्तरम् ॥६
स्वरोचिषस्तुचरितजन्मस्वारोचिषस्यच ।
निशम्यमुच्यतेपापैःश्रद्दधानोहिमानव ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इनके पश्चात् भगवान् न स्वारोचिष अर्थात् द्युतिमान् नामक प्रजापति को मनु बनाया अब उनके मन्वन्तर का वर्णन सुनो ॥१॥ हे क्रौष्टुके ! उन स्वारोचिष मन्वन्तर में जो देवता, मुनि, मनु पुत्र राजा आदि हुए, उनके विषय म कहना हूँ, उन सुनो ॥२॥ हे द्विज ! उन स्वारोचिष मन्वन्तर म देवताओं को पारावत और तुषित तथा इन्द्र को विपश्चित् कहा जाता था ॥३॥ ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्ववीर नामक यह सप्तर्षि थे ॥४॥ उन स्वारोचिष मनु के चैत्र और किम्पुरुष आदि नाम वाले सात पुत्र पराक्रमी एव पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥५॥ उन का मन्वन्तर जितने दिन का था, तब तक उनके वंशधरों ने पृथिवी का भार भोगा, मन्वन्तरो में स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय है ॥६॥ स्वरोचि का चरित्र

और स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति को जो कोई श्रद्धा पूर्वक श्रवण करता है, वह पापों से मुक्त होता है ॥७॥

६०—निधि-निर्णय

भगवन्कथितसर्वविस्तरेणत्वयामम ।
स्वरोचिषस्तुचरितजन्मस्वारोचिषस्यतु ॥१
यातुसापद्मिनीनामविद्याभोगोपपादिका ।
तत्सश्रयायेनिधयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥२
अष्टौयेनिधयस्तेषास्वरूपद्रव्यसस्थिति ।
भवताभिहितसम्यक्श्रोतुमिच्छाम्यहगुरो ॥३
पद्मिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्चदेवता ।
तदाधाराश्चनिधयस्तन्मेनिगदत शृणु ॥४
तत्रपद्ममहापद्मौनथामकरकच्छपौ ।
मुकुन्दोनन्दकश्चैवनील शङ्खोऽष्टमोनिधि ॥५
सत्यामृद्धौभवन्त्येनेमिद्धिस्तेषाहिजायते ।
एतेह्यष्टौसमाख्यातानिधयस्तवक्रोष्टुके ॥६
देवतानाप्रसादेनसाधुससेवनेनच ।
एभिरालोकितवित्त मानुपस्यसदामुने ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने स्वरोचि का चरित्र और स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक मुझसे किया है ॥१॥ परन्तु सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या की आश्रित निधियों का वर्णन भी विस्तार सहित करिये ॥२॥ हे गुरो ! अष्ट निधियों का स्वरूप और द्रव्य में सस्थित को भी सम्यक् प्रकार से आपके मुख से सुनने की इच्छा है ।३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री लक्ष्मीजी हैं, यह विद्या अष्ट निधियों की आश्रय स्वरूपिणी है, इसके विषय में कहता हूँ, तुम श्रवण

हुई सात पीढी तक रहती है ॥३३॥ और जिसमे अधिष्ठित होती है, उसकी दीर्घ आयु करती है, वह मनुष्य बान्धवो और आगत मनुष्यो का परिपालक होता है ॥३४॥ परन्तु यह परलोक के लिए कोई यत्न नहीं करता और न नगर निवासियो से हो प्रीति रखता है ॥३५॥

पूर्वमित्रेपुशैथिल्यप्रीतिमन्यैः करोतिच ।
तथैवसत्त्वरजसोयोविभर्तिमहानिधि. ॥३६
सनीलसंज्ञस्तत्सगीनरस्तच्छीलवान्भवेत् ।
वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७
मुक्ताविद्रुमशङ्खानांशुक्त्यादीनांतथामुने ।
काष्ठादीनांकरोत्येपयच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥३८
क्रयविक्रयमन्येपांनान्यत्ररभिजायते ।
तडागान्पुष्करिण्याऽथतथारामान्करोतिच ॥३९
बन्धंचसरितांवृक्षांस्पथारोपयतेनरः ।
अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०
त्रिपौरुपश्चापिनिधिर्नीलोनामंपजायते ।
रजस्तमोमयश्चान्य.शङ्खसंज्ञोहियोनिधिः ॥४१
तेनापिनीयतेविप्रतद्गुणित्वनिधीश्वरः ।
एकस्यैवभवत्येपनरंनान्यमुपैतिच ॥४२

पहिले मित्र से मैत्रि भाव मे शिथिलता और नयो से प्रीति स्थापित करता है, इसी प्रकार जो सत्व और रजोगुण से युक्त महानिधि है ॥३६॥ वह नीलनिधि नाम वाली अपने अधिष्ठान रूप पुरुष को सतोगुण और रजोगुण से युक्त करती है, इसकी दृष्टि जिस पर पडती है, वह वस्त्र, कपास, धान्यादि अन्न, फल एव पुष्प ॥३६॥ तथा मोती, मूँगा, शंख, सीपादि तथा जल मे उत्पन्न अन्य वस्तुओ और काष्ठादि का संचय करता है ॥३८॥ और इन पदार्थों का स्वयं उपभोग करता हुआ, क्रय-विक्रय भी करता है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय मे वह प्रीतिमान् नही होता ॥३९॥ वह मनुष्य तडाग, पोखर, उपवन, बनवाता, नदी पर पुल बँधवाता तथा वृक्षारोपण

करता है और अनुलेप और पुष्पादि का अनुलेप करता हुआ प्रसिद्धि को प्राप्त होता है ।।४०।। यह नील निधि तीन पीढ़ी तक स्थिति रखती है तथा शङ्ख नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण के मिश्रण से युक्त है ।।४१।। इसके अधिष्ठान से पुरुष उक्त दोनों गुणों से युक्त होता है यह एक ही पुरुष की अनुगामिनी होती है किसी अन्य पुरुष तथा अन्य पीढ़ी में स्थिति नहीं रहती ।।४२।।

यस्यशङ्खोनिधिस्तस्यस्वरूपंक्रोष्टुकेशृणु ।
एकवात्मनासृष्टमन्नं भुङ्क्ते तथाम्बरम् ।।४३
कदन्नभुक्परिजनोनचशोभनवस्त्रधृक् ।
नददातिसुहृद्भार्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ।।४४
स्वपोषणपरः शङ्खीनरोभवतिसर्वदा ।
इत्येतेनिधयःख्यातानराणामथदेवता ।।४५
मिश्रावलोकनान्मिश्रा स्वभावफलदायिनः ।
यथाख्यातस्वभावस्तुभवत्येवविलोकनात् ।
सर्वेषामाधिपत्येवश्रीरेषाद्विजपद्मिनी ।।४६

हे क्रौष्टुक ! जो पुरुष शङ्खनिधि को अपने वश में कर लेता है, उसका रूप सुना, वह स्वापार्जित अन्न का भोजन करता और सर्वोत्कृष्ट वस्त्र पहनता है ।।४३।। परन्तु उसके कुटुम्बियों का निकृष्ट भोजन वस्त्र उपलब्ध होते और जिनका जीवन कष्ट से व्यतीत होता है और शङ्ख निधि युक्त पुरुष अपने सुहृद् भ्राता, पत्नी, पुत्र आदि के भरण पोषण को भी कुछ नहीं देता ।।४४।। केवल अपना ही भरण पोषण करने में लगा रहता है मनुष्य के वित्त की देवता कहकर यह निधि विख्यात है ।।४५।। इनके देखने से मनुष्य उपर्युक्त स्वभाव वाला होता है, परन्तु यह निधियाँ मिलकर देखने में संयुक्त फल के देने वाली हैं तथा स्वतन्त्र रूप से देखें तो स्वस्व फलप्रद हैं । यह श्री स्वरूपिणी पद्मिनी विद्या उक्त अष्ट निधियों के आश्रय में अधिष्ठित हैं ।।४६।।

६१—औत्तर मन्वन्तर आरम्भ (३)

विस्तरात्कथितब्रह्मन्ममस्वारोचिषत्वया ।
मन्वन्तरतथैवाष्टौयेपृष्टानिधयोमया ॥१
स्वायम्भुवपूर्वमेवमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
मन्वन्तरतृतीयमेकथयोत्तमसज्ञितम् ॥२
उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमोनामनामत. ।
सुरुच्यास्तनयःस्यातोमहाबलपराक्रमः ॥३
धर्मात्माचमहात्माचपराक्रमयनोनृप ।
अनीत्यसर्वभूनानिबभौभानुपराक्रम ॥४
सम.शत्रौचमित्रेचपरेपुत्रेचधर्मवित् ।
दुष्टेचयमवत्साधौसोमवच्चमहामुने ॥५
बाभ्रव्यावहूलानामउपयेमेसधर्मवित् ।
उत्तानपादतनय.शचीमिन्द्रइवोत्तम ॥६
तस्यामनीवतस्यासीद्द्विजवर्यमन सदा ।
स्नेहवच्चशिनोयद्वद्रोहिण्यानिहिताम्पदम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे ब्रह्मन् ! स्वारोचिष मन्वन्तर का विषय आपने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है, अब आठ मन्वन्तर और मेरे द्वारा पूछी गई निधि के विषय मे कहिये ॥१॥ आप स्वायभुव मन्वन्तर का पहिले वर्णन कर चुके हैं, अब औतम नामक तृतीय मन्वन्तर का वर्णन करिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उत्तानपाद के एक अत्यन्त पराक्रमी उत्तम नामक पुत्र रानी सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न हुआ ॥३॥ वह धर्मवान् और पराक्रमी उत्तम राज्य को प्राप्त होकर अपने पराक्रम से अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥४॥ वह धर्मज्ञ राजा शत्रु, मित्र तथा प्रजा और पुत्र मे समान दृष्टि रखने वाले थे, वह दुष्टों के लिए सदा यम तुल्य और शिष्ट व्यक्तियो के लिए चन्द्रमा के समान शीतल थे ॥५॥ जिस प्रकार इन्द्र ने सभी लोकों में प्रसिद्ध शची का पाणिग्रहण किया, उसी प्रकार उत्तम ने बभ्रु-सुता बहुला नाम की विख्यात कन्या का

करो ॥४॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शङ्ख यह आठों निधि उस विद्या की आश्रिता हैं ॥५॥ समृद्धि होने से ही इन निधियों की सिद्धि प्राप्त होती है. हे क्रौष्टुके ! तुम्हें यह आठ प्रकार की निधियाँ बताई गई हैं ॥६॥ हे मुने ! देव प्रसाद और साधु सेवा के फल से मनुष्य का वित्त इन निधियों के द्वारा सदैव आलोकित होता है ॥७॥

याहृक्स्वरूपभवतितन्मेनिगदत शृणु ।
पद्मानामनिधि पूर्वसयस्यभवतिद्विज ॥८
मतस्यतत्सुतानाचतत्पौनाणाचनिस्यश ।
दाक्षिण्यसार पुरुषस्तेनचाधिष्टितोभवेत् ॥९
सत्त्वाधारोमहाभागोयतोऽसौसात्त्विकोनिधि ।
सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनाचपरिग्रहम् ॥१०
करात्यतिनरासाऽयतेपाचक्रयविक्रयम् ।
करोतिचतथायज्ञान्दक्षिणाचप्रयच्छति ॥११
(मपादयतिकामाश्नमवर्निवयथाक्रमम् ॥)
सभादवनिकेताश्चसकारयतितन्मना ।
सत्त्वाधारोनिधिश्चान्योमहापद्मइतिश्रुत ॥१२
सत्त्वप्रधानाभवतितेनचाधिष्ठितोनर ।
करोतिपद्मरागादिरत्नानाचपरिग्रहम् ॥१३
मौक्तिकानाप्रवालानातेपाचक्रयविक्रयान् ।
ददातियोगशीलेभ्यस्तेपामावमथांस्तथा ॥१४
सकारयतितच्छील स्वयमेवचजायते ।
तत्प्रसूतास्तथाशीला.पुत्रपौत्रक्रमेणच ॥१५

इनका जो स्वरूप है, वह बताता हूँ—पद्म नामक निधि सदा ही मय दानव के पास थी ॥८॥ फिर उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के पास रही, इस निधि के अधिष्ठान से पुरुष चातुर्य एव ॥९॥ सत्त्वगुण से सम्पन्न और अत्यन्त भागवान् होता है क्योंकि यह निधि सतोगुण से युक्त है, इस निधि से सम्पन्न पुरुष सुवर्ण, रजत, ताम्रादि सब धातुओं का परिग्रह ॥१०॥ तथा क्रय विक्रय

करता है तथा बहुत से विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है ॥११॥ (क्रम पूर्वक सब अभिलाषाओं को पूर्ण करने में समर्थ होता है) तथा एकाग्र चित्त से सभा भवन और देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि सत्वाधार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उससे अधिष्ठित मनुष्य भी सतोगुण प्रधान होता है तथा पद्मराग आदि रत्नों को संचित करने वाला होता है ॥१३॥ और मुक्ता आदि का क्रय-विक्रय करता है एवं योगियों को उनका स्थान देता ॥१४॥ तथा साधारण व्यक्तियों को योगाभ्यास के लिए उत्साहित करता है और स्वयं भी योग में तत्पर रहता है, उसके पुत्र, पौत्रादि बरावर भी उसी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वद्विमात्र सप्तासोपुरुषाश्चनमुंचति ।
तामसोमकरोनामनिधिस्तेननावलोकित ॥१६
पुरुषोऽयतमःप्राय सुशीलोऽपिहिजायते ।
वाणखड्गर्ष्टिधनुपाचर्मणाचपरिग्रहम् ॥१७
ददानानाचकुरुतेयोतिमैत्रीचराजभिः ।
ददातिशौर्यवृत्तीनाभूभुजायेचतत्प्रिया. ॥१८
क्रयविक्रयेचशस्त्राणानान्यत्रप्रीतिमेतिच ।
एकस्यैवभवत्येषनरस्यनसुतानुग ॥१९
द्रव्यार्थंदस्युनोनाशसग्रामेवापिसव्रजेत् ।
कच्छपश्चनिधिर्योऽसौनरस्तेनाभिवीक्षित. ॥२०
तम प्रधानोभवतियतोऽसौतामसोनिधि ।
व्यवहारानशेषास्तुपुण्यजाते करोतिच ॥२१
कर्मस्यानश्चिलाद्यैवनविश्वसितिकस्यचित् ।
समस्तानियथाङ्गानिसहरत्येवकच्छप. ॥२२

यह महापद्म नामक निधि पूर्व के अपेक्षा उत्तरोत्तर आधी-आधी शक्ति से घटती हुई सात पीढ़ियों तक रहती है तथा जो मकर नाम की तमोगुणी निधि है, उसमें अधिष्ठित पुरुष ॥१६॥ तमोगुण प्रधान और शीलवन्त होता है, वह धनुष-बाण, खड्ग, ढाल तथा आयुधों के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने में समर्थ होता है, राजाओं के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले चोरों को दान देकर संतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रों का क्रय-विक्रय किये बिना नष्ट नहीं होता परन्तु धनके लोभ से तस्करों द्वारा अथवा रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है यह निधि एक पीढ़ी तक ही रहती है, फिर नहीं रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुण्यमय एवं आचार व्यवहार तथा कर्म के वश में होकर सब भोगों को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नहीं करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गों को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तथाविष्टस्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानस ।
नददातिनचाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३
निधानमुर्व्यांकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुष ।
रजागुणमयश्चान्योमुकुन्दोनामयोनिधि ॥२४
नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।
वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्यपरिग्रहम् ॥२५
करोतिगायतावित्तनृत्यताचप्रयच्छति ।
वन्दिमागधसूतानाविटानालास्यपाठिनाम् ॥२६
ददात्यहर्निशभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमद्विज ।
कुलटासुरतिश्चान्यभवत्यन्यैश्चतद्विधै ॥२७
प्रयातिमपनेकचयनिधिर्भजतेनरम् ।
रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधि ॥२८

वैसे ही अपने अभिप्राय को गुप्त रखता और चित्त को सयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वयं नहीं करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी में एक पीढ़ी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ती है, वह रजोगुणी होता है तथा उससे प्रवलवित मनुष्य वीणा, वेणु मृदङ्ग आदि आतोद्य वाद्यों का संग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

करता है तथा बहुत से विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है ॥११॥ (क्रम पूर्वक सब अभिलाषाओं को पूर्ण करने में समर्थ होता है) तथा एकाग्र चित्त से सभा भवन और देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि सत्वाधार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उससे अधिष्ठित मनुष्य भी सतोगुण प्रधान होता है तथा पद्मराग आदि रत्नों को सञ्चित करने वाला होता है ॥१३॥ और मुक्ता आदि का क्रय-विक्रय करता है एवं योगियों को उनका स्थान देता ॥१४॥ तथा साधारण व्यक्तियों को योगाभ्यास के लिए उत्साहित करता है और स्वयं भी योग में तत्पर रहता है, उसके पुत्र, पौत्रादि वंशधर भी इसी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वद्विमात्र सप्तासौपुरुषान्ननमुञ्चति ।
तामसोमकरोनामनिधिस्तेननावलोकित. ॥१६
पुरुषोऽप्यतमःप्राय सुशीलोऽपिहिजायते ।
बाणखड्गर्ष्टिधनुषाचर्मणाचपरिग्रहम् ॥१७
दशनानाचमुरुतेयोतिमैत्रीचराजभिः ।
ददातिशौर्यवृत्तीनाभूभुजायेचतत्प्रिया: ॥१८
क्रयविक्रयेचचशस्त्राणानान्यत्रप्रीतिमेतिच ।
एकस्यैकभवत्येषनरस्यनसुतानुग ॥१९
द्रव्यार्थंदस्युतोनाशसग्रामेवापिसव्रजेत् ।
मच्छपश्चनिधिर्योऽन्योनरस्तेनाभिवीक्षित. ॥२०
तम प्रधानोभवतियतोऽसौतामसोनिधि. ।
व्यवहारानशेषास्तुपुण्यजातं करोतिच ॥२१
कर्मस्थानाश्रिलाश्चैवनविश्वसितिकस्यचित् ।
समस्तानियथाङ्गानिसहरत्येवकच्छप: ॥२२

यह महापद्म नामक निधि पूर्व के अपेक्षा उत्तरोत्तर आधी-आधी शक्ति से घटती हुई सात पीढ़ियों तक रहती है तथा जो मकर नाम की तमोगुणी निधि है, उससे अधिष्ठित पुरुष ॥१६॥ तमोगुण प्रधान और शीलवन्त होता है, वह धनुष-बाण, खड्ग, ढाल तथा आयुधों के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने मे समर्थ होता है, राजाओ के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले वीरो को दान देकर सतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रो का क्रय-विक्रय किये बिना तुष्ट नही होता परन्तु धनके लोभ से तस्करो द्वारा अथवा रणक्षेत्र मे मृत्यु को प्राप्त होता है. यह निधि एक पीढी तक ही रहती है, फिर नही रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पडती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुण्यमय एव आचार व्यवहार तथा कर्म के वश मे होकर सब भोगो को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नही करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गो को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तथाविष्टम्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानस· ।
नददातिनश्चाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३
निधानमुर्व्याकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुष. ।
रजोगुणमयश्चान्योमुकुन्दोनामयोनिधि ॥२४
नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।
वीणावेणुमृदंगानामातोद्यस्यपरिग्रहम् ॥२५
करोतिगायतावित्तनृत्यताचप्रयच्छति ।
वन्दिमागधसूतानाविटानालास्यपाठिनाम् ॥२६
ददात्यहर्निशभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमद्विज ।
कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधै ॥२७
प्रयातिसगनैकंचयनिधिर्भजतेनरम् ।
रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधिः ॥२८

वैसे ही अपने अभिप्राय को गुप्त रखता और चित्त को सयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वय नही करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी मे एक पीढी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पडती है, वह रजोगुणी होता है तथा उससे अवलबित मनुष्य वीणा, वेणु मृदङ्ग आदि आतोद्य वाद्यो का सग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

और नर्तकों को बहुत धन देने वाला, वन्दी, सूत, मागध, विट और लास्यपाठी नृत्य-गान की विशेषता वालों को ॥२६॥ दिन रात्रि इच्छित भोग देता है तथा उनके साथ भोजन करता है, इसकी प्रीति अपने समान एवं कुलटा मनुष्यों में रहती है ॥२७॥ यह नित्य जिसे चाहती है, उसी की अनुगामिनी रहती है, उसके वंशधरों के पास नहीं रहती, नन्द नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण दोनों से युक्त है ॥२८॥)

उपैतिस्तम्भमधिकंनरस्तेनावलोकितः ।
समस्तधातुरत्नानांपुण्यधान्यादिकस्यच ॥२६
परिग्रहंकरोत्येषतथैवक्रयविक्रयम् ।
आधारःस्वजनानांचआगताभ्यागतस्यच ॥३०
सहतेनापमानोक्तिंस्वल्पामपिमहामुने ।
स्तूयमानश्चमहतीप्रीतिंबध्नातियच्छति ॥३१
यंयमिच्छतिवैकामंमृदुत्वमुपयातिच ।
बह्वोभार्याभवन्त्यस्यसूतिमत्योऽतिशोभनाः ॥३२
भजतेसप्तचनरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते ।
प्रवर्द्धमानोऽष्टनरमष्टभागेनसत्तम ॥३३
दीर्घायुष्ट्वंचसर्वेषांपुरुषाणांप्रयच्छति ।
बन्धूनामेवभरणंयेचदूरादुपागताः ॥३४
तेषांकरोतिवैनन्दःपरलोकेनचादृतः ।
भवत्यस्यनचस्नेहःसहवासिषुजायते ॥३५

इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है, अत्यन्त स्तंभित रहता है, इससे अधिष्ठित मनुष्य सब धातु रत्न, धान्य आदि पुण्य द्रव्यों का ॥२६॥ संग्रह और क्रय विक्रय करता है तथा यह स्वजनों, अतिथियों और अभ्यागतों को आश्रय रूप होता है ॥३०॥ वह निरादर सहन नहीं करता और प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता है ॥३१॥ याचकों की अभिलाषा के अनुसार वस्तुएँ प्रदान करता है तथा मृदु स्वभाव का होता है, उससे अत्यन्त सुन्दरी पुत्रवती अनेक पत्नियाँ प्रेम करती हैं ॥३२॥ यह निधि क्रमशः अष्टमांश होती

क्रिया फल रहित होती है, जो शुभ अग्नि की साक्षी मे अपने गृह पर लायी गयी है ॥४१॥ वह प्रथम ही धर्म के ग्रहण मे प्रशसनीय है तथा उस दुष्टा के त्याग से वर्णसंकर की उत्पत्ति सभव है ॥४२॥

धर्महानिश्चानुदिनममार्यस्यभवेन्मम ।
नित्यक्रियाणाविभ्र शात्सचापिपतनायमे ॥४३
तस्याचपृथिवीपालभविश्रीममसन्तति ।
तवषड्भागदात्रीसाभविनोधर्महेतुकी ॥४४
तदेतत्ते मयाख्यातापत्नीयामेहृताप्रभो ।
तासमानयरक्षायाभवानधिकृतोयत ।४५
सतस्यैववच श्रु त्वाविमृश्यचनरेश्वर. ।
सर्वोपकरणंयु क्तमारुरोहमहारथम् ॥४६
इतश्चेतश्चतेनासौपरिबभ्राममेदिनीम् ।
ददर्शचमहारण्येतापसाश्रममुत्तमम् ॥४७
अवतीर्यचतनासौप्रविश्यददृशेमुनिम् ।
कौश्यावृष्यासमासीनञ्ज्वलन्तमिवतेजसा ॥४८
सदृष्ट्वानृपतिप्राप्त समुत्थायत्वरान्वित ।
समाम्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्घ्यमानय ॥४६

पत्नी के न होने से धम की दिन-दिन हानि होती है तथा इस प्रकार नित्य क्रिया के नष्ट होने पर तुझे भी पतित भाव की प्राप्ति होगी ॥४३॥ हे राजन्! मेरी उस पत्नी के गभ से जो सन्तान होगी, वह आपको धर्म पूर्वक अपनी आय का छटवाँ भाग देगी ॥४४॥ इन्ही कारणो से मैं निवेदन कर रहा हू कि आप मेरी उसी पत्नी को लाकर दीजिये, क्यो कि हमारी रक्षा के निमित्त आप ही नियुक्त हैं ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण के ऐसे वचन सुन कर महाराज उत्तम कुछ समय तक सोच विचार करके सर्व सामग्री सम्पन्न रथ पर चढे ॥४६॥ और रथ के द्वारा विचरण करते हुए एक महावन मे श्रेष्ठ तपस्या मय आश्रम देखा ॥४७॥ तब रथ से उतर कर उन्होंने आश्रम मे प्रवेश किया जहाँ कुशा के आसन पर अपने तेज से प्रकाशित एक श्रेष्ठ मुनि

को बैठे हुआ देखा ॥४८॥ राजा का आगमन देख कर शीघ्रता पूर्वक उठते हुए मुनि ने उसका स्वागत-सत्कार किया और अपने शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥४६॥

तमाहशिष्य शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्यकिमुने ।
तदाज्ञापयसञ्चिन्त्य ।वाज्ञाहिकरोम्यहम् ॥
ततोऽवगतवृत्तान्तोभूपतेस्तस्यसद्विज ।
सम्भाषासनदानेनचक्रेसम्मानमात्मवान् ॥५०
किंनिमित्तमिहायातोभवान्किंतेचिकीर्षितम् ।
उत्तानपादतनयंवेद्मित्वामुत्तमंनृप ॥५१
ब्राह्मणस्यगृहाद्भार्य्याकेनाप्यपहृतामुने ।
अविज्ञातस्वरूपेणतामन्वेष्टुमिहागत ॥५२
पृच्छामियत्तन्मेत्वंप्रणतस्यानुकम्पया ।
अभ्यागतस्याथगृहंभगवन्वक्तुमर्हसि ॥५३
पृच्छमामवनीपालयत्प्रष्टव्यमशङ्कितः ।
वक्तव्यंचेत्तवमयाकथयिष्यामितत्त्वत ॥५४
गृहागताययोमह्यं प्रथमेदर्शनेमुने ।
त्वयासमुद्यतोदातुं कथंसोऽर्घ्योनिवर्तित ॥५५

इस पर शिष्य ने कहा—कि इन महाराज को अर्घ्यदान उचित होगा या नहीं, इसका विचार करके ही आज्ञा दीजिये, मैं आपकी आज्ञा का तत्काल पालन करूँगा, तब आत्मवान् मुनि ने सब वृत्तान्त जान लिया और आसन दे कर सभाषण द्वारा ही उन्होंने राजा का सम्मान किया ॥५०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! आप उत्तानपाद-तनय उत्तम हैं, यह मुझे विदित है, परन्तु आप यहाँ क्यों आये हैं ? आपका इच्छित विषय क्या है, यह बताइये ॥५१॥ राजा ने कहा—हे मुने ! एक ब्राह्मण के घर से कोई अज्ञात व्यक्ति उसकी पत्नी को हर ले गया है, मैं उसी ब्राह्मणी की खोज के लिये यहाँ आया हूँ ॥५२॥ हे भगवन् ! मैं आपसे जो विनम्र निवेदन करता हूँ और आप भी अनुग्रह पूर्वक मुझे कृपा के योग्य समझ कर उसे कहने की आज्ञा दीजिये ॥५३॥ ऋषि बोले—

हे राजन् ! आप जो पूछना चाहें, शंका रहित हो कर पूछें, कथन योग्य वात को मैं यथार्थ रूप मे ही कहूँगा ॥५४॥ राजा ने कहा—मैं जब यहाँ आया था तब पहिले आप मुझे अर्घ्य देने की इच्छा करते थे, फिर आप उससे निवृत्त क्यों हो गये ? ॥५५॥

त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञप्तोऽयमयानृप ।
यदातदाहमेतेनशिष्येणप्रतिवोधित ॥५६
एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ।
यथाहसमतीतचवर्त्तमानचसर्वत ॥५७
आलोच्याज्ञापयेत्युक्तेततोज्ञातमयापितत् ।
ततोनदत्तवानर्घ्यमहतुभ्यत्रिधानत ॥५८
सत्यराजस्त्वमर्घ्यार्हं कुलेस्वायम्भुवस्यच ।
तथापिनार्घ्ययोग्यत्वामन्यामोवयमुत्तमम् ॥५९
किंकृतहिमयाब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोऽपिवा ।
येनत्वत्तोऽर्घ्यमर्हामिनाहमभ्यागतश्चिरात् ॥६०
किंविस्मृतस्तेयत्पत्नीरवयात्यक्ताचकानने ।
परित्यक्तस्तयासार्द्धं त्वयाधर्मोनृपाखिल ॥६१
पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतानर ।
किमत्रवार्षिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मण ॥६२
पत्न्यानुकूलयाभाव्ययथाशीलेऽपिभर्त्तरि ।
दु शीलापितथाभार्यापोषणीयानरेश्वर ॥६३

ऋषि बोले—हे राजन् ! आपको देखते ही, जैसे ही मैंने अर्घ्य लाने की आज्ञा दी, वैसे ही इस शिष्य ने शंका व्यक्त की ॥५६॥ जैसे मैं अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के सभी गुप्त या प्रकट वृत्तान्त को भले प्रकार जानता हूँ, वैसे ही मेरा यह शिष्य भी मेरे प्रसाद से भूत, भविष्य, वर्त्तमान का ज्ञाता है ॥५७॥ इस शिष्य ने विचार कर आज्ञा देने का अनुरोध किया, तब मैंने सब बात जान कर आपको विधिवत् अर्घ्य नहीं दिया ॥५८॥ हे राजन् ! आप स्वायम्भुव मनु के वंशोत्पन्न हैं, इस लिये अर्घ्य के योग्य हो कर भी मेरे विचार

मे अर्घ्य के योग्य नहीं हैं ॥५९॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैंने जाने अन-जाने में ऐसा कौन सा कार्य किया है, जिससे प्रथम बार आकर भी मैं अर्घ्य के योग्य नहीं रहा ? ॥६०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! आपने अपनी पत्नी को त्याग कर वन में भेज दिया है, क्या यह स्मरण नहीं रहा ? उस पत्नी के त्याग के साथ ही आपने धर्म का भी त्याग कर दिया समझो ॥६१॥ धर्म-कर्म की हानि व एक पक्ष तक होने से मनुष्य स्पर्श के योग्य भी नहीं रहता, तुम्हारी तो वर्षों ही कर्म-हानि हुई है, इसलिये अपनी अर्घ्य विषयक योग्यता पर पर आप स्वयं ही विचार कीजिये ॥६२॥ हे राजन् ! जैसे पति के विप-रीत चरित्र वाला होने पर भी पत्नी को पति की अनुगामिनी होना कर्त्तव्य है, वैसे ही पत्नी के शील-रहित होने पर भी उसका भरण-पोषण पति का कर्त्तव्य है ॥६३॥

प्रतिकूलाहिसापत्नीतस्यविप्रस्ययाहृता ।
तथापिधर्मकामोऽसौत्वामुद्द्योतितवान्नृप ॥६४॥
चलत स्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेपुमहापते ।
त्वांस्वधर्माद्विचलितकोऽपरःस्थापयिष्यति ॥६५
(द्वीपेकड गरीयेवाराशिचान्यायवर्तिनि ।
पापकृत्सुचविद्वत्सुनियताजतुरत्रक ॥
विलक्ष्य समहीपालइत्युक्तस्तेनधीमता ।
तथेत्युक्त्वाचपप्रच्छहृतापत्नीद्विजन्मन ॥६६
भगवन्केननीतासापत्नीविप्रस्यकुत्रवा ।
अतीतानागतवेत्तिजगत्यवितथभवान् ॥६७
ताजहाराद्रितनयोवलाकोनामराक्षस ।
द्रक्ष्यतेचाद्यताभूपउत्पलावतकेवने ॥६८
गच्छमयोजयाशुत्वभार्ययाहिद्विजोत्तमम् ।
मापापास्पदतायातुत्वमिवासौदिनेदिने ॥६९

हे राजन् ! उस ब्राह्मण की हरण की गई पत्नी उसके प्रतिकूल है, ता भी वह उसकी इतनी इतनी खोज कर रहा है ॥६४॥ हे राजन् ! धर्म भ्रष्ट

राजा अपनी प्रिया के प्रति अत्यधिक अनुराग प्रकट करते थे ॥१३॥ एक समय जब श्रेष्ठ वारांगनाएँ मधुर स्वर से राजा के निकट गा रही थीं तभी राजा ने सुर पान की इच्छा करके अपने सभासदों के समक्ष ही निकट बैठी बहुला को मद्य से परिपूर्ण पात्र दिया ॥१४–१५॥

सातुनेच्छतितत्पात्रमादातु तत्पराङ् मुखी ।
समक्षमवनीशानाततः क्रुद्ध सपार्थिवः ॥१६
उवाचद्वाःस्थमाहूयनि.श्वसन्नुरगोयथा ।
निराकृतस्तयादेव्याप्रिययापतिरप्रिय ॥१७
द्वाःस्थंनादुष्टहृदयामादायविजनेवने ।
परित्यज्याशुनंतत्ते विचार्यवचनमम ॥१८
ततोनृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्यस ।
द्वा स्थस्तत्याजतासुभ्रूमारोप्यस्यन्दनेवने ॥१९
साचत विपिनेत्यागनीतातेनमहीभृता ।
अपश्यमानातमेनेपरकृतमनुग्रहम् ॥२०
सोऽपितत्रानुरागातिदह्यमानात्ममानस ।
श्रौत्तानपादिर्भूपालोनान्याभार्यामविन्दत ॥२१

परन्तु रानी ने उनसे विमुख होकर मद्य पान को ग्रहण नहीं किया, तो राजा को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१६॥ और सर्प के समान नि श्वास को त्यागते हुए उन्होंने द्वारपाल को बुलाया और उससे बोले कि इस मेरी प्रियतमा बहुला ने मुझे अप्रिय मान कर मेरा निरादर किया है ॥१७॥ इस लिये इस दुष्ट हृदय वाली को शीघ्र ही यहाँ से ले जाकर वन मे छोड़ आओ मेरी इस आज्ञा का तुरन्त पालन करो ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—द्वारपाल ने राजा की आज्ञा को प्राप्त कर रानी को रथ मे चढाया और उसे वन मे छोड आया ॥१९॥ राजा द्वारा रानी को वन मे छोडे जाने पर, अब राजा को न देखना होगा, ऐसा सोच कर रानी ने राजा का अनुग्रह ही माना ॥२०॥ इधर राजा उत्तम ने रानी के प्रति अत्यन्त अनुराग होने के कारण दुःखित हृदय होते हुए अन्य पत्नी को ग्रहण नही किया ॥२१॥

सस्मार तस्याः सुचार्वङ्गीमहर्निशमनिर्वृत ।
चकार च निजराज्यं प्रजाधर्मेण पालयन् ॥२२

प्रजाः पालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान् ।
आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाह सुदुःखितः ॥२३
महाराज सुदुःखार्तः श्रूयतां वदतो मम ।
नृणामार्तिपरित्राणमन्यत्र न नराधिपात् ॥२४

मम भार्या प्रसुप्तस्य केनाप्यपहृता निशि ।
गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि ॥२५
न वेत्मि केनापहृता क्व वा नीता त्वया द्विज ।
यत्नामि विग्रहे कस्य पुनो वाप्यानयामि ताम् ॥२६

तथैव प्यगितेद्वारे प्रसुप्तस्य गृहे मम ।
हृता हि भार्या केनेत्थं वेत्सि त्वं नृप भयान् ॥२७
त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतन ।
धर्मं यतस्त्वं निश्चिन्ताः स्वपन्तिमनुजा निशि ॥२८

वह दुःखित चित्त से उसी शोभनाङ्गी का स्मरण करने लगा और इस अवस्था में भी धर्म-पूर्वक प्रजा पालन करते हुए राज्य-कार्य में लगे रहे ॥२२ वह राजा अपनी प्रजा का पालन औरस पुत्र के समान करते थे, एक दिन एक ब्राह्मण उनके निकट आया और दुःखित हृदय से बोला ॥२३॥ हे राजन् ? मैं अत्यन्त क्लेश में हूं, मेरी बात सुनो, क्यों कि मनुष्यों के क्लेशों को राजा ही दूर कर सकता है ॥२४॥ मैं रात्रि के समय जब शयन कर रहा था, तभी घर के द्वार खोले बिना ही किसी ने मेरी पत्नी का हरण कर लिया है, अब आप मेरी उस पत्नी को लाकर मुझे दीजिये ॥२५॥ राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपकी पत्नी का हरण किसने किया है और कहाँ रखा है ? जब तक मैं यह न जान लूं, तब तक उसे वहाँ से प्राप्त करूं ॥२६॥ ब्राह्मण बोला हे राजन् ! मेरे शयन करने में घर का द्वार खोले बिना ही मेरी पत्नी का हरण किस प्रकार हुआ, यह तो आप ही जान सकते हैं ॥२७॥ क्यों कि आप

राजा है, धर्म का पश्चात् वेतन स्वरूप लेकर रक्षा के लिये नियुक्त है, इसी लिये मनुष्य रात्रि काल में निश्चित शयन करते हैं ॥२८॥

नतेदृष्टामयाभार्यायादृग्रूपाचदेहतः ।
वयश्चवक्षमास्याहिकिंशीलाब्राह्मणोचते ॥२६
कठोरनेनासात्युच्चाह्रस्वबाहु कृशानना ।
(लवोदरीह्रस्वस्फिजतयाह्रस्वस्तनीनृप) ।
विरूपरूपाभूपालननिन्दामितथैवताम् ॥३०
वाचिभूपातिपरुषानसौम्यासाचशीलतः ।
इत्याख्यातामयाभार्यासकरालनिरीक्षणा ॥३१
मनागतीतभूपालतस्याश्चप्रथमवयः ।
तादृग्रूपाहिमेभार्यामित्यमेतन्मयोदितम् ॥३२
अलतेब्राह्मणतयाभार्यामन्याददामिते ।
सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हितादृशी ॥३३
अल्पाकुरूपताविप्रकारणंशीलमुत्तमम् ।
रूपशीलविहीनायास्त्याज्यातेन्येनसाह्विता ॥३४

राजा बोले—आपकी पत्नी को मैंने कभी भी नहीं देखा, इस लिये आप उसकी आकृति, आयु और स्वभाव का भले प्रकार वर्णन करिये ॥२६॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! मेरी पत्नी कठोर नयन, दीर्घ आकार, छोटी भुजा, कृश मुख (लम्बा उदर और सूक्ष्म हाथ) वाली अत्यन्त कुरूप है, फिर भी मैं उसे निन्दनीय नहीं मानता ॥३०॥ वह वाणी और स्वभाव से अत्यन्त कर्कश है उसकी प्रथमावस्था कुछ-कुछ ढल चुकी है, इस प्रकार उसका सभी वर्णन सत्य-सत्य आपसे किया है ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—हे विप्र ! ऐसी कुलक्षणा पत्नी का आप क्या करेंगे ? मैं आपको एक अन्य पत्नी प्रदान कर सकता हूं, क्यों कि सुलक्षणा पत्नी से सुख और कुलक्षणा से दुःख ही प्राप्त होता है ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! सौन्दर्य और शील स्वभाव से ही मंगल होता है, इस लिये कुरूप तथा शील रहित पत्नी का तो परित्याग ही ठीक है ॥३४॥

रक्ष्याभार्यामहीपालइतिचश्रुतिरुत्तमा ।
भार्यायांरक्ष्यमाणायांप्रजाभवतिरक्षिता ॥३५
आत्माहिजायतेतस्यसारक्ष्यातोतरेश्वर ।
प्रजायारक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षित ॥३६
तस्यामरक्ष्यमाणायाभवितावर्णसङ्कर ।
सपातयेन्महीपालपूर्वान्स्वर्गादध पितृन् ॥३७
(अनुज्ञायगुरू राजन्दत्वान्याजातवेदसे ॥३८
समिध तुमयाभार्यागृहीतेयकर्कशायत ।
कथमेताविहायान्यभार्ययासहमाचरे ॥३९
गृह्यधर्मोयतोब्रह्माप्राप्यतेशाश्वतनरं ।
पूर्वोढयातुधर्मेणगृहीकुर्वन्नसीदति ॥४०
त्यक्त्वाताचक्रियाकुर्वन्नैवकर्मफललभेत् ।
अग्निनासहयानूनसा जगामगृहशुभा ॥४१
धर्मस्यग्रहणेसातुपूर्वोढैवप्रशस्यते ।
शठायाचारणात्तस्याजायतेवर्णसङ्कर ॥४२

ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! पत्नी सदैव रक्षा के योग्य होती है, मुझे यह श्रुति विदित है कि पत्नी की सम्यक् रक्षा से ही सन्तान की रक्षा हो सकती है ।।३५।। हे राजन् ! पत्नी के गर्भ से अपने आत्मा की ही उत्पत्ति होती है, इसी लिये सन्तान की रक्षा करने से अपने आत्मा की ही रक्षा होना माना गया है ।।३६।। इसलिये पत्नी की भले प्रकार रक्षा करे, उसकी रक्षा न करने से वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण पूर्व पितरों का स्वर्ग से पतन होता है ।।३७।। (हे राजन् ! गुरुजनों की अनुमति से अग्नि को साक्षी करके) ।।३८।। इस कर्कश पत्नी का मेरे साथ वरण हुआ है इस लिये इसका त्याग करके अन्य नारी के साथ किस प्रकार सह आचरण करूँ ।।३९।। जब ऐसे आचरण से गृहस्थ धर्म के साथ ही मनुष्य को शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है, और जिस स्त्री के साथ धर्म कार्य करता हुआ गृही दुःख को प्राप्त नहीं होता ।।४०।। उस स्त्री को त्याग कर जो क्रिया वह करता है वह

को धर्म में स्थापित करने वाले आप ही हैं, परन्तु जब आप स्वयं ही धर्म को छोड़ेंगे तब आपको उसमें कौन प्रवृत्त करेगा ? ॥३५॥ (वन का गेंडा खेत के धान्य का भक्षण करके अपना निर्वाह करे, राजा अन्यायी हो या विद्वान् पुरुष पाप कर्म करे तो फिर शिक्षा देने वाला कौन होगा ?) मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के ऐसे वचन सुन कर राजा लज्जित हो गये और सब दोष स्वीकार कर, विप्र पत्नी का वृत्तान्त उन्होंने पूछा ॥६६॥ हे भगवन् ! आप विश्व के सभी भूत, भविष्य, वर्त्तमान के ज्ञाता हैं, अब उस विप्र पत्नी को किसने हरण किया और कहाँ रखा है, यह बताने की कृपा करिये ॥६७॥ ऋषि बोले—हे राजन् उस ब्राह्मणी का हरण अद्रि के पुत्र बलाक नामक राक्षस ने किया है, उसे आप इस समय उत्पलावन नाम के वन में देखेंगे ॥६८॥ अब आप जाइये और ब्राह्मण को उसकी पत्नी को मिलाइये, जिससे उस ब्राह्मण को आपके समान पाप भागी न होना पड़े ॥६९॥

६२—द्विजभार्या को पति के घर भेजना

अथारुरोहस्वरथंप्रणिपत्यमहामुनिम् ।
तेनाख्यातवनंतञ्चप्रययावुत्पलावतम् ॥१
यथाख्यातस्वरूपांचभार्य्यांभर्तुर्द्विजस्यताम् ।
भक्षयन्तींददर्शाथश्रीफलानिनरेश्वर ॥२
पप्रच्छचनकथंभद्रे त्वमेतद्वनमागता ।
स्फुटंब्रवीहिवैशालेरपिभार्य्यासुशर्मणः ३॥
सुताहमतिरात्रस्यद्विजस्यवनवासिन ।
पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम् ॥४
साहृतावलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ।
प्रसुप्ताभवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिना ॥५
भस्मीभवतुतद्रक्षोयेनास्म्येववियोजिता ।
मात्राभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिना ॥६

अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्झिता ।
नवेद्मिकारणंतिन्नोपभुङ्क्तेनसादति ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उन महर्षि को प्रणाम करके रथमें चढ़े और महर्षि द्वारा बताये हुए उत्पलावत वन मे पहुंचे ॥१॥ वहाँ देखा कि पति के बताये हुए रूप वाली वह ब्राह्मणी श्रीफल खा रही है ॥२॥ उस देखकर उन्होंने पूछा—हे भद्रे ! तुम वन मे किस प्रकार आयी ? तुम विशाल पुत्र सुशर्मा नामक ब्राह्मण की ही पत्नी हो न ? यह स्पष्ट बताओ ॥३॥ ब्राह्मणी बोली—मैं अतिरात्र नामक वनवासी ब्राह्मण की पुत्री और जिन विशाल पुत्र का आपने नाम लिया है, उनकी ही भार्या हू ॥४॥ मैं घर मे शयन करती थी, तभी पापी राक्षस मुझे भाई और माता से वियोग करके यहां ले आया है ॥५॥ अब मैं सब आत्मीयजनो से पृथक् होकर अत्यन्त दुःख पूर्वक यहां रह रही हूँ, जिस राक्षस ने मेरी यह दशा की है, वह भस्म होजाय ॥६॥ उस राक्षस ने इस निर्जन वन मे मुझे ला रखा है, मुझे ज्ञात नही कि वह मेरा भक्षण या उपभोग क्यो नही करता है ? ॥७॥

अपितज्ज्ञायतेरक्षस्त्वामुत्सृज्यक्ववैगतम् ।
अहमर्त्तैवात्रप्रेषितोद्विजनन्दिनि ॥८
अस्यैवकाननस्यान्ते सतिष्ठतिनिशाचर ।
प्रविश्यपश्यतुभवान्नबिभेतिततोयदि ॥९
प्रविवेशततः सोथतयावर्त्मनिदर्शिते ।
ददृशेपरिवारेणसमवेतचराक्षसम ॥१०
दृष्टमात्रेततस्तस्मिस्त्वरमाण सराक्षसः ।
दूरादेवमहीमूर्ध्नास्पृशन्पादान्तिकययौ ॥११
ममात्रागच्छतागेहप्रसादस्तेमहान्कृतः ।
प्रशाधिकिंकरोम्येषवसामिविषयेतव ॥१२
अर्घ्यंचेमप्रतीच्छत्वस्थीयताचेदमासनम् ।
वयभृत्याभवान्स्वामीदृढमाज्ञापयस्वमाम् ॥१३

कृतमेवत्वयानवैंसर्वमेपचितिं कृता ।
किमर्थंब्राह्मणवधूस्त्वयानीतानिशाचर ॥१४

राजा ने कहा—तुम्हारे पति ने ही मुझे यहाँ भेजा है, क्या तुम्हें विदित है कि वह राक्षस इस समय कहाँ गया होगा ? ॥८॥ ब्राह्मणी बोली—इसी वन-प्रान्त में कहीं होगा, यदि उससे डर न हो तो, वन में प्रवेश करो तो वह दिखाई पड जायगा ॥९॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा मार्ग प्रदर्शित करने पर राजा ने वन में घुस कर अपने परिवारी जनों से घिरे हुए उस राक्षस को देखा ॥१०॥ वह राजा को देखते ही तुरन्त उठा और मस्तक से पृथिवी को स्पर्श करता हुआ राजा के चरणों के समीप आकर बोला ॥११॥ राक्षस ने कहा—महाराज की मुझे क्या आज्ञा है, जिस लिए मेरे घर पर पधारे हैं, मैं आपके राज्य में निवास करता हूँ, आप मुझे आज्ञा करिये ॥१२॥ यह अर्घ्य ग्रहण करिये, इस आसन पर विराजमान होइये, आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ, आप मुझे निःसंकोच आज्ञा दीजिये ॥१३॥ राजा ने कहा—तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन और अतिथि सत्कार भी उचित रीति से किया है, परन्तु यह बताओ कि तुम उस विप्रपत्नी को किस लिये हरण कर लाये हो ? ॥१४॥

नेयमुत्त्यामन्यन्याभार्यार्थेचेद्धृतात्वया ।
भक्ष्यार्थेचेरन्यनात्तात्वयैतत्कथ्यतामम ॥१५
नवयमानुपाहाराअन्येतेनृपराक्षसा ।
सुकृतस्यफलयत्तुतदश्नीमोवयनृप ॥१६
(सुकृतस्यफलयत्तुतत्तवक्ष्याम्यहंनृप ।
राक्षसीयोनिमापन्न क्रूरालोकभयकरीम् ।)
स्वभावचमनुष्याणायोषितांचविमानिना ।
नाभिपचननश्नीमोनवयजन्तुखादका ॥१७
यदस्मानिर्गुणाश्चान्निर्गुत्ताकुर्वन्तितेतदा ।
भुक्तेदुष्टेस्वभावेचगुणवन्तोभवन्तिच ॥१८
सन्ति न प्रमदानूनम्गेणाप्सरसामम. ।
राजन्यहत्तानुनिहत्पुमानुषीपुगति वयम् ॥१९

पत्न्यैपानोपभोगायनाहारायनिशाचर ।
गृहप्रविश्यविप्रस्यतत्किमेपाहृतात्वया ॥२०

पत्नी बनाने को लाये हैं, यह भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कुरूप है, यदि भक्षणार्थ लाये हैं तो भक्षण क्यो नहीं करते ? यह सब मुझे यथार्थ रूप से बताओ ॥१५॥ राक्षस बोला—हे राजन् ! मनुष्य का भक्षण करने वाला नहीं हूं, मनुष्य भक्षी राक्षस अन्य होते हैं, मैं तो पुण्यफल का ही भोजन करता हूं ॥१६॥ (हे नृप ! अब मैं पुण्य का फल बताता हूं, क्रूर और भयदायक राक्षस योनि को प्राप्त हुआ मैं) सम्मान युक्त अथवा असम्मानित स्त्री-पुरुषो के स्वभाव का ही सदा भोजन करता हूं, मैं अन्नभोजी राक्षस नहीं हूं ॥१७॥ इस प्रकार क्षमागुण वाले स्वभाव का भोजन करने से क्रोध उत्पन्न होता है और दुष्ट स्वभाव का भोजन करने पर वह गुण युक्त होते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! मेरे पास अप्सराओ के समान रूपवती अनेक राक्षसी पत्नियाँ हैं, उनके होते हुए मैं मनुष्य स्त्री की कामना क्या करता ? ॥१९॥ राजा ने कहा—यदि यह ब्राह्मणी तुम्हारे लिये भोग्य अथवा भक्ष्य नहीं थी तो तुमने इसका ब्राह्मण के घर से हरण क्यो किया ? ॥२०॥

मन्त्रविरसद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेगतस्यमे ।
रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करोत्युच्चाटननृप ॥२१
वयंबुभुक्षितास्तस्यमन्त्रोच्चाटनकर्मणा ।
क्वयाम सर्वयज्ञेपुमत्स्त्विग्भवतिद्विज ॥२२
ततोऽस्माभिरिदंतस्यवैकल्यमुपपादितम् ।
पत्न्याविनापुमानिज्याकर्मयोग्योनजायते ॥२३
वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामते ।
सत स राजातिभृशं विपण्णःसमजायत ॥२४
वैकल्यमेपविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ।
अनर्हमर्घस्यचगासाऽप्याहमुनिसत्तम. ॥२५
वैकरयतम्यविप्रस्यराक्षसोऽप्याहमेयथा ।
अपत्नीकतयासोऽहसङ्कटमहदास्थित ॥२६

एवंचिन्तयतस्तस्यपुनःप्राहराक्षसः ।
प्रणामनम्रोराजानंबद्धाञ्जलिपुटोमुने ॥२७
नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादः क्रियतांमम ।
भृत्यस्यप्रणतस्येत्थयुष्मद्विषयवासिनः ॥२८

राक्षस बोला—हे राजन् ! वह ब्राह्मण मन्त्रवेत्ता हैं और सभी यज्ञों में जाकर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके मेरा उच्चाटन करते हैं ॥२१॥ जब वह मन्त्र पाठ द्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं क्षुधा से पीड़ित होकर कहाँ जाऊँ ? क्योंकि वह सभी यज्ञों में ऋत्विज् बनते हैं ॥२२॥ इसीलिये मैंने उनके चित्त को उद्विग्न किया है, क्योंकि भार्या के बिना पति कभी किसी यज्ञ-कर्म में समर्थ नहीं होता ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस द्वारा ब्राह्मण के चित्त का उद्विग्न किया जाना सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित हुए ॥२४॥ और उन्होंने सोचा कि ब्राह्मण को उद्विग्न किया कह कर यह राक्षस मेरी ही निन्दा करता है, इसी कारण उन ऋषिवर ने मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥२५॥ और अब यह राक्षस भी मुझ पत्नी-विहीन के समान ही ब्राह्मण की पत्नी का हरण करके उनको उद्विग्न किया करता है, इसलिये मैं भी पत्नी-हीन होने से सङ्कट ग्रस्त हो रहा हूँ ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा विचार कर ही रहे थे, तभी उस राक्षस ने पुनः विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, करबद्ध निवेदन किया ॥२७॥ हे राजन् ! मैं भी आपके राज्य का ही एक प्रजाजन हूँ, इस कारण इस सेवक को आज्ञा देकर कृतार्थ करिये ॥२८॥

स्वभावव्ययमस्तीमन्त्वयोक्तं यन्निशाचर ।
तदर्थिनोव्ययेनकार्येणशृणुनान्मम ॥२९
अन्याम्त्वयाद्यब्राह्मण्यादो भोज्यमुपभुज्यताम् ।
येनत्वयात्तद्दो भोल्यातद्विनीतामवेदियम् ॥३०
नीयतामस्यभार्येयंतस्यवेश्मनिशाचर ।
अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंगृहमभ्यागतस्यमे ॥३१
ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ।
भक्षयामासदौःशील्यंनिजमक्त्यानृपाज्ञया ॥३२

दौःशील्येनातिरौद्रेण परनीतस्य द्विजन्मनः ।
सेन सा सम्परित्यक्ता समाह जगतीपतिम् ॥३३
स्वकर्मफलपाकेन भर्तुस्तस्य महात्मनः ।
वियोजिताहमद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥३४
नास्य दोषो न वा तस्य मम भर्तुर्महात्मनः ।
ममैव दोषो नान्यस्य स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥३५

राजा बोले—हे निशाचर ! तुमने स्वभाव भक्षण करने की बात कही है, अब मैं जिस कार्य के लिये आया हूँ, उसे सुनो ॥२६॥ तुम इस ब्राह्मणी के खोटे स्वभाव का भक्षण करो, क्योंकि ऐसा होने से इसके स्वभाव में विनम्रता आ जायगी ॥३०॥ ऐसा करने के पश्चात् तुम इसे उसी के घर में पहुँचा दो, जिसकी यह पत्नी है, ऐसा करने से तुम्हारे द्वारा मेरे आतिथ्य सत्कार की भी पूर्ति होगी ॥३१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अपनी माता के प्रभाव से उस राक्षस ने ब्राह्मणी के हृदय में प्रवेश किया और उसके दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया ॥३२॥ तदनन्तर अपने अत्यन्त दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई वह ब्राह्मणी राजा से बोली ॥३३॥ मैं अपने कर्म से ही अपने महात्मा स्वामी के वियोग को प्राप्त हुई हूँ, यह राक्षस उसका एकमात्र कारण है ॥३४॥ परन्तु इस राक्षस या मेरे उन महात्मा पति का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, दोष तो मेरा ही है, क्योंकि स्वकृत कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥३५॥

अन्यजन्मनि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया ।
सोऽयमप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ॥३६
प्रापयामि तवादेशादिमां भर्तुर्गृहं प्रभो ।
यदन्यत् करणीयं ते तदाज्ञापय पार्थिव ॥३७
अस्मिन्कृते कृतं सर्वं त्वया मे रजनीचर ।
आगन्तव्यं च ते वीर काल्ये वा ले स्मृतेन मे ॥३८
तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् ।
निन्ये भर्तृगृहं शुद्धां दौःशील्यापगमात्तदा ॥३६

प्रतीत होता है कि पूर्व किसी जन्म में मैंने किसी का वियोग कराया था, इसी से मेरा भी अपने पति से वियोग हुआ, इसमें इस राक्षस का क्या दोष है ? ॥२६॥ राक्षस ने कहा—हे महाराज ! आपकी आज्ञा से मैं इसे अभी इसके पति-गृह में पहुँचाता हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपका और क्या कार्य मैं करूँ ? ॥२७॥ राजा बोले—हे राक्षस ! इस कार्य को करके तुमने मेरे सभी कार्य कर दिये हैं, फिर भी हे वीर ! मेरे द्वारा स्मरण करने पर तुम मेरे पास उपस्थित होओ, यह स्वीकार करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस ने राजा की बात स्वीकार करके दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई उस ब्राह्मणी को उसके पति-गृह में आ पहुँचाया ॥२९॥

६३—ऋषि से उत्तम का कथोपकथन

सम्प्रेष्यत्वाराजापित्स्वभर्तृ गृहमङ्गनाम् ।
चिन्तयामासनि भ्श्वसन्किमत्रसुकृतंभवेत् ॥१
अनर्घयोग्यताकष्टममामाहमहामना. ।
बंकन्यविप्रमुद्दिश्यनयाह्वायनिशाचरः ॥२
सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिसा ।
अथवाज्ञानदृष्टिमपृच्छामिमुनिसत्तमम् ॥३
सचिन्त्येत्यसभूपाल समारुह्यचतरथम् ।
यत्रयत्रसधर्मात्मात्रिकालज्ञोमहामुनि. ॥४
अवरुह्यरथात्सोऽयतसमेत्यप्रणम्यच ।
यथावृत्तमभाचख्यौराक्षसेनसमागमम् ॥५
ब्राह्मण्यादर्शनंचैवदो शील्यापगमंतथा ।
प्रेषणभर्तृगेहेचकार्यमागमनेचयत ॥६
ज्ञानमेतन्मयापूर्वयत्कृततेनराधिप ।
कार्यमागमनेचैवमत्समीपेनवाग्विलम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस ब्राह्मणी को उसके पति के घर भेजकर राजा दीर्घ श्वास लेते हुए सोचने लगे कि अब किस कर्म के द्वारा मेरी भलाई हो ॥१॥ उन महर्षि ने मुझे पत्नी त्याग के कारण अधर्म के प्रयोग बताया और इस राक्षस ने भी ब्राह्मण के प्रति पत्नी-वियोग से उत्पन्न धर्म-हानि का विषय कहा ॥२॥ मैंने अपनी पत्नी का परित्याग किया है, अब मुझे क्या करना चाहिये, इस विषय मे उन्ही ज्ञान दृष्टि वाले महर्षि से प्रश्न करूँ ॥३॥ ऐसा विचार करके राजा रथारूढ हुए और उन त्रिकालज्ञ मुनि के आश्रम मे पहुँचे ॥४॥ रथ से उतर कर उनके निकट उपस्थित हुए और प्रणाम करके ब्राह्मणी से मिलना, राक्षस से समागम होना, ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का नष्ट होना और उसे उसके पति-गृह भेजकर पुन उनके पास आने का उद्देश्य भी आदि से अन्त तक कहा ॥५-६॥ ऋषि से कहा—हे राजन्! आपके द्वारा किया गया कार्य और आपके पुनरागमन का उद्देश्य यह सब मैं पहिले ही जान चुका हूँ ॥७॥

प्रष्टु मामिहकिंकार्यमयेत्युद्विग्नमानस ।
त्वमागतोमहीपालशृणुकार्यंचयत्त्वया ॥८
पत्नीधर्मार्थकामानाकारणप्रबलनृणाम् ।
विशेषतश्चधर्मस्यसक्तस्त्यजताहिताम् ॥९
अपत्नीकनरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम् ।
ब्राह्मण क्षत्रियोवापिवैश्य शूद्रोऽपिवानृप ॥१०
त्यजताभवतापत्नीनशोभनमनुष्ठितम् ।
अत्याज्योहियथाभर्त्तास्त्रीणाभार्यातथानृणाम् ॥११
भगवन्किंकरोम्येपविपाकोमभकर्मणाम् ।
नानुकूलानुकूलस्ययस्मात्त्यक्तातततोमता ॥१२
यद्यत्करोतितत्क्षान्तदह्यमानेनचेतसा ।
भगवस्तद्वियोगार्तिविभीतेनान्तरात्मना ॥१३
साम्प्रततुवनेत्यक्तानवेद्मिक्वनुसागता ।
भक्षितावापियिपिनेसिहव्याघ्रनिशाचरै ॥१४

फिर भी आप स्वयं ही मुझसे प्रश्न करें, इसी की प्रतीक्षा में था. हे राजन् ! अब आप अपने कर्त्तव्य के विषय में सुनिये ॥८॥ मनुष्यों के धर्म, अर्थ और काम के साधन का प्रबल कारण भार्या ही है, जो भार्या का त्याग कर देते हैं, वह धर्म का भी त्याग करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही क्यों न हो, पत्नी को त्याग करके अपने कर्म के अनुष्ठान में समर्थ नहीं होते ॥१०॥ हे राजन् ! आपने पत्नी का त्याग करके उचित कार्य नहीं किया है, जैसे स्त्री के लिये पति का त्याग अनुचित है, वैसे ही पति के लिये पत्नी का त्याग भी उचित नहीं है ॥११॥ राजा बोले—हे भगवन् ! मैं तो पत्नी का त्याग कर ही बैठा, अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥१२॥ उसके वियोग के कारण मेरा अन्तरात्मा क्षोभ से भरा हुआ है और चित्त दग्ध हो रहा है, इसीलिये उस पत्नी द्वारा किये सब अप्रिय आचरण भूल गया हूँ ॥१३॥ परन्तु, वन में त्यागी हुई मेरी पत्नी न जाने कहाँ चली गई होगी ? अथवा उसे सिंह, व्याघ्र या राक्षसों ने भक्षण कर लिया होगा, यह मुझे ज्ञात नहीं है।१४।

नभक्षितासाभूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ।
मात्वविप्लुतचरित्रासाम्प्रततुरसातले ॥१५
सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूपिताकथम् ।
अत्युद्भुतमिदंब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६
पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चकपोतकः ।
तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥१७
सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ।
वेदितार्थेनपातालनीतासायुवतीतदा ॥१८
ततस्तस्यसुतासुभ्रूर्नन्दानाममहीपते ।
भार्यामनोरमाचास्यनागराजस्यधीमतः ॥१९
तयामातुःसपत्नीयसाभविश्रीनिशोभना ।
दृष्टास्वगेहंमानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा ॥२०
यदातुयाचितानन्दानददातिनृपोत्तरम् ।
मूकाभविष्यसीत्याहनदातातनयातिता ॥२१

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! सिंह, व्याघ्र अथवा राक्षस किसी ने भी उसका भक्षण नहीं किया है, वह इस समय विशुद्ध चरित्र युक्त होकर रसातल में रह रही है ॥१५॥ राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! मेरी पत्नी रसातल में किसके द्वारा गई और किस प्रकार विशुद्ध होकर रहती है, यह अद्भुत बात मुझे यथावत् बताने की कृपा करिये ॥१६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! कपोतक नाम के एक नागराज रसातल में रहते हैं, उन्होंने आपके द्वारा परित्यक्त उस रूपवती नारी को महावन में भ्रमण करते हुए देखा तो वह उस पर अनुरक्त होगये और अपना प्रयोजन बता कर वह उसे रसातल में ले गये ॥१७-१८॥ उन नागराज की पत्नी का नाम मनोरमा तथा कन्या का नाम नन्दा है ॥१९॥ उस कन्या ने इस सुन्दरी को अपनी माता की होने वाली सपत्नी जानकर उसे अन्तःपुर में छिपा लिया ॥२०॥ जब नागराज इस सुन्दरी के विषय में अपनी पुत्री से पूछते तब वह उन्हें कुछ उत्तर न देती थी, इस पर नागराज ने अपनी पुत्री नन्दा को गूँगी होने का शाप दे दिया ॥२१॥

एवशप्तासुतातेनसाचास्येतत्रभूपते ।
नीतातेनोरगेन्द्रेणधृतातत्सुतयासती ॥२२
ततोराजापरहर्षमवाप्यतमपृच्छत ।
द्विजवर्यस्वदौर्भाग्यकारणदयिताप्रति ॥२३
भगवन्सर्वलोकस्यमयिप्रीतिरनुत्तमा ।
किन्नुतत्कारणयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥२४
ममचासायतीवेष्टाप्राणेभ्योऽपिमहामुने ।
साचमाप्रतिदु शीलाब्रूहितत्कारणद्विज ॥२५
पाणिग्रहणकालेत्वसूर्यभौमशनैश्चरैः ।
शुक्रवाचस्पतिभ्याचतवभार्यावलोकिता ॥२६
तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्या सोमसुतस्तथा ।
परस्परविपक्षौतौततःपार्थिवतेभृशम् ॥२७
तद्गच्छत्वस्वधर्मेणपरिपालयमेदिनीम् ।
पत्नीसहायासर्वाश्चकुरुधर्मवती क्रियाः ॥२८

इत्युक्तेप्रणिपत्यैनमारुह्यास्यन्दनततः ।
उत्तम पृथिवीपालआजगामनिजपुरम् ॥२६

हे राजन् ! वह नागकन्या इस प्रकार अपने पिता के द्वारा शापित हुई है, फिर भी उसने इस सुन्दरी को पकड रखा है ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर राजा अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होने अपनी पत्नी के अपने प्रति अप्रिय भाव का कारण ऋषि स पूछा ॥२३॥ राजा बोले—हे भगवन् ! सभी मनुष्य मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, परन्तु मेरी अपनी ही पत्नी मुझ मे अनुरागिणी नही है, इसका कारण क्या है ? ॥२४॥ हे महामुने ! मेरे प्राणो से अधिक प्रिय होने पर भी वह पत्नी मेरे प्रति कुव्यवहार करती है, उसका कारण मुझे बताइये ॥२५॥ ऋषि ने कहा—जिस समय आपका विवाह हुआ था, उस समय आप पर सूर्य, मगल और शनिश्वर की तथा आपकी पत्नी पर शुक्र और बृहस्पति की दृष्टि थी ॥२६॥ उसी मुहूर्त्त मे आपके बुध और आपकी पत्नी के चन्द्रमा परस्पर मे घोर विपक्षी थे ॥२७॥ अब जाकर अपनी पत्नी से मिलो और सब प्रकार धम कार्यों का अनुष्ठान और पृथिवी का पालन करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—महर्षि के ऐसा कहने पर महाराज उत्तम ने उन्हें प्रणाम किया और रथारूढ होकर अपने नगर मे आये ॥२६॥

६४—गौतम मनु की उत्पत्ति

ततःस्वनगरप्राप्यतददर्शद्विजनृप ।
समेतभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥१
राजवर्यकृतार्थोऽस्मियतोधर्म्मोहिरक्षित ।
धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयताभम ॥२
कृतार्थस्त्वद्विजश्रेष्ठनिजधर्मानुपालनात् ।
वयसङ्कटिनोविप्रयेपापत्नीनवेश्मनि ॥३
नरेन्द्रसाहिविविनेमक्षिताश्चापदंयदि ।
क्रोधस्यवशमागम्यधर्मोनावेक्षितस्त्वया ।

अलनयाकिमन्यस्यानपारिगृं ह्यतेत्वया ।
स तिराज्ञागृहेकन्या शोभनानृपनन्दन ॥४
नभक्षितामेदयिताश्वापदैःसाहिजीवति ।
अविदूषितचारित्राकथमेतत्करोम्यहम् ॥५
यदिजीवतितेभार्यानचैवव्यभिचारिणी ।
अपत्नीकत्वतोजन्मकिपापक्रियतेत्वया ॥६
आनीतापिहिसाविप्रप्रतिकूलासदैवमे ।
दुखायनसुखायालतस्यामैत्रीनवैमयि ।
यथातेब्राह्मणीविप्रवशगातवसु दरी ।
तथात्वकुरुयत्नमेयथासावशगामिनी ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—महाराज उत्तम ने अपने नगर मे पहुचकर उस ब्राह्मण को अपनी शीलवती पत्नी के साथ हर्ष सहित स्थित देखा ॥१॥ ब्राह्मण ने राजा से कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! आपने धर्म के ज्ञाता होने के कारण मेरी पत्नी को लाकर धर्म की रक्षा की है, इससे मैं धन्य हुआ हूँ ॥२॥ राजा ने कहा—हे द्विजवर ! आप अपने धर्म पालन के कारण कृतकृत्य हुए हैं, परन्तु मेरे घर मे भार्या नही है, इसलिए मैं घोर विपत्ति मे पडा हूँ ॥३॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! आपने क्रोधवश उस समय धर्म को नही देखा, अब उसे कही हिंसक जीवों ने भक्षण कर लिया हो या किसी और प्रकार से नष्ट हो गई हो तो उसके मिलने की आशा न करके किसी अन्य कन्या से विवाह क्यो नहीं कर लेत, हे राजन् ! राजाओ के घर अनेक कन्याएँ होगी ॥४॥ राजा ने कहा—मेरी पत्नी का किसी ने भक्षण नही किया, वह अभी भी विशुद्ध चरित्र से जीवितावस्था मे है, फिर कैसे अन्य स्त्री का ग्रहण करूँ ? ॥५॥ ब्राह्मण बोला—यदि आपकी पत्नी अभी तक श्रेष्ठ चरित्र वाली होकर जीवित है तो उस छोडकर पाप क्यो करते हैं ? राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं उसे ले भी आऊँगा तो वह मेरे अनुकूल नही होगी, क्योंकि उसकी प्रीति मुझमे नही है, इसमे मुझे दुःख ही होगा, अब आप वह उपाय करिये जिसमे वह मेरे वश मे हो सके ॥७॥

त्वयिसप्रीतयेनस्यावरेष्टिस्पकारिणी ।
क्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दाकरामिताम् ॥८
अप्रीतयो प्रीतिकरीसाःहिमजननीपरम् ।
भार्यापत्योमनुष्येन्द्रतानवष्टिकराम्यहम् ॥६
यत्रतिष्ठतिसासुभ्रून्नवभार्यामहीपते ।
तस्मादानीयतासातपराप्रीतिमुपैष्यति ॥१०
(तस्यास्तवहितार्थायचर्मोयत्रनसीदति)
इत्युक्तमतुनिखिलमस्मारानवनीपति ।
श्रानिनायचकारेष्टिमचताद्विचमत्तम ॥११
सप्तकृत्वमतुतदाचकारष्टिपुन पुन ।
तस्यराज्ञाद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥१२
यदारापितमेत्रानाममन्यतमहामुनि. ।
स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥१३
आनीयतानरश्रेष्ठयातवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ।
भुंक्ष्वभागास्तयामार्द्धयजयज्ञास्तयाहत ॥१४

ब्राह्मण बोला—मित्रता की कामना वाले उपकारी पुरुष जिस यज्ञ को करते हैं, उसी मित्रविन्दा नामक यज्ञ को मैं तुम्हारी पत्नी के लिए करूँगा ॥८॥ हे राजन्! वह यज्ञ असन्तुष्ट स्त्री पुरुष में प्रीति कराने वाला और शक्ति का देने वाला है, मैं उसी का आपके निमित्त अनुष्ठान करूँगा ॥६॥ आपकी वह पत्नी जहाँ रहती है वहाँ से उसे ले आइए, वह अवश्य ही आप के प्रति परम कर्त्तव्य करने वाली हो जायगी ॥१०॥ (तुम्हारे हित के लिए ऐसे अवसर में धर्म की हानि नहीं होती) मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण का वचन सुनकर महाराज उत्तम ने सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री उपस्थित की और उस ब्राह्मण ने भी यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥१२॥ जब उसने उस राजमहिषी को उसके स्वामी के प्रति अनुरक्त मनका तब वह राजा से बोला ॥१३॥ हे राजन्! अब अपनी उस पत्नी को लाकर सांसारिक सुखों का भोग कीजिये, और यत्न पूर्वक यज्ञ कार्यों का सम्पन्न करिये ॥१४॥

इत्युक्तस्तेनविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ।
सस्मारतमहावीर्यसत्यसन्धनिशाचरम् ॥१५
स्मृतस्तेनतदासच समुपेत्यनराधिपम् ।
किंकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥१६
ततस्तेननरेन्द्रे ण विस्तरेणनिवेदिते ।
गत्वापातालमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥१७
आनीताचातिहार्देनसाददर्शतदापतिम् ।
उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥१८
तत स राजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ।
प्रियेप्रसन्नएवाहभूयोऽप्येवन्नवीषिकिम् ॥१९
यदिप्रसादप्रवणानरेन्द्रमयितेमन. ।
तदेतदभियाचेत्वातत्कुरुष्वममाहृणम् ॥२०
नि.शकेष्व हिमत्तोयद्भवत्याकिंचिदीप्सितम् ।
तदलभ्यनतेभीरुत्वायत्तोऽस्मिनान्यथा ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए और उन्होंने उसी समय उस महान् पराक्रमी राक्षस का स्मरण किया ॥१५॥ स्मरण करते ही वह राक्षस उसी समय उपस्थित हुआ और उनको प्रणाम करता हुआ बोला—मुझे क्या आज्ञा है ? ॥१६॥ तब राजा ने सब बात उसे विस्तारपूर्वक बतायी और तब वह पाताल में जाकर रानी को शीघ्र ही लेकर आ गया ॥१७॥ रानी ने वहाँ आकर हार्दिक प्रीति सहित अपने पति को देखा और 'प्रसन्न होओ' इस प्रकार बारम्बार विनय

मदर्थंतेनगागेनसुताशप्तासखीमम ।
मूकाभविष्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥२२
तस्या प्रतिक्रियाप्रीत्यामशक्तोतिचेद्भवान् ।
वाग्विघातप्रशान्त्यर्थततं किनकृतमम ॥२३
तत सराजातविप्रमाहास्मिन्कीदृशीक्रिया ।
तन्मूकतापनोदायसचतप्राहपार्थिवम् ॥२४
भूपसारस्वतीमिष्टिकरोमिवचनात्तव ।
पत्नीतवेयमानृण्ययातुतद्वाक्प्रवर्तनात् ॥२५
इष्टिंसारस्वतीचक्रे तदर्थंसद्विजोत्तम ।
सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहित ॥२६
तत प्रवृत्तवाक्श्रातागर्ग प्राहरसातल ।
उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्कर ॥२७
इत्यज्ञानसमासाद्यनन्दाशीघ्रगति पुरम् ।
ततोराज्ञीनरिष्वज्यस्वसखीमुरगात्मजा ॥२८
तचसस्तूयभूपालकल्याणोक्त्यापुन पुन ।
उवाचमधुरनागीकृतासनपरिग्रहा ॥२९

रानी ने कहा—नागराज की कन्या मेरी सखी है और वह नागराज के शापवश गूंगी हो गई है ॥२२॥ यदि आप मुझ पर प्रीति करते हैं और उसके गूंगेपन को दूर करने में समर्थ हैं तो आपने अवश्य ही मेरा सब कुछ कार्य किया समझो ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब राजा ने उस ब्राह्मण से नागकन्या के गूंगेपन को दूर करने का उपाय पू ा ॥२४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! आपके वचन मानकर मैं सरस्वती की इष्टि करूंगा, क्योंकि आपकी यह पत्नी उसकी मूकता दूर होने पर ही ऋण से छूटेगी ॥२५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण ने सरस्वती की इष्टि का प्रारम्भ किया और यत्न पूर्वक सारस्वत सूक्त को जपने लगा ॥२६॥ तदनन्तर गर्ग ऋषि ने पाताल में वाक्शक्ति को प्राप्त हुई उस नागकन्या से कहा कि तुम्हारी सखी ने तुम्हारा

यह अत्यन्त कठिन उपकार किया है ॥२७॥ तब वह नागकन्या नन्दा अपनी सखी के लिए उस नगर में आई और उसने रानी को आलिंगन किया ॥२८॥ और वह राजा के भी गुण गाती हुई आसन पर बैठकर मंगलमय वचनों द्वारा कहने लगी ॥२९॥

उपकार कृतोवीरभवतायोममाधुना ।
तेनास्याकृष्टहृदयायदब्रवीमिशृणुष्वतत् ॥३०
तवपुत्रोमहावीर्योभविष्यतिनराधिप ।
तस्याप्रतिहतचक्रमस्याभुविभविष्यति ॥३१
सर्वार्थशास्त्रतत्वज्ञोधर्मानुष्ठानतत्पर ।
मन्वन्तरेश्वरोधीमान्भविष्यतिसर्वमनुः ॥३२
इतिदत्वावरतस्मैनागराजसुताततः ।
सखीतासपरिष्वज्यपातालमगमन्मुने ॥३३
तत्रतस्यतयासार्द्धं रमत पृथिवीपते ।
जगामकाल सुमहान्प्रजा पालयतस्तथा ॥३४
तत सत्रयातनयाज्ञे राज्ञोमहात्मन ।
पौर्णमास्यायथाकान्तश्चन्द्र सपूर्णमण्डल ॥३५

हे वीर! आपने जो मेरा जो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय अत्यन्त आकर्षित हुआ है। अब मैं जो कुछ कहती हूं, उसे श्रवण करो ॥३०॥ हे राजन्! आपको अत्यन्त पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति होगी और इस भूमण्डल पर उसका अखण्ड राज्य होगा ॥३१॥ आपका स्वार्थ साधक, शास्त्र में तत्वज्ञानी, धर्मानुष्ठान में सदैव तत्पर वह मेधावी पुत्र मन्वन्तर का स्वामी मनु होगा ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा को बारम्बार वर देती हुई नागकन्या अपनी सखी का प्रगाढ आलिंगन करके अपने लोक को गई ॥३३॥ इधर पत्नी के साथ विहार करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए राजा को बहुत समय व्यतीत हो गया ॥३४॥ फिर रानी के गर्भ से पूर्णिमा के चन्द्र मण्डल के समान श्रेष्ठ कान्ति वाले पुत्र की उनके उत्पत्ति हुई ॥३५॥

तस्मिञ्जातेमुदप्रापु प्रजा सर्वाःमहामते ।
देवदुन्दुभयोनेदु पुष्पवृष्टि पपातच ॥३६॥
तस्यदृष्ट्वावपु कान्तिभविष्यशीलमेवच ।
औत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रु समागताः ॥३७॥
जातोऽयमुत्तमेवशेवाल कालेतथोत्तमे ।
उत्तमावयवस्तेनऔत्तमोऽयभविष्यति ॥३८॥
उत्तमस्यसुत सोऽयनाम्नाख्यातस्त्वयौत्तम ।
मानुरासी त्तत्प्रभावोभागुरेश्र यतामम ॥३९॥
उत्तमाख्यानमखिलजन्मचैवौत्तमस्यय ।
नित्यशृणोतिविद्वे पसनदाचित्प्रगच्छति ॥४०॥
इष्टदारैस्तथापुत्रैर्बन्धुभिर्वाकदाचन ।
वियोगोनास्यभविताशृण्वत पठतोऽपिवा ॥४१॥
तस्यमन्वन्तरब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ।
श्रृ यतातनयश्चेन्द्रोयेचदेवास्तथर्षय ॥४२॥

उनके जन्म लेने पर समस्त प्रजा आनन्द में मग्न होगई, देवताओं द्वारा वाद्य वादन और पुष्प वृष्टि की गई ॥३६॥ आगत मुनियों ने उसके स्वभावादि को देखकर उसका 'औत्तम' नाम रखा ॥३७॥ मुनिगण बोले कि इसने उत्तम कुल, उत्तम काल और उत्तम अङ्ग सहित जन्म ग्रहण किया है, इसलिये यह 'औत्तम' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! उत्तम के पुत्र होने से वह 'औत्तम' नाम से प्रसिद्ध होकर मनु होगा, अब उसका प्रभाव कहता हूँ उसे सुनो ॥३९॥ जो मनुष्य राजा उत्तम के आख्यान और औत्तम मनु के जन्म का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं होते ॥४०॥ तथा इसके सुनने या पढ़ने वालों को कभी इष्ट, मित्र, पुत्र, स्त्री और बन्धुओं का वियोग सहन नहीं करना पड़ता ॥४१॥ अब उनके मन्वन्तर का वृत्तान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो, हे ब्रह्मन् ! उस समय के देवताओं और ऋषियों के विषय में भी कहता हूँ ॥४२॥

६५—औत्तम मन्वन्तर कथन

मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्यप्रजापते ।
देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम ॥१॥
स्वधामानस्तथादेवायथानामानुकारिण ।
सत्याख्यश्चद्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानातथागण ॥२॥
तृतीयेतुगणादेवा शिवाख्यामुनिसत्तम ।
शिवास्वरूपतस्तेतुश्रु ता पापप्रणाशना ॥३॥
प्रतर्दनाख्यश्चगणोदेवानामुनिसत्तम ।
चतुर्थ स्तत्रकथितऔत्तमस्यान्तरेमनो ॥४॥
वशवर्तिन पचमेऽपिदेवास्तत्रगणद्विज ।
यथाख्यातस्वरूपास्तुसर्वएवमहामुने ॥५॥
एतेदेवगणा.पञ्चस्मृतायज्ञभुजस्तथा ।
मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठे सर्वेद्वादशकागणा ॥६
तेषामिन्द्रोमहाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ।
शतक्रतूनामाहृत्यसुशान्तिर्नामनामत ॥७
यस्योपसर्गनाशायनामाक्षरविभूषिता ।
अद्यापिमानवैर्गाथागीयतेतुमहीतले ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! अब औत्तम प्रजापति के तृतीय मन्वन्तर के देवता, इन्द्र और ऋषियों के विषय मे कहता हू, श्रवण करो ॥१॥ पहला 'स्वधामा' नामक गण देवताओं के नाम के अनुरूप हो स्वज्योति से प्रकाशित है और द्वितीय गण का नाम 'सत्य' है ॥२॥ तृतीय गण 'शिव' नाम से प्रसिद्ध है तथा इसके नाम का स्मरण करते ही वह पाप को नष्ट करके शिव' नाम को सार्थक करता है ॥३॥ हे मुने ! औत्तम मन्वन्तर के देवताओं का चतुर्थगण 'प्रतर्दन' नाम वाला है ॥४॥ पंचम गण में 'वशवर्ती' साधक देवता स्थित हैं, वे सब नाम के ही अनुरूप कार्य करने वाले हैं, हे द्विजवर ! इस मन्वन्तर मे यज्ञ भोगी देवताओं मैं पाँच प्रकार के गण तथा प्रत्येक गण में द्वादश देवता

हैं ॥५-६॥ उन देवताओं के इन्द्र सुशान्ति नामक हैं जो सौ अश्वमेध यज्ञ करके तीनों लोक के गुरु हुए हैं ॥७॥ उन देवेन्द्र सुशान्ति का यह नाम और अक्षर से विभूषित वृत्तान्त भूतल में अब भी कहा जाता है ॥८॥

सुशान्तिर्देवराटकान्त सुशान्तिमप्रयच्छति ।
सहित शिवसत्याद्यैस्तथैववशवर्तिभि ॥६
अज परशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रम ।
पुत्रास्तस्यमनोरासन्विरयातास्त्रिदशोपमा ॥१०
तत्सूतिसम्भवैर्भू ति पालिताभूनरेश्वरै ।
यावन्मन्वन्तरतस्यमनोरुत्तमतेजस ॥११
चतुर्युगानासख्यातासाधिकाह्येकसप्तति ।
कृतत्रेतादिसज्ञानिया युक्तानिपुरामया ॥१२
स्वतेजसाहितपसोवरिष्ठस्यमहात्मन ।
तनयाश्चान्तरतस्मिन्सप्तसप्तर्षयोभवन् ॥१३
तृतीयमतत्कथिततवमन्वन्तरमया ।
तामसस्यचतुर्थंतुमनोरन्तरमुच्यत ॥१४
वियोनिजन्मनायस्ययशसाद्योतितजगत् ।
जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मञ्छ्रू यतागदतोमम ॥१५
अतीन्द्रियमशेषाणामनूनाचरिततथा ।
तथाजन्मापिविज्ञेयप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥१६

यह तेजस्वी देवेन्द्र सुशान्ति शिवादि देवताओं के सहित सुन्दर शान्ति के देने वाले हैं तथा उनके वश में रहने वाले देवता भी इसी प्रकार के स्वभाव वाले हैं ॥६॥ इन औत्तम मनु के सात पुत्र देवताओं के समान अत्यन्त पराक्रमी हुए थे, जिनके नाम अज, परशुचि और दिव्य थे ॥१०॥ उनका मन्वन्तर जितने दिनों तक रहा, उतने काल तक उनके वंशधर इस पृथिवी पर राज्य करते रहे ॥११॥ इस मन्वन्तर में सतयुग त्रेता, द्वापर और कलि यह चारों युग हुए हैं उक्त प्रकार की कुछ अधिक चतुर्युगियों का मन्वन्तर कहा गया है ॥१२॥ इस मन्वन्तर में महातपा नामक महात्मा के सात पुत्र ही सप्तर्षि हुए थे ॥१३॥

यह तृतीय मन्वन्तर का वृत्तान्त हुआ, अब चतुर्थ मन्वन्तर के विषय मे कहता हूँ ।।१४।। विभिन्न योनि जन्मा जिस मनु के सुयश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हुआ उन मनु की उत्पत्ति कहता हू, उसे तुम श्रवण करो ।।१५।। इन सब महात्मा मनुओ का चरित्र और उनके जन्म के प्रभाव को अवश्य जानना चाहिए ।।१६।।

६६—तामस मन्वन्तर

राजाभूद्भुविविख्यात स्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ।
अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञ सग्रामेष्वपराजित ।।१
तस्यायु सुमहद्दत्तसूर्येणसुमहाद्युते· ।
(पुराभगवताविप्रमन्त्रिणाराधितेनवं ।)
पत्नीनाचशततस्यधन्यानामभवद्द्विज ।।२
तस्यदीर्घायुपःपत्न्योनातिदीर्घायुपोमुने ।
कालेनजग्मुर्निधनभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ।।३
सभार्याभिस्तथामुक्तोभृत्यैश्चसहजन्मभि ।
उद्विग्नचेता सप्रापवीर्यहानिमहर्निशम् ।।४
तवीर्यहीनंनिभृतैर्भृत्यैस्त्यक्त सुदु खितम् ।
अनन्तरोविमर्दाख्योराज्याच्च्यावितवास्तदा ।।५
राज्याच्च्युत सोऽपिवनगत्वानिर्विण्णमानस. ।
तपस्तेपेमहाभागोवितस्तापुलिनेस्थित ।।६
ग्रीष्मेपचतपाभूत्वावर्षास्वभ्रावकाशक ।
जलशायीचशिशिरेनिराहारोयतव्रतः ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—स्वराष्ट्र नामक एक राजा अनेक यज्ञो का करने वाले, युद्ध मे सदा जीतने वाले, अत्यन्त पराक्रमी और ज्ञानी थे ।।१।। हे द्विज ! उनके मन्त्रियो की आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् भास्कर ने उनको दीर्घा-

पुष्प बनाया था, उन राजा की 'धन्या' नाम की एक अत्यन्त सुन्दर भार्या थी ॥२॥ परन्तु, उन राजा की भार्याएँ दीर्घायु वाली नहीं थीं, इसलिये वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुईं और मन्त्रिगण तथा भृत्यगण भी काल के वशीभूत होगये ॥३॥ राजा अपने सुहृदो, भृत्यों और भार्याओं के वियोग में उद्विग्न रहते हुए दिनोदिन पराक्रम-हीन होने लगे ॥४॥ अवसर प्राप्त कर एक निकटस्थ विमर्द नाम के राजा ने इस वीर्यहीन और विश्वासी भृत्यों से रहित दुःखित हृदय राजा को राज्य से भ्रष्ट कर डाला ॥५॥ वह राजा अपने राज्य से हटने के कारण दुःख पूर्ण हृदय से वितस्तानदी के तट पर वन में रहते हुए तप करने लगे ॥६॥ वह ग्रीष्म काल में पञ्चाग्नि से तपन, वर्षा के समय खुले में बैठ कर भीगते और शीतकाल में जल में शयन करते आहार त्याग कर संयम पूर्वक तप करते थे ॥७॥

ततस्तापस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहान्प्लव ।
बभूवानुदिनमेघैर्वर्षं द्भिरनुसन्ततम् ॥८
नदिग्विज्ञायतेपूर्वादक्षिणावानपश्चिमा ।
नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९
ततोऽतिपूरेणनृप मनद्याप्रेरितस्तटम् ।
प्रार्थयन्नपिनावापह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥१०
अथदूरेजलौघेनह्रियमाणोमहीपति ।
माससादजलेरौहीसपुच्छेजगृहेचताम् ॥११
तेनप्लवेनसययावृह्यमनोमहीतले ।
इतश्चेतश्चान्धकारेप्राससादततटतत ॥१२
विस्तारिपङ्कमत्यर्थंदुस्तरसनृपस्तरम् ।
तथोनकृष्यमाणोऽन्यद्रम्यवनमवापस ॥१३
तत्रान्धकारेमारोहीचकर्षवसुधाधिपम् ।
पुच्छेनम्नमहाभागकृशधमनिसन्ततम् ॥१४

फिर एक दिन, जब राजा तपस्या में रत थे, तब घोर वृष्टि होने से पृथिवी सर्वत्र जलमयी होगई थी ॥८॥ दिशाएँ अन्धकार से ढक गई थी, इस-

लिए दक्षिणादि किसी भी दिशा का ज्ञान नहीं हो रहा था ॥६॥ तब वह राजा जल के वेग से नदी तट से प्रवाहित होते हुए उस नदी के तट को नहीं पा सके ॥१०॥ फिर वह जल प्रवाह में बहने लगे, तभी उन्हें एक रोहीं दिखाई दी, तो उन्होंने उसकी पूँछ पकड़ ली ॥११॥ फिर उस विशाल जल समूह से खिंचे हुए पृथिवी के तल में पहुँचे और अँधेरे में इधर-उधर टटोल कर किनारे को प्राप्त हुए ॥१२॥ मृगी के द्वारा खिंचते हुए राजा उस विस्तृत और कठिनता से पार की जाने वाली कीचड़ से पार होकर एक सुरम्य वन में पहुँच गये ॥१३॥ वह मृगी पूँछ को पकड़े हुए उन महाभाग राजा को अन्धकार में खींचने लगी ॥१४॥

तस्याश्चस्पर्शसंभूतामवापमुदमुत्तमाम् ।
सोऽन्धकारेभ्रमन्भूपोमदनाकृष्टमानसः ॥१५
विज्ञायसानुरागंतपृष्ठस्पर्शनतत्परम् ।
नरेन्द्र तंवृपस्यतसामृगीतमुवाचह ॥१६
किंपृष्ठं वेपथुमताकरेणस्पृशसेमम ।
अन्यथैवास्यकार्यस्यसञ्जातानृपतेगतिः ॥१७
नास्थानेवामनोयातनागम्याहतवेश्वर ।
किंतुत्वत्सङ्गमेविघ्नमेषलाले करोतिमे ॥१८
इतिश्रुत्वावचस्तस्यामृग्याश्चजगतीपतिः ।
जातकौतूहलोरोहीमिदंवचनमब्रवीत् ॥१६
कात्वंब्रूहिमृगीवाक्यंकथमानुषवद्वदेत् ।
कश्चवलोलोयाविघ्नंत्वत्सङ्गे कुरुतेमम ॥२०
अहन्तेदयिताभूपप्रागासमुत्पलावती ।
भार्याशताग्रमहिषीदुहितादृढधन्वनः ॥२१

वह महाराज स्वराष्ट्र अँधेरे में विचरण करते हुए मृगी के स्पर्श में कामासक्त चित्त वाले होकर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥१५॥ जब उन्होंने उस मृगी के पृष्ठ भाग का उस वन प्रदेश में आकर स्पर्श किया, तब उन्हें अनुरक्त जानकर वह मृगी बोली ॥१६॥ हे राजन् ! अपने कम्पित हाथों से मेरी पीठ

का इस प्रकार स्पर्श क्यों कर रहे हो ? इस स्पर्श का अन्य भाव प्रतीत हो रहा है ॥१७॥ हे राजन् ! आपकी इच्छा अयोग्य के प्रति नहीं, गमन योग्य के प्रति ही हुई है परन्तु यह लोल आपके समर्ग में बाधक हैं ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मृगी की यह बात सुनकर राजा ने विस्मय पूर्वक उनसे कहा ॥१९॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर भी मानवी के समान किस प्रकार बोल रही हो तथा तुम्हारे समर्ग मे बाधा देने वाले कौन हैं, यह सब मुझे बताओ ॥२०॥ मृगी बोली—हे राजन् ! मैं आपकी प्रियतमा राजमहिषी तथा सभी रानियों में श्रेष्ठ एव दृढधन्वा की पुत्री उत्पलावती हूँ ॥२१॥

किन्नुयावरकृतकर्मयेनेमायोनिमागता ।
पतिव्रताधर्मपरमाचेत्थक्कथमीदृशी ॥२२
अहपितृगृहेबालासखीभि महितावनम् ।
रन्तु गतादर्दर्शैकमृगमृग्याससमागतम् ॥२३
तत समीपवर्तिन्यामयामाताडितामृगी ।
मयाअस्मागतान्यश्रक्रुद्ध प्राहततोमृगः ॥२४
मूढेकिमेवमत्तासिधिक्तेदौःशील्यमीदृशम् ।
आधानकालोयेनायत्वयामेविफलीकृत ॥२५
वाचधूत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषत. ।
भीतातमब्रुवकोऽसीतयेनायोनिमुपागत ॥२६
तत सप्राहपुत्रोऽहमृषेर्निवृ तिचक्षुपः ।
सुतपानाममृग्यान्तुनाभिलाषीमृगोऽभवम् ॥२७
इमाचानुगत प्रेम्णावाच्छिन्नश्चानयाचने ।
त्वयावियोजितादुष्टे तस्माच्छापददामिते ॥२८

राजा ने कहा—तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिसके कारण तुम्हें इस योनि को प्राप्त होना पड़ा है ? मेरी वह भार्या तो पतिव्रता और धर्म-परायण थी फिर उसकी ऐसी दशा क्यों हुई ? ॥२२॥ मृगी ने कहा—मैं अपने पितृगृह में, बाल्यकाल में अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा के लिये वन में गई थी, वहाँ एक मृग से युक्त मृगी को मैंने देखा ॥२३॥ फिर उसके पास

जाकर मैंने उस पर प्रहार किया तो वह मृगी भय के कारण वहाँ से चली गई, तब क्रोधित होकर वह मृग मुझसे बोला ॥२४॥ हे मूर्ख ! तेरी इस दुःशीलता को धिक्कार है, तू ऐसी मत्त क्यों हो रही है ? तूने मेरे गर्भाधान काल को विफल कर दिया है ॥२५॥ उस मृग को मनुष्य के समान बोलते देखकर मुझे अत्यन्त भय हुआ और मैंने उससे पूछा—आपको इस मृगयोनि की प्राप्ति क्यों हुई है ? ॥२६॥ मृग ने कहा—मैं निर्वृत्तिचक्षु मुनि का पुत्र सुतपा हूँ, मैंने मृगी की इच्छा से मृग रूप धारण किया है ॥२७॥ इस मृगी की अभिलाषा से, इसकी प्रीतिवश ही मैं इसका अनुगामी हुआ हू, परन्तु तूने उससे मेरा वियोग करा दिया, इसलिये तुझे शाप दूँगा ॥२८॥

मयाचोक्त तवाज्ञानादपराध कृतोमुने ।
प्रसादकुरुशापमेनभवान्दातुमर्हति ॥२६
इत्युक्त प्राहमासोऽपिमुनिरित्थमहीपते ।
नप्रयच्छामिशापतेयद्यात्मानददासिते ॥३०
मयाचोक्त मृगीनाहमृगरूपधरावने ।
लप्स्यसेऽन्यामृगीत्तावन्मयिभावोनिवर्त्यताम् ॥३१
इत्युक्त कोपरक्ताक्ष सप्राहस्फुरिताधर ।
नाहमृगीत्वयेत्युक्त मृगीमूढेभविष्यसि ॥३२
ततोभृशप्रव्यथिताप्रणम्यमुनिमब्रवम् ।
स्वरूपस्थमतिक्रुद्ध प्रसीदेतिपुन पुन ॥३३
बालानभिज्ञावाक्यानातत प्रोक्तमिदमया ।
पितर्यसतिनारीभिर्व्रियतेहिपति स्वयम् ॥३४
सपितातेकथचाहवृणोमिमुनिसत्तम ।
सापराधाथवापादौप्रसीदेयानमाम्यहम् ॥३५

मैंने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! मुझसे यह अपराध अज्ञान के कारण ही हुआ है, आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे शापित न करें ॥२६॥ हे महाराज ! मेरी बात सुनकर वे मुझसे बोले—यदि मैं तुझसे आत्मदान कर सकूँ तो तुझे शापित नहीं करूँगा ॥३०॥ मैं मृगी नहीं हू वन में आपको दूसरी मृगी प्राप्त

हो जायगी, इसलिये मेरे प्रति अपनी इस इच्छा को शान्त कीजिये ॥३१॥ ऐसा सुनते ही उनके नेत्र क्रोध से लाल होगये और उन्होंने कम्पित होठों से कहा—तूने 'मैं मृगी नहीं हूं' यह कहा है, इसलिये तू मृगी होगी ॥३२॥ तब मैंने व्यथित चित्त से मृग रूप धारी उन मुनि को प्रणाम पूर्वक कहा—मैं बाला हूं, बात कहना भी नहीं जानती, इसीसे ऐसा कह बैठी, आप मेरे प्रति प्रसन्न हों, यदि पिता न हो तो कन्या अपने पति का वरण स्वयं करती है ॥३३-३४॥ परन्तु, मैं अपने पिता के होते हुए आपका वरण कैसे कर सकती हूं ? हे प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा करिये, मैं आपके चरणों में वन्दन करती हूं, आप प्रसन्न हों ॥३५॥

प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायामहात्मने ।
इत्यलालप्यमानाया मप्राहमुनिपुङ्गव ॥३६
नभवत्यन्यथाप्रोक्तं ममवाक्यकदाचन ।
मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्वैत्रजन्मनि ॥३७
मृगत्वेचमहाबाहुस्तवगर्भमुपैष्यति ।
लोलोनाममुनेःपुत्र सिद्धवीयस्यभाविनि ॥३८
जातिस्मराभवित्रीत्वतस्मिन्गर्भमुपागते ।
स्मृतिप्राप्यतथावाचमानुषीमीरयिष्यसि ॥३९
तस्मिञ्जातेमृगत्वात्वंविमुक्तापतिनार्चिता ।
लोकानवाप्स्यसिप्राप्यायैनदुष्कृतकर्मभि ॥४०
सोऽपिलोलोमहावीर्यं पितृशत्रून्निपात्यवै ।
जित्वावसुन्धराकृत्स्नाभविष्यतिततोमनु ॥४१
एवंशापमहल्लब्धात्वामृतानिर्य्यक्त्वमागता ।
त्वत्सम्पर्शाच्चगर्भोऽसौमभूतोजठरेमम ॥४२

मुझे बारम्बार प्रसन्न हो, प्रसन्न हो' कहने देखकर उन मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥३६॥ मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता तो मरने के बाद पर जन्म में इसी वन में मृगी बनोगी ॥३७॥ जब तुम मृगी होजाओगी तब किसी सिद्ध वीर्य मुनि का पुत्र लोल तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा ॥३८॥ जब वह लोल

तुम्हारे गर्भ मे स्थित होगा, तब तुम पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली और मनुष्यो जैसी बातो बोलने वाली होगी ॥३६॥ उस महाबाहु लोल के उत्पन्न होने पर तुम शाप मुक्त होकर पति के द्वारा सम्मानित होगी और जिस लोक को पापी मनुष्य प्राप्त नही कर पाते, उसी लोक को तुम प्राप्त होगी ॥४०॥ फिर वह अत्यन्त पराक्रमी लोल ही पिता के शत्रुओं का सहार करेगा तथा समस्त पृथिवी का विजेता मनु होगा ॥४१॥ हे राजन् ! इस प्रकार शापित होकर मै तिर्यक् योनि को प्राप्त हू, तुम्हारे स्पर्श से मेरे जठर में वह गर्भ उत्पन्न हुआ है ॥४२॥

अतोऽब्रवीमिनास्थानेतवयातमनोमयि ।
नचाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नकरोरयसौ ॥४३
एवमुक्तस्ततः सोऽपिराजाप्राप्यपरामुदम् ।
पुत्रोममारीञ्जित्वेतिपृथिव्याभवितामनु ॥४४
ततस्नसुषुवेपुत्रसामृगीलक्षणान्वितम् ।
तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्व्वाणिप्रययुर्मुदम् ॥४५
विशेषतश्चराजासोपुत्रेजाते महाबले ।
साविमुक्तामृगीशापात्प्रपलोकाननुत्तमान् ॥४६
ततस्तस्यर्षय सर्वेसमेत्यमुनिसत्तम ।
अवेक्ष्यभाविनीमृद्धिनामचक्रुर्महात्मन. ॥४७
तामसीभजमानायायोनिमातर्यजायत ।
तमसाचावृतेलोकेतामसोऽयभविष्यति ॥४८
ततःसतामसस्तेनपित्रासवर्द्धितोवने ।
जातबुद्धिरवाचेदपितरमुनिसत्तम ॥४६

इसीलिए मैंने कहा था कि आपकी मेरे प्रति अभिलाषा गम्य के प्रति है, किन्तु यह गर्भ मे स्थित लोल इस कार्य मे बाधक है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह पुत्र शत्रुओ पर विजय प्राप्त करके मनु होगा, यह बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुए ॥४४॥ फिर उस मृगी ने श्रेष्ठ लक्षण वाले पुत्र को उत्पत्ति हुई उस समय सभी जीव आनन्द मे मग्न हो गये ॥४५॥ इस महा-

पराक्रमी पुत्र के उत्पन्न होने से राजा को परम हर्ष हुआ और मृगी भी शाप से मुक्त होकर सर्वोत्कृष्ट लोक में गई ॥४६॥ हे मुनिवर ! फिर ऋषियों ने वहाँ आकर उसका भविष्य देखते हुए नामकरण किया ॥४७॥ वे बोले— विश्व के मन्वन्तर द्वारा तम काल पर तामसी योनि को प्राप्त हुई माता के गर्भ से इस बालक ने जन्म लिया, इसलिए इसका नाम 'तामस' हुआ ॥४८॥ हे मुने ! वह 'तामस' पिता के द्वारा उसी वन में वृद्धि को प्राप्त हुआ और समय पाकर बुद्धि के उदित होने पर वह पिता से बोला ॥४९॥

कस्त्वंतातकथंचाहंपुत्रोमाताचकामम ।
किमर्थमागतश्चात्रमेतन्सत्यंब्रवीहिमे ॥५०
ततःपितायथावृत्तंस्वराज्यच्यावनादिकम् ।
तस्याचष्टेमहाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः ॥५१
श्रुत्वातत्सकलंसोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ।
अवापदिव्यान्यस्त्राणिससंहाराण्यशेषतः ॥५२
कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वापितुरानीयचान्तिकम् ।
अनुज्ञातान्मुमोचाथसचस्वधर्ममास्थितः ॥५३
पितापितृस्यस्वाँल्लोकान्तपोयज्ञसमार्जितान् ।
विसृष्टदेहःसम्प्राप्तःसुखसमुत्तमम् ॥५४
जित्वासमस्तांपृथिवींतामसाख्यःसपार्थिवः ।
तामसाख्योमनुरभूत्तस्यमन्वन्तरंशृणु ॥५५

हे तात ! आप कौन हैं ? मैं आपका पुत्र कैसे हुआ ? मेरी माता कौन है ? आप यहाँ किस लिये आये हैं यह सब मेरे प्रति यथार्थ रूप से कहिए ।५०। तब उस महाबाहु राजा ने अपने पुत्र को अपने राज्य से च्युत होने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥५१॥ उस तामस ने यह बात सुनकर भगवान् भास्कर की उपासना की और निवारण मन्त्र के सहित विविध प्रकार के सब दिव्यास्त्र मन्त्र पूर्वक प्राप्त किए ॥५२॥ वे अस्त्र प्रयोग में निपुण होकर शत्रुजेता हुए और शत्रुओं को अपने पिता के पास लाकर उनकी आज्ञा से मुक्त कर दिया इस प्रकार वे अपने धर्म की रक्षा में तत्पर हुए ॥५३॥ फिर उनके पिता ने

तुम्हारे गर्भ मे स्थित होगा, तब तुम पूर्व जन्म का स्मरण करके मनुष्यो जैसी वाणी बोलने वाली होगी ॥३६॥ उस महाबाहु को होने पर तुम शाप मुक्त होकर पति के द्वारा सम्मानित होगी और को पापी मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाते, उसी लोक को तुम प्राप्त होग फिर वह अत्यन्त पराक्रमी लोल हो पिता के शत्रुओ का सहार क समस्त पृथिवी का विजेता मनु होगा ॥४१॥ हे राजन् ! इस प्रक होकर मै तिर्यक् योनि को प्राप्त हू, तुम्हारे स्पर्श से मेरे जठर मे उत्पन्न हुआ है ॥४२॥

अतोऽब्रवोमिनास्थानेतवयातमनोमयि ।
नवाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नकरोत्यसौ ॥४३
एवमुक्तस्ततः सोऽपिराजाप्राप्यपरामुदम् ।
पुत्रोममारीञ्जित्वेतिपृथिव्याभवितामनु. ॥४४
ततस्तसुषुवेपुत्रसामृगीलक्षणान्वितम् ।
तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्व्वाणिप्रययुर्मुदम् ॥४५
विशेपतश्चराजासोपुत्रेजाते महाबले ।
साविमुक्तामृगीशापात्प्रपलोकाननुत्तमान् ॥४६
ततस्तस्यर्पय सर्वेसमेत्यमुनिसत्तम ।
अवेक्ष्यभाविनीमृद्धिनामचक्रुर्महात्मन ॥४७
तामसीभजमानायायोनिमातर्यजायत ।
तमसाचावृतेलोकेतामसोऽयभविष्यति ॥४८
ततःसतामसस्तेनपित्रासवर्द्धितोवने ।
जातवुद्धिस्त्वाचेदपितरमुनिसत्तम ॥४६

इसीलिए मैंने कहा था कि आपकी मेरे प्रति अभिलाषा गम्य के प्रति है, किन्तु यह गर्भ मे स्थित लोल इस कार्य मे बाधक है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह पुत्र शत्रुओ पर विजय प्राप्त करके मनु होगा, यह बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुए ॥४४॥ फिर उस मृगी के श्रेष्ठ लक्षण वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई उस समय सभी जीव आनन्द मे मग्न हो गये ॥४५॥ इस महा-

६७–रैवत मन्वन्तर

पंचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुत ।
तस्योत्पत्तिविस्तरश्च शृणुष्वकथयामिते
रासीन्महाभागऋतवागितिविश्रुत ।
तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मन ॥२
सतस्यविधिवच्चक्रे जातकर्मादिका क्रिया
तथोपनयनादीश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३
यत प्रभृतिजातोऽसौततःप्रभृतिसोप्यृषि ।
दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गव ॥४
मातातस्यपरामार्तिकुष्ठरोगादिपीडिता ॥३
जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदु खित ॥५
किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मति ।
जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसमुखीम् ॥६
ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
अपुत्रतामनुष्याणाश्रेयसेनकुपुत्रता ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पाँचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हू, उसे श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रेवती नक्षत्र के शेष में उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥२॥ उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि संस्कार किया, परन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं था ॥३॥ हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय से ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दु खित चित्त से विचार किया ॥५॥ 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इससे ऋतवाक्

भी अपने पुत्र का मुख देखकर सुखपूर्वक देह-त्याग किया और यज्ञादि द्वारा संचित पुण्य के प्रभाव से उच्च लोकों को प्राप्त हुए ॥५४॥ सम्पूर्ण पृथिवी के विजेता होकर तामस अपने नामानुसार मनु हुए, अब उनके मन्वन्तर के विषय में श्रवण करो ॥५५॥

> येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षयः ।
> येपुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालकाः ॥५६
> सत्यास्तथान्येसुधियःसुरूपाहरयस्तथा ।
> एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ॥५७
> महाबलोमहावीर्य्यं शतयज्ञोपलक्षित ।
> शिखिरिन्द्रस्तथातेषांदेवानामभवद्विभु ॥५८
> ज्योतिर्धर्मापृथु काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ।
> पीवरश्चतथाब्रह्मन्सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥५९
> नर क्षान्ति शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ।
> पुत्रास्तुतामसस्यासन्राजान सुमहाबला ॥६०
> इत्येतत्तामसंविप्रमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
> य पठेच्छृणुयाद्वापितमसानबाध्यते ॥६१

उस मन्वन्तर के देवता, इन्द्र, ऋषि और मनु के जिन पुत्रों ने पृथिवी की रक्षा की उनका वृत्तान्त सुनो ॥५६॥ हे मुने ! इस मन्वन्तर में सत्य, सुधी, सुरूप और हरि यह चार प्रकार के देवता गण हुए और प्रत्येक गण में सत्ताईस देवता हुए ॥५७॥ महाबली और पराक्रमी 'शिखी' नामक इन्द्र हुए, जो सौ यज्ञ करके उन देवताओं के स्वामी बने ॥५८॥ उस मन्वन्तर में जो सप्तर्षि हुए उनके नाम ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वलक और पीवर हुए ॥५९॥ उन मनु के नर, क्षान्ति, शान्त, दान, जानु, जंघा इत्यादि महाबली एवं पराक्रमी पुत्र हुए ॥६०॥ इस प्रकार तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त यथार्थ रूप से आपके प्रति कहा है, इसको पढ़ने या सुनने वालों को अज्ञानान्धकार बाधा नहीं देता ॥६१॥

६७—रैवत मन्वन्तर

पचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुत ।
तस्योत्पत्तिंविस्तरत्त शृणुष्वकथयामिते ॥१
ऋषीन्महाभागऋतवागितिविश्रुत ।
तस्यापुत्रस्यपुत्राऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मन ॥२
सतस्यविधिवच्चक्रे जातकर्मादिका क्रिया ।
तथोपनयनादीश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३
यत प्रभृतिजातोऽसौतत प्रभृतिसोप्यृषि ।
दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गव ॥४
मातातस्यपरामार्तिकुष्ठरोगादिपीडिता ॥२
जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदु खित ॥५
किमेतदितिमोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मति ।
जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसमुन्मीम् ॥६
ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
अपुत्रतामनुष्याणाश्रेयसेनकुपुत्रता ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पाँचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हूं, उस श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रेवती नक्षत्र के अंत में उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥२॥ उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि सस्कार किया, परन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं था ॥३॥ हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय से ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दु खित चित्त से विचार किया ॥५॥ 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इसमे ऋतवाक्

ऋषि को अत्यन्त दुःख हुआ और वे कुपुत्र से तो पुत्रहीन रहना ही ठीक है, ऐसा सोचने लगे ॥७॥

कुपुत्राहृदयायासःसर्वदाकुरुतेपितुः ।
मातुश्चस्वर्गसंस्थांश्चस्वपितॄन्पातयत्यधः ॥८
सुहृदांनोपकारायपितॄणांचनतृप्तये ।
पित्रोर्दुःखायधिग्जन्मतस्यदुष्कृतकर्मणः ॥६
धन्यास्तेतनयायेपांसर्वलोकाभिसम्मताः ।
परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्मण्यनुव्रताः ॥१०
अनिर्वृ ततयामन्दपरलोकपराङमुखम् ।
नरकायनसद्गत्यैकुपुत्रालम्बिजन्मम ॥११
करोतिसुहृदांदैन्यमहितानांतथामुदम् ।
अकालेचजरांपित्रोः कुसुतः कुरुतेध्रुवम् ॥१२
एवंसत्यस्तदुष्टस्यपुत्रस्यचरितैर्मुनिः ।
दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तगर्गमपृच्छत ॥१३
सुव्रतेनपुरावेदागृहीताविधिवन्मया ।
समाप्यवेदान्विधिवत्कृतादारपरिग्रहः ॥१४
सदारेणक्रियाःकार्याः श्रौताःस्मार्त्तावषट्क्रियाः ।
नमेन्यूना कृता काश्चिद्यावदद्यमहामुने ॥१५

क्योंकि कुपुत्र सदा ही माता पिता के हृदय को पीड़ित करता रहता है और स्वर्गवासी पितरों को भी वहाँ से पतित करता है ॥८॥ उसके द्वारा सुहृदों को भी कोई उपकार नहीं हो पाता और न पितरों की ही तृप्ति होती है, माता-पिता के लिये दुःख के कारण रूप ऐसे पुत्र को धिक्कार है ॥९॥ *जिसकी संतति सब के द्वारा सत्कारित, परोपकार रत, सत्यकर्म वाली* और शान्त प्रकृति की है, वही कृतकृत्य है ॥१०॥ हमारा जन्म परलोक से विमुख, कुपुत्र का आश्रयी और नरक के निमित्त ही हुआ है, श्रेष्ठ गति के लिये नहीं हुआ ॥११॥ कुपुत्र सदा सुहृदों को दीन, अपकार करने वालों को प्रसन्न और माता पिता को वृद्धावस्था प्राप्त कराने वाला है ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

इस प्रकार दुश्चरित्र पुत्र के विपरीत आचरण से मन में दग्ध होते हुए उन ऋषि ने गर्ग ऋषि से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर उनसे पूछा ॥१३॥ ऋतवाक् बोले—मैंने श्रेष्ठ व्रतों का अनुष्ठान करते हुए विधि सहित वेदों का अध्ययन किया है और इसके पश्चात् विधि पूर्वक स्त्री का पाणिग्रहण किया है ॥१४॥ श्रौत, स्मार्त और वषट्कार रूप जो कर्म पत्नी के सहित करने का निर्देश है, वह सब मैंने किये हैं और उन व्रतों के अनुष्ठान में त्रुटि नहीं होने दी है ॥१५॥

गर्भाधानविधानेननकामननुरुध्यता ।
पुत्रार्थंजनितश्चायपुन्नाम्नोबिभ्यतामुने ॥१६
सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ।
अस्मद्दुःखावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकद ॥१७
रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठजातोऽयतनयस्तव ।
तेनदुःखायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥१८॥
नतेऽपचारोनैवास्यमातुर्नापिकुलस्यते ।
तस्यदौःशील्यहेतुत्वरेवत्यन्तमुपागतम् ॥१६
यस्मात्त्वमेतत्पुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ।
दौःशील्यमेतत्मातस्मात्पततामाशुरेवती ॥२०
तेनैवव्याहृतेशापेरेवत्यृक्ष पपातह ।
पश्यत.सर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतस. ॥२१

पुन्नाम नरक से डर कर और उससे मुक्त होने के निमित्त मैंने विधिवत् गर्भाधान द्वारा इस पुत्र को जन्म दिया है, कामासक्त होकर इस पुत्र की उत्पत्ति नहीं की है ॥१६॥ हे मुने ! फिर भी यह बालक हमारे लिए दु खदायी, बन्धुओं को शोक प्रदान करने वाला तथा बुरे स्वभाव का उत्पन्न हुआ है, ऐसा आत्मदोष से या मेरे दोष से हुआ है ? ॥१७॥ गर्गजी ने कहा—हे मुनिवर ! तुम्हारा पुत्र रेवती के अन्त में उत्पन्न हुआ है, उस दुष्ट काल में जन्म लेने के कारण ही, यह तुम्हारे लिये दु खदायी हुआ है ॥१८॥ यह तुम्हारे, तुम्हारी पत्नी के या तुम्हारे वंश के धर्म के व्यतिक्रम से इस प्रकार का नहीं हुआ, इसके दुष्ट स्वभाव का कारण रेवती का अंतिम काल ही है ॥१९॥ ऋतवाक्

बोले--जिस रेवती के अन्त में उत्पन्न होने के कारण मेरा एकमात्र पुत्र ऐसे बुरे स्वभाव का हुआ है, उस रेवती का शीघ्र ही पतन हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा---ऋतवाक् ऋषि ने जब ऐसा शाप दिया, तब सबके सामने उस रेवती नक्षत्र को गिरता हुआ देखकर सभी आश्चर्यचकित होगये ॥२१॥

रेवत्यक्ष चपतितकुमुदाद्रौसमन्तत ।
भासयामासमहसावनकन्दरनिर्झरान् ॥२२॥
कुमुनाद्रिश्चतत्पातात्स्यातोरैवतकोऽभवत् ।
अनीवरम्य सर्वस्यापृथिव्यापृथिवीधरः ॥२३
तस्यर्क्षस्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीसर ।
ततोजज्ञे तदाकन्यारूपेणातीवशोभना ॥२४
रेवतीकान्तिसम्भूतातादृष्ट्वाप्रमुचोमुनि ।
तस्यानामचकारेत्थरेवतीनामभागुरे ॥२५
पोपयामामचैवतास्वाश्रमाभ्यासम्भवाम् ।
प्रमुच ममहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले ॥२६
तातुयौवनिनीदृष्ट्वाकन्यकारूपशालिनीम् ।
समुनिश्चिन्तयामामकोऽस्याभर्ताभवेदिति ॥२७
एवंचिन्तयतस्तस्ययमौकालोमहान्मुने ।
नचाससादसदृशवरतस्यामहामुनिः ॥२८

कुमुद पर्वत पर सहसा गिरकर उस रेवती नक्षत्र ने उसकी सभी दिशाएँ वन, कन्दरा आदि को प्रकाशित कर दिया ॥२२॥ पृथिवी भर में अत्यन्त रमणीय वह कुमुद पर्वत भी रेवती के गिरने से रैवतक के नाम से हुआ ॥२३॥ उसकी कांति से कमल युक्त सरोवर हुआ और उस सरोवर से एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥ उस कन्या को रेवती से उत्पन्न हुई देखकर प्रमुचमुनि ने उसका नाम रेवती रखा ॥२५॥ वह महाभाग ऋषि रैवतक पर्वत में अपने आश्रम के निकट उत्पन्न हुई कन्या का पालन करने लगे ॥२६॥ उस रूपवती कन्या को युवावस्था में सम्पन्न देखकर मुनि सोचने लगे कि इसके

पति कौन होगा ॥२७॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु उसके योग्य कोई भी वर दिखाई न दिया ॥२८॥

ततस्तस्यावरंप्रष्टुमग्निमप्रमुचोमुनि. ।
विवेशवह्निशालावंपृष्टस्तप्राहहव्यभुक् ॥२९
महाबलोमहावीर्यं प्रियवाग्धर्मवत्सल ।
दुर्गमोनामभविताभर्त्ताह्यस्यामहीपतिः ॥३०
अनन्तरञ्चमृगयाप्रसङ्गेनागतोमुने ।
तस्याश्रमपद धीमान्दुर्गम मनराधिप ॥३१
प्रियव्रतान्वयभवोमहाबलपराक्रमः ।
पुत्रोविक्रमशीलस्यकालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२
सप्रविश्याश्रमपद तांतन्वींजगतीपति ।
अपश्यमानस्तमृषिप्रियेत्यामन्त्र्यपृष्टवान् ॥३३
क्वगतोभगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गव ।
तत्प्रणेतुमिहेच्छामितत्त्वप्रब्रूहिशोभने ॥३४
अग्निशालागतोविप्रस्तच्छ्रुत्वातस्यभाषितम् ।
प्रियेत्यामन्त्रणर्चवनिश्चक्रामत्वरान्वितः ॥३५
सददर्शमहात्मानराजानदुर्गममुनि ।
नरेन्द्रचिह्नमहितप्रश्रयावनतपुरः ॥३६॥

तब प्रमुच मुनि ने पूछने के लिये अग्निशाला मे गये, इस पर अग्नि ने उनसे कहा ॥२९॥ इस कन्या के पति महाबली, पराक्रमी, प्रियवक्ता, धर्मवत्सल दुर्गम नामक महीपाल होंगे ॥३०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने! इसके पश्चात् स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वंश मे उत्पन्न हुए विक्रमशील नरेश की कालिन्दी नाम की रानी से उत्पन्न हुए अत्यन्त पराक्रमी वह राजेन्द्र दुर्गम मृगया के पीछे मुनि के उस आश्रम मे पहुंचे ॥३१-३२॥ उन्होंने आश्रम में ऋषि को न देखकर उस कृशांगी कन्या से ही उनके विषय मे 'प्रिये' कहकर पूछा ॥३३॥ हे सुन्दरी! वह मुनिवर कहाँ गये हैं मुझे यह बताओ, क्योंकि उन्हें प्रणाम करने की इच्छा से उपस्थित हुआ हूं ॥३४॥ श्री मार्कण्डेयजी ने

कहा—वह विप्रश्रेष्ठ अग्निशाला में गये हुए थे, वह राजा का वचन और 'प्रिय' सम्बोधन सुनकर अग्निशाला से बाहर निकले ॥३५॥ और उन्होंने राज-लक्षण से विभूषित और विनयनत महाराज दुर्गम को देखा ॥३६॥

तस्मिन्दृष्टे तत शिष्यमुवाचमतुगौतमम् ।
गौनमानीयताशीघ्रमर्घोऽस्यजगतीपते ॥३७
एकस्तावदयभूपश्चिरक्कालादुपागत ।
जामाताचविशेषेणयोग्योऽघस्यमतोमम ॥३८
तत सञ्चिन्तयामासराजाजामातृकारणम् ।
विवेदचनतन्मौनोजगृहेऽर्घंचतन्नृप. ॥३९
तमासनगतविप्रोगृहीतार्घमहामुनि ।
स्वागतप्राहराजेन्द्रमपितेकुशलगृहे ॥४०
कोशेवलेऽथमित्रेपुभृत्यामात्येनरेश्वर ।
तथात्मनिमहाबाहोयत्रसर्वप्रनिष्ठितम् ॥४१
पत्नीचतेकुशलिनीयतएवानुतिष्ठति ।
पृच्छाम्यस्यास्ततोनाहकुशलिन्योऽपरास्तव ॥४२

उन्हे देखकर ऋषि ने अपने गौतम नामक शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥३७॥ उन्होने कहा कि एक तो बहुत समय के पश्चात् यहाँ इनका आगमन हुआ है, दूसरे यह जामाता भी हैं, इसलिये यह अर्घ्यदान के उचित पात्र हैं ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि द्वारा जामाता कहे जाने पर राजा सोचने लगे कि क्यो यह शब्द कहा, परन्तु वह कुछ समझ न पाये और मौन रह कर अर्घ्य ग्रहण किया ॥३९॥ अर्घ्य ग्रहण के पश्चात् वे श्रेष्ठ आसन पर बैठे तब उनसे महामुनि ने कहा—हे राजन् ! आप यहाँ सुख पूर्वक तो आ सके ? आपका कोशागार तो ठीक है ? आपकी सेना, मित्र, सेवक और मन्त्रिगण तो कुशल पूर्वक हैं ? आप सबके आश्रय स्थान भी सकुशल तो हैं ? ॥४०-४१॥ आपकी पत्नी यहाँ कुशल पूर्वक रह रही है, इसीलिये मैंने उस विषयक कुशल प्रश्न नही किया, इसके अतिरिक्त आपकेपुर की अन्य ललनाएँ तो कुशल से है ? ॥४२॥

त्वत्प्रसादादकुशलंनक्वचिन्ममसुव्रत ।
जातकौतूहलश्चास्मिममभार्य्यात्रकामुने ॥४३
रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ।
तवभार्य्याकिंगरोद्यातात्वराजन्नवेत्सिताम् ॥४४
सुभद्राशान्ततनयाकावेरीतनयाविभाम् ।
सुराष्ट्रजासुजातांचकदम्बाचवरूथजाम् ॥४५
विपाठानन्दिनीचैववेद्मिभार्यागृहेद्विज ।
तिष्ठ न्तमेनभगवन्रेवतीवेद्मिकान्वियम् ॥४६
प्रियेतिसाम्प्रतंयस्त्वयोक्तावरवर्णिनी ।
किंविस्मृतंतेभूपालश्लाघ्येयंगृहिणीतव ॥४७
सत्यमुक्तं मयाकिन्तुभावोदुष्टोनमेमुने ।
नात्रकोपंभवान्कर्तुं मर्हत्यस्मानुयाचित ॥४८
यस्त्वप्रयोगिभूपालनभावस्तत्रदूषितः ।
व्याजहारभवाननतद्वह्निनानृपचोदितः ॥४९

राजा ने कहा—हे सुव्रत ! महामुने ! आपकी कृपा से मेरी सब प्रकार से कुशल है, परन्तु, यह मेरी पत्नी कौन-सी है, इसे जानने के लिये मुझे कुतूहल हुआ है ॥४३॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! रेवती नाम की तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दरी आपकी पत्नी है, क्या आप उसे नहीं जानते ? ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ॥४५॥ विपाठा और नन्दिनी यह मेरी पत्नियाँ हैं, इन्हें मैं भले प्रकार जानता हूँ, क्योंकि वह मेरे ही घर में रहती हैं, परन्तु मैं अपनी रेवती नाम की पत्नी को नहीं जानता कि वह कौन-सी है ? ॥४६॥ ऋषि ने कहा—घर को वरण करने के लिये तत्पर जिस कन्या को आपने 'प्रिये' कहा, वही आपकी श्लाघनीय पत्नी है, हे राजन् ! क्या तुम उसे भूल गये हो ? ॥४७॥ राजा ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! आपका कथन सत्य है, परन्तु मेरे द्वारा किये गए 'प्रिये' सम्बोधन में मेरा कोई दुष्ट भाव नहीं था, इसलिये आप मुझ पर क्रोध न करें ॥४८॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! आपका दुष्ट भाव नहीं था,

यह सत्य ही है, परन्तु, आपके द्वारा यह सम्बोधन अग्नि की ही प्रेरणा से हुआ है ।।४९।।

मयापृष्टोहुतवह कोऽस्याभर्त्तेतिपार्थिव ।
भवितातेनचाप्युक्तोभवानेवाद्यवैवर ।। ५०
तद्गृह्यतामयादत्तातुभ्यकन्यानराधिप ।
प्रियेत्यामन्त्रिताचेयविचारकुरुपेकथम् ।।५१
ततोऽसावभवन्मौनीतेनोक्त पृथिवीपतिः ।
ऋषिस्तथोद्यत कर्तुं तस्यावैवाहिकविधिम् ।।५२
तमुद्यतसापितरविवाहायमहामुने ।
उवाचकन्यायकिंचित्प्रश्रयावनतानना ।।५३
यदिमेप्रीतिमास्तातप्रसादकर्तुं मर्हसि ।
रैवत्यृक्षेविवाहमेतत्करोतुप्रसादित- ।।५४
रैवत्यृक्षनवैभद्र चन्द्रयोगिव्यवस्थितम् ।
अन्यानिसन्तिऋक्षाणिसुभ्र वैवाहिकानिते ।।५५
साततेनविनाकालोविफल प्रतिभातिमे ।
विवाहोविफलेकालेमद्विधाया कथभवेत् ।।५६

हे भूपते ! मैंने अग्नि से इसके पति के विषय मे पूछा था तब अग्नि ने आपके ही इसके पति होने की बात कही थी ।।५०।। इसलिये, हे राजन् आपने जिसके प्रति 'प्रिय' कहा है, वह कन्या मैं आपको प्रदान करता हूँ आप इससे विचार क्यों करते हैं, इसे ग्रहण करिये ।।५१।। मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के वचन सुनकर राजा मौन हो गये और ऋषि भी विवाह संस्कार के कार्य सम्पादन मे तत्पर हुए ।।५२।। जब कन्या ने मुनि को विवाह करने मे तत्पर देखा, तब उसने विनय पूर्वक निवेदन किया ।।५३।। हे तात आपकी मुझ में प्रीति है और यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा विवाह संस्कार रेवती नक्षत्र मे सम्पन्न करें ।।५४।। ऋषि ने कहा—रेवती नक्षत्र चन्द्र योग मे अवस्थित नहीं है, परन्तु, विवाह-कार्य मे श्रेष्ठ अन्य सभी नक्षत्र विद्यमान हैं ।।५५।। कन्या ने कहा—हे तात ! रेवती नक्षत्र से वर्जित समय मे

विषय मे विकल जान पड़ता है, मेरे जैसी कन्या का विवाह विकल समय मे कैसे होगा ? ॥५६॥

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रैवतोऽभवत् ।
चकार कोपं क्रुद्धे न तेन ऋक्षं विनिपातितम् ॥५७
यथा चास्मिन्प्रनिजाता भार्येति मदिरेक्षणा ।
न चेच्छामि विवाहं त्वमस्यास्तेन समागतम् ॥५८
ऋतवाक्समुनिस्तात किमेवं न तवास्तपः ।
न त्वया ममता तेन ब्रह्मबन्धो मुनात्मिकम् ॥५९
ब्रह्मबन्धो मुनानत्ववान्नैनं वनपस्विन ।
मुनात्यममयो देवान्वक्तुं मन्यान्मसुत्महे ॥६०
तपस्वीय दिमेतानस्मात्वि मृक्षमिद दिवि ।
समागोप्य विवाहो मेन हृष्टोऽक्रियनेन तु ॥६१
एवं भवतु भद्रं ते भद्रे प्रोनिमनोभव ।
प्रागेपयामीन्दुमार्गे त्वत्यृक्षकृतेन च ॥६२
ततस्तप प्रभावेणऽरेवत्यक्ष महामनिः ।

नक्षत्र को मैं चन्द्रमार्ग में स्थित किये देता हूँ ॥६२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! तदन्तर उन महर्षि ने अपने तप के बल से रेवती नक्षत्र को पहिले के ही समान चन्द्रमा में स्थित कर दिया ॥६३॥

यथापूर्वंतथाचक्रेसोमयोगिद्विजोत्तम ॥६३
विवाहश्चैवदुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् ।
निष्पाद्यप्रीतिमान्भूयोजामातरमथाब्रवीत् ॥६४
औद्वाहिकतेभूपालकथ्यताकिंददाम्यहम् ।
दुर्लभ्यमपिदास्यामिममाप्रतिहततप ॥६५
मनो स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्न मन्ततोमुने ।
मन्वन्तराधिपतुत्र त्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥६६
भविष्यत्येषतेकामोमनुस्त्वत्तनयोमहीम् ।
सकलाभोक्ष्यतेभूपधर्मविच्चभविष्यति ॥६७
तामादायततोभूप स्वमेवनगर ययौ ।
तस्मादजायतसुतारेवत्यारैवतोमनु ॥६८
समेत सकलैर्धर्मैरनिवैरपराजित ।
विज्ञाताखिलशास्त्रार्थोवेदविद्यार्थशास्त्रवित् ॥६९
तस्यमन्वन्तरेदेवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् ।
कथ्यमानान्मयाब्रह्मन्निबोधसुसमाहित ॥७०

और वैवाहिक मन्त्रो से अपनी पुत्री का विवाह संस्कार सम्पन्न करके अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने जामाता के प्रति कहा ॥६४॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! विवाह में दान स्वरूप तुम्हे क्या प्रदान करूँ, यह मुझे बताओ, तुम यदि कोई दुर्लभ वस्तु भी मांगोगे तो मै अपनी तपस्या के प्रभाव से उसे दूँगा ॥६५॥ राजा ने कहा—हे मुने ! मै स्वायम्भुवमनु के वश मे उत्पन्न हुआ हूँ, मैं आपकी कृपा से मन्वन्तराधिपति पुत्र का प्राप्त करूँ, यही चाहता हूँ ॥६६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी, तुम्हारा पुत्र धर्मज्ञ तथा मनु होकर सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करने वाला होगा ॥६७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर वह राजा अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने नगर को गये

और समय पाकर उस रेवती के गर्भ से रैवत मनु उत्पन्न हुए ॥६८॥ वह धर्मज्ञाता, अजेय, शास्त्रों में पारगामी तथा वेद विद्या और अर्थ शास्त्र में भी पारंगत हुए ॥६९॥ हे ब्रह्मन्! अब उनके मन्वन्तर के देवता, ऋषि, इन्द्र और राजाओं का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥७०॥

सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूतपथा द्विज ।
वैकुण्ठश्चामिताभाश्च चतुर्दश चतुर्दश ॥७१
तेषां देवगणानां तु चतुर्णामपि चेश्वरः ।
नाम्ना विभुरभूदिन्द्रः शतयज्ञोपलक्षणः ॥७२
हिरण्यलोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ।
वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ॥७३
वसिष्ठश्च महाभागो वेदवेदान्तपारगः ।
एते सप्तर्षयश्चासन् रैवतस्यान्तरे मनोः ॥७४
बलबन्धुर्महावीर्यः सुयष्टव्यस्तथापरः ।
सत्यकाद्यास्तथैवासन् रैवतस्य मनोः सुताः ॥७५
रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव ।
स्वायम्भुवाश्रयाः सर्वे ऋते स्वारोचिषं मनुम् ॥७६
(य एतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वा मानवो नरः ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकं प्राप्नोत्यभीप्सितम् ॥७७

६८—चाक्षुष मन्वन्तर

इत्येतत्कथितंतुभ्यंपञ्चममन्वन्तरमया ।
चाक्षुषस्यमनोःषष्ठं श्रूयतामिदमन्तरम् ॥१
अन्यजन्मनिजातोऽसौचक्षुषःपरमेष्ठिनः ।
चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मन्यस्मिन्नपिद्विज ॥२
(अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्राभार्यामहात्मनः ।
जज्ञे सुतंसुविद्वासंशुचिजातिस्मरं विभुम् ॥३)
जातंमातानिजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्यतंपुनः ।
परिष्वजतिहार्देनपुनरुल्लापयत्यथ ॥४
जातिस्मरः सजातोवैमातुरुत्सङ्गमास्थितः ।
जहासततदामातासक्रुद्धावाक्यमब्रवीत् ॥५
भीतास्मिकिमिदं वत्सहासोयद्वदनेतव ।
अकालबोधः सञ्जातः कच्चित्पश्यसिशोभनम् ॥६
(तन्मातुर्वचनंश्रुत्वाप्रहस्येदमथाब्रवीत्) ।
मामत्तुमिच्छतिपुरोमार्जारीकिंनपश्यसि ।
अन्तर्द्धानगताचेयंद्वितीयाजातहारिणी ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारे प्रति इन पाँच मन्वन्तरों का वर्णन किया, अब छटवें चाक्षुप मनु के मन्वन्तर के विषय में कहता हूँ, श्रवण करो ॥१॥ अन्य जन्म में परमेष्ठी ब्रह्माजी के चक्षु से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम इस जन्म में भी चाक्षुप हुआ था ॥२॥ महात्मा अनमित्र की भद्रा नामक पत्नी के गर्भ से विद्वान्, पवित्र, जातिस्मर और विभु गुण से सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई) ॥३॥ माता ने आनन्द में भर कर उस उत्पन्न हुए पुत्र का लाड पूवक आलिंगन किया और फिर वह उसका आदर करने लगी ॥४॥ इस पर माता की गोदी म स्थित हुए वह जातिस्मर पुत्र हँस पडा तो माता ने उससे क्रोध पूर्वक कहा ॥५॥ हे वत्स ! तुम्हारे मुख की इस हँसी को देखकर मैं डर गई ? तुम्हें इस शिशुकाल में ज्ञान को प्राप्त होकर

क्या कुछ तुम दिखाई देता है ? ॥६॥ (माता की बात सुन कर पुत्र हँस कर बोला) पुत्र ने कहा—यह जो मार्जारी मुझे खाने की इच्छा से सामने खड़ी है, इसे क्या तुम नहीं देख सकती ? गुप्त रूप से यह जात हारिणी यहाँ स्थित है, इसे क्या तुम नहीं जान सकती ? ॥७॥

पुत्रप्रीत्याचसवतीमिहाद्यामामवेक्षती ॥
उन्नाम्योन्नाम्यवहुश परिष्वजनिमायत ॥८
उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्त्राविलेक्षणा ।
ततोममागतोहास.शृणुचाप्यत्रकारणम् ॥६
स्वार्थप्रसक्तामार्जारीप्रसक्त मामवेक्षते ।
तयान्तर्द्धानगाचैवद्वितीयाजातहारिणी ॥१०
स्वार्थापस्मिन्परहृदयेयथैवंतेनमसोपरि ।
प्रवृत्तेस्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभातिमे ॥११
किन्तुमद्रूपभोगायमार्जारीजातहारिणी ।
त्वन्तुमत्तोपभोग्यमत्र फलसमीप्ससि ॥१२
नमाजानासिकोप्येषनचैवोपकृतमया ।
सङ्गतनातिरात्रोनपचसप्तदिनात्मकम् ॥१३
तथापिस्निह्यसेमास्मापरिष्वजसिरात्यति ।
तातेतिवत्समद्रेतितिनिर्व्यंतोक्त्रवीपिताम् ॥१४

पाँच या सात दिन माता-पुत्र रूप में ही मिलन हुआ है ॥१३॥ फिर भी तुम अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेरे प्रति स्नेह प्रकट करती हो, आलिंगन करती हो और कपट-रहित हृदय से तात, वत्स, भद्र आदि कह कर पुचकारती हो ॥१४॥

नत्वाहमुपकारार्थीवत्सप्रीत्यापरिष्वजे ।
नचेदेतद्भवत्प्रीत्यैपरित्यक्तास्म्यहत्वया ॥१५
स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ।
इत्युक्त्वामातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तासूतिकागृहात् ॥१६॥
जडाङ्गबाह्यकरणशुद्धान्तःकरणात्मकम् ।
जहारतपरित्यक्त सातदाजातहारिणी ॥१७
साहित्वाततदाबालविक्रान्तस्यमहीभृतः ।
प्रसूतपत्नीशयनेन्यस्यतस्याददेसुतम् ॥१८
तमप्यन्यगृहेनीत्वागृहीत्वातस्यचात्मजम् ।
तृतीयभक्षयामाससाक्रमाज्जातहारिणी ॥१९
हृत्वाहृत्वातृतीयंतुभक्षयत्यतिनिर्घृणा ।
करोत्यनुदिनसातुद्विजवर्तंतथान्ययो ॥२०
विक्रान्तोऽपिततस्तस्यसुतस्यैवमहीपतिः ।
कारयामाससंस्काराराजन्यस्यभवन्तिये ॥२१

माता ने कहा—हे वत्स ! किसी उपकार की आशा से मैं तुम्हारा आलिङ्गन नहीं करती यदि तुम मेरे आलिङ्गन करने आदि से प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होते तो मुझे छोड़ दो ॥१५॥ तुमसे जिस स्वार्थ सिद्धि की आशा है, मैंने उसे छोड़ा, ऐसा कहकर प्रसूति गृह से माता उस जडवत् पुत्र का परित्याग कर बाहर निकली, तब माता द्वारा परित्यक्त उस पुत्र का जातहारिणी ने हरण कर लिया ॥१६-१७॥ इसका हरण करके उसने विक्रान्त नामक राजा की प्रसूता पत्नी की शय्या में रख कर उसके नवोत्पन्न शिशु का हरण किया ॥१८॥ और उसे भी किसी दूसरे के घर में रख कर उसके पुत्र का हरण कर अन्त में उस तृतीय शिशु का भक्षण कर लिया ॥१९॥ वह अत्यन्त निर्दय जातहारिणी नव प्रसूत शिशुओं का नित्य प्रति इसी प्रकार हरण करती और पहिले दो का

जातोऽहमनमित्रस्यक्षत्रियस्यगृहेद्विज ।
तत्पत्न्यागिरिभद्रायामाददेजातहारिणी ॥२८
तयात्रमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतंवसा ।
बोधस्यद्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुन ॥२९
भक्षयामासचसुतंतस्यबोधद्विजन्मनः ।
ससत्रद्विजसंस्कारै संस्कृतोहैमिनीसुत ॥३०
वयमत्रमहाभागसंस्कृतागुरुणात्वया ।
मयातववच कार्य्यमुपैमिकंतमागुरो ॥३१
अनोवगहनंवत्ससंकटमहदागतम् ।
नवेद्मिकिंचिन्मोहेनभ्रमन्तीवहिबुद्धय ॥३२
माहस्यावसर कोऽत्रजगत्येवंव्यवस्थिते ।
क कस्यपुनोविप्रर्षेकोवाकस्यनबान्धव ॥३३
आरभ्यजन्मनोनृणांसम्बन्धित्वमुपैतियः ।
अन्यमवधिनोविप्रमृत्युनासन्निवर्तिता ॥३४
अत्रापिजातस्यसुत सम्बधोयोऽस्यवान्धवे ।
सोप्यस्तमन्तेदेहन्यप्रयात्येषोऽखिलक्रम ॥३५

आनन्द बोला—राजा अनमित्र की पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से मैं उत्पन्न हुआ और जातहारिणी मेरा हरण करके यहाँ रख गई ॥२८॥ और हैमिनी के पुत्र का हरण करके उसे ब्राह्मण वर बोध के यहाँ ले जाकर ॥२९॥ उस बोध के पुत्र को खा गई, हैमिनी के उस पुत्र का विशाल ग्राम में द्विज संस्कार किया गया है ॥३०॥ और मेरा संस्कार यहाँ आपके द्वारा हुआ है, हे महाभाग ! आप मेरे गुरु हैं, मुझे आपकी आज्ञा पूर्ण रूपेण स्वीकार है, अत आज्ञा दीजिये कि मैं किस माता को प्रणाम करूँ ॥३१॥ गुरुजी ने कहा—हे वत्स ! यह तो अत्यन्त घोर सङ्कट आ गया है, मैं कुछ भी नहीं समझ पाता जैसे मेरी बुद्धि मोह से भ्रमित होगई है ॥३२॥ आनन्द बोला—हे ब्रह्मर्षे ! इस प्रकार से व्यवस्थित इस संसार में मोह का विराम क्या है ? इसलिये कौन किसका पुत्र है ? जन्म लेने के पश्चात् जीव विभिन्न जीवों से सम्बन्ध युक्त होता है, तब

तपस्यन्तततस्तचप्राहदेव प्रजापति ।
किमर्थतप्यसेवत्सतपस्तीव्र वदस्वतत् ॥४२
आत्मन शुद्धि कामोऽहकरोमिभगवस्तप ।
बन्धायममकर्माणियानितत्क्षपणोन्मुखः ॥४३
क्षीणाधिकारोभवतिमुक्तियाग्योनकर्मवान् ।
सत्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यसिततोभवान् ॥४४
भवतामनुनाभाव्यषष्ठेनव्रजतत्कुरु ।
अलतेतपसास्मिन्कृतेमुक्तिमवाप्स्यसि ॥४५
इत्युक्तोब्रह्मणासाऽपितथेत्युक्त्वामहामति ।
तत्कर्माभिमुखोयस्तुतपसोविरराम ह ॥४६
चाक्षुषेत्याहतब्रह्मातपसोविनिवर्तयन् ।
पूर्वनाम्नाबभूवाथप्रख्यातश्चाक्षुषोमनु ॥४७
उपयेमेविदर्भाससुतामुग्रस्यभूभृत ।
तस्याचोत्पादयामासपुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ॥४८
तस्यमन्वन्तरेह्यस्ययेऽन्तरेत्रिदशाद्विज ।
येचर्षयस्तथैवेन्द्रोयेसुताश्चास्यतान्छृणु ॥४९

जब वह इस प्रकार तप मे प्रवृत्त हुआ, तब प्रजापति ब्रह्माजी ने उससे कहा—हे वत्स ! ऐसा घोर तप किसलिये कर रहे हो ? ॥४२॥ आनन्द बोला—हे भगवन् ! संसार के बन्धन रूप कर्मों को नष्ट करने की अभिलाषा से ही मैं यह तप कर रहा हूं ॥४३॥ ब्रह्माजी ने कहा—क्षीणाधिकार वाले मनुष्य ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं, क्योंकि वे कर्मवान् नही होते, तुम जीवों पर आधिपत्य करने वाले होकर मोक्ष को कैसे प्राप्त हो सकोगे ? ॥४४॥ आप तुम छटवें मनु होंगे, उसी प्रकार के कार्य से मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे, अब तुम्हें तप करना आवश्यक नही है ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर 'ऐसा ही हो' कहते हुए आनन्द ने तपस्या का परित्याग किय ॥४६॥ और ब्रह्माजी ने उन्हें तप से निवृत्त करके पूर्ववत् 'चाक्षुष' नाम दिया फिर वही चाक्षुष मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥४७॥ फिर उन्होंने राजा उ

मधु, प्रति और सहिष्णु यह सप्तर्षि हुए तथा ऊरु, पुरु, शतद्युम्न इत्यादि राजा उन चाक्षुष मनु के अत्यन्त बलवान् पुत्र हुए ॥५५-५६॥

ऐतत्तेकथितपष्ठ मयामन्वन्तर द्विज ।
चाक्षुपस्यतथाजन्मचरितचमहात्मनः ॥५७
साम्प्रतवर्त्ततेयोऽयनाम्नावैवस्वतोमनुः ।
सप्तमोयेन्तरेतस्यदेवाद्यास्ताञ्छृणुष्वमे ॥५८
(यइद कीर्तयेद्धीमाश्चाक्षुषस्यातरमुवि ।
शृणुतेचलभेत्पुत्रानारोग्यसुखसपदम्) ॥५६

यह इस षष्ठ मन्वन्तर और महात्मा चाक्षुष मनु का जीवन चरित्र मैंने तुमसे कह दिया ॥५७॥ अब जो वैवस्वत नामक सातवें मनु वर्तमान है, उनके मन्वन्तर के देवतादि का वर्णन श्रवण करो ॥५८॥ जो मनुष्य इस चाक्षुष मन्वन्तर को कहेंगे या श्रवण करेंगे उन्हे पुत्र, आरोग्यता, सुख, सम्पत्ति की प्राप्ति होगी ॥५६॥

६६--वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ

मार्त्तण्डस्यरवेर्भार्यातनयाविश्वकर्मरण ।
सज्ञानाममहाभागतस्याभानुरजीजनत् ॥१
मनु प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ।
विवस्वत सुतोयस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तुस ॥२
सज्ञाचरविणादृष्टानिमीलयतिलोचने ।
यतस्तत सरोपोऽर्कः सज्ञानिष्ठुरमब्रवीत् ॥३
मयिदृष्टेसदायस्मात्कुरुपेनेत्रसयमम् ।
तस्माज्जनिष्यसेमूढेप्रजासयमनयमम् ॥४
तत साचपनाद्दृष्टिदेवीचक्रेभयाकुला ।
विलोलितदृशदृष्ट्वापुनराहचतारविः ॥५

यस्माद्विलोलिताद्दृष्टिर्मयिदृष्टेत्वयाधुना ।
तस्माद्विलोलातनयानदीत्वप्रसविष्यसि ॥६
त सज्ञातुसजज्ञभर्तृ शापेननेनवं ।
यमश्चयमुनाचेयप्रख्यातासुमहानदी ॥७

मार्कण्डेयजी न कहा—हे महाभाग ! विश्वकर्मा की पुत्री सज्ञा मार्त्तण्डदेव की भार्या थी, उसके गर्भ से ॥१॥ यश म विख्यात एव अत्यन्त ज्ञानवान् मनु उत्पन्न हुए, वह विवस्वान् के पुत्र होने से 'वैवस्वत' नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२॥ रूप को देखते ही वह सज्ञा अपने नेत्र बन्द कर लेती थी, इसलिए एक दिन सूर्य ने उसक प्रति यह कठोर वचन कहा ॥३॥ तू मुझे देख कर सदैव नेत्रा का सयम कर लेती है इसलिये तेरे प्रजा का सयम करन वाले यम की उत्पत्ति होगी ॥४॥ मार्कण्डेयजी न कहा—तभी स सज्ञा से भय स व्याकुल होकर सूर्य को चञ्चल दृष्टि से देखन लगी, तब उसे चञ्चल नेत्र वाली देख कर सूर्य न उससे कहा ॥५॥ तू मुझे देखकर चञ्चल दृष्टि कर लेनी है, इसलिये अब तू चञ्चल नदी रूप वाली कन्या को उत्पन्न करेगी ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पति के द्वारा इस प्रकार शापित हुई सज्ञा के गर्भ से यम उत्पन्न हुआ और फिर यमुना नाम की विख्यात नदी भी उत्पन्न हुई ॥७॥

सापिसज्ञारवेस्तेज सेहेदु सेनभाविनी ।
असहन्तीचवातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥८
किकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिवृ ति ।
भवेन्ममकथमर्ताकोपमर्कश्चनेष्यति ॥९
इतिसचिन्त्यवहुधाप्रजापतिसुतातदा ।
वहुमेनेमहाभागापितृसश्रयमेवसा ॥१०
तत पितृगृहंगन्तु कृतवुद्धिर्यशस्विनी ।
छायामयीमात्मतनु निर्ममेदयितारव ॥ ११
ताचावाचत्वयावेश्मन्यत्रभानोर्यथामया ।
तथासम्यगपत्येपुवर्तितव्ययथारवौ ॥१२

पृष्टयापिनवाच्यतेतद्भर्त्रागमनमम ।
सैवास्मिनामसंज्ञेतिवाच्यमेतत्सदावचः ॥१३
आकेशग्रहणाद्देविआशापाच्चवचस्तव ।
करिष्येकथयिष्यामिवृत्तंतुशापग्रहणात् ॥१४

उस संज्ञा ने उतने समय तक अत्यन्त कष्ट पूर्वक सूर्य के तेज को सहन किया था, परन्तु अब अधिक सहन न करने के कारण यह विचार करने लगी ।।८।। क्या करूँ ? किधर जाऊँ ? किस प्रकार भय से बचूँ ? किस उपाय अपने पति को क्रोध से निवृत्त करूँ ? ।।९।। तब उस प्रजापति-सुता संज्ञा ने पितृ गृह के आश्रय मे जाने का ही विचार स्थिर किया ।।१०।। ऐसा निश्चय करके उसने अपनी छाया स्वरूप एक देह बनाकर ।।११।। उस छाया से कहा—जिस प्रकार मैं इन सूर्य देव के गृह मे निवास करती हूँ, उसी भाव से यहाँ रहती हुई मेरे पुत्र और पति के प्रति मेरे ही समान आचरण करना ।।१२।। सूर्य पूछे तो भी मेरे चले जाने की वार्ता उन्हे मत बताना, 'मैं ही संज्ञा हूँ' उन्हे ऐसे ही समझाये रहना ।।१३।। छाया ने कहा—हे देवि ! जब तक वे मेरे केश नही पकड़ेगे और शाप नही देंगे, तब तक मैं तुम्हारे वचनों के अनुसार कार्य करूँगी और केश पकड़ने या शाप देने पर सब वृतान्त बता दूँगी ।।१४।।

इत्युक्तासातदादेवीजगामभवनंपितुः ।
ददर्शतत्रत्वष्टारंतपसाधूतकल्मषम् ॥१५
बहुमानाच्चतेनापिपूजिताविश्वकर्मणा ।
तस्थौपितृगृहेसातुकंचित्कालमनिन्दिता ॥१६
ततस्ताप्राहचार्वङ्गीपितानातिचिरोषिताम् ।
स्तुत्वाचतनयाप्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥१७
त्वातुमेपश्यतोवत्सेदिनानिसुबहून्यपि ।
मुहूर्त्तार्द्धसमानिस्युः किन्तुधर्मोविलुप्यते ॥१८
बान्धवेषुचिरंवासोनारीणांनयशस्करः ।
मनोरथोबान्धवानांनार्य्याभर्तृगृहेस्थितिः ॥१९

सात्वंत्रैलोक्यनाथेनभर्त्रासूर्य्यणसङ्गता ।
पितृगेहेचिर कालवस्तु नार्हसिपुत्रिके ॥२०
सात्वंभर्तृ गृहगन्छतुष्टोऽहपूजितासिमे ।
पुनरागमनकार्यदर्शनायशुभेमम ॥२१

यह बात सुनकर सज्ञा अपने पिता के घर चली गई और वहाँ उसने तप के द्वारा पाप रहित हुए विश्वकर्मा के दर्शन किये ॥१५॥ विश्वकर्मा ने सज्ञा का स्वागत सत्कार किया और फिर आनन्द युक्त हुई सज्ञा ने कुछ काल तक अपने पिता के गृह मे निवास किया ॥१६॥ फिर कुछ कालोपरान्त उसके पिता ने अत्यन्त मान के सहित उससे कहा ॥१७॥ ह वत्से ! तुमको देखते हुए बहुत समय व्यतीत होने पर भी वह मुझे आधे मुहूर्त के समान ही समय व्यतीत हुआ प्रतीत होता है, परन्तु इससे धर्म का लोप हो जाता है ॥१८॥ स्त्रियो के लिये बाधवों के साथ सदा निवास करना यश देने वाला कार्य नही है, उनका निवास तो पतिगृह मे ही उचित है ॥१९॥ तीनो लोको के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं, तुम उनके साथ विवाह सूत्र मे बँधी हो, तुम्हारा पितृगृह मे रहना उचित नही हो सकता ॥२०॥ इसलिए अब तुम अपने पति के घर चली जाओ, तुम्हारे आगमन से मैं सन्तुष्ट हुआ और तुम भी मेरे द्वारा सत्कारित हुई , अब फिर देखने के लिये यहाँ आजाना ॥२१॥

इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्त्वाचसामुने ।
सपूजयित्वापितर जगामाथोत्तरान्कुरुन् ॥२२
सूयतापमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यबिभ्यती ।
तपश्चचारतत्रापिवडवारूपधारिणी ॥२३
सज्ञेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पति ।
जनयामासतनयौकन्याचैकामनोरमाम् ॥२४
छायासज्ञात्वपत्येष्वयास्वेष्वतिवत्सला ।
तथानसज्ञाकन्यायापुत्रयोश्चान्ववर्तत ॥२५
लालनाद्युपभोगेषुविक्षेपमनुवासरम् ।
मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचक्षमे ॥२६

ताडनायचवैकोपात्पापस्तेनसमुत्त त ।
तस्या पुन श्चातिमतानतुदेहेनिपातित ॥२७
तत दाशापतयेपाच्छायासज्ञायमद्विज ।
किंचित्प्रस्फुरमाणोष्ठोविचलत्पाणिपल्लवा ॥२८
पितु पत्नीममय्याद्यन्मातर्जयसेपदा ।
भुवितस्मादयपादस्तवाद्य यपतिष्यति ॥२९

मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने पिता विश्वकर्मा के एसा कहने पर सज्ञा उनकी आज्ञा मान कर और उनका पूजन कर उत्तरकुरुदेश मे गई ।।२२।। सूर्य के तेज से भयभीत सज्ञा सूर्य के तेज को न चाहने की इच्छा से वहाँ घोडी का रूप रख कर तप करने लगी ।।२३।। उधर सूर्य न उस छाया को ही सज्ञा मानते हुए उसके गभ से दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया ।।२४।। परन्तु वह छाया जितनी प्रीतिवती अपनी सन्तान के प्रति थी, उतनी सज्ञा की सन्तान के प्रति स्नेहवती नही थी ।।२५।। वह लालन पालन के समय सन्तानों मे भेद भाव दिखाती थी, इसके लिये मनु ने तो उससे कुछ नहीं कहा, परन्तु यम ने उसे क्षमा नही किया ।।२६।। उन्होने क्रोधवश प्रहार करने को अपना चरण उठाया, परन्तु क्रोध को रोक कर चरण प्रहार नही किया ।।२७।। परन्तु उस छाया सज्ञा ने क्रोध के वशीभूत होकर होठ कम्पित करते हुए हाथ उठा कर शाप दिया ।।२८।। मैं तेरे पिता की पत्नी हू, फिर भी तू मरी मर्यादा न रख कर चरण दिखाकर डराता है, इसलिये तेरा यह चरण तत्काल पृथिवी म गिर जाय ।।२९।।

इत्याकर्ण्यंयम शापमात्रादत्त भयातुर ।
अभ्येत्यपितर प्राहप्रणिपातपुर सरम् ॥३०
तातंतन्महदाश्चर्य्यंनदृष्टमितिकेनचित् ।
मातावात्सल्यमुत्सृज्यशापपुत्रेप्रयच्छति ॥३१
यथामनुर्ममाचष्टे नेयमातातथामम ।
विगु णेष्वपिपुत्रेषुनमाता विगुणाभवेत् ॥३२

यमस्यैतद्वच श्रुत्वाभगवांस्तिमिरापहः ।
छायासंज्ञासमाहूयपप्रच्छक्वगतेतिसा ॥३३
साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ।
पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे ॥३४
इत्थंविवस्वत.सातुवहुश पृच्छतोयदा ।
नाचचक्षेततःक्रुद्धोभास्वास्ताशप्तुमुद्यतः ॥३५

मार्कण्डेयजी ने कहा—माता द्वारा ऐसा शाप सुनकर भय से आतुर हुए यम ने अपने पिता सूर्य के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और बोले ॥३०॥ यम ने कहा—माता अपने ही पुत्र को शाप दे, यह अत्यन्त विस्मयजनक है, ऐसी बात तो कभी कही नही देखी गई ॥३१॥ मनु ने मुझसे जैसा कहा था, वैसी यह माता नही है, पुत्र के असद्गुणी होने पर भी माता उसके अमंगल की बात नही कहती ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यम का वचन सुनकर भगवान् सूर्य ने छाया को अपने पास आदर सहित बुला कर पूछा—संज्ञा कहाँ गई ? ॥३३॥ छाया ने कहा—हे भगवन् ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मैं ही हूं, मैं ही तुम्हारी भार्या हू, मेरे ही गर्भ से इस सन्तान की उत्पत्ति हुई है ॥३४॥ सूर्य के बारम्बार प्रश्न करने पर भी उसने वही उत्तर दिया तब सूर्य क्रोधित होगये और शाप देने के लिये तत्पर हुए ॥३५॥

तत साकथयामासयथावृत्तविवस्वतः ।
विदितार्थश्चभगवाञ्जगामत्वष्टुरालयम् ॥३६
तत सपूजयामासतदात्रैलोक्यपूजितम् ।
भास्वन्तंपरयाभक्तयानिजगेहमुपागतम् ॥३७
सज्ञापृष्टस्तदातस्मैकथयामासविश्वकृत् ।
आगतवेहमेवेदमभवत.प्रेपितेतिवै ॥३८
दिवाकर:ममाघिस्थोवडवारूपधारिणीम् ।
तपश्चरन्तीददृशेउत्तरेषुकुरुष्वथ ॥३९
सौम्यमूर्ति शुभाकारोममभर्ताभवेदिति ।
अभिसन्धिश्चतपसोवुबुधेऽस्यादिवाकर. ॥४०

शातनतेजसोमेऽद्य क्रियतामितिभास्करः ।
मचाहविश्वकर्माणसञ्जायाःपितरद्विज ॥४१
मवत्सरभ्रमेस्तस्यविश्वकर्मारवेस्तत ।
तेजस शातनचक्रे स्तूयमानश्चदैवतै ॥४२

तब जो वृत्तान्त था वह सभी उसने सूर्य से कह दिया, जिसे जानकर वह विश्वकर्मा के घर पहुँचे ॥३६॥ अपने घर पर आगत भगवान् सूर्य का विश्वकर्मा ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥३७॥ इसके पश्चात् जब सूर्य ने सज्ञा का वृत्तान्त पूछा, तो उन्होंने बताया कि सज्ञा यहाँ आई थी और फिर मैंने उसे आपके ही यहाँ भेज दिया था ॥३८॥ तब सूर्य ने ध्यान मे अवस्थित होकर सज्ञा को घोडी का रूप धारण किये उत्तर कुरु वष मे तप करते हुए देखा ॥३९॥ उन्होंने जान लिया कि उसके तप का उद्देश्य मेरी सुन्दराकृति और सौम्य मूर्ति होने की कामना ही है ॥४०॥ तब भगवान् सूर्य ने सज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा कि मेरे तेज को क्षीण कर दीजिए ॥४१॥ देवताओं के द्वारा प्रार्थना करने पर उन विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को क्षीण कर दिया ॥४२॥

७०—सूर्य-स्तव एवं अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति

ततस्ततुष्टुवुर्देवास्तथादेवर्षयोरविम् ।
वाग्भिरीड्यमशेषस्यत्रैलोकयस्यमागता ॥१॥
नमस्तेऋक्स्वरूपायसामरूपायतेनमः ।
यजुःस्वरूपरूपायसाम्नामधामवतेनम ॥२॥
ज्ञानैकधामभूतायनिर्धूततमसेनम ।
शुद्धज्योतिःस्वरूपायविशुद्धायामलात्मने ॥३॥
(चक्रिणेशखिनेधाम्नेशार्ङ्गिणेपद्मिनेनमः)
वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने ।
नमोऽखिलजगव्द्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥४॥

सर्वकारणभूतायनिष्ठायैज्ञानचेतसाम् ॥५॥
नम सूर्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ।
भास्करायनमस्तुभ्यतथादिनकृतेनम ॥६॥
शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनम ।
त्वसवमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तब देवता और ऋषि वहाँ आकर त्रैलोक्य पूज्य भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवताओ ने कहा—हे देव ! आप ऋक् स्वरूप है, आपको नमस्कार है, आप साम स्वरूप को नमस्कार हैं, आप ही यजुःस्वरूप एव साम के द्युतिमान् है, आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ आप ही ज्ञान के एकमात्र आश्रय स्वरूप, अन्धकार के नाशक, ज्योति स्वरूप विशुद्ध एव विमलात्मा है, आपको नमस्कार हैं, ॥ ३ ॥ आप शङ्ख, चक्र, पद्म और शार्ङ्ग धारण करने वाले को नमस्कार, आप वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, आत्म स्वरूप एव जगद्व्यापी स्वरूप को नमस्कार है ॥ ४ ॥ आप ही ज्ञान चित्त वाले पुरुषो के लिये निष्ठा स्वरूप तथा सर्वभूतो के कारण रूप है ॥ ५ ॥ आप ही सूर्यरूपी प्रकाश और आत्मरूपी भास्कर हैं, आप दिनकर को नमस्कार है ॥७॥ रात्रि के कारण, सध्या एव ज्योत्स्ना को प्रकट करने वाले आप भगवान् के लिये नमस्कार है, आपके ही द्वारा यह विश्व जाग्रति और सुपुप्ति मे पड़ता है ॥७॥

भ्रमत्याविद्धमखिलब्रह्माण्डसचराचरम् ।
त्वदशुभिरिदस्पृष्टसर्वसजायतेशुचि ॥८
क्रियतेत्वत्कर स्पर्शाज्जलादीनापवित्रता ।
होमदानादिकोधर्मोनोपकारायजायते ॥६
तावद्यावन्नसयोगिजगदेवत्वद शुभि ।
ऋचस्तेसकलाह्येतायजू ष्येतानिचान्यत ॥१०
सकलानिचसामानिनिपतन्तित्वदङ्गतः ।
ऋड मयस्त्वजगन्नाथत्वमेवचयजुर्मय ॥११

यत.साममयश्चैवततोनाथत्रयीमयः ।
त्वमेवब्रह्मणोरूपपरचापरमेवच ॥११
मूर्त्तामूर्त्तस्तथासूक्ष्म स्थूलरूपस्तथास्थितः ।
निमेपकाष्ठादिमयःकालरूप क्षयात्मक ।
प्रसीदस्वेच्छयारूपस्वतेज शमनकुरु ॥१३
इद स्तोत्रवरं रम्यश्रोतव्यश्रद्धयानरे ।
शिष्योभूत्वासमाधिस्थोदत्त्वादेयगुरोरपि ॥१४

आपके द्वारा ही यह सचराचर ब्रह्माण्ड गति करता है और सभी स्पर्शनीय द्रव्य आपकी रश्मियो का स्पर्श प्राप्त करके ही पवित्र होते हैं ॥८॥ आपकी रश्मियो से ही जलादि पवित्र होते हैं तथा जब उपकारार्थ होम, दान आदि धर्म नही होते ॥ ६ ॥ तब तक यह विश्व आपकी रश्मियो के सयोग को प्राप्त नही होता, आपके अंग से उद्भूत रश्मियां ऋक्, यजु, और साम ही हैं, इसलिये आप ही ऋक्मय, यजुर्मय ॥ १०—११ ॥ और साममय हैं, आप ही त्रयीमय ब्रह्मस्वरूप तथा प्रधान और अप्रधान भी हो ॥ १२ ॥ आप मूर्तिधारी हो, तथा आप ही आकृति हीन हो, स्थूल एव सूक्ष्मरूप से आप ही निमेष काष्ठा आदि एव क्षयात्मक काल हो, आप प्रसन्न हो और स्वेच्छा-पूर्वक ही रूप और तेज को क्षीण करें ॥१३॥ (इस सुरम्य स्तोत्र को श्रद्धा-पूर्वक सुनें और गुरु भी अपने शिष्य को समाधि मे स्थित होकर प्रदान करें ॥१४

एवसस्तूयमानस्तुदेवैर्देवर्षिभिस्तथा ।
मुमोचस्वतदातेजस्तेजमाराशिरव्ययः ॥१५॥
यत्तस्यऋड्मयतेजोभवितातेनमेदिनी ।
यजुर्मयेनापिदिवस्वर्ग.साममयरवेः ॥१६॥
शातितास्तेजसोभागायेत्वष्ट्रादशपचच ।
त्वष्ट्रैवतेनशर्वस्यकृतशूलमहात्मना ॥१७॥
चक्र विष्णोर्वसूना वशङ्करोपसुदारुणाः ।
पावकस्यतथाशक्तिः शिविकाधनदस्यच ॥१८॥

अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ।
यक्षविद्याधराणाञ्चतानिचक्रे सविश्वकृत् ॥१६॥
ततश्चषोडशभागंविभर्तिभगवान्विभु ।
तत्तेजःपंचदशधाशातितंविश्वकर्मणा ॥२०॥
ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ।
ददृशेतत्रसंज्ञाचवडवारूपधारिणीम् ॥२१॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—देवताओं और ऋषियों द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर तेजोराशि भगवान् सूर्य ने अपने तेज को क्षीण किया ॥१५॥ उनके ऋकमय तेज से पृथिवी हुई, यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग हुआ ॥१६॥ त्वष्टा ने सूर्य तेज के जिस पंचदश भाग को छोड दिया था, उसी भाग से शिवजी का शूल ॥१७॥ विष्णु चक्र तथा वसुगण, शंकर और अग्नि की दारुण शक्ति का निर्माण किया तथा उसी से कुबेर की पालकी ॥१८॥ तथा अन्यान्य देवता, यक्ष, विद्याधर आदि के जो तीक्ष्ण अस्त्र हैं वह सब बनाये ॥१६॥ फिर भगवान् सूर्य ने अपने तेज का षोडशांश मात्र धारण किया, उसे भी विश्वकर्मा ने पन्द्रह बार छीला ॥२०॥ तदनन्तर सूर्य ने अश्व का रूप धारण किया और उत्तर कुरुवर्ष में पहुँच कर अश्वी रूप में अवस्थित संज्ञा को देखा ॥२१॥

साचदृष्टातमायान्तंपरपुंसोविशङ्कया ॥
जगामसम्मुखंतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥२२॥
ततश्चनासिकायोगंतयोस्तत्रसमेतयो ।
नासत्यश्रौतनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३॥
रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीखोचर्म्मीतनुत्रधृक् ।
अश्वारूढ समुद्भूतोवाणतूणसमन्वित ॥२४॥
ततःस्वरूपमतुलंदर्शयामासभानुमान् ।
तस्यैषाचसमालोक्यस्वरूपमुदमाप्सदे ॥२५॥
स्वरूपधारिणीचेमामानिनायनिजाश्रमम् ।
संज्ञाभार्यांप्रीतिमतीभास्करोवारितस्करः ॥२६॥

तन पूर्वसुतोयोऽस्या.सोऽभूद्वैवस्वतोमनुः ।
द्वितीयश्चयम.शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुत ॥२७॥
कृमयोमासमादायपादतोऽस्यमहीतले ।
पतिष्यन्तीतिशापान्ततस्यचक्रे पितास्वयम् ॥२८॥
धर्मदृष्टियंतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ।
ततोनियोगतयाम्येचकारतिमिरापह ॥२९॥

उन्हें आता देख कर पर-पुरुष की आशका से संज्ञा अपनी पीठ की रक्षा करती हुई उनके सामने पहुँची ॥२२॥ फिर उन दोनो की नासिका मिलने के कारण अश्वी के मुख से नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र तत्काल बाहर निकले ॥२३॥ तथा वीर्य के शेष भाग से ढाल, कवच, खड्ग, बाण तूण धारी अश्वारूढ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रेवत हुआ ॥२४॥ फिर सूर्य ने उस घोडी को अपना अतुलित स्वरूप दिखाया, उस स्वरूप को देख कर बडवा रूपिणी संज्ञा ने प्रसन्न हो कर अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया ॥२५॥ तब जल का शोषण करने वाले भगवान् सूर्य उस संज्ञा नाम की अपनी पत्नी को घर ले गये ॥२६॥ इसी का ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम शाप के कारण धर्मदृष्टि हुआ ॥२७॥ उनको दिये गये शाप का निवारण उनके पिता सूर्य ने स्वयं कर दिया ॥२८॥ तथा धर्म दृष्टि और शत्रु-मित्र मे सम दृष्टि देख कर सूर्य ने उनको यमत्व के कार्य मे नियुक्त किया ॥२९॥

यमुनाचनदीजज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी ।
अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥३०॥
गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोऽपिनियोजित ।
छायासज्ञासुतानांचनियोग श्रूयतामम ॥३१॥
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यश्छायासज्ञासुतोऽग्रज ।
तत सावर्णिकीसज्ञामवापतनयोरवेः ॥३२॥
भविष्यतिमनु.सोऽपिबलिरिन्द्रोयदातदा ।
शनैश्चरोग्रहाणांचमध्येपित्रानियोजितः ॥३ ॥

तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ।
नृपात्संवरणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥३४॥
तस्यवैवस्वतस्याहमनो सप्तममन्तरम् ।
कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥

उनकी कन्या यमुना नदी रूप से कलिंद देश के मध्य मे बहने लगी और घोड़ी के दोनो पुत्र (अश्विनीकुमार) पिता के द्वारा स्वर्ग के वैद्य नियुक्त हुये ॥३०॥ तथा रेवत गुह्यकाधिपति हुए, अब छाया के पुत्रो की नियुक्ति कहता हूँ ॥३१॥ वैवस्वत मनु के समान छाया के गर्भ से उत्पन्न हुए ज्येष्ठ पुत्र का नाम सावर्णिक हुआ ॥३२॥ जब बलि इन्द्र हो जायँगे तब यह मनु होंगे *तथा पिता के द्वारा शनैश्चर को ग्रह मे अवस्थित किया गया।* अब से छोटी कन्या का नाम तपती हुआ, उसे संवरण नामक नरेश से एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥३४॥ अब उन सप्तम मनु वैवस्वत के अनन्तर सब ऋषि, देवता, इन्द्र और उनके जो पुत्र राजा हुए उनके विषय में वर्णन करता हू ॥३५॥

७१ वैवस्वत मन्वन्तर कथन

आदित्यावसवारुद्रा साध्याविश्वेमरुद्गणा ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणा स्मृता ॥१
आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेया कश्यपात्मजा ।
साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रय ॥२
भृगोस्तुभृगवोदेवा पुत्राह्याङ्गिरस सुता ।
एषसर्गश्चमारीचोविज्ञेय साम्प्रताधिप ॥३
ऊर्ज्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ।
अतीतानागतायेचवर्तन्तेसाम्प्रतचये ॥४
सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणा ।
सहस्राक्षा कुलिशिन सर्वएवपुरन्दरा ॥५

क्रोष्टुकि बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उस समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—संज्ञा की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि आठवें मनु

अस्मिञ्छु तेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ।
मुच्यतेपातकैःसर्वै पुण्यंचमहदश्नुते ॥१३

इस पृथिवी को भूर्लोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ॥८॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम भरद्वाज, विश्वामित्र ॥९॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ॥१०॥ इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥११॥ करूप और पृषध्र यह नो उन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१२॥ हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापों से मुक्त होकर मनुष्य पुण्य फल को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

७२–सार्वर्णिक मन्वन्तर

स्वायम्भुवाद्याःकथिता.सप्तैतेमनवोमम ।
तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥१
अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।
मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥२
कथितस्तवसावर्णिश्छायासज्ञासुतश्चय. ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुर्भविताष्टम· ॥३
रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।
ऋष्यशृङ्गस्तथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४
सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्च वत्रिधासुराः ।
विशक्यवथिताश्च पात्रयाणात्रिगुणोगणः ॥५
तपस्तपश्चशक्रश्चद्यु तिर्ज्योति प्रभाकरः ।
प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥६
इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगणः ।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगण ॥७

मघवन्तोवृषा सर्वेशृ गिणोगजगामिनः ।
तेशतक्रतव सर्वेभूताभिभवतेजस. ॥६
धमाद्यं कारणःशुद्धं राधिपत्यगुणान्विताः ।
भूतभव्यभवन्नाथा शृणुचैतत्त्रयद्विज ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस मन्वन्तर मे आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुद्गण, भृगु और अंगिरा यह आठ देवता है ॥१॥ उनमे आदित्य, वसु और रुद्र कश्यपजी से उत्पन्न हुए हैं तथा साध्य, वसु और विश्वेदेवा धर्म की सन्तान हैं ॥२॥ भृगुगण भृगु के पुत्र तथा अङ्गिरागण अङ्गिरा के पुत्र हैं, इस सर्ग को मारीच सर्ग कहा गया है ॥३॥ इस मन्वन्तर मे महात्मा ऊर्जस्वी यज्ञ भाग के भोगने वाले इन्द्र हुए हैं, पहिले जो इन्द्र हुए, अब जो इन्द्र हैं या जो भविष्य मे इन्द्र होगे ॥४॥ वह सब देवेन्द्र कह कर ही प्रसिद्ध हैं, सभी सहस्राक्ष, वज्रधर और पुरन्दर हैं ॥५॥ सभी मघवा, वृष, शृङ्गधारी और गज पर गमन करने वाले हैं, सभी सौ यज्ञ करने वाले, भूतों को जीतने वाले तथा तेजोमय हैं ॥६॥ यह सब इन्द्र पवित्र, धर्मादि के कारण, आधिपत्य गुण वाले और भूत, भविष्यत्, वर्तमान के अधीश्वर हैं, अब तीनो लोक का विभाग श्रवण करो ॥७॥

भूर्लोकोऽयस्मृताभूमिरन्तरिक्षदिविस्मृतम् ।
दिव्याख्यश्चतयास्वर्गस्त्रैलोक्यमितिगद्यते ॥८
अत्रिश्चं सवसिष्ठश्चकश्यपश्चमहानृपि ।
गौतमश्चभरद्वाजाविश्वामित्रोऽयकौशिक ॥६
तथं वपुत्राभगवानृचीकस्यमहात्मन ।
जमदग्निस्तुसर्प्त तमुनयोऽत्रतथान्तरे ॥१०
इक्ष्वाकुर्नाभगश्चं वधृष्ट शर्यातिरेवच ।
नरिष्यन्तश्चविख्यातोनाभागोदिष्टएवच ॥११
करूषश्चपृषध्रश्चवसुमाल्लोकविश्रुत ।
मनोर्वैवस्वतस्यैतेनवपुत्रा प्रकीर्तिता ॥१२
वैवस्वतमिदंप्रान्त्यं धितंतेमयान्तरम् ।

अस्मिञ्छ्रुतेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ।
मुच्यतेपातकैःसर्वै पुण्यंचमहदश्नुते ॥१३

इस पृथिवी को भूर्लोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ॥८॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र ॥९॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ॥१०॥ इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥११॥ करुष और पृषध्र यह नो उन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१२॥ हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापों से मुक्त होकर मनुष्य पुण्य फल को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

७२–सावर्णिक मन्वन्तर

स्वायम्भुवाद्याःकथिता सप्तैतेमनवोमम ।
तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥१
अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।
मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥२
कथितस्तवसावर्णिश्छायासञ्ज्ञासुतश्चयः ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुर्भविताष्टमः ॥३
रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।
ऋष्यशृङ्गस्तथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४
सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्च त्रिधासुराः ।
विंशकः कथितास्त्रं पात्रयाणात्रिगुणोगणः ॥५
तपस्तपश्चशक्रश्चद्युतिर्ज्योति प्रभाकरः ।
प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥६
इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगणः ।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगणः ॥७

क्रोष्टुकि बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु, उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उस समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सज्ञा की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि आठवें मनु होंगे ॥३॥ इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्य शृङ्ग और द्रौणि यह सात सप्तर्षि होंगे ॥४॥ सुतपा, अमिताभ और मुख्य यह तीन गण और प्रत्येक गण में बीस देवता हैं, इस प्रकार यह साठ हैं ॥५॥ उनमें तपस्तप, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेज, रश्मि और वक्रतु ॥६॥ आदि सभी देवता उन बीस गणों के अन्तर्गत हैं, प्रभु, विभु और विभासादि देवता अमिताभ देवताओं के बीस गण हैं ॥७॥

सुराणाममितानांतुतृतीयमपिमेशृणु ।
दमोदाम्नलृत सोसोविन्ताद्याश्चविंशति ॥८
मुख्याह्येतेसमाख्यातादेवामन्वन्तराधिपा ।
मारीचस्यैवतेपुत्रा काश्यपस्यप्रजापते ॥९
भविष्याश्चभविष्यन्तिसावर्णस्यान्तरेमनो ।
तेषामिन्द्रोभविष्यस्तुबलिर्वैरोचनिर्मुने ॥१०
पातालस्थास्तेयोऽद्यापिदैत्य समयबन्धन ।
विरजाश्चार्यवीरश्चनिर्मोह सत्यवाक्कृत ।
विष्णवाद्याश्चैवतनया सावर्णस्यमनोर्नृपाः ॥११

अब तृतीय गण का विवरण कहता हूँ—दम, दाम, ऋत, सोम और वित्त आदि देवतागण मुख्य नाम से तृतीय विभाग के अन्तर्गत हैं ॥८॥ यह सभी मन्वन्तराधिपति और सभी मरीचि पुत्र प्रजापति कश्यपजी के ही पुत्र हैं ॥९॥ सावर्णि मन्वन्तर में यह देवता और विरोचन पुत्र बलि इन्द्र होंगे ॥१०॥ जो दैत्य राज प्रतिज्ञा पाश में बंधे होने से अब भी पाताल में रहते हैं, वह विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, विष्णु नामक यह सावर्णि पुत्र उस काल में राजा होंगे ॥११॥

७३–देवी माहात्म्य-मधुकैटभ वध

सावर्णि सूर्यतनयोयोमनु कथ्यनेष्टम ।
निशामयतदुत्पत्तिविस्तराद्गदतोमम ॥१

महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिप ।
सबभूवमहाभाग सावर्णिस्तनयोरवे ॥२

स्वारोचिषेंतरेपूर्वंचैत्रवशसमुद्भव ।
सुरथोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमडले ॥३

तस्यपालयत सम्यक्प्रजा पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवु शत्रवोभूपा कोलाविध्वसिनस्तदा ॥४

तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलद डिन ।
न्यूनैरपिसतैयुंद्धे कोलाविध्वसिभिर्जित ॥५

तत स्वपुरमायातोनिजदेशाधिपोभवत् ।
आक्रान्त समहाभागस्तैस्तदाप्रबलारिभि ॥६

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्यदुरात्मभि ।
कोशोबलचापहृततत्रापिस्वपुरेतत ॥७

मार्कण्डेयजी बोले—जिस सूर्य पुत्र सावर्णि को आठवाँ मनु कहा गया है, उसका विस्तार पूर्वक जन्म कहता हू, तुम श्रवण करो ॥१॥ जिस प्रकार वह महामाया भगवती की कृपा से सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर मन्वन्तराधिपति हुआ, उसे सुनो ॥२॥ स्वारोचिष मनु के राज्याधिकार से पूर्व चैत्र-वंशोत्पन्न सुरथ नामक समस्त पृथिवी का राजा हुआ ॥३॥ जब वह सुरथ अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगा उसी अवसर पर कोला विध्वस नामक राजा उससे शत्रुता करने लगे ॥४॥ और प्रबल दण्ड देने मे समर्थ राजा सुरथ के साथ उनका युद्ध हुआ, यद्यपि शत्रु अल्प थे, फिर भी उन्होने सुरथ को परास्त कर दिया ॥५॥ तब अपने प्रबल शत्रुओ से वशीभूत हुआ राजा सुरथ अपने नगर मे आकर राज्य करने लगा ॥६॥ उस नगर मे भी

प्रबल और दुष्ट अमात्यों ने उस राजा का कोषागार तथा सेना नष्ट कर डाली ।।७।।

ततोमृगयाव्याजेनहृतस्वाम्य सभूपति ।
एकाकीहयमारुह्यजगामगहनवनम् ।।८
सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यःसुमेधस ।
प्रशान्तश्वापदाकोर्णंमुनिशिष्योपशोभितम् ।।९
तस्यौकचित्सकालचमुनिनातेनसत्कृत ।
इतश्चेतश्चविचरस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ।।१०
सोचिंतयत्तदातत्रममत्वाकृष्टमानस ।
मत्पूर्वै पालितपूर्वंमयाहीनपुरहितत् ।
मद्भृत्यैस्तै रसद्वृत्तैर्धर्मंत पाल्यतेनवा ।।११
नजानेसुप्रधानोमेशूरोहस्तीसदामद ।
ममवैरिवशयात कान्भोगानुपलप्स्यते ।।१२
येममानुगतानित्यप्रसादधनभोजनै ।
अनुवृत्तिध्रु वनेद्यकुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।।१३
असम्यग्व्ययशीलैस्तै कुर्वद्भिःसततव्ययम् ।
सचित सोतिदु खेनक्षयकोशोगमिष्यति ।।१४

इस प्रकार राज्य के छिन जाने पर राजा सुरथ अश्वारूढ होकर मृगया के मिस से एकाकी ही निर्जन वन म चले गये ।।८।। वहाँ उनको परहिंसा से निवृत्त हुए पशुओं से परिपूर्ण एक आश्रम देखा जो कि मेधा नामक महर्षि का था, वह परम शिष्यों के सहित वहाँ निवास करते थे ।।९।। उन महर्षि ने राजा का अत्यन्त सत्कार किया और तब वह राजा कुछ काल तक महर्षि के आश्रम मे ठहर कर इधर-उधर विचरण करते रहे ।।१०।। फिर उनका मन ममता पूर्वक उन्हें चिन्तन कराने लगा कि मेरे पूर्व पुरुषो द्वारा पालित राज्य अब मुझसे विहीन होगया है, मेरे दुराचारी भृत्य उसका धर्म पूर्वक पालन करते होंगे या नहीं ? ।।११।। सदा मद म रहने वाला वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओं के वशीभूत होकर कैसे रह रहा होगा ।।१२।। जो नित्य-प्रति प्रसाद,

धन, भोजनादि देने के कारण मेरे अनुगामी रहते थे, अब वह अवश्य ही अन्य राजाओं की सेवा में लगे होंगे ॥१३॥ तथा अन्यान्य प्रकार से धन व्यय करते हुए भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक संचित कोष उन सेवकों के द्वारा नष्ट कर दिया जायगा ॥१४॥

एतच्चान्यच्चसततंचिंतयामासपार्थिव ।
तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकंददर्शस ॥१५
सपृष्टस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्चागमनेऽत्रक ।
सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥१६
इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपते प्रणयोदितम् ।
प्रत्युवाचसतंवैश्य प्रश्रयावनतोनृपम् ॥१७
समाधिर्नामवैश्योऽहमुत्पन्नोधनिनाकुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभि ॥१८
विहीन स्वजनैर्दारैःपुत्रैरादायमेधनम् ।
वनमभ्यागतोदु खीनिरस्तश्चाप्तबंधुभि ॥१९
सोहनवेद्मिपुत्राणांकुशलाकुशलात्मिकाम् ।
प्रवृत्तिंस्वजनानांचदाराणांचात्रसंस्थित ॥२०
किंनुतेषांगृहेक्षेममक्षेमंकिंनुसांप्रतम् ।
कथंतेकिंनुसद्वृत्तादुर्वृत्ता किंनुमेसुता ॥२१

राजा सुरथ इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ करने लगे, तभी उन्होंने आश्रम के समीप एक वैश्य को देखा ॥१५॥ तो उन्होंने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? यहाँ किसलिये आये हो ? तुम शोक सन्तप्त से क्यों दिखाई दे रहे हो ? ॥१६॥ राजा के ऐसे विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने भी उन्हें अत्यन्त नम्रता पूर्वक उत्तर दिया ॥१७॥ वैश्य ने कहा—मैं धनिक कुल मे उत्पन्न हुआ समाधि नामक एक वैश्य हूँ, धन के लालच म मेरी स्त्री और पुत्रों ने ॥१८॥ मेरा सम्पूर्ण धन छीन कर मुझे घर से बाहर कर दिया है और इस अवस्था म मुझे मेरे बाँधवों और मित्रों ने भी त्याग दिया है, इसीलिये दु खित हृदय में इस वन मे आया हू ॥१९॥ तथा इस वन में आकर मैं अपने स्त्री-

पुत्रादि के कुशल या अमङ्गल की बात से अनभिज्ञ हूँ ॥२०॥ घर में कुशल है या नहीं तथा उन पुत्रादि का आचरण सुधरा है अथवा नहीं, यही चिन्ता है ॥२१॥

यैर्निरस्तोभवाल्लुब्धैःपुत्रदारादिभिर्धनै ।
तेषुकिंभवत.स्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥२२
एवमेतद्यथाप्राहभवानस्मद्गतंवच ।
किंकरोमिनबध्नातिममनिष्ठुरतामन. ॥२३
यै सत्यज्यपितृस्नेहधनलुब्धैर्निराकृतः ।
पतिस्वजनहार्दंचहार्दितेष्वेवमेमन· ॥२४
किमेतन्नाभिजानामिजानन्नापिमहामते ।
यत्प्रेमप्रवणंचित्त विगुणेष्वपिबन्धुष ॥२५
तेषाकृतेमेनि श्वासोदौर्मनस्यचजायते ।
करोमिकिंयन्नमनस्तेष्वप्रीतिषुनिष्ठुरम् ॥२६
ततस्तौसहितौविप्रतमुनिंसमुपस्थितौ ।
समाधिर्नामवैश्योसौसचपार्थिवसत्तम ॥२७
कृत्वातुतौयथान्याययथार्हंतेनसविदम् ।
उपविष्टौकथा काश्चित्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥२८

राजा बोले— जिन धन के लालची स्त्री पुत्रादि ने तुम्हें घर से निकाल बाहर किया, उनके प्रति भी तुम्हारा चित्त स्नेहवान् क्यों है ? ॥२२॥ वैश्य बोला—आपका कथन यथार्थ है, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा मन किसी प्रकार भी उतना कठोर नहीं हो पा रहा है ॥२३॥ जिन पुत्रों ने पितृ स्नेह को त्याग कर, जिन पत्नियों ने पति-प्रेम को छोड़कर और जिन बन्धुओं ने बांधवत्व का परित्याग कर धन के लालच से मुझे घर से बाहर कर दिया, उन्हीं दुष्ट स्त्री, पुत्र और बन्धुओं में मेरा मन फँसा हुआ है, हे महामते ! उनमें मेरा चित्त इतना आसक्त क्यों है, यह मेरी समझ में नहीं आता ॥२४-२५॥ उन्हीं के प्रति खिन्न हुआ मेरा चित्त दीर्घ निश्वास छोड़ता हुआ इतना प्रीतिमान् है और कठोरता को प्राप्त नहीं हो पाता ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! इसके पश्चात् राजा सुरथ और वैश्य दोनों ही मिलकर महर्षि मेधा के पास

पहुचे ॥२७॥ और दोनों ने मुनि का यथोचित सम्मान करके उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया ॥२८॥

भगवंस्त्वामहंप्रष्टुमिच्छाम्येकवदस्वतत् ।
दुःखाययन्मेमनसः स्वचित्तायत्ततांविना ॥२९॥
ममत्वंगतराज्यस्यराज्यांगेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोपियथाज्ञस्यकिमेतन्मुनिसत्तम ॥३॥
अयचनिकृत पुत्रं दारैर्भृत्यैस्तयोज्झितः ।
स्वजनेनचसत्यक्तस्तेषुहार्दीतथाप्यति ॥३१॥
एवमेषतथाहचद्वावप्यत्यतदुःखितौ ।
दृष्टदोषेपिविषयेममत्वाकृष्टमानसौ ॥३२॥
त किमेतन्महाभागयन्मोहोज्ञानिनोरपि ।
ममास्यचभवत्येपाविवेकान्धस्यमूढता ॥३३॥
ज्ञानमस्तिसमस्तस्यजंतोर्विषयगोचरे ।
विषयाश्चमहाभागयातिचैवपृथक्पृथक् ॥३४॥
दिवान्धाःप्रणिन केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ।
केचिद्दिवातथारात्रौप्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५॥

राजा बोले—हे भगवन् ! जिस विषय को न समझने के कारण मेरा मन दुःखित है, उस विषय को आप से पूछा चाहता हूँ, उसे मुझे समझाने की कृपा करें ॥२९॥ हे प्रभो ! यद्यपि यह भ्रम है, फिर भी राज्यादि के प्रति मेरी इतनी ममता है, ऐसा क्यों है ? ॥३०॥ इस वैश्य को भी इसके पुत्र, स्त्री भृत्य, बाधवादि ने अपमानित करके त्याग दिया है, फिर भी यह उन्हीं के प्रति अनुराग युक्त है ॥३१॥ इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनो ही इस दिखाई पड़ते हुए दूषित विषय मे ममतावान् होकर अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं ॥३२॥ हम ज्ञानी होकर भी विवेकान्ध के समान विमूढ हो रहे हैं ऐसा क्यो है ? ॥३३॥ ऋषि ने कहा—सभी जीवो को विषय के दिखाई पडने पर ज्ञान है, परन्तु विषयो के प्रति पृथक्-पृथक् ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥३४॥ देखो कोई

जीव दिन मे नही देख सकता, कोई रात्रि मे नही देख पाता और किसी को दिन और रात्रि मे समान रूप से दिखाई देता है ॥३५॥

ज्ञानिनोमनुजा सत्यंकिंतुनेनहिकेवलम् ।
यनोहिज्ञानिन सर्वपशुपक्षिमृगादय ॥३६॥
ज्ञ ननतन्मनुष्याणायत्तेपामृगपक्षिणाम् ।
मनुष्यणाचयत्तेपातुल्यमन्यत्तयोभयो: ॥३७॥
ज्ञानेपिसतिपश्यैतान्पतगाञ्छावचञ्चुषु ।
कणमोक्षाहतान्मोहात्पीड्यमानानपिक्षुधा ॥३८॥
मानुषामनुजव्याघ्रसाभिलाषा सुतान्प्रति ।
लोभात्प्रत्युपकारायनन्वेतान्किंनपश्यसि ॥३९॥
तथापिममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः ।
महामायाप्रभावेणससारस्थितिकारिणा ॥४०॥
तन्नात्रविस्मय कार्योयोगनिद्राजगत्पते ।
महामायाहरेश्चैतत्तयासमोह्यतेजगत् ॥४१॥
ज्ञानिनामपिचेतासिदेवीभगवतीहिसा ।
बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति ॥४२॥

आप जिस प्रकार ज्ञानवार्ता करते हैं, ऐसा ज्ञान मनुष्यो को है, इसमे सन्देह नही, परन्तु केवल मनुष्य ही ऐसे ज्ञान के अधिकारी नही हैं पशु, पक्षी तथा मृगादि को भी ऐसा ज्ञान प्राप्त है ॥३६॥ दिखाई पडने वाले विषय का ज्ञान पशु, पक्षी और मनुष्यो का समान ही है, उसमे कुछ भेद नही है ॥३७॥ परन्तु ऐसा ज्ञान होने पर भी पारस्परिक विषय मे कितनी विभिन्नता है, देखो यह पक्षी स्वय क्षुधातुर होकर भी अपने बालको की चोच मे मोह के वशीभूत होकर ही धान्यादि के डालते हैं ॥३८॥ और मनुष्य भी अपनी सन्तान के प्रति प्रीतिमान् होकर उनका भरण-पोषण करते हैं, परन्तु मनुष्य का यह कार्य प्रत्युपकार के लोभ से ही है, क्या तुम्हे यह दिखाई नही देता ? ॥३९॥ इस प्रकार उपकार आदि की आशा से रहित होकर भी सभी जीव महामाया के प्रभाव से वासना रूप भ्रमर से युक्त मोह रूप गर्त्त मे पतित होते हैं ॥४०॥ इस

योगनिद्रांयदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पांतेभगवान्प्रभु ॥४६॥
तदाद्वावसुरौघोरौविख्यातौमधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भू तौहन्तु ब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०॥
सनाभिकमलेविष्णो स्थितोब्रह्माप्रजापति ।
दृष्ट्वातावसुरौचोग्रौप्रसुप्तचजनार्दनम् ॥५१॥
तुष्टावयोगनिद्रांतामेकाग्रहृदयस्थित ।
प्रबोधनार्थायहरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥५२॥
विश्वेश्वरीजगद्धात्रीस्थितिसहारकारिणीम् ।
स्तौमिनिद्रांभगवतीविष्णोरतुलतेजस ॥५३॥
त्वस्वाहात्वस्वधात्वहिवषट्कार स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरेनित्येत्रिधामात्रात्मिकास्थिता ॥५४॥
अर्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याविशेषतः ।
त्वमेवसध्यासावित्रित्वदेविजननीपरा॥५५॥
त्वयैतद्धार्यतेविश्व त्वयंतत्सृज्यतेजगत् ।
त्वमेवसत्पाल्यतेदवित्वमत्स्यतेवसर्वदा ॥५६॥

सया जब कल्पान्त में यह विश्व जल मग्न हो गया था, तब भगवान विष्णु शय्या पर शयन करके योग निद्रा मे निमग्न हो गये ॥४६॥ तभी मधु कैटभ नामक दो अत्यन्त भयकर एव प्रसिद्ध असुर भगवान् विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा जी का वध करने मे तत्पर हुए ॥विष्णु के नाभि कमल में अवस्थित अत्यन्त तेजवान् प्रजापति ब्रह्माजी ने उन दोनो भयंकर असुरों को देखा और भगवान् विष्णु को निद्रा में निमग्न देख कर ॥५१॥ उन्हें जगाने के लिये एकाग्र चित्त से विष्णु के नेत्रो मे स्थित निद्रा स्वरूपिणी विश्वेश्वरी, विश्व की स्थिति और लय करने वाली एव भगवान् की तेजमूर्ति उन भगवती निद्रा की स्तुति करने लगे ॥५२-५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्म स्वरूपे ! हे नित्ये ! तुम हवि दान मे मन्त्र स्वाहा स्वरूप वाली हो, पितरों के श्राद्ध में तुम ही स्वधारूपिणी हो, वषट्कार इन्द्र के हविर्दान मन्त्र की स्व

स्वरूपा भी तुम ही हो तुम ही सुधा तथा तुम ही स्वरगों में, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरूपा त्रिमात्रा हो ॥५४॥ जिस गायत्री में अर्द्ध मात्रा का उच्चारण विशेष रूप से स्थित हो, वह तुम ही हो और तुम ही सर्वश्रेष्ठ जगज्जननी एवं प्रकृति स्वरूपा हो ॥५५॥ हे देवि ! इस विश्व को उत्पन्न करने वाली तुम ही हो तुम ही इसका धारण, पालन एवं प्रलयकाल में ग्रास करने वाली हो ॥५६॥

विसृष्टौसृष्टिरूपात्वंस्थितिरूपाचपालने ।
तथासंहृतिरूपांतेजगतोऽस्यजगन्मये ॥५७॥
महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृति ।
महामोहाभगवतीमहादेवी महेश्वरी ॥५८॥
प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्चदारुणा ॥५९॥
त्वंश्रीस्त्वमीश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्तिः क्षान्तिरेवच ॥६०॥
खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ।
शंखिनीचापिनीबाणाभुशुण्डीपरिघायुधा ॥६१॥
सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणांपरमा त्वमेवपरमेश्वरी ॥६२॥
यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मिके ।
तस्यसर्वस्ययाशक्तिःसात्वंकिंस्तूयसेमया ॥६३॥

सभी काल में सृष्टि और स्थितिरूप हो और विश्व के विनाश के समय तुम ही संहार स्वरूपा हो ॥५७॥ तुम ही महाविद्या, महामेधा, महामाया, महास्मृति, महामोहा, महादेवी और महेश्वरी हो ॥५८॥ तुम ही सत, रज, तम स्वरूप से सब जीवों की प्रकृति हो, तुम ही कालरात्रि, महारात्रि एवं प्रलय स्वरूपा हो, तुम ही भयंकर मोहरात्रि हो ॥५९॥ तुम ही श्री, तुम ही ईश्वरी, बुद्धि तथा दिव्यज्ञान की एकमात्र लक्षणा हो, तुम ही लज्जा, पुष्टि,

तुष्टि, शान्ति तथा क्षान्ति हो ॥६०॥ तुम ही खड्गिनी, शूलिनी, भयङ्कर स्वरूपा, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी हो, बाण, भुशुण्डी और परिघ इन अस्त्रों के भी धारण करने वाली हो ॥६१॥ तुम ही सौम्या, सौम्यतरा तथा विश्व के सब सुन्दर पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य वाली हो, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतरों की भी ईश्वरी हो ॥६२॥ सत्, असत् वस्तु और उनकी जो शक्ति है वह तुम ही हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ ? ॥६३॥

यथात्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पात्यत्तियोजगत् ।
सोपिनिद्रावशनीत कस्त्वांस्तोतुमिहेश्वर ॥६४॥
विष्णु शरीरग्रहणमहमीशानएवच ।
कारितास्तेयतोऽस्तस्त्वांकस्तोतु शक्तिमान्भवेत ॥६५॥
सात्वमित्थप्रभावै स्वैरुदारैर्दे विसस्तुता ।
मोहमयैतौदुराधर्षावसुरौमधुकैटभौ ॥६६॥
प्रबोध चजगत्स्वामीनीयतामच्युतोलघु ।
बोधश्चक्रियतामस्यहतुमेतौमहासुरौ ॥६७॥
एवस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ।
विष्णो प्रबोधनार्थायनिहतु मधुकैटभौ ॥६८॥
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्यथोरसः ।
निर्गम्यदर्शनेतस्थौब्रह्मणोव्यक्तजन्मन ॥६९॥
उत्तस्थौचजगन्नाथस्तयामुक्तोजनार्दन ।
एकार्णवेहिशयनात्तत सददृशेचतौ ॥७०॥

हे देवि ! जब तुमने विश्व के सृष्टा, पालक और प्रलयकर्त्ता भगवान को ही निद्राभिभूत किया हुआ है तब तुम्हारी स्तुति करने की सामर्थ्य और किस में होगी ? ॥६४॥ हे देवि ! जब तुमने विष्णु ईशान और मुझे देह प्राप्त करायी है तब अन्य कौन पुरुष तुम्हारे स्तोत्र में समर्थ है ? ॥६५॥ हे देवि ! तुम अपने उदार स्वभाव के इन वर्णन से प्रसन्न होकर इन मधु कैटभ नामक दोनों दुर्धर्ष असुरों को मोहित कर दो ॥६६॥ तथा विश्वेश्वर विष्णु को

शीघ्र जगाकर इन असुरों के सहार के लिये प्रेरित करो ॥६७॥ ऋषि ने कहा—ब्रह्माजी ने उन दोनो का सहार करने के लिये जब इस प्रकार उन तमोगुणी निद्रादेवी की स्तुति की ॥६८॥ तब उनके देखते-देखते भगवान् विष्णु के नेत्र, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर भगवती अवस्थित हुई ॥६९॥ फिर निद्रा स्वरूपिणी देवी से मुक्त होकर भगवान् विष्णु ने एकार्णव में स्थित हुई शय्या से उठ कर देखा ॥७०॥

मधुकैटभौदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तु ब्रह्माणजनितोद्यमौ ॥७१॥
समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ।
पचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभु ॥७२॥
तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहितौ ।
उक्तवन्तौवरोऽस्मत्तोव्रियतामितिकेशवम् ॥७३॥
भवेतामद्यमेतुष्टौममवध्यावुभावपि ।
किमन्येनवरेणात्रएतावद्धिवृतमया ॥७४॥
वचिताभ्यामितितदासर्वमापोमयञ्जगत् ।
विलोक्यताभ्यागदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥७५॥
प्रीतौस्वस्तवयुद्धेनश्लाघ्यस्त्वमृत्युरावयो. ।
आवाजहिनयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥७६॥
तथेत्युक्त्वाभगवताशखचक्रगदाभृता ।
कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयो ॥७७॥
एवमेपासमुत्पन्नाब्रह्मणासस्तुतास्वयम् ।
प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूय.शृणुवदामिते ॥७८॥

क्रोध से लाल नेत्र किये हुए वे मधु कैटभ नामक दोनों दुरात्मा असुर ब्रह्माजी का वध करना चाहते हैं ॥७१॥ भगवान् विष्णु ने उठ कर उन दोनो असुरों के साथ पाँच सहस्र वर्ष तक बाहुओं से ही युद्ध किया ॥७२॥ फिर बल से उन्मत्त हुए उन दोनों असुरो ने महामाया के द्वारा मोहित होकर भगवान् से कहा—हम से वर मांगो ॥७३॥ भगवान् ने कहा—यदि तुम मुझ पर

प्रसन्न हुए हो तो मेरे द्वारा मारे जाओ, यही वर चाहता हूँ, अन्य वर से क्या प्रयोजन है ।।७४।। ऋषि ने कहा—भगवान् द्वारा ऐसा छल करने पर उन असुरों ने सम्पूर्ण विश्व को जलमय देख कर उनसे कहा ।।७५।। हम तुम्हारे साथ युद्ध करके प्रसन्न हुए हैं इसलिये तुम्हारे हाथ से मरना हमें श्लाघनीय है, परन्तु जो स्थान जलमग्न न हो, हमारा वध वहीं करना ।।७६।। ऋषि ने कहा—'ऐसा ही हो' कहकर भगवान् विष्णु ने शंख चक्र और गदा को धारण करके उन असुरों के मस्तकों को अपनी जंघा पर रख कर चक्र से काट डाला ।।७७।। स्वयं ब्रह्माजी द्वारा स्तुति करने पर यह मायादेवी इस प्रकार से अवतीर्ण हुई, अब इन देवी का प्रभाव तुम्हारे प्रति कहता हूँ, उसे श्रवण करो ।।७८।।

७४- महिषासुर सैन्य वध

देवासुरमभूद्युद्ध पूर्णमब्दशतंपुरा ।
महिषेऽसुराणामधिपेदेवानाञ्चपुरन्दरे ।।१
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यंपराजितम् ।
जित्वाचसकलान्देवानिन्द्रोभून्महिषासुरः ।।२
ततः पराजितादेवा पद्मयोनिंप्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रेशगरुडध्वजौ ।।३
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशा कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ।।४
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनायमस्यवरुणस्यच ।
अन्येषाचाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति ।।५
स्वर्गान्निराकृता सर्वेतेनदेवगणाभुवि ।
विचरन्तियथामर्त्यामहिषेणदुरात्मना ।।६
एतद्वः कथितंसर्वममरारिविचेष्टितम् ।
शरणञ्च प्रपन्ना स्मोवधस्तस्यविचिन्त्यताम् ।।७

मुनि ने कहा—प्रादिकाल मे जब देवाधिपति इन्द्र थे और महिष दानवों का अधिपति था, उस काल मे एक सौ वर्ष तक निरन्तर देवता और दानवों का युद्ध हुआ ॥१॥ उस युद्ध मे महापराक्रमी दानवों ने देव सेनाओ पर विजय प्राप्त की एवं सभी देवगण को जीतकर असुराधिपति महिष स्वयं इन्द्र बन गया ॥२॥ तदुपरान्त पराजित देवगण प्रजापति ब्रह्माजी के पास आये और शिवजी व विष्णु के निकट भी पहुँचे ॥३॥ देवगण ने शिवजी व भगवान् विष्णु को सम्पूर्ण युद्ध वृत्तान्त कह सुनाया और महिषासुर की विजय व उसके इन्द्रासन पर अधिकार की बात विस्तार से कही ॥४॥ देवताओ ने कहा कि, महिषासुर ने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण व अन्य दूसरे देवताओं के कार्यों पर अधिकार कर लिया है ॥५॥ महिष द्वारा स्वर्ग से निष्कासित देवता मर्त्यलोक के मनुष्यों के तुल्य पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥६॥ हमने आपसे उन दानवो के अत्याचार का वर्णन किया। हम आपकी शरणागत हैं आप महिषासुर के विनाश के लिए विचार करिये ॥७॥

इत्यनिशम्यदेवानांवचांसिमधुसूदनः ।
चकारकोपशंभुश्चभ्रू कुटीकुटिलाननौ ॥८
ततोतिकोपपूर्णस्यचक्रिणोवदनात्ततः ।
निश्चक्राममहत्तेजोब्रह्मणः शंकरस्यच ॥९
अन्येषाञ्चैवदेवानांशक्रादीनांशरीरतः ।
निर्गतंसुमहत्तेजस्तच्चैक्यंसमगच्छत ॥१०
अतीवतेजसः कूटंज्वलन्तमिवपर्वतम् ।
ददृशुस्तेसुरास्तत्रज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥११
अतुलंतत्रतत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थंतदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयंत्विषा ॥१२
यदभूच्छाम्भवंतेजस्तेनाजायततन्मुखम् ।
याम्येनचाभवन्केशाबाहवोविष्णुतेजसा ॥१३
सौम्येनस्तनयोर्युग्ममध्यमैंद्रेणचाभवत् ।
वारुणेनचजंघोरूनितबस्तेजसाभुवः ॥१४

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियां, वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियां कुबेर के तेज से नासिका ॥१५॥ प्रजापति के तेज से दन्तावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र ॥१६॥ दोनों सन्ध्याओं के तेज से भ्रकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं के तेज पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से त्रसित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ॥१७॥ फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकांक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ॥१६॥ इसके पश्चात् शिवजी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया। विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ॥२०॥ वरुण ने उन्हें शंख, हुताशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्र समुत्पाद्यकुलिशादमराधिपः ।
ददौतस्यैसहस्राक्षोघटामैरावताद्गजात् ॥२२
कालाद डाद्यमोद ड पाशचाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालाददौब्रह्माकमडलुम् ॥२३
समस्तरोमकूपेपुनिजरश्मीन्दिवाकर ।
कालश्चदत्तवान्खड्ग तस्यचर्मचनिर्मलम् ॥२४
क्षीरोदश्चामलहारमजरेचतथाम्बरे ।
चूडामणितथादिव्यकु डलेकटकानिच ॥२५
अर्द्ध चद्र तयाशुभ्र केयूरान्सर्वबाहुपु ।
नूपुरौविमलौतद्वद्ग्र वेयकमनुत्तमम् ।
अ गुलीयकरत्नानिसमस्तास्वगुलीपुच ॥२६
विश्वकर्माददौतस्यैपरशु चातिनिर्मलम् ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्य चद शनम् ॥२७
अम्लानपकजामालांशिरस्युरसिचापराम् ।
अददाज्जलधिस्तस्यैपकजचातिशोभनम् ॥२८

मुनि ने कहा—देवगण के ऐसे वचन सुनते ही शिवजी और विष्णु भगवान् अत्यन्त कुपित हुए, और क्रोध से उन दोनों के मुख तथा भृकुटी कुटिल होगई ॥८॥ तदुपरान्त क्रोध से युक्त विष्णु भगवान्, शिवजी एवं ब्रह्माजी के मुखों से एक विस्तृत तेज प्रकट हुआ ॥९॥ इसी प्रकार इन्द्र एवं अन्य दूसरे देवताओं के मुखों से भी तेज निकला। अनन्तर निकला हुआ समस्त तेज मिलकर एक होगया ॥१०॥ इसके पश्चात् मिलकर एक हुए उस अत्यन्त तेज पुञ्ज को, जिसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में फैल गईं, पर्वत के तुल्य जमते देखा ॥११॥ फिर वह एकत्रित त्रिभुवन को अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज पुञ्ज स्त्री रूप में परिवर्तित होने लगा ॥१२॥ शिवजी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, यम के तेज से केश तथा विष्णु के तेज से उसकी दो भुजाएं बन गई ॥१३॥ चन्द्र के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जघा और ऊरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब ॥१४॥

ब्रह्मणस्तेजसापादौतदगुल्योर्कतेजसा ।
वसूनाचकरागुल्यःकौबेरेणचनासिका ॥१५
तस्यास्तुद ता सभूताःप्राजापत्येनतेजसा ।
नयन नितयजज्ञे तथापावकतेजसा ॥१६
भ्रवौचसध्ययोस्तेज श्रवणावनिलस्यच ।
अन्येषाचैवदेवानासभवस्तेजसाशिवा ॥१७
तत समस्तदेवानातेजोराशिसमुद्भवाम् ।
ताविलोक्यमुद प्रापुरमरामहिषार्दिता ॥१८
ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुधानिच ।
ऊचुर्जयजयेत्युच्चै र्जयतोतेजर्यपिण ॥१९
शूलशूलाद्विनिष्कृष्यददौतस्यैपिनाकभृत् ।
चक्रचदत्तवान्कृष्ण समुत्पाट्यस्वचक्रत ॥२०
शखचवरुण शक्तिददौतस्यैहुताशन ।
मारुतोदत्तवाश्चापवाणपूर्णेतथेषुधी ॥२१

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणो की अगुलियाँ, वसुगणो के तेज से हाथों की अगुलियाँ कुवेर के तेज से नासिका ॥१५॥ प्रजापति के तेज से दतावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र ॥१६॥ दोनों स याओ के तेज से भ्रकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये एव अन्य दूसरे देवताओ विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओ के तेज पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से त्रसित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ॥१७॥ फिर सभी देवताओ ने उन्हे अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकाक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ॥१६॥ इसके पश्चात् शिवजी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हे प्रदान किया। विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ॥२०॥ वरुण ने उन्हे शख, हुताशन ने शक्ति एव पवन ने उन्हे धनुष व बाण प्रदान किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्र समुत्पाट्यकुलिशादमराधिपः ।
ददौतस्यैसहस्राक्षोघटामैरावताद्गजात् ॥२२
कालाद डाद्यमोद ड पाशचाबुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालाददौब्रह्माकमडलुम् ॥२३
समस्तरोमकूपेषुनिजरश्मीन्दिवाकर ।
कालश्चदत्तवान्खड्ग तस्यैचर्मचनिर्मलम् ॥२४
क्षीरोदश्चामलहारमजरेचतथाबरे ।
चूडामणितथादिव्यकु डलेकटकानिच ॥२५
अर्द्ध चद्र तयाशुभ्र केयूरान्सर्वबाहुषु ।
नूपुरौविमलौतद्वद्ग्रै वेयकमनुत्तमम् ।
अ गुलीयकरत्नानिसमस्तास्वगुलीषुच ॥२६
विश्वकर्माददौतस्यैपरशु चातिनिर्मलम् ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्य चद शनम् ॥२७
अम्लानपकजामालांशिरस्युरसिचापराम् ।
अददाज्जलधिस्तस्यैपकजचातिशोभनम् ॥२८

सहस्राक्ष अमरेश्वर इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी का घण्टा खोलकर दिया ॥२२॥ यमराज ने कालदण्ड से एक दण्ड उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया। वरुण ने पाश, दक्ष प्रजापति ने अक्षमाला एवं ब्रह्माजी ने उन्हे कमण्डलु प्रदान किया ॥२३॥ दिनकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणें प्रदान की, काल ने उन्हे स्वच्छ तलवार और ढाल दी ॥२४॥ क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोतियों का हार, दो स्वस्थ वस्त्र, सुन्दर चूड़ामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन प्रदान किये ॥२५॥ अर्द्ध चन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनो बाहुओं में बाजूबन्द, कंठ के लिए सुन्दर आभूषण एवं समस्त अंगुलियों में अनुपम अंगूठियाँ दी ॥२६॥ विश्वकर्माजी ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हे प्रदान किया ॥२७॥ समुद्र ने खिले हुए कमल पुष्पों की शोभायमान मालाएँ कंठ एवं सिर पर धारण करने के लिये दी ॥२८॥

हिमवान्वाहनंसिंहरत्नानिविविधानिच ।
ददावशून्यसुरयापानपात्रंधनाधिप ॥२९
शेषश्चसर्वनागेशोमहामणिविभूषितम् ।
नागहारंददौतस्यैधत्ते य पृथिवीमिमाम् ॥३०
अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ।
समानितानानादोच्चै साट्टहासमुहुर्मुहु ॥३१
तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरितनभ ।
अमायतातिमहताप्रतिशब्दोमहानभूत् ॥३२
चुक्षुभु सकलालोका समुद्राश्चचकम्पिरे ।
चचालवसुधाचेलु सकलाश्चमहीधरा ॥३३
जयेतिदेवाश्चमुदातामूचु सिंहवाहिनीम् ।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनांभक्तिनम्रात्ममूर्त्तय. ॥३४
दृष्ट्वासमस्तसंक्षुब्धंत्रैलोक्यममरारय ।
सन्नद्धाखिलसैन्यास्तेसमुत्तस्थुरुदायुधा ॥३५

हिमालय ने देवी को सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान

किये। धनपति कुवेर ने उन्हें सुरा युक्त सुरा-पान पात्र दिया ॥२६॥ पृथ्वी के आधार अनन्त नागेश ने देवीजी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया ॥३०॥ अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हें विभिन्न प्रकार के अस्त्र एव आभूषण प्रदान किये। इस प्रकार देवताओं द्वारा सम्मानित वह देवी अट्टहास के साथ भीषण गर्जना करने लगी ॥३१॥ उस भयङ्कर गर्जना से समस्त आकाश पूर्ण होगया फिर आकाश से एक भयानक घोर प्रति शब्द भी हुआ ॥३२॥ जिससे तीनों लोक हिल गये समुद्र काप गये, पृथ्वी डगमगाने लगी और सभी पर्वत कम्पायमान होने लगे ॥३३॥ तब सुरगण सिंह पर सवार उन भगवती की प्रसन्नता से जय-जय करने लगे। ऋषिगण भी नम्रता पूर्वक उनका गुण गान करने लगे ॥३४॥ तीनो लोको को इस प्रकार क्रियाशील देखकर दानवगण सम्पूर्ण सेना को सज्जित कर शस्त्रास्त्र धारण कर तैयार होगए ॥३५॥

अ.किमेतदितिक्रोधादाभाष्यमहिषासुरः ।
अभ्यधावततशब्दमशेषैरसुरैर्वृ त. ॥३६
सददर्शततोदेवीव्याप्तलोकत्रयींत्विषा ।
पादाक्रांत्यानतभुवकिरीटोल्लिखितांवराम् ॥३७
क्षोभिताशेषपातालांधनुर्ज्यानि स्वेनेनताम् ।
दिशोभुजसहस्रे णसमताव्याप्यसस्थिताम् ॥३८
तत प्रववृतेयुद्ध तयादेव्यासुरद्विषाम् ।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥३९
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ।
युयुधेचामरश्चान्यश्चतुरगवलान्वितः ॥४०
रथानामयुतं षड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ।
अयुध्यतायुतानांचसहस्रे णमहाहनु ॥४१
पंचाद्भिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ।
अयुतानांशतैःषड्भिर्वाष्कलोयुयुधेरणे ॥४२

"अहा! यह क्या होता है" कुपित महिषासुर ऐसा कहकर समस्त असुर सेना सहित उस ओर दौड पडा ॥३६॥ तो महिषासुर ने देखाकि वह

देवी अपनी आभा बिखेरती हुई त्रैलोक्य मे व्याप्त विद्यमान हैं। एव जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ॥३७॥ जिनके धनुष की प्रत्यचा के शब्द से समस्त भू-गर्भ भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी अपनी सहस्त्र भुजाओ से सम्पूर्ण दिशाओ के आच्छादित करते हुए शोभायमान थी ॥३८॥ तत्पश्चात् देवी के साथ दानवो का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसमे प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रो से आकाश भी प्रकाशित होगया ॥३६॥ महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर घोर दानवी युद्ध करने लगा। चतुरगिनी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ॥४०॥ विकराल असुर उदग्र साठ हजार रथो सहित युद्ध करने लगा एव महाहनु नाम का असुर भी एक करोड रथो को लेकर रण-क्षेत्र मे उतर आया ॥४१॥ असुलोभ नाम का महाअसुर पाँच करोड रथ लेकर और महादानव बाष्कल साठ हजार रथो को लेकर युद्ध करने लगा ॥४२॥

गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः ।
वृतोरथानाकोट्याचयुद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४३
बिडालाख्योमहादैत्य पचाशद्भिरथायुतै ।
युयुधेसयुगेतत्ररथानापरिवारित ॥४४
वृत कालोरथानाचरणेपचाशतायुतै ।
युयुधेसयुगेतत्रतावद्भि.परिवारित ॥४५
अन्येचतत्रायुतशोरथानागहयैर्वृ ता ।
युयुधु सयुगेदेव्यासहतत्रमहासुरा ॥४६
कोटिकोटिसहस्रै स्तुरथानादतिनातथा ।
हयानाचवृतोयुद्धे तत्राभून्महिषासुर ॥४७
तोमरैर्भिदिपालैश्चशक्तिभिर्मु सलैस्तथा ।
युयुधु सयुगेदेव्याखड्गै परशुपट्टिशै ॥४८
केचिच्चचिक्षिपु शक्ती केचित्पाशांस्तथापरे ।
देवीखड्गप्रहारैस्तुतेताहन्तु प्रचक्रमुः ॥४६

महादैत्य परिवारित अनेक सहस्र हाथी व घोड़ा युक्त एक करोड़ रथों

सहित उनमे मिलकर युद्ध करने लगा ॥४३॥ महाअसुर बिडाल पांच लाख रथो को लेकर युद्ध क्षेत्र मे युद्ध-रत होगया ॥४४॥ एव इतने ही रथो सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध मे रत होगया ॥४५॥ साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोडो रथ हाथी और घोडो से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४६॥ करोडो हजारो रथ हाथी और घोडो से सज्जित होकर वह महिपासुर उस युद्ध मे आया ॥४७॥ इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४८॥ किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ॥४९॥

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचडिका ।
लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥५०
अनायस्ताननादेवीस्तूयमानासुर्रापिभि. ।
मुमोचासुरदेहेपुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ॥५१'
सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ।
चचारासुरसैन्येपुवनेध्विवहुताशन ॥५२
निश्वासान्मुमुचेयाश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।
तएवसद्य सभूतागणा शतसहस्रश ॥५३
युयुधुस्तेपरशुभिर्भिदिपालासिपट्टिशै ।
नाशयतोसुरगणान्देवीशक्त्युपवृ हिता ॥५४
अवादयतपटहान्गणा शखास्तथापरे ।
मृदगाश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥५५
ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभि. ।
खड्गादिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ॥५६

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवो के सभी अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर डाले ॥५०॥ उस समय प्रसन्नतापूर्ण उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे । इसके पश्चात् देवी असुरो पर शस्त्रास्त्रो की वर्षा करने लगी ॥५१॥ देवी-वाहन सिंह भी केसर

देवी अपनी आभा बिखेरती हुई त्रैलोक्य में व्याप्त विद्यमान हैं। एवं जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ॥३७॥ जिनके धनुष की प्रत्यंचा के शब्द से समस्त भू-गर्भ भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी अपनी सहस्त्र भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं के आच्छादित करते हुए शोभायमान थी ॥३८॥ तत्पश्चात् देवी के साथ दानवों का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसमें प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रों से आकाश भी प्रकाशित होगया ॥३९॥ महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर घोर दानवी युद्ध करने लगा। चतुरंगिनी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ॥४०॥ विकराल असुर उदग्र साठ हजार रथों सहित युद्ध करने लगा एवं महाहनु नाम का असुर भी एक करोड़ रथों को लेकर रण-क्षेत्र में उतर आया ॥४१॥ असुलोम नाम का महाअसुर पाँच करोड़ रथ लेकर और महादानव बाष्कल साठ हजार रथों को लेकर युद्ध करने लगा ॥४२॥

गजवाजिसहस्त्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः ।
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४३
बिडालाख्यो महादैत्यः पञ्चाशद्भिरथायुतैः ।
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ॥४४
वृतः कालो रथानां च रणे पञ्चाशतायुतैः ।
युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः ॥४५
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ।
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ॥४६
कोटिकोटिसहस्त्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ।
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ॥४७
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥४८
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ।
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ॥४९

महादैत्य परिवारित अनेक सहस्र हाथी व घोड़ा युक्त एक करोड़ रथों

सहित उनमे मिलकर युद्ध करने लगा ॥४३॥ महाग्रसुर बिडाल पाँच लाख रथो को लेकर युद्ध क्षेत्र मे युद्ध-रत होगया ॥४४॥ एवं इतने ही रथो सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध मे रत होगया ॥४५॥ साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोडो रथ हाथी और घोडो से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४६॥ करोडो हजारो रथ हाथी और घोडों से सज्जित होकर वह महिषासुर उस युद्ध मे आया ॥४७॥ इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४८॥ किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ॥४९॥

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचण्डिका ।
लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥५०
अनायस्ताननादेवीस्तूयमानासुरर्षिभि. ।
मुमोचासुरदेहेषुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ॥५१
सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ।
चचारासुरसैन्येषुवनेष्विवहुताशन ॥५२
निश्वासान्मुमुचेयाश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।
तएवसद्य सम्भूतागणा शतसहस्रश ॥५३
युयुधुस्तेपरशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशै ।
नाशयतोसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिता ॥५४
अवादयतपटहान्गणा शङ्खास्तथापरे ।
मृदङ्गाश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥५५
ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभि. ।
खड्गादिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ॥५६

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रो की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवो के सभी अस्त्र शस्त्र नष्ट कर डाले ॥५०॥ उस समय प्रसन्नतापूर्ण उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे। इसके पश्चात् देवी असुरो पर शस्त्रास्त्रो की वर्षा करने लगी ॥५१॥ देवी-वाहन सिंह भी केसर

कम्पित कर अग्नि के समान दैत्य सेनाओं में विचरण करने लगा ॥५२॥ युद्ध में रत देवी के नि श्वासों से ही शत सहस्र गण तुरन्त उत्पन्न होगये और असुर सेनाओं से युद्ध करने लगे ॥५३॥ देवी के प्रभाव से बलशाली वह गण फरसा, भिंदिपाल, असि और पट्टिश से दानवों को नष्ट करने लगे ॥५४॥ गण युद्ध क्षेत्र में शखनाद भी करते थे और मृदङ्ग भी बजाते थे ॥५५॥ इसके पश्चात् देवी ने भी त्रिशूल, गदा, शक्ति, वृष्टि, खड्ग वगैरह से शत शत घोर दानवों का शमन किया ॥५६॥

पातयामास चैवान्यान्घटास्वनविमोहितान् ।
असुरान्भुविपाशेनबद्धाचान्यानकर्षयत् ॥५७
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णै खड्गपातैस्तथापरे ।
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ॥५८
वेमुश्च केचिद्रुधिरमुसलेनभृशहता ।
केचिन्निपतिताभूमौभिन्ना.शूलेनवक्षसि ॥५९
निरन्तराशरौघेणकृत्ता केचिद्रणाजिरे ।
शैलानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्द्दना. ॥६०
केषाचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ।
शिरासिपेतुरन्येमध्यामन्येमध्येविदारिता. ॥६१
विच्छिन्नजघास्त्वपरेपेतुरुर्व्यांमहासुराः ।
एकबाह्वक्षिचरणा केचिद्देव्याद्विधाकृता ॥६२
छिन्ने पिचान्येशिरसिपतिता पुनरुत्थिता. ।
कबधायुयुधुर्देव्यागृहीतपरमायुधाः ॥६३

कई को घंटे शब्द से मोहित कर मारा और दूसरे बहुत से राक्षसों को पाश मे बाँधकर धरातल पर खींचा ॥५७॥ कई को अपनी तलवार की तीव्र धार से दो टुकडे कर डाला और कई को गदा के प्रहारों से चूर्ण कर डाला ॥५८॥ कोई-कोई मूसल के प्रहार से निरन्तर रक्त-वमन करने लगा और कई असुर हृदय में त्रिशूल भेदन से पीडित होकर पृथ्वी पर लुढक गये ॥५९॥ युद्ध भूमि में देवी के बाणों के प्रहारों से निरन्तर असुरों की सेनाओं को सहायता

करने वाले देवताओ के शत्रु इस प्रकार मरते जाते थे ॥६०॥ किसी असुर की भुजाएं कटी, किसी की गदन, अन्य दूसरो के मस्तक धड से अलग होगये और किसी के मध्य से दो टुकडे होगये ॥६१॥ किसी भयअर असुर की जाघ कटकर धरती पर गिरी और देवी ने किसी-किसी के एक बाहु, एक आंख और एक चरण नष्ट कर दिया व किसी के बीच से दो खड कर दिये ॥६२॥ कोई-कोई असुर मस्तक कट जाने से भी पृथ्वी से गिरकर पुन: उठकर कई कबन्ध या धड पुन अस्त्र लेकर देवी से युद्ध करने लगे ॥६३॥

ननृतुश्चापरेतत्रयुद्धे तूर्यलयाश्रिताः ।
कवधाश्छिन्नशिरस खड्गशक्त्यृष्टिपाणय: ॥६४
तिष्ठतिष्ठेतिभाषतोदेवीमन्येमहासुरा ।
रुधिरौघविलुप्तागा सग्रामोलोमहर्षणे ॥६५
पातितैरथनागाश्वै रसुरैश्चवसु धरा ।
अगम्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारण. ॥६६
शोणितौघामहानद्य सद्यस्तत्रविसुस्रु वु: ।
मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ॥६७
क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणातथाविका ।
निन्येक्षययथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६८
सचसिहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसर ।
शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ॥६९
देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतयुद्ध महासुरै ।
यथैनातुष्टुवुर्देवा पुष्पवृष्टिमुचोदिवि ॥७०

अनेक कबन्ध या धड नृत्य करने लगे और उस महायुद्ध मे अनेक भयङ्कर महादैत्य मस्तक कट जाने पर केवल कबन्ध ही रह गये थे। जो कि हाथो मे तलवार, शक्ति और दोनो ओर धार वाली तलवार पुन लेकर ॥६४॥ 'ठहरो, ठहरो !' देवी से कहते थे। जिस क्षेत्र में यह विदारक महा युद्ध हुआ गिरे हुए हाथी, घोडो, दानवो और उनके रथो से वह पट सा गया था और ऐसा होगया कि पैर रखने को भी स्थान नहीं था ॥६५-६६॥ तत्काल ही उस

स्थान पर युद्ध मे असुर सेनाम्रो के हाथियो, घोडो व सैनिको के रक्त-समूह से रक्त की नदियाँ बहने लगी ॥६७॥ सूखे हुए काष्ठ को अग्नि जिस प्रकार पल-भर मे राख कर देती है, उसी प्रकार उन अम्बिका देवी ने राक्षसो की महा सेनाम्रो को पल मात्र मे नष्ट किया ॥६८॥ देवी-वाहन सिंह ने भी महानाद करते हुए, अपने बालो को कम्पित करता हुआ अत्यन्त क्रोध पूर्वक सभी दानवों के प्राणो को हरने लगा ॥६६॥ एवं घूम-घूमकर असुरो के शरीरो से ही जैसे वह प्राणो को ही खोजने लगा। देवी के सम्पूर्ण गणो ने उन भयङ्कर असुरो से पराक्रम पूर्वक युद्ध किया, जिससे देवता प्रसन्न होकर स्वर्ग से उन पर पुष्प-वर्षा करने लगे ॥७०॥

७५—महिषासुर वध

निहन्यमानतत्सैन्यमवलोक्यामहासुर. ।
सेनानीश्चिक्षुर कोपाद्ययौयोद्धुमथाम्बिकाम् ॥१
सदेवीशरवर्षेणववर्षसमरेऽसुरः ।
यथामेरुगिरेःश्रृ गतोयवर्षेणतोयद ॥२
तस्यच्छित्त्वाततदेवीलीलयैवशरोत्करान् ।
जघानतुरगान्बाणैर्यंतारचैववाजिनाम् ॥३
चिच्छेदचधनु सद्योध्वजचातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याधचैनगात्रेषु च्छिन्नधन्वानमाशुगः ॥४
सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ।
अभ्यधावततांदेवीखड्गचर्मधरोसुर. ॥५
सिंहमाहत्यखड्गेनतीक्ष्णधारेणमूर्धनि ।
आजघानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ॥६

उन सब असुर सेनाओ को नष्ट हुआ देखकर महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर युद्ध निमित्त अम्बिका देवी के समीप आया ॥१॥ सुमेरु पर्वत के शिखर

पर बादलों की वर्षा के समान वह महा असुर देवी पर शर-वर्षा करने लगा ॥२॥ देवी ने उसके सभी बाणों को काटकर लीला पूर्वक उसके रथ के घोड़ों और सारथी को अपने बाणों से नष्ट कर डाला ॥३॥ देवी ने तत्काल उस चिक्षुर का धनुष और अत्यन्त उच्च ध्वजा को काट कर उसका शरीर बाण वर्षा से बेध डाला ॥४॥ उसका जब धनुष नष्ट होगया, रथ नष्ट होगया तथा घोड़े व सारथी सभी समाप्त होगये, तो वह दैत्य सेनापति तीव्र तलवार व ढाल लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥५॥ और घोर गति से अपनी तीक्ष्ण धार की तलवार से सिंह के माथे पर प्रहार करके देवी के भी बाँये हाथ पर प्रहार किया ॥६॥

तस्याःखड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ।
ततोजग्राहशूलंसकोपादरुणलोचन ॥७
चिक्षेपचततस्तत्तुभद्रकाल्यांमहासुरः ।
जाज्वल्यमानतेजोभीरविबिंबमिवांबरात् ॥८
दृष्ट्वातदापतच्छूलं देवीशूलममुंचत ।
तेनतच्छतधानीतंशूलंसचमहासुरः ॥९
हतेतस्मिन्महावीर्येमहिषस्यचमूपतौ ।
आजगामगजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०
सोपिशक्तिंमुमोचाथदेव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ।
हुंकाराभिहतांभूमौपातयामासनिष्प्रभाम् ॥११
भग्नांशक्तिंनिपतितांदृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेपचामरःशूलंबाणैस्तदपिसाच्छिनत् ॥१२
ततःसिंहःसमुत्पत्यगजकुंभांतरेस्थितः ।
बाहुयुद्धेनयुयुधेतेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१३
युध्यमानौततस्तौतुतस्मान्नागान्महींगतौ ।
युयुधातेतिसंरब्धौप्रहारैरतिदारुणैः ॥१४

हे नृप ! उस दैत्यराज का खड्ग देवी के हाथ के स्पर्श मात्र से ही टूट गया। फिर क्रोधपूर्ण रक्तिम नेत्रों वाले उस महादानव ने त्रिशूल लेकर ॥

भद्रकाली पर वार किया सो देवी ने तेज से प्रकाशमान एवं आकाश से गिरते हुए सूर्य मण्डल के तुल्य ॥८॥ उस त्रिशूल को देखकर अपना शूल ग्रहण किया देवी द्वारा वार किये गये त्रिशूल से उस असुर के त्रिशूल के सौ टुकड़े होगये एवं दैत्य सेनाधिपति चिक्षुर के भी सौ टुकड़े होगये ॥९॥ महिषासुर का सेनापति महापराक्रमी चिक्षुर के समाप्त होने पर सुरगणों का शत्रु महादानव चामर हाथी पर सवार होकर युद्ध करने के लिऐ देवी के सामने आया ॥१०॥ उस महादानव ने देवी पर लक्ष्य करके शक्ति छोड दी, परन्तु वह शक्ति देवी की हुंकार के घोर शब्द से अभिहत व प्रभाहीन होकर धरातल पर गिर पड़ी। शक्ति को इस प्रकार नष्ट हुआ देख असुर चामर ने क्रोधित होकर त्रिशूल चलाया परन्तु देवी ने अपने शरों से उस त्रिशूल को भी भेद दिया ॥१२॥ इसके पश्चात् देवी-वाहन सिंह छलांग लगाकर हाथी के मस्तक पर चढ़ गया एवं हाथी की पीठ पर बैठे उस महा असुर से बाहु युद्ध करने लगा ॥१३॥ सिंह एवं असुर चामर दोनो ही युद्ध करते हुए उस गज से नीचे गिरे व अत्यंत क्रोधपूर्वक आपस मे भीषण प्रहार करने लगे ॥१४॥

ततोवेगात्खमुत्पत्यनिपत्यचमृगारिणा ।
करप्रहारेणशिरश्चामरस्यपृथक्कृतम् ॥१५
उदग्रश्चरणेदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हत ।
द तमुष्टितलैश्चैवकरालश्चनिपातित ॥१६
देवीक्रुद्धागदापातैश्चूर्णयामासचोद्धतम् ।
वाष्कल भिन्दिपालेनबाणैस्ताम्र तथांधकम् ॥१७
उग्रास्यमुग्रवीर्यंचतथैवचमहाहनुम् ।
त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥१८
विडालस्यासिनाकायात्पातयामासवैशिर ।
दुर्धरदुर्मुखचोभौशरैर्निन्येयमक्षयम् ।
कालचकालदडेनकालरात्रिरपातयत् ॥१९
"उग्रदर्शनमत्युग्रं खड्गपातैरताडयत् ।

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ।
गणं सिंहेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ॥२०
एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ।
माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान् ॥२१

इसके बाद कुछ समय में ही सिंह ने एकदम आकाश में छलांग लगाई और फिर पृथ्वी पर गिर कर अचानक पंजों से आघात करते हुए असुर चामर का मस्तक उसकी देह से अलग कर दिया ॥१५॥ उदग्र नाम असुर को देवी ने पत्थर और वृक्षों की वर्षा करके और असुर कराल को दाँत व मुष्टिका प्रहारों से समाप्त कर डाला ॥१६॥ अत्यन्त कुपित उस देवी ने गदा के आघात से उद्धत नाम के दानव को पीस डाला। फिर भिंदिपाल से असुर बाष्कल एवं ताम्र व अन्धक नामक दो असुरों को वाणों से समाप्त कर दिया ॥१७॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवी ने त्रिशूल द्वारा उग्रास्य, उग्रवीर्य व महाहनु नामक दानवों को नष्ट कर दिया ॥१८॥ तलवार द्वारा असुर विडाल के मस्तक काटकर गिरा दिया। वाणों के प्रहार से दुर्द्धर व दुर्मुख नाम के दो दानवों का यमलोक भेज दिया। कालरात्रि ने काल असुर को काल दण्ड से मार दिया ॥१९॥ उग्र खड्ग के आघात से उग्रदर्शन, असि से असिलोमा को समाप्त कर दिया तो सिंह व देवी के गणों ने जय-नाद किया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी समस्त सेना को नष्ट होता हुआ विलोक राक्षसराज महिषासुर अपना महिषरूप धारण करके देवी के गणों को भयभीत करने लगा ॥२१॥

कांश्चित्तुंडप्रहारेणखुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लांगूलताडिताश्चान्यान्छृंगाभ्याचविदारितान् ॥२२
वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ।
निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥२३
निपात्यप्रमथानीकमन्यधावतसोसुर ।
सिंहहंतुं महादेव्याःकोपचक्रे ततोम्बिका ॥२४
सोऽपिकोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृंगाभ्यापर्वतानुच्चैंश्चिक्षेपचननादच ॥२५

वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीर्यत ।
लागूलेनाहतश्चाब्धि प्लावयामाससर्वत ॥२६
धुतश्रृ गविभिन्नाश्चखड खड ययुर्घना ।
श्वासानिलास्ता शतशोनिपेतुर्नभसोऽचला ॥२७
इतिक्रोधसमाध्मातमापततमहासुरम् ।
दृष्ट्वासाचडिकाकोपतद्वधायतदाकरोत् ॥२८

किसी गण को मुख प्रहार से, किसी पर खुर से आघात करके, किसी को पूँछ के आघात से ग्रसित करने लगा ॥२२॥ किसी को तीव्र गति द्वारा, किसी को घोर गर्जन द्वारा, किसी को भ्रमण द्वारा और किसी को श्वास की वायु से विदारण कर डाला ॥२३॥ इस प्रकार दैत्य-गणों को गिराकर वह दैत्यराज महा देवी के वाहन सिंह को समाप्त करने की आकांक्षा से दौड़ा, तो देवी एकदम क्रोधित हुई ॥२४॥ महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधपूर्ण होकर खुरो से धरती को कुरेदता हुआ और दोनो तीक्ष्ण सीगो द्वारा उच्चतर पर्वत मालाओं को उखाड़ता हुए गर्जने लगा ॥२५॥ उसके वेग से इस प्रकार घूमने पर पृथ्वी कोमल होगई और गड्ढे होगये तथा पूँछसे ताडित समुद्र भी सभी ओर फैलने लगा ॥२६॥ कँपा देने वाले सीगो से घिरे हुए बादल खण्ड खण्ड होगये और उसके श्वास की तीव्र वायु से अनेको पर्वत गिर पड़े ॥२७॥ ऐसे क्रोध पूर्ण उस दैत्यराज को समीप आया देख चण्डिका देवी भी क्रोधित हो उसे मारने को उद्यत हो गई ॥२८॥

साक्षिप्त्वातस्यवैपाशतबबधमहासुरम् ।
तत्याजमाहिषरूपसोपिबद्धोमहामृधे ॥२९
तत सिहोभवत्सद्योयावत्तस्याबिकाशिर ।
छिनत्तितावत्पुरुष खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०
ततएवाशुपुरुषदेवीचिच्छेदसायकै ।
तखड्गचर्मणासार्धंतत सोभून्महागज ॥३१
करेणचमहासिहतचकर्षजगर्जच ।
कर्षतस्तुकरदेवीखड्गेननिरकृतत ॥३२

अर्द्ध निष्क्रातएवासौयुध्यमानोमहासुरः ।
तयामहासिनादेव्याशिरश्छित्वानिपातित ॥४०
एवसमहिषोनामससैन्य ससुहृद्गण ।
त्रैलोक्यमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशित ॥४१
त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषेविनिपातिते ।
जयेत्युक्त तत सर्वं सदेवासुरमानवै ॥४२
ततोहाहाकृतसर्वं दैत्यसैन्यननाशयत् ।
प्रहर्षंचपरजग्मु सकलादेवतागणा ॥४३
तुष्टुवुस्तांसुरादेवीसहदिव्यैर्महर्षिभि ।
जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥४४

देवी भी अपनी बाण-वर्षा द्वारा उन समस्त पर्वतो को चूर्ण करके युद्ध करने लगी। उस समय चूंकि मद्य-पान से देवी का शरीर रक्त वर्ण होगया था एवं सभी शब्दो का स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥३६॥ देवी ने कहा—अरे मूर्ख ! जब तक मैं मद्य पीती हूँ, तभी तक तू गर्जना करले फिर मेरे द्वारा तुझे निहत हुआ देख देवतागण यहाँ तेरे स्थान पर गर्जना करेंगे ॥३७॥ ऋषि ने कहा—देवी ऐसा कहकर छलांग लगाकर उस महादानव पर सवार होगई तथा उसे अपने चरणो से दबाकर उस असुर के कंठ मे त्रिशूल से प्रहार करने लगी ॥३८॥ इसके पश्चात् उस महादानव की आभा प्राय समाप्त होगई और देवी के पैरो से दबा होने से ग्रस्त-सा होगया ॥३६॥ उसके बाद संघर्ष करते हुए उस महादानव का महाअसि से सिर कलम कर उसे समाप्त कर दिया ॥४०॥ इस प्रकार से वह महिषासुर अपनी सेना और असुरगणों के समेत त्रैलोक्य को भमित कर अन्त में देवी द्वारा विनाश कर दिया गया ॥४१॥ उस समय महिषासुर के निहत होने पर तीनो लोको के देवता, मनुष्य और भू-पाताल निवासी बलि आदि सभी ने देवी का जयघोष किया ॥४२॥ उसके पश्चात् देवी ने हाहाकार करती शेष दैत्य सेना को भी नष्ट कर दिया, जिससे कि सुरगण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥४३॥ देवता व ऋषि-मुनिगण देवी का गुण-गान करने लगे। गन्धर्व पति गायन करने लगे एवं अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥४४॥

७६—शक्रादिकृत देवीस्तव

तत सुरगणा सर्वे देव्याइ द्रपुरोगमा ।
स्तुतिमारेभिरेकर्त्तुं निहतेमहिषासुरे ॥१
शक्रादय सुरगणानिहतेतिवीर्येतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या ।
तातुष्टुवु प्रणतिनम्रशिरोधरासावाग्भि प्रहर्षपुलकाद्गमचारुदेहा ॥२
दव्यायया ततमिद जगदात्मशक्त्यानि शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्याभक्त्यानता स्मविदधातुशुभानिसान ॥ ३
यस्या प्रभावमतुल भगवाननन्तोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलबलच ।
साचण्डिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमतिकरोतु ॥४
याश्री स्वयसुकृतिनाभवनेष्वलक्ष्मी पापात्मनाकृतधियाहृदयेषुबुद्धि ।
श्रद्धासताकुलजनप्रभवस्यलज्जातात्वानता स्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥५
किंवर्णयामतवरूपमचिन्त्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ।
किंचाहवेषुचरितानितवाद्भुता नसर्वेषुदव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६
हेतु समस्तजगतात्रिगुणापिदेवैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिद जगद शभूतमव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७

ऋषि ने कहा—उस काल इन्द्र सहित समस्त सुरगण देवी द्वारा महिषासुर का बध किया जाने से आनन्दित होकर देवी का गुण गान करने लगे ॥१॥ भगवती देवी ने सुरगणों के घोर शत्रु महापराक्रमी दैत्यराज महिषासुर का बध कर दिया तो इन्द्र सहित सम्पूर्ण सुरगणो के सुशोभित तन इस आनन्द से और अधिक पुलकित हो उठे, वे अपने सिर व कन्धो का नवाकर विभिन्न प्रकार से गुण गान करते हुए दुर्गा की स्तुति करने लगे ॥२॥ देवताओं ने कहा—इस प्राणि जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणो की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप म परिणत हुई हैं एव जो समस्त सुरगणो एव महामुनियो की पूज्या हैं हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करे ॥३॥ अनन्त भगवान्, ब्रह्मा एव महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने म असमर्थ हैं,

वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिए आकांक्षित हों ॥४॥ पुनीत कार्य करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मी स्वरूप, पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, सदाचरण वालों के लिये श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुल में उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप हैं, उन देवी को नमस्कार करते हैं। हे देवि! आप जगत् का पोषण करें ॥५॥ आपका अचिन्त्य स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं। हे देवि! आपका दानवों का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एवं दानवों व देवगणों के प्रति रण-क्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार वर्णन करें ॥६॥ हे देवि! आप विकारहीन आद्याप्रकृति हैं अब च सत्व, रज एवं तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो। राग द्वेष आदि से युक्त विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आश्रय-स्वरूप है यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है ॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेनतृप्तिंप्रयातिसकलेषुमखेषुदेवी ।
स्वाहासिपैपितृगणस्यचतृप्तिहेतुरुच्चार्यसेत्वमतएवजनैःस्वधाच ॥८
यामुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रताऽत्वमभ्यस्यसेसुनियतेंद्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासिसाभगवतीपरमाहिदेवि ॥९
शब्दात्मिकासुविमलर्ग्यजुषांनिधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतांचसाम्नाम् ।
देवीत्रयीभगवतीभवभावनायवार्त्तासिसर्वजगतांपरमार्त्तिहन्त्री ॥१०
मेधासिदेविविदिताखिलशास्त्रसारादुर्गासिदुर्गभवसागरनौरसंगा ।
श्रीःकैटभारिहृदयैककृताधिवासागौरीत्वमेवशशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११
ईषत्सहासममलंपरिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारिकनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतंप्रहृतमात्तरुषातथापिवक्त्रंविलोक्यसहसामहिषासुरेण ॥१२
दृष्ट्वातुदेविकुपितंभ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छविय्नसद्य ।
प्राणान्मुमोचमहिषस्तदतीवचित्रंकैर्जीव्यतेहिकुपितांतकदर्शनेन ॥ १३

देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतवलमुविपुलमहिषासुरस्य ॥१४

हे देवि ! आपके नाम उच्चारण से ही सम्पूर्ण यज्ञो मे देवतागण तृप्ति प्राप्त करते हैं, चू कि आप ही ऋषिगण एवं सुरगण को तृप्त करने वाले स्वाहा एव स्वधा स्वरूप उच्चारण की जाती हो ॥८॥ हे देवि ! आपकी महान् आराधना का विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोष-विहीन, मोक्ष के अभिलाषी ऋषिगण आपको मुक्ति का कारण मानते हैं। हे देवि ! इसलिये आप ही भगवती सर्वश्रेष्ठ मोक्ष विद्या हैं ॥९॥ हे देवि ! आप शब्द युक्त तीन वेद स्वरूप हैं और प्रणव युक्त, अनुपम पद वाले ऋक्, यजु व साम वेदों का आश्रय स्वरूप हैं, आप ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य पूर्ण हैं, आप ही विश्व का जीवन-रक्षक कृषि-स्वरूप हैं, हे देवि ! समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं ॥१०॥ हे देवि ! आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव-सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं कैटभ शत्रु के वध-कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय मे निवास करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं और महादेवजी के बांये अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं ॥११॥ इस पर भी आपका मन्द हास्य पूर्ण, स्वच्छ, पूर्ण-चन्द्र तुल्य, सुन्दर वर्ण, कांति युक्त, अनुपम मुख देखकर भी महिषासुर ने कुपित होकर आप पर शस्त्राघात किया, यह आश्चर्यपूर्ण है अर्थात् समस्त त्रिभुवन को मोहित करने वाली आपकी मुख-कान्ति से भी वह दुष्ट मोहित नहीं हुआ ॥१२॥ हे देवि ! अत्यन्त क्रोधपूर्ण, तनी हुई भ्रकुटि सहित उदित पूर्ण चन्द्र के समान आपके मुख को देखकर भी तुरन्त ही महिषासुर ने प्राण त्याग नहीं किया, यह आश्चर्यपूर्ण है, क्योंकि क्रोध युक्त यमराज को देखकर भी कोई जीवित रह सकता है ? ॥१३॥ हे भगवती ! आप प्रसन्न हों, विश्व का कल्याण करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं, हे देवि ! क्रोधित होने पर आप समस्त कुल नाश कर देती हैं, यह हम जान गये हैं क्योंकि आपने महिषासुर और उसकी विशाल असुर सेना को नष्ट किया है ॥१४॥

तेसमताजनपदेषुधनानितेषांयशांसिनचसीदतिधर्मवर्गः ।
धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥१५

धर्म्याणिदेविसकलानिसदैवकर्माण्यत्याहृत प्रतिदिनसुकृतीकरोति ।
स्वर्गंप्रयातिचततोभवतीप्रसादाल्लोकत्रयेपिफलदाननुदेवितेन॥ १६
दुर्गेस्मृताहरसिभीतिमशेषजतो स्वस्थै स्मृतामतिमतीवशुभाददासि ।
दारिद्यदुःखभयहारिणिकात्वदन्यासर्वोपकारकरणायसदार्द्रचित्ता ॥१७
एभिर्हतैर्जगदुपैतिसुखंतथैतेकुर्वंतुनामनरकायचिरायपापम् ।
सग्राममृत्युमधिगम्यदिवप्रयांतुमत्वेतिनूनमहितान्विनिहंसिदेवि ॥१८
दृष्ट्वैवकिंनभवतीप्रकरोतिभस्मसर्वासुरानरिषुयत्प्रहिणोपिशस्त्रम् ।
लोकान्प्रयातुरिपवोपिहिशस्त्रपूताइत्थमतिर्भवतितेष्वहितेषुसाध्वी ॥१९
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रै शूलाग्रकांतिनिवहेनदृशोसुराणाम् ।
यन्नागताविलयमंशुमदिंदुखण्डयोग्याननंतवविलोकयतांतदेतत् ॥२०
दुर्वृत्तवृत्तशमनंतवदेविशीलंरूपंतथैतदविचिंत्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यंचहंतृहृतदेवपराक्रमाणांवैरिष्वपिप्रकटितैवदयात्वयेत्थम् ॥२१

हे दुर्गे ! आप सन्तुष्ट होकर जिनको कल्याण देती हैं, वही राष्ट्र में पूज्य होते हैं, उन्ही को धन और प्रसिद्धि प्राप्त होती है, उनका धर्म अक्षय रहता है और उनके पुत्र, स्त्री व सेवक सयमी व गम्भीर होते हैं ॥१५॥ हे देवि ! आपके ही प्रसाद से पुण्य कर्म करने वाले व्यक्ति नित्यप्रति पूर्ण आदर सहित धर्मानुरक्त कार्य करते हैं तथा मृत्यूपरात आपकी ही कृपा से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, इसलिए हे अम्बिका ! आप ही त्रैलोक्य को फलदायक हो ॥१६॥ हे देवि ! भसित मनुष्य जब आपका नाम स्मरण करते हैं तो आप उन्हें भयहीन बनाती हैं और स्वस्थ हृदय प्राणि जब आपका स्मरण करते हैं तो आप उन्हें कल्याणदाता बुद्धि प्रदान करती हैं, हे दरिद्रो का दुःख व भय हरण करने वाली ! आपके अतिरिक्त अन्य किस का हृदय सभी के हितार्थ कृपालु अथवा दयापूर्ण रहता है ? ॥१७॥ "समस्त असुरो के निहत होने से विश्व सुखी होवे और नरक प्राप्ति के लिये बहुत अवधि तक पाप कर्म करके इस रण-क्षेत्र मे निहत होकर स्वर्ग को प्राप्त करे" ऐसा सोचकर आप देव शत्रुओं का शमन करती हैं ॥१८॥ आपकी तो दृष्टि मात्र से ही दानुगण भस्म हो सकते हैं, किन्तु दानुओं को अपने शस्त्र से पवित्र कर स्वर्ग मे पहुँचाने के लिये आपने दानुओं

पर शस्त्र चलाया निससदेह आपकी असुरो का हित करने वाली मति सर्व श्रेष्ठ है ॥१६॥ हे देवि ! आपके खड्ग की तीव्र आभा और त्रिशूल के अग्रभाग की काति से भी उन सभी दैत्यो की दृष्टि समाप्त नही हुई, इसका केवल कारण यही है कि आपके शोभायुक्त मुख चन्द्र की आभापूर्ण किरणो से उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगये थे ॥२०॥ हे दुर्गे ! आपका स्वभाव दुराचारी मनुष्यो के दुराचार का विनाश करने वाला एव आपका रूप अतुलनीय व अचिन्त्य है। हे देवि ! आपका वीर्य देवगण के बल को हरने वाले दैत्यो का विनाश करता है, अतएव शत्रुओ पर भी आपकी कृपा पूर्ण स्पष्ट है ॥२१॥

केनोपमाभवतुतेस्यपराक्रमस्यरूपचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ।
चित्तेकृपामरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरदेभुवनत्रयेपि ॥२२
त्रैलोक्यमेतदखिलरिपुनाशनेनत्रातत्वयासमरमूर्द्ध नितेपिहत्वा ।
नीतादिवरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवनमस्ते २३
शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचाम्बिके ।
घटास्वनेनन पाहिचापज्यानि स्वनेनच ॥२४
प्राच्यारक्षप्रतीच्याचचडिकेरक्षदक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्यउत्तरस्यातथेश्वरि ॥२५
सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरतिते ।
यानिचात्यतघोराणितैरक्षास्मास्तथाभुवम् ॥२६
खड्गशूलगदादीनियानिचास्त्राणितेम्बिके ।
करपल्लवसगीनितैरस्मान्रक्षसर्वत ॥२७
एवस्तुतासुरैर्दिव्यैं कुसुमैर्नदनोद्भवै. ।
अर्चिताजगताधात्रीतथागधानुलेपनैः ॥२८

हे देवि ! आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओ को भयदाता एव अत्यन्त अनुपम है। ऐसा अनुपम स्वरूप स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल मे अन्य किसी का नही है। हे अम्बिके ! आपका हृदय दयापूर्ण तो है ही, साथ ही रणक्षेत्र मे निष्ठुरता पूर्ण भी है ऐसी समस्त तीनों लोकों में आप ही हैं ॥२२॥ हे देवि ! आपने शत्रुओं का विनाश

करके तीनों लोकों की रक्षा की है, युद्ध क्षेत्र में उन्हीं शत्रुओं को निहत करके स्वर्ग प्रदान किया एवं उन्हीं मद-मत्त दैत्यों के कारण हमारा भय भी समाप्त होगया, हे देवि ! आपको नमस्कार है ॥२३॥ हे दुर्गे ! शूल द्वारा हमारी रक्षा करे । हे अम्बिके ! खड्ग द्वारा हमारी रक्षा करे । हे देवि ! घण्टा एवं धनुष प्रत्यंचा के शब्द द्वारा हमारी रक्षा करे ॥२४॥ हे चण्डिके ! शूल घुमाकर आप हमारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में रक्षा करे ॥२५॥ तीनों लोकों में विचरने वाले आपके जितने सौम्य रूप एवं भयङ्कर रूप है, उनके द्वारा हमारी व मर्त्यलोक की रक्षा कीजिये ॥२६॥ हे अम्बिका देवि ! अपने कर-कमलों में सुशोभित खड्ग, शूल, गदा आदि अस्त्रों द्वारा चारों ओर हमारी रक्षा करें ॥२७॥ ऋषि ने कहा—सुरगणों ने इस प्रकार उन देवी का गुण-गान किया और नन्दन कानन में उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्य गन्ध और धूपादि के द्वारा भक्ति पूर्वक उन जगज्जननी की पूजा की ॥२८॥

भक्त्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैःसुधूपिता ।
प्राहप्रसादसुमुखासमस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥२९
व्रियतात्रिदशा सर्वेयदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ।
ददाम्यहमतिप्रीत्यास्तवैरेभिःसुपूजिता ॥३०
कर्त्तव्यमपरं यच्चदुष्करतन्नविद्महे ।
इत्याकर्ण्यवचोदेव्या प्रत्यूचुस्तेदिवौकसः ॥३१
भगवत्याकृतसर्वंनकिञ्चिदवशिष्यते ।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकंमहिषासुरः ॥३२
यदिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकंमहेश्वरि ।
संस्मृतासंस्मृतात्वंनोहिंसेथाः परमापदः ॥३३
यश्चमर्त्यस्स्तवैरेभिस्त्वांस्तोष्यत्यमलानने ।
तस्यवित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेस्मत्प्रसन्नात्वंभवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३४
इतिप्रसादितादेवैर्जगतोर्थेतथात्मनः ।
तथेत्युक्त्वाभद्रकालीबभूवांतर्हितानृप ॥३५

इत्येतत्कथितभूपसंभूतामायथापुरा ।
देवीदेवशरीरेभ्योजगत्रयहितैषिणी ॥३६
पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ।
यधायदुष्टदैत्यानांतथाशु भनिशु भयोः ॥३७
रक्षणायचलोकानादेवानामुपकारिणी ।
तच्छ्रणुष्वमयाख्यात यथावत्कययामिते ॥३८

उस समय वर प्रदान करने की इच्छा से उनका मुख मण्डल पर्यन्त शोभायमान होगया और उन्होंने सभी विनीत देवताओं के प्रति कहा ॥२६॥ देवी ने कहा—हे विदगण ! अपना इच्छित वर मुझसे मागो, तुम्हारे स्तवन से मैं परम सन्तुष्ट हुई हू, इसलिये प्रीति सहित वर प्रदान करूँगी ॥३०॥ इस महिषासुर का वध करने के पश्चात् क्या करना है, यह मैं नहीं जानती, अब तुम्हें जो कुछ दु साध्य हो, वही मुझे बताओ, देवी के ऐसे वचन सुनकर देवगण बोले ॥३१॥ देवताओं ने कहा—हे भगवती ! आपने हमारे हितार्थ इस प्रबल शत्रु महिषासुर को मार डाला, इससे हमारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगया है, अब कुछ कार्य शेष नही रहा ॥३२॥ फिर भी यदि आप वर देने की इच्छा ही करती हो तो हमे यही वर दीजिये कि जब कभी हम आपका स्मरण करे, तभी आप हमारे सङ्कट को दूर करें ॥३३॥ जो मनुष्य हमारे इस स्तोत्र द्वारा आपकी स्तुति करें, उनकी आप प्रसन्न होकर ज्ञानाधिक्य, ऐश्वर्य युक्त धन, पत्नी आदि की वृद्धि करना, क्योंकि आप सब कुछ देने में समर्थ हैं ॥३४॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! देवताओं द्वारा विश्व के हितार्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान होगई ॥३५॥ देवताओं के देह से जिस प्रकार विश्व का हित करने वाली वह देवी पूर्वकाल मे आविर्भूत हुई, यह तुमसे वर्णन किया ॥३६॥ अब जिस प्रकार भगवती गौरी के शरीर से उत्पन्न होकर शुम्भ निशुम्भ और अन्य असुरों का नाश ॥३७॥ लोकरक्षार्थ और देवोपकारार्थ किया,उसे यथावत् तुम्हारे प्रति कहता हूँ,श्रवण करो ॥३८॥

७७—देवी से शुंभ के दूत का कथन

पुराशुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यांशचीपतेः।
त्रैलोक्ययज्ञभागाश्चहृतामदबलाश्रयात् ॥१
तावेवसूर्यतांतद्वदधिकारंतथैन्दवम्।
कौबेरमथयाम्यंचचक्रातेवरुणस्यच ॥२
तावेवपवनर्द्धिंचचक्रतुर्वह्निकर्मच।
अन्येषांचाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति।
ततोदेवाविनिर्धूताभ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥३
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यांसर्वेनिराकृताः।
महासुराभ्यांतांदेवींसस्मरुस्त्वपराजिताम् ॥४
तयास्माकंवरोदत्तोयथापत्सुस्मृताखिलाः।
भवतांनाशयिष्यामितत्क्षणात्परमापदः ॥५
इतिकृत्वामतिंदेवाहिमवन्तंनगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्रततोदेवीविष्णुमायांप्रतुष्टुवुः ॥६

ऋषि ने कहा—पुराकाल की बात है, शुम्भनिशुम्भ नामक दो असुरों ने अपने अहंबल से शचिपति देवेन्द्र के त्रैलोक्य का राज्य और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को छीन लिया ॥१॥ उन शुम्भ, निशुम्भ ने चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण के अधिकार को अपने हाथ में लिया और पवन तथा अग्नि का कार्य भी स्वयं करने लगे तथा सभी देवताओं के पदों पर उन्होंने अधिकार कर लिया ॥२॥ फिर उन दोनों घोर असुरों के द्वारा अधिकार से भ्रष्ट और तिरस्कार को प्राप्त हुए, राज्य से हीन एवं पराजित ॥३॥ देवगण उन अपराजिता भगवती का स्मरण करने लगे ॥४॥ देवी ने उन्हें विपद्काल में स्मरण करते ही विपत्ति नष्ट करने का वर दिया था, अब घोर विपत्ति आ गई इसलिये उन्हीं की शरण में जाना उचित है ॥५॥ इस प्रकार विचार करके देवतागण पर्वत श्रेष्ठ हिमालय में जाकर विष्णु की उन माया का स्तव करने लगे ॥६॥

नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः ।
नम प्रकृत्यैभद्रायैनियत्ताःप्रणताःस्मताम् ॥७
रौद्रायैनमोनित्यायैगौर्य्यैधात्र्यैनमोनमः ।
नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥८
ज्योत्स्नायैचंद्ररूपिण्यैसुखायैसततंनमः ।
कल्याण्यै प्रणतामृध्यै सिद्धयै कूर्म्यैनमोनमः ॥९
नैर्ऋत्यैभूभृतांलक्ष्म्यैशर्वाण्यैतेनमोनम. ।
दुर्गायैदुर्गपारायैसारायैसर्वकारिणि ।
ख्यात्यैतथैवकृष्णायैधूम्रायैसततनमः ॥१०
अतिसौम्यातिरौद्रायैनमस्तस्यैनमोनम. ।
नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनम. ॥११
यादेवीसर्वभूतेषुविष्णुमायेतिशब्दिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१३
यादेवीसर्वभूतेषुबुद्धिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१४

देवताओं ने कहा—देवी को नमस्कार है, महादेवी, शिवा, प्रकृति और भद्रा को बारम्बार नमस्कार है, हम विनीत होकर उन भगवती को बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥७॥ रौद्रा नित्या, गौरी, धात्री, जगत्-प्रतिष्ठा और कृत्या को हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥८॥ हम उन प्रकाश स्वरूपा, चन्द्ररूपा तथा परमानन्द स्वरूपिणी देवी को नमस्कार करते है, उन कल्याणि, वृद्धि रूपिणी एव साक्षात् सिद्धि को नमस्कार करते हैं ॥९॥ नैर्ऋति स्वरूपा और राजाओं की गृह लक्ष्मी स्वरूपा देवी को नमस्कार है, शर्वाणि, दुर्गा, दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रा स्वरूपिणी भगवती को हम नमस्कार करते हैं ॥१०॥ जो अति सौम्य तथा अत्यन्त रौद्र हैं, उनको हम विनय पूर्वक नमस्कार करते हैं, जग-प्रतिष्ठा रूपिणी एव कृति स्वरूपा देवी को नमस्कार करते हैं ॥११॥ जो सब प्राणियों मे विष्णुमाया नाम से प्रसिद्ध है उनको बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सब प्राणियों मे चेतना रूप वाली

देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥१३॥ सब प्राणियो में बुद्धि रूप से स्थित रहने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

यादेवीसर्वभूतेषुनिद्रारूपेणसस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यनमस्तस्यैनमोनमः ॥१५
यादेवीसर्वभूतेषुक्षुधारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यै नमोनम ॥१६
यादेवीसर्वभूतेपुच्छायारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमतस्यैनमोनम ॥१७
यादेवीसर्वभूतेषुशक्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१८
यादेवीसर्वभूतेषुतृष्णारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम. ॥१९
यादेवीसर्वभूतेषुक्षांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥२०॥
यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्य नमोनम ॥२१

सब प्राणियो मे निद्रारूप से स्थित देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥ सब जीवो में क्षुधा रूप से स्थित रहने वाली देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥ जो देवी सब भूतों मे छाया रूप से अवस्थित रहती हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१७॥ सब प्राणियो मे शक्ति रूप से विराजमान देवी को अनेक बार नमस्कार ॥१८॥ सब प्राणियो मे तृष्णा रूप से प्रतिष्ठित भगवती को बारम्बार नमस्कार ॥१९॥ सब प्राणियों मे क्षान्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२०॥ सब जीवो मे जाति रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥२१॥

यादेवीसर्वभूतेषुलज्जारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२२

यादेवीसर्वभूतेषुशांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२३
यादेवीसर्वभूतेषुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२४
यादेवीसर्वभूतेषुकान्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२५
यादेवीसर्वभूतेषुलक्ष्मीरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२६
यादेवीसर्वभूतेषुधृतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२७
यादेवीसर्वभूतेषुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२८

जो सब प्राणियो मे लज्जा रूप से रहती हैं, उन देवी को बारम्बार नमस्कार ॥२२॥ सब प्राणियो मे शान्तिरूप से अवस्थान करने वाली देवी को नमस्कार ॥२३॥ सब जीवो मे श्रद्धारूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥२४॥ सब प्राणियो मे कान्तिरूप से विराजमान देवी को नमस्कार ॥२५॥ सब जीवो मे लक्ष्मीरूप से प्रतिष्ठित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब जीवो मे धृति रूप से अवस्थान करने वाली महामाया को नमस्कार ॥२७॥ सब प्राणियो में वृत्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२८॥

यादेवीसर्वभूतेषुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥२९
यादेवीसर्वभूतेषुदयारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३०
यादेवीसर्वभूतेषुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३१
यादेवीसर्वभूतेषुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३२

यादेवीसर्वभूतेषुमातृरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३४
यादेवीसर्वभूतेषुभ्रान्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३५

सब प्राणियो मे स्मृति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब प्राणियो मे दया रूप से अधिष्ठित देवी को नमस्कार ॥३०॥ सब प्राणियों मे नीति रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३१॥ सब जीवो मे तुष्टि रूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥३२॥ सब जीवो मे पुष्टि रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥३३॥ सब प्राणियो मे मातृ रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३४॥ सब प्राणियो मे भ्रान्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥३५॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीभूतानाखिलेषुया ।
भूतेषसततंव्याप्त्यैतस्यैदेव्यैनमोनमः ॥३६
चितिरूपेणयाकृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिताजगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३७
स्मृतासुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेणदिनेषुसेविता ।
करोतुसानः शुभहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥३८
यासांप्रतचोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाचसुरैर्नमस्यते ॥
याचस्मृतातत्क्षणमेवहन्ति नः सर्वापदोभक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥३९
एवंस्तवाभियुक्तानांदेवानांतत्रपार्वती ।
स्नातुमभ्याययौतोयेजाह्नव्यानृपनंदन ॥४०
साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्रका ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥४१
स्तोत्रममैतत्क्रियतेशुम्भदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समस्तैः समरेनिशुम्भेनपराजितैः ॥४२

सब इन्द्रियो और जीवो की अधिष्ठात्री और सब प्राणियों मे व्याप्ति रूप से विद्यमान देवी को नमस्कार ॥३६॥ चैतन्य रूप से सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त

रह कर अधिष्ठान करने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ।।३७।। पुराकाल में अपने इच्छित को प्राप्त करके हमने जिन देवी की स्तुति की और जो मंगलों के करने वाली हैं, उन्हीं भगवती को, प्रचण्ड असुरों से पीड़ित हुए हम नमस्कार करते हैं, भक्ति से झुकते हुए देह वाले हम जब आपका स्मरण करते हैं तब जो तुरन्त ही हमारी विपत्ति को दूर करती हैं, वह देवी हमारी विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से हमारा मंगल करें ।।३८-३९।। ऋषि ने कहा—हे नृपपुत्र ! देवगण इस प्रकार से स्तुति कर ही रहे थे, तभी भगवती पार्वती गंगा स्नान को जाने के लिये उनके सम्मुख हुई ।।४०।। शामित भ्रुकुटि वाली वह पार्वतीजी देवताओं से पूछने लगी—हे देवगण ! तुम किसकी स्तुति कर रहे हो, इतनी बातों के साथ ही पार्वतीजी के देह कोश से भगवती शिवा उत्पन्न होकर बोलीं ।।४१।। युद्ध में निशुंभ द्वारा पराजित और शुंभ द्वारा निष्कासित यह देवगण मेरी स्तुति कर रहे हैं ।।४२।।

शरीरकोशाद्यत्तस्या पार्वत्यानिःसृतांबिका ।
कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगीयते ।।४३
तस्याविनिर्गतायातुकृष्णाभूत्सापिपार्वती ।
कालिकेतिसमाख्याताहिमाचलकृताश्रया ।।४४
ततोविकापरंरूपंबिभ्राणांसुमनोहरम् ।
ददर्शचंडोमुंडश्चभृत्यौशुंभनिशुंभयोः ।।४५
ताभ्यांशुंभायचाख्याताअतीवसुमनोहरा ।
काप्यास्तेस्त्रीमहाराजभासयंतीहिमाचलम् ।।४६
नैवतादृक्क्वचिद्रूपंदृष्टंकेनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतांकाप्यसौदेवीगृह्यतांचासुरेश्वर ।।४७
स्त्रीरत्नमतिचार्वंगीद्योतयंतीदिशस्त्विषा ।
सातुतिष्ठतिदैत्येन्द्रतांभवान्द्रष्टुमर्हति ।।४८
यानिरत्नानिमणयोगजाश्वादीनिवैप्रभो ।
त्रैलोक्येतुसमस्तानिसांप्रतंभांतितेगृहे ।।४९

पार्वती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा 'कौशिकी'

नाम से प्रसिद्ध हुई ॥४३॥ जब पार्वती जी के देह से वह कौशिकी देवी निकल गई तब उन्होंने कृष्ण वर्ण धारण करके कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमाचल मे निवास किया ॥४४॥ तदुपरान्त अम्बिका ने अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया और शुंभ निशुंभ असुरो के भृत्य चण्ड मुण्ड ने उस स्वरूप को देखा ॥४५॥ तब चण्ड मुण्ड शुम्भासुर के पास गये और उनसे बोले—हे महाराज ! एक अत्यन्त रूपवती स्त्री हिमाचल को सुशोभित करती हुई वहाँ रह रही है ॥४६॥ ऐसा श्रेष्ठ स्वरूप किसी ने भी न देखा होगा, इसलिये यह स्त्री कौन है, इसका पता करके, उसे ग्रहण कर लीजिये ॥४७॥ वह सुन्दरांगी स्त्रियो मे रत्नरूप है हे असुरेन्द्र ! वह स्त्री अपने शरीर की कान्ति से सब दिशाओ को प्रकाशित कर रही है, आपको उसे अवश्य देखना चाहिये ॥४८॥ हे प्रभो ! तीनो लोको मे हाथी, घोड़े, रत्नादिक जो सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वह सभी आपके घर मे सुशोभित हैं ॥४६॥

ऐरावत समानीतोगजरत्नपुरंदरात् ।
पारिजातरुश्चायतथैवोच्चैः श्रवाहय ॥५०
विमानहंससयुक्तमेतत्तिष्टतितंगणे ।
रत्नभूतमिहानीतयदासीद्वेधसोद्भुतम् ॥५१
निधिरेपमहापद्म समानीतोधनेश्वरात् ।
किंजल्किनींददौचाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ॥५२
छत्र तेवारुणगेहेवांचनस्राविलिष्ठति ।
तथायस्यदनवरोय पुरासीत्प्रजापते ॥५३
मृत्योरुत्क्रान्तिदानामशक्ति रीशत्वयाहृता ।
पाश सलिलराजस्यभ्रातुस्तवपरिग्रहे ॥५४
निशुंभस्याब्धिजाताश्चसमस्तारत्नजातयः ।
वह्निश्चापिददौतुभ्यमग्नि शौचेचवाससी ॥५५
एवदैत्येंद्ररत्ननिसमस्तान्याहृतानिते ।
स्त्रीरत्नमेपाकल्याणीत्वयाकस्मान्नगृह्यते ॥५६

गजरत्न ऐरावत, सुरत्न पारिजाततरु, और उच्चैःश्रवा अश्व, इन्द्र के यहाँ से लिया गया ॥५०॥ विधाता का हंसयुक्त रत्नरूप विमान भी यहाँ लाकर आपके आँगन में स्थित किया गया ॥५१॥ महापद्म नाम की यह निधि कुबेर से और किञ्जल्किनी नामक कभी भी न मुरझाने वाली पद्ममाला भी समुद्र से प्राप्त की गई ॥५२॥ वरुण का काञ्चनस्रावि छत्र और प्रजापति का यह श्रेष्ठ रथ भी यहाँ विद्यमान है ॥५३॥ यम की मरणदायिनी शक्ति भी आपने छीन ली और आपके भाई निशुम्भ के यहाँ वरुण का पाश ॥५४॥ और समुद्र से प्राप्त हुए सब रत्न विद्यमान हैं अग्नि ने उनको पवित्र करके वस्त्र एवं समर्पित किया है ॥५५॥ हे असुरेन्द्र! इस प्रकार यह सभी रत्न आपने ग्रहण किये हैं तो इस स्त्री रत्न को हो ग्रहण क्यों नहीं करते? ॥५६॥

निशम्येतिवचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामाससुग्रीवंदूतं देव्यामहासुरम् ॥५७
इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ।
यथाचाभ्येतिसम्प्रीत्यातथाकार्यंत्वयालघु ॥५८
सतत्रगत्वायत्रास्तेशैलोद्देशेऽतिशोभने ।
तांचदेवींततः प्राहश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥५९
देविदैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ।
दूतोऽहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः ॥६०
अव्याहताज्ञःसर्वासुयःसदादेवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिःसयदाहशृणुष्वतत् ॥६१
ममत्रैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ।
यज्ञभागानहंसर्वानुपाश्नामिपृथक्पृथक् ॥६२
त्रैलोक्येवररत्नानिममवश्यान्यशेषतः ।
तथैवगजरत्नञ्चहृत्वादेवेन्द्रवाहनम् ॥६३

ऐसी बात करना जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही यहाँ आकर उपस्थित हो जाय ॥५८॥ जिस अत्यन्त सुशोभित पर्वत-प्रान्त मे पार्वती जी निवास कर रही थी, उस स्थान मे पहुच कर वह दूत उनसे बोला ॥५९॥ दूत ने कहा—हे देवि ! दैत्येन्द्र शुम्भ तीनो लोको के ईश्वर हैं, उन्होने मुझे अपने दूत रूप से तुम्हारे पास भेजा है, इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥६०॥ उनकी आज्ञा सब देवताओ को अटल रूप से मान्य है, क्योकि उन्होने देवताओं को पदास्त कर दिया है, अब उन्होने जो कहा है उसे मुझसे श्रवण करो ॥६१॥ उन्होंने कहा है—तीनो लोक मेरे हैं, सभी देवता मेरे वश मे और मेरे अनुगत हैं, समस्त के यज्ञ भाग को भी मैं ही भोगता हूँ ॥६२॥ तीनो लोकों के सम्पूर्ण रत्न मेरे वशीभूत हैं, सभी श्रेष्ठ हाथी तथा गजरत्न ऐरावत भी मैंने ले लिया है ॥६३॥

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नममामरैः ।
उच्चैःश्रवससञ्ज्ञं तुप्रणिपत्यसमर्पितम् ॥६४
यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ।
रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवशोभने ॥६५
स्त्रीरत्नभूतांत्वांदेविलोकेमन्यामहेवयम् ।
सात्वमस्मानुपागच्छयतोरत्नभुजोवयम् ॥६६
मावाममानुजवापिनिशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भजत्वचचलापांगिरत्नभूतासिवैयत ॥६७
परमैश्वर्यमतुलप्राप्स्यसेमत्परिग्रहात् ।
एतद्बुद्धयासमालोच्यमत्परिग्रहतांव्रज ॥६८

समुद्र मथन से निकला हुआ उच्चैश्रवा घोडा भी देवताओ ने विनय पूर्वक मुझे भेंट किया है ॥६४॥ देवताओ, गन्धर्वो और नागो के सभी रत्न इस समय मेरे ही हैं ॥६५॥ हे देवी ! लोक मे तुम्हे हम स्त्री रत्न मानते हैं हम सभी रत्नो के भोगने वाले होने से, तुम रत्न स्वरूपा को हमारे घर आना चाहिये ॥६६॥ हे चञ्चलकटाक्ष वाली ! तुम मुझे या मेरे अत्यन्त पराक्रमी भ्राता निशुम्भ को स्वीकार करो, क्योकि तुम रत्न स्वरूप हो ॥६७॥ मेरी

क मना करने से तुम्हें अतुलनीय परमैश्वर्यों की प्राप्ति होगी, इस बात को बुद्धि से विचार कर मेरा ही चिन्तन करो ॥६८॥

इत्युक्तासातदादेवीगंभीरांतःस्मिताजगौ ।
दुर्गाभगवतीभद्राययेदंधार्यतेजगत् ॥६६
सत्यमुक्तंत्वयानात्रमिथ्याकिंचित्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिःशुंभोनिशुंभश्चापितादृशः ॥७०
किंत्वत्रयत्प्रतिज्ञातंमिथ्यातत्क्रियतेकथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञायाकृतापुरा ॥७१
योमांजयतिसंग्रामेयोमेदर्पंव्यपोहति ।
योमेप्रतिबलोलोकेसमेभर्त्ताभविष्यति ॥७२
तदागच्छतुशुंभोत्रनिशुंभोवामहासुरः ।
मांजित्वाकिंचिरेणात्रपाणिंगृह्णातुमेलघु ॥७३
अवलिप्तासिमैवंत्वंदेविब्रूहिममाग्रतः ।
त्रैलोक्येकःपुमांस्तिष्ठेदग्रेशुंभनिशुंभयोः ॥७४

ऋषि ने कहा—दूत की बात सुनकर विश्व को धारण करने वाली भगवती दुर्गा ने गम्भीर भाव पूर्वक कुछ हँस कर कहा ॥६६॥ देवी बोली—हे दूत ! तुम्हारा कथन यथार्थ है, शुम्भ तीनो लोकों के स्वामी हैं और निशुम्भ भी उन्हीं के तुल्य हैं ॥७०॥ किन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की हुई है, उसे किस प्रकार तोड़ दूँ ? अल्प बुद्धि के वश में होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसे श्रवण करो ॥७१॥ जो पुरुष युद्ध में मुझे पराजित करेगा, जो मेरा दर्प खण्डित करेगा और जो मेरे समान बलवान् होगा, वही पुरुष मेरा पति होगा ॥७२॥ अब वह शुम्भ या निशुम्भ यहाँ आकर उनमें जो समर्थ हो, वह मुझे पराजित करके ग्रहण करलें, विलम्ब न करें ॥७३॥ दूत ने कहा—हे देवि ! तुम्हें अभिमान गर्व है, मुझसे ऐसा न कहो, शुम्भ निशुम्भ का सामना तीनो लोकों में कौन कर सकता है ? ॥७४॥

अन्येषामपिदैत्यानांसर्वेदेवानवैयुधि ।
तिष्ठन्तिसम्मुखेदेविकिंपुनःस्त्रीत्वमेकिका ॥७५

इन्द्राद्या सकलादेवास्तस्थुर्यैषानसयुगे ।
शुम्भादीनांकथंतेषांस्त्रीप्रयास्यसिसम्मुखम् ।।७६
सात्वगच्छमयैवोक्तापार्श्वंशुम्भनिशुम्भयो ।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवामागमिष्यसि ।।७७
एवमेतद्बलीशुम्भोनिशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किंकरोमिप्रतिज्ञामेयदनालोचितापुरा ।।७८
सत्वगच्छमयैवोक्त यदेतत्सर्वमाहृत ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्रायसचयुक्त करोतुतत् ।।७९

शुम्भ निशुम्भ का तो कहना ही क्या है, उनके अनुचर दैत्यों के साम ही सब देवता मिलकर भी नही ठहर सकते तो तुम स्त्री होकर उनसे f प्रकार संग्राम करोगी ? ।।७६।। इसलिये तुम मेरी बात मानकर शुम्भ-निश के पास चलो, अन्यथा मैं ही तुम्हारे केश पकड़ कर घसीट ले चलूँगा, f तुम्हारा सब गर्व चूर्ण हो जायगा ।।७७।। देवी ने कहा—हे दूत ! नि निशुम्भ दोनों ही निःसंदेह ऐसे महा बलवान् हैं, परन्तु क्या करूँ, पहिले बात को न जानकर अल्प बुद्धि से ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठी ।।७८।। इसलिये वहाँ जाकर मैंने जो कहा है, वह आदर पूर्वक उनसे कहो, इसके पश्चा जो कुछ उचित समझे, वह करेंगे ।।७९।।

७८—धूम्रलोचन वध

इत्याकर्ण्यवचोदेव्या सदूतोमर्षपूरित ।
समाचष्टसमागम्यदैत्यराजायविस्तरात् ।।१
तस्यदूतस्यतद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट्ततः ।
सक्रोध प्राहदैत्यानामधिपधूम्रलोचनम् ।।२
हेधूम्रलोचनाशुत्वस्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानयबलाद्दुष्टाकेशाकर्षणविह्वलाम् ।।३

तत्परित्राणद कश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपर ।
सहतव्योमरोवापियक्षोगन्धर्वएववा ॥४
तेनाज्ञप्तस्तत शीघ्र सदैत्योधूम्रलोचन ।
वृत षष्टयासहस्राणाममुराणाद्रुतययौ ॥५
सदृष्ट्वातातनोदेवीतुहिनाचलमस्थिताम् ।
जगादोच्चै प्रयाहीतिमूलशुम्भनिशुम्भयो ॥६
नचेत्प्रीत्याद्यभवतीमद्भर्तारमुपैष्यसि ।
ततोबलान्नयाम्येपकेशाकर्पणविह्वलाम् ॥७

ऋषि ने कहा—देवी के यह वचन सुनकर दूत को अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने दैत्येश्वर के पास जाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥१॥ दूत की बात सुनकर दैत्यराज शुंभ ने क्रोध पूर्वक दैत्यों के अधिपति धूम्रलोचन से कहा ॥२॥ हे धूम्र लोचन ! तुम सेना सहित वहाँ जाकर उस दुष्टा के केश पकड़ कर यहाँ घसीट लाओ ॥३॥ यदि कोई उसकी रक्षा में तत्पर हो, तो वह देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी हो, उसे मार डालो ॥४॥ ऋषि ने कहा—शुंभ की आज्ञा सुनकर धूम्रलोचन साठ हजार दैत्यों को साथ लेकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा ॥५॥ और हिमाचल में बैठी हुई देवी से उस धूम्रलोचन ने उच्च स्वर से कहा—शुंभ निशुंभ के पास चलो ॥६॥ यदि तुम स्वेच्छा से उनके पास न चलोगी तो मैं तुम्हारे केश पकड़ कर बलपूर्वक वहाँ ले चलूँगा ॥७॥

दैत्येश्वरेणप्रहितोबलवान्बलसवृत ।
बलान्नयसिमामेवतत किंतेकरोम्यहम् ॥८
इत्युक्तःसोभ्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचन ।
हुंकारेणैवतभस्मसाचकाराम्बिकातत ॥९
अथक्रुद्ध महासैन्यमसुराणांतथाम्बिका ।
ववर्पसायकैस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधै ॥१०
ततोधुतसट कोपात्कृत्वानाद सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायांसिहोदेव्यास्तुवाहन ॥११

कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चरणेनान्यान्निजघान महासुरान् ॥१२
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान्पृथक् ॥१३
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१४

देवी ने कहा—तुम्हे दैत्यो के अधिपति शुंभ ने यहाँ भेजा है, तुम स्वयं बलशाली और सेना के सहित यहाँ आये हो, यदि तुम बलपूर्वक ले जाना चाहोगे तो भी मैं तुम्हारा क्या कर सकूँगी ? ऋषि ने कहा—देवी की बात सुनते ही धूम्रलोचन उनकी ओर दौडा, परन्तु देवी के हुंकार से ही भस्म होगया ॥८-९॥ तब उसकी सेना ने क्रोध करके देवी के ऊपर तीक्ष्ण बाण, परशु और शक्ति की वर्षा की ॥१०॥ यह देखकर देवी के वाहन सिंह ने क्रोध से कपायमान होकर भयङ्कर गर्जन किया और असुर-सेना पर टूट पडा ॥११॥ उसने किसी को पंजे से, किसी को मुख से, किसी को होठ से आक्रमण पूर्वक मारा ॥१२॥ किसी का हृदय नख से चीर दिया, किसी का मस्तक हथेली के प्रहार से, शरीर से अलग किया ॥१३॥ अनेक असुरो के बाहु और मस्तक छिन्न-भिन्न कर डाले और बहुतो का रक्त-पान कर लिया ॥१४॥

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१५
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥१६
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥१७
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
गच्छत तत्र गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥१८
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥१९

तस्य हतायांदुष्टायांसिंहेचविनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतावद्धागृहीत्वातामथाम्बिकाम् ॥२०

क्षण भर मे ही उस सिंह ने असुरो की उस विशाल सेना को नष्ट कर डाला ॥१५॥ धूम्रलोचन का देवी के द्वारा और सम्पूर्ण सेना का उनके वाहन सिंह द्वारा मारा जाना सुनकर ॥१६॥ दैत्येश्वर शुंभ अत्यन्त क्रोध मे भर गया, उसके होंठ फड़कने लगे और उसने चण्ड-मुण्ड को इस प्रकार आज्ञा दी ॥१७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुत-सी सेना लेकर वहाँ जाओ और स्त्री को तुरन्त पकड़ लाओ ॥१८॥ उसके केश पकड़ कर खींच लाओ या उसे बाँध कर ले आओ, यदि ऐसा न कर सको तो पूर्ण बल लगाकर उसका वध कर देना ॥१९॥ उसको और उसके सिंह को मार कर उसी दशा मे यहाँ ले आओ ।२०।

७९–चण्डमुण्ड वध

आज्ञप्तास्तेततोदैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरंगबलोपेताययुरभ्युद्यतायुधा ॥१
ददृशुस्तेततोदेवीमीषद्धासांव्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरिशैलेन्द्रशृंगेमहतिकांचने ॥२
तेदृष्ट्वातांसमादातुमुद्यमचक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ॥३
ततः कोपंचकारोच्चैरंबिकातानरीन्प्रति ।
कोपेनचास्यावदनमषीवर्णमभूत्तदा ॥४
भृकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ।
कालीकरालवदनाविनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥५
विचित्रखट्वांगधरानरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमांसातिभैरवा ॥६

अतिविस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयनानादापूरितदिङ्मुखा ॥७

ऋषि ने कहा—शुंभ की ऐसी आज्ञा प्राप्त होते ही चण्डमुण्ड अपने साथ चतुरंगिणी सशस्त्र सेना लेकर वहाँ गये और उन्होंने देखा कि हिमालय के स्वर्णिम शिखर पर सिंहारूढ़ देवी मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं ॥१-२॥ वह असुर और उनके साथी देवी को इस प्रकार स्थित देख, धनुष खेंच कर और तलवार उठाकर उनको पकड़ने का प्रयत्न करने लगे ॥३॥ तब देवी ने उन सबके प्रति अत्यन्त क्रोध किया, इस कारण देवी का मुख कृष्ण वर्ण का हो गया ॥४॥ फिर देवी ने जैसे ही भृकुटी चढ़ाई, वैसे ही उनके ललाट से खड्ग-पाश धारिणी कराल वदना भयङ्कर काली उत्पन्न हुई ॥५॥ वह विचित्र खट्-वाग युक्त, मुण्डमाल से सुशोभित, बाघम्बर धारण किये अत्यन्त शुष्क माँस वाली जिह्वा को लपलपाती हुई भीतर की ओर धुसे हुए लाल नेत्र वाली उत्पन्न होती अपने घोर शब्द से दिशाओं को परिपूर्ण करने लगी ॥६-७॥

सावेगेनाभिपतिताघातयतीमहासुरान् ।
सैन्येतत्रसुरारीणामभक्षयततद्बलम् ॥८
पार्ष्णिग्राहाकुशग्राहयोधघटासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेनमुखेचिक्षेपवारणान् ॥९
तथैवयोधतुरगैरथसारथिनासह ।
निक्षिप्यवक्त्रेदशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम् ॥१०
एकजग्राहकेशेषुग्रीवायामथचापरम् ।
पादेनाक्रम्यचैवान्यमुरसान्यमपोथयत ॥११
तैर्मुक्तानिचशस्त्राणिमहास्त्राणितथासुरैः ।
मुखेनजग्राहरुषादशनैर्मथितान्यपि ॥१२
बलिनातद्बलसर्वमसुराणांदुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१३
असिनानिहता केचित्केचित्खट्वागताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरादंताग्राभिहतारणे ॥१४

तदुपरान्त वह देवी दैत्य-सेना के ऊपर वेग सहित टूट पडी और सब असुरो को नष्ट करती हुई उनके भक्षण मे तत्पर हुई ॥८॥ तथा पार्श्व रक्षक, अंकुश हाथ मे लिये हुए योद्धा और घटाओ के सहित ही हाथियो को पकड-पकड कर मुख मे डालने लगी ॥९॥ तथा अश्व, रथ और सारथी सहित सबको मुख मे डाल कर भयङ्कर रूप से चवाने लगी ॥१०॥ उस काली ने किसी के केश पकडे, किसी का कण्ठ दबाया और किसी को छाती पर चढ कर पैर की ठोकर से उसे मार डाला ॥११॥ उन असुरो के शस्त्रास्त्रो को भी क्रोधपूर्वक मुख मे लेकर दाँतो से चवाने लगी ॥१२॥ वह काली उन महाबली एव विशाल शरीर वाले असुरो के दल को मसलते-मसलते किसो को भक्षण कर रही थी और किसी को मार कर भगाती थी ॥१३॥ कोई असुर खड्ग के प्रहार से, कोई खट्वाग के द्वारा ताडित होने से और कोई दाँतो के अग्रभाग द्वारा चबाये जाने से नष्ट होगये ॥१४॥

क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणानिपातितम् ।
दृष्ट्वाचडोभिदुद्रावताकालीमतिभीषणाम् ॥१५
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीतामहासुर ।
छादयामासचक्रैश्चमु डक्षिप्तै सहस्रश ॥१६
तानिचक्राण्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ।
वभूर्यथार्कविवानिसुवहूनिघनोदरम् ॥१७
ततोजहासातिरुपाभीमभैरवनादिनी ।
कालीकरालवक्त्रातदुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१८
उत्थायचमहासिहदेवीचडमधावत ।
गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥१९
छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रश्चक्रेनादसुभैरवम् ॥२०

उस असुर–सैन्य के इस प्रकार क्षणर मे नष्ट हो जाने से क्रोधित हुआ चण्ड अत्यन्त वेग पूर्वक काली की ओर दौडा ॥१५॥ और उसने उन भीमाक्षी देवी पर भीषण बाण-वर्षा की तथा सहस्रों चक्रो को घुमा कर उन्हे आच्छादित कर दिया ॥१६॥ वह सभी चक्र देवी के मुख मे घुसने लगे और

मेघमण्डल में प्रविष्ट अनेक सूर्यमण्डलों के समान सुशोभित हुए ॥१७॥ फिर घोर निनाद करती हुई काली ने भीषण अट्टहास किया, उस समय वह अपनी दुदर्श दन्त-प्रभा से चमकने लगी ॥१८॥ तदनन्तर वह देवी अपने महा वाहन सिंह पर चढ़ी होकर चण्ड की ओर वेग से दौड़ी और उसके बाल पकड़ कर अपने खड्ग से उसका शिर काट डाला ॥१९॥ शीश कटते समय चण्डासुर ने घोर गर्जना की, जिससे तीन लोक त्रसित होगये ॥२०॥

अथमुण्डोभ्यधावत्ताहष्ट्वाचण्ड निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौखट्वागाभिहतरुषा ॥२१
हतशेषततःसैन्यदृष्ट्वाचण्ड निपातितम् ।
मुण्ड चसुमहावीर्यदिशोभेजेभयातुरम् ॥२२
शिरश्चण्डस्यकालीसागृहीत्वामौडमेवच ।
प्राहप्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्यचण्डिकाम् ॥२३
मयातवात्रोपहृतौचण्डमुण्डौमहापशू ।
युद्धयज्ञेस्वयशुम्भनिशुम्भचहनिष्यसि ॥२४
तवानीतौततोदृष्ट्वाचण्डमुण्डौमहासुरौ ।
उवाचकालीकल्याणीललितचण्डिकावच ॥२५
यस्मान्च ड चमुण्ड चगृहीत्वात्वमुपागता ।
चामुण्डेतिततोलोकेख्यातादेवीभविष्यसि ॥२६

चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड काली की ओर दौड़ा, तब देवी ने उसे भी खट्वाग से काट कर गिरा दिया ॥२१॥ फिर बची हुई सेना भी चण्ड-मुण्ड का वध देखकर भयातुर हुई इधर-उधर भाग चली ॥२२॥ फिर वह काली चण्ड-मुण्ड के कटे हुए मस्तक उठाकर चंडिका के पास गई और प्रचण्ड अट्टहास पूर्वक बोली ॥२३॥ महा पशु चण्ड-मुण्ड नामक दो असुरों को मार कर यह उपहार प्रस्तुत है, अब शुंभ निशुंभ का वध आप स्वयं ही करना ॥२४॥ ऋषि ने कहा—उन चण्ड-मुण्ड नामक असुरों को उस दशा में वहाँ देखकर चंडिका देवी ने काली से कहा—॥२५॥ देवी बोली—तुम चण्ड-मुण्ड

को लेकर यहाँ आई हो, इसलिये लोक में तुम्हारा 'चामुण्डा' नाम प्रसिद्ध होगा ॥२६॥

८०—रक्त बीज वध

चंडेचनिहतेदैत्येमुंडेचविनिपातिते ।
बहुलेषुचसैन्येषुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥१
ततःकोपपराधीनचेताः शुम्भ प्रतापवान् ।
उद्योगसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेशह ॥२
अद्यसर्वबलैर्दैत्या षडशीतिरुदायुधा ।
कम्बूनाचतुराशीतिर्निर्यान्तुस्वबलैर्वृता ॥३
कोटिवीर्याणिपंचाशदसुराणांकुलानिवै ।
शतंकुलानिधौम्राणांनिर्गच्छंतुममाज्ञया ॥४
कालकादौहृदामौर्या कालकेयास्तथासुरा. ।
युद्धायसज्जानिर्यान्तुआज्ञयात्वरितामम ॥५
इत्याज्ञाप्यासुरपति शुम्भोभैरवशासन ।
निर्जगाममहासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥६
आयांतंचंडिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैःपूरयामासधरणीगगनांतरम् ॥७

ऋषि ने कहा—चण्ड-मुण्ड के साथ ही समस्त सेना के नष्ट होने के कारण असुरेश्वर ॥१॥ प्रतापी शुम्भ ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक सम्पूर्ण असुर सेना को एक साथ वहाँ आकर युद्ध करने की आज्ञा दी ॥२॥ सम्पूर्ण एक साथ ही लेकर उदायुध नामक छियासी और कम्बु नामक चौरासी दैत्य वहाँ जाँय ॥३॥ कोटिवीर्य नामक पचास कुल के धूम्रवंश नामक एक सौ कुल के असुर मेरी आज्ञा से निकले ॥४॥ काल, दौहृद मौर्य और कालकेय वंश के असुर भी शीघ्र सज कर संग्राम में पहुंचे ॥५॥ असुरेश्वर शुम्भ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों की संख्या में महासेना को लेकर स्वयं भी संग्राम के लिये चला ॥६॥

इस अत्यन्त भयङ्कर सैन्य-समूह को आता देखकर चंडिका ने प्रत्यंचा की घोर टङ्कार से पृथिवी-आकाश को भर दिया ॥७॥

सचसिंहोमहानादमतीवकृतवान्नृप ।
घटास्वनेनतन्नादमविकाचाप्यवृंहयत् । ८
धनुर्ज्यासिंहघंटानांनादापूरितदिङ्मुखः ।
निनादैर्भीषणैःकाली जग्येविस्तारितानना ॥९
तन्निनादमुपश्रुत्यदैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवीसिंहस्तथाकालीशरौघैः परिवारिता ॥१०
एतस्मिन्नन्तरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यंबलान्विता ॥११
ब्रह्मेशगुहविष्णूनातथेंद्रस्यचशक्तय ।
शरीरेभ्योविनिष्क्रम्यतद्रूपैश्च डिकांययु ॥१२
यस्यदेवस्ययद्रूपयथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥१३
हंसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमंडलु ।
आयाताब्रह्मणःशक्तिर्ब्रह्माणीसाभिधीयते ॥१४

हे राजन् ! फिर देवी के वाहन सिंह ने घोर गर्जन किया और देवी ने अपने घंटा के शब्द से उस नाद को द्विगुण कर दिया ॥८॥ प्रत्यंचा की टंकार से और सिंह तथा घंटा के नाद से दिशाएँ परिपूर्ण होगईं और तब काली ने भी घोर नाद पूर्वक जय-जयकार किया ॥९॥ उस नाद को सुनकर दैत्य-सेना ने चण्डिका, काली और सिंह को बाणों से क्रोधपूर्वक घेर लिया ॥१०॥ हे राजन् ! तभी असुरों के नाश और देवताओं के हित के लिये अत्यन्त बल, पराक्रम से युक्त ॥११॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कार्तिकेय और इन्द्र की शक्तियाँ उनके देह से प्रकट हो होकर उन्हीं देवताओं का रूप ग्रहण कर चण्डिका के निकट आईं ॥१२॥ जिस देवता का जो स्वरूप और वाहन था, वैसे ही रूप और वाहन आदि से सज्जित हुई शक्तियाँ असुरों से संग्राम करने को उद्यत हुईं ॥१३॥

ब्रह्माजी की शक्ति हाथ मे अक्ष माला और कमण्डलु धारण किये हुए हंस विमान पर आरूढ़ होकर वहाँ आई, उस शक्ति का नाम ब्रह्माणी हुआ ॥१४॥

माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलयाप्राप्ताचन्द्रलेखाविभूषणा ॥१५
कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौदैत्यानम्बिकागुहरूपिणी ॥१६
तथैववैष्णवीशक्तिर्गरुडोपरिसंस्थिता ।
शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१७
यज्ञवाराहमतुलरूपंयाबिभ्रतोहरे ।
शक्ति साप्याययौतत्रवाराहोबिभ्रतीतनुम् ॥१८
नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशवपु ।
प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥१९
वज्रहस्तातथैवैन्द्रीगजराजोपरिस्थिता ।
प्राप्तासहस्रनयनायथाशक्रस्तथैवसा ॥२०
ततः परिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभि ।
हन्यतामसुरा शीघ्र ममप्रीत्याहचण्डिकाम् ॥२१

शिवजी की शक्ति त्रिशूल को धारण किये, चन्द्ररेखा से सुशोभित, नागो के आभूषण धारण करके और बैल पर चढ कर आई, वह माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१५॥ कौमारी शक्ति हाथ मे शक्ति धारण किये, सुन्दर मोर पर चढ कर आई ॥१६॥ विष्णु की शक्ति वैष्णवी शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनु और खड्ग धारण करके युद्ध के लिये आई ॥१७॥ यज्ञ वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु की शक्ति भी वाराहरूप मे वहाँ आई ॥१८॥ नारसिंही शक्ति नृसिंह रूप मे वहाँ आई, उनके सटाक्षेप से नक्षत्रों की पंक्ति चलायमान होगई ॥१९॥ इन्द्र की शक्ति हाथ मे वज्र धारण कर, हाथी पर चढी हुई युद्ध क्षेत्र मे आई, उसका नाम ऐन्द्रीशक्ति हुआ ॥२०॥ फिर उन सब देव-शक्तियो के सहित चण्डिकामे भगवान् शंकर ने कहा—मेरी प्रसन्नता के लिये इन सब असुरो का शीघ्र ही वध कर डालो ॥२१॥

ततोदेवीशरीरात्तु विनिष्क्रांतातिभीषणा ।
चंडिकाशक्तिरत्युग्राशिवाशतनिनादिनी ॥२२
साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूतत्वगच्छभगवन्पार्श्वंशुम्भनिशुम्भयो ॥२३
ब्रू हिशुम्भनिशुम्भचदानवावतिगर्वितौ ।
येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिता ॥२४
त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतांदेवा सन्तुहविर्भुजः ।
यूयंप्रयातपातालयदिजीवितुमिच्छथ ॥२५
बलावलेपादथचेद्भवतो युद्धकांक्षिणः ।
तदागच्छततृप्यतुमच्छिवा पिशितेनवः ॥२६
यतोनियुक्तोदूत्येनतयादेव्याशिवःस्वयम् ।
शिवदूतीतिलोकेस्मिस्तत साख्यातिमागता ॥२७॥

फिर देवी के देह से अत्यन्त भयंकर सौ शिवाओं के सम्मिलित नाद करने के समान भीषण नाद करती हुई चण्डिका शक्ति प्रकट हुई ॥२२॥ तब उन अपराजिता चण्डिका देवी ने भगवान् शंकर से कहा—हे भगवन् ! आप शुंभ निशुंभ के पास जाकर दौत्य कर्म कीजिये ॥२३॥ वहां पहुंचकर शुंभ निशुंभ सहित सब युद्धाभिलाषी दैत्यों से कहिये ॥२४॥ हे दैत्यो ! इन्द्र तीनों लोकों को पावें, देवता पुनः यज्ञ भाग को भोगने वाले हों और तुम यदि जीवन की इच्छा करते हो तो पाताल लोक में जा कर रहो ॥२५॥ अथवा बल से गर्वित हुये तुम यदि युद्ध करना चाहते हो तो आओ, मेरी शिवाएँ तुम्हारे रक्त पान से तृप्त होंगी ॥२६॥ देवी ने शिवजी को दौत्य कर्म में स्वयं नियुक्त किया, इसलिए उन्हें 'शिवदूती' कहा गया ॥२७॥

तेपिश्रुत्वावचोदेव्याः शर्वाख्यात महासुराः ।
अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्रकात्यायनीस्थिता ॥२८
ततःप्रथममेवाग्रे शरैश्चशक्त्यृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारयः ॥२९

साचतत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेदलोलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभि ॥३०
तस्याग्रतस्तथाकालीशूलपातविदारितान् ।
खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वतीव्यचरत्तदा ॥३१
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजस ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येनयेनस्मधावति ॥३२
माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रेणवैष्णवी ।
दैत्याञ्जघानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपना ॥ ३
ऐन्द्रीकुलिशपातेनशतशोदैत्यदानवा ।
पेतुर्विदारिता पृथ्व्यांरुधिरौघप्रवर्षिण ॥३४
तुण्डप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षस ।
वाराहमूर्त्यान्यपतश्चक्रेणचविदारिता: ॥३५

शिवजी के द्वारा सन्देश प्राप्त करके वह घोर असुर क्रोध पूर्वक उन देवी कात्यायनी के समीप पहुँचे ॥२८॥ फिर वे उन देवी के समक्ष बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि की भयकर वर्षा करने लगे ॥२६॥ असुरो द्वारा चलाये गये सभी शस्त्रास्त्रों को चण्डिका देवी ने अपने बड़े-बड़े बाणों से लीला पूर्वक काट डाला ॥३०॥ तभी उन चण्डिका देवी के सामने काली देवी शत्रु असुर को शूल से विदीर्ण करती और खट्वांग से मारती हुई घूम रही थी ॥३१॥ जिस जिस ओर शत्रुगण दौड रहे थे, उसी-उसी ओर जाकर ब्रह्माणी शक्ति उन पर जल छिड़क कर उन्हें वीर्य और तेज से हीन करने लगी ॥३२॥ माहेश्वरी त्रिशूल से, वैष्णवी चक्र से और कौमारी शक्ति के द्वारा ही बहुत से दैत्यों को मार रही थीं ॥३३॥ ऐन्द्री शक्ति के वज्र प्रहार से ताडित हुए सैकडों दैत्य रक्त वमन करते-करते धराशायी होने लगे ॥३४॥ वाराह शक्ति के मुख प्रहार और दंष्ट्रा के अग्रभाग से ताडित असुरगण हृदय विदीर्ण होने के कारण पृथिवी पर गिरने लगे ॥३५॥

नखैर्विदारिताश्चान्यान्भक्षयन्तीमहासुरान् ।
नारसिंहीचचाराजौनादापूर्णदिगंतरा ॥३६

चडाट्टहासैरसुरा शिवदूत्यभिदूपिता ।
पेतु पृथिव्यापतितास्ताश्चखादायसातदा ॥३७
इतिमातृगणक्रुद्ध मर्द्यतमहासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिका ॥३८
पलायनपरान्दृष्ट्वादैत्यान्मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौक्रुद्धोरक्तबीजोमहासुरः ॥३९
रक्तबिंदुर्यदाभूमौपतत्यस्यशरीरत ।
समुत्पततिमेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहासुर ॥४०
युयुधेसगदापाणिरिन्द्रशक्त्यामहासुर ।
ततश्चैन्द्रीस्ववज्रे ण रक्तबीजमताडयत् ॥४१
कुलिशेनाहतस्याशुबहुसुस्रावशोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततोयोधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमा ॥४२
यावत पतितास्तस्यशरीराद्रक्तबिंदव ।
तावत पुरुषाजातास्तद्वीर्यबलविक्रमा ॥४३

नारसिंही शक्ति अपने गर्जन से दिशाओं और आकाश को परिपूर्ण करके दैत्यों को नख से विदारण कर भक्षण करते करते, इस प्रकार वह युद्ध भूमि मे घूम रही थी ॥३६॥ शिवदूती के प्रचण्ड अट्टहास से अभिभूत होकर राक्षसगण धराशायी होने लगे और फिर उन गिरे हुये असुरो का वह शिवदूती भी भक्षण करने लगी ॥३७॥ इस प्रकार उन्हें क्रोध पूर्वक मर्दन करते देख कर दैत्य-सेना भाग पडी ॥३८॥ उनको भागता हुआ देख कर रक्त बीज नामक दैत्य क्रोधपूर्वक युद्ध के लिये आया ॥३९॥ जैसे ही उस असुर के शरीर से रक्त की एक बूँद पृथिवी पर टपकती वैसे ही उसी के समान एक दैत्य उत्पन्न हो जाता ॥४०॥ गदा ग्रहण पूर्वक वह असुर ऐन्द्री शक्ति के साथ युद्ध करने लगा तब ऐन्द्री शक्ति ने उस पर वज्र-प्रहार किया ॥४१॥ वज्र प्रहार के कारण रक्तबीज के देह से टपके हुए रक्त से उसी के समान रूप और पराक्रम वाले अनेक वीर उत्पन्न हो गये ॥४२॥ रक्त की जितनी बूँदें टपकी

उतने ही योद्धा उत्पन्न हुए, वे सब योद्धा बल, वीर्य, पराक्रमादि में रक्तबीज के ही समान थे ।।४३।।

तेचापियुयुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवा ।
सममातृभिरत्युग्र शस्त्रपातातिभीषणम् ।।४४
पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ।
ववाहरक्त पुरुषास्ततोजाता सहस्रश ।।४५
वैष्णवीसमरेचैनंचक्रेणाभिजघानह ।
गदयाताडयामासऐन्द्रीतमसुरेश्वरम् ।।४६
वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशोजगद्व्याप्त तत्प्रमाणैर्महासुरं ।।४७
शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ।
माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजमहासुरम् ।।४८
सचापिगदयादैत्य सर्वाएवाहनत्पृथक् ।
मातृ कोपसमाविष्टोरक्तबीजोमहासुरम् ।।४९

रक्त की बूँदों से उत्पन्न हुए योद्धागण उन मातृगणों के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा घोर संग्राम करने लगे ।।४४।। जब ऐन्द्री शक्ति ने उसके मस्तक को पुनर्वार छिन्न किया, तब क्षत स्थान से प्रवाहित हुए रक्त से सहस्रों असुर उत्पन्न हो गये ।।४५।। वैष्णवी शक्ति ने उसे चक्र से तथा ऐन्द्री शक्ति ने वज्र से मारा ।।४६।। वैष्णवी शक्ति के चक्र से कट कर उस दैत्य के देह से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उससे उसी के समान उत्पन्न हुए सहस्रों विकराल असुरों से यह संसार व्याप्त हो गया ।।४७।। तब उस रक्तबीजासुर को कौमारी अपनी शक्ति से, वाराही खड्ग से और माहेश्वरी त्रिशूल से मारने लगी ।।४८।। तब वह घोर राक्षस रक्तबीज भी सब मातृगणों पर गदा द्वारा प्रहार करने लगा ।।४९।।

तस्याहतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपातयोवैरक्तौघस्तेनासञ्छतशोसुरा ।।५०

तैश्चासुरसृक्सम्भूतैरसुरैः सकलञ्जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१
तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वाचण्डिकाप्राहसत्वरा ।
उवाचकालीचामुण्डेविस्तीर्णं वदनङ्कुरु ॥५२
मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबीजात्प्रतीच्छत्वंवक्त्रेणानेनवेगिना ॥५३
भक्षयतीचररणेतदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेषक्षयंदैत्यःक्षीणरक्तोगमिष्यति ।
भक्ष्यमाणास्त्वयाचोग्रानचोत्पत्स्यन्तिचापरे ॥५४
इत्युक्त्वाताततोदेवीशूलेनाभिजघानतम् ।
मुखेनकालीजगृहेरक्तबीजस्यशोणितम् ॥५५

शक्ति, शूल आदि विभिन्न प्रकार के अस्त्रों से आहत हुए उस रक्तबीज के देह से पृथिवी पर पतित हुए रक्त बिंदुओं द्वारा सैकडों असुरों की उत्पत्ति हुई ॥५०॥ उसके रक्त से उत्पन्न हुए असुरों से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त होगया, इससे देवगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥५१॥ तब देवताओं को भयभीत देख कर चण्डिका ने काली से कहा—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फाडो ॥५२॥ और मेरे द्वारा शस्त्र मारने से गिरती हुई रक्त की बूंदों या उससे उत्पन्न होने वाले असुरों को वेग पूर्वक अपने मुख मे लेती जाओ ॥५३॥ तथा उससे उत्पन्न हुए राक्षसों का भक्षण करती हुई युद्ध भूमि मे घूमती रहो, इस प्रकार रक्त के क्षीण होने पर ही यह नष्ट हो सकेगा ॥५४॥ इस प्रकार तुम उसका भक्षण प्रारम्भ करोगी तो उसका पुन उत्पन्न होना रुक जायगा, ऋषि ने कहा— काली के प्रति ऐसा कह कर चण्डिका देवी ने उस असुर को त्रिशूल से आहत किया और उससे गिरे हुए रक्त को काली ने अपने मुख मे ग्रहण कर लिया ॥५५॥

ततोसावाजघानाथगदयातत्रचण्डिकाम् ।
नचास्यावेदनाचक्रेगदापातोल्पिकामपि ॥५६

तस्याहतस्यदेहात्तुवहुसुस्रावशोणितम् ।
यतस्ततस्वक्त्रेणचामुण्डासम्प्रतीच्छनी ॥५७
मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुरा ।
ताचखादाथचामुण्डापपौतस्यचशोणितम् ॥५८
देवीशूलेनचक्रेणवाणैरसिभिरिष्टिभिः ।
जघानरक्तबीजंतचामुण्डापीतशोणितम् ॥५९
सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसहहतोहतः ।
नीरक्तश्चमहीपालरक्तवीजोमहासुर ॥६०
ततस्तेहर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥
तेषामातृगणोमत्तोननर्त्तासृङ्मदोद्धत ॥६१

फिर उस रक्तबीज ने देवी पर गदा का प्रहार किया, परन्तु उससे देवी को किंचित् भी वेदना नही हुई ॥५६॥ इधर रक्तबीज के देह से गिरते हुए रक्त को चामुण्डा अपने मुख मे लिये जा रही थी ॥५७॥ काली के मुख मे गिरे हुए रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए उनका भी उसने भक्षण कर लिया ॥५८॥ जब इस प्रकार चामुण्डा ने रक्तबीज का रक्त पान किया तब चण्डिका ने उसे शूल, चक्र, बाण, खड्ग और ऋष्टि से मारा ॥५९॥ फिर वह घोर असुर शस्त्रो द्वारा क्षत-विक्षत तथा रक्त-हीन होकर पृथिवी मे गिर पड़ा ॥६०॥ हे राजन्! इस पर देवताओं को महान् हर्ष हुआ और वे मातगण उन असुरो का रक्त पान करके मदोन्मत्त हुई नाचने लगी ॥६१॥

८१–निशुम्भ वध

विचित्रमिदमाख्यातभगवन्भवतामम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यरक्तबीजवधाश्रितम् ॥१
भूयश्चेच्छाम्यहश्रोतुंरक्तबीजेनिपातिते ।
चकारशुम्भोयत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपन २॥

चकारकोवमतुलरक्तबीजेनिपातिते ।
शुम्भासुरोनिशुम्भश्चहतेष्वन्येपुचाहवे ॥३
हन्यमानमहासैन्य विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोथमुख्ययासुरसेनया ॥४
तस्याग्रतस्तथापृष्ठे पार्श्वयोश्चमहासुरा ।
सदष्टौष्ठपुटा क्रुद्धाहतु देवीमुपाययु ॥५
आजगाममहावीर्य शुम्भोपिस्वबलैर्वृत ।
निहतु चण्डिकांकोपात्कृत्वायुद्ध तुमातृभि ॥६
ततोयुद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयो ।
शरवर्षमतीवोग्र मेघयोरिववर्षतो ॥७

राजा ने कहा—हे भगवन् आपने मुझ से रक्तबीज के वध के विषय मे देवी चरित्र के अद्भुत माहात्म्य का वर्णन किया ॥१॥ अत्यन्त क्रोधित शम्भु ने रक्तबीज के मारे जाने पर जो कार्य किया, मैं अब उसे सुनना चाहता हूँ ॥२॥ ऋषि बोले—युद्ध मे रक्तबीज के समाप्त होने पर एव विभिन्न सेनाओं के मारे जाने पर दोनों राक्षस शुभ और निशुभ बहुत क्रोधित हुए ॥३॥ इस प्रकार उस सभी सेना को मरता देखकर निशुभासुर अत्यन्त क्रोध सहित राक्षसों की मुख्य सेना को साथ लेकर देवी के सामने दौड़ा ॥४॥ तथा उस घोर असुर के सम्मुख, पृष्ठ भाग में एव अगल-बगल बडे बडे राक्षस अपने ओठो को भीचते हुए क्रोध सहित देवी को समाप्त करने के लिए आये ॥५॥ तत्पश्चात् महाबलशाली असुर शुभ अपनी सेना को साथ लेकर देवी के गणो के साथ युद्ध करते हुए देवी को मारने के निमित्त क्रोधपूर्वक धाया ॥६॥ तब दो मेघो के समान अत्यन्त प्रचण्ड बाण-वर्षा करते हुए शुभ व निशुभ का देवी के साथ भयकर युद्ध होने लगा ॥७॥

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यांचण्डिकास्वशरोत्करैः ।
ताडयामासचांगेषुशस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥८

निशुम्भोनिशितंखड्गंचर्मचादायसुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्निसिंहंदेव्यावाहनमुत्तमम् ॥९
ताडितेवाहनेदेवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१०
छिन्नेचर्मणिखड्गे चशक्तिंचिक्षेपसोऽसुरः ।
तामप्यस्यद्विधाचक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥११
कोपाध्मातोनिशुम्भोथशूलंजग्राहदानवः ।
आयातंमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२
अथादायगदांसोऽपिचिक्षेपचण्डिकांप्रति ।
सापिदेव्यास्त्रिशूलेनभिन्नाभस्मत्वमागता ॥१३
ततः परशुहस्तंतमायान्तंदैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्यदेवीबाणौघैरपातयतभूतले ॥१४

चण्डिका देवी उन दोनों राक्षसों द्वारा चलाये गये बाणों को अपने बाणों के द्वारा जल्दी से काटकर अपने शस्त्रों से दोनों विकराल असुरों के अंगों पर वार करने लगीं ॥८॥ तेज धार वाली तलवार और चमकती ढाल निशुंभ ने देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक में मारी ॥९॥ वाहन पर आक्रमण हुआ देखकर देवी ने क्षुरप्र नाम के अस्त्र से निशुंभ की तेज तलवार काटकर उसकी अष्टचन्द्रा ढाल भी काट डाली ॥१०॥ तलवार और ढाल के कट जाने पर असुर निशुंभ ने देवी पर शक्ति छोड़ी लेकिन देवी ने चक्र द्वारा उस सम्मुख आती हुई शक्ति के भी दो टुकड़े कर दिये ॥११॥ फिर क्रोध में भरे हुए राक्षस ने शूल लेकर चलाया और देवी ने आक्रमण में शूल को भी घूँसा मारकर चूर्ण कर डाला ॥१२॥ तब उस दानव ने घुमाकर गदा चलाई, किन्तु देवी ने उस गदा को भी अपने त्रिशूल से खण्ड करके भस्म कर दिया ॥१३॥ फिर जब वह महादानव फरसा हाथ में लेकर आया तो देवी ने उसे बाणों से घायल कर धरती पर गिरा दिया ॥१४॥

तस्मिन्निपतितेभूमौनिशुम्भेभीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धःप्रययौहन्तुमम्बिकाम् ॥१५

सरथस्थस्तदात्युच्चै गृ हीतपरमायुधै ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषवभौनम ॥१६
समायांतमालोक्यदेवीशंखमवादयत् ।
ज्याशब्द चापिधनुषश्चकारातीवदु सहम् ॥१७
पूरयामासककुभोनिजघटास्वनेनच ।
समस्तदै त्यसैन्यानातेजोवधविधायिना ॥१८
तत सिंहमहानादै स्त्याजितेभमहामदै: ।
पूरयामासगगनगातथैवदिशोदश ॥१६
तत कालीसमुत्पत्यगगनक्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यांतन्निनादेनप्राक्स्वनास्तेतिरोहिता ॥२०
अट्टाट्टहासमशिवशिवदूतीचकारह ।
तै शब्दै रसुरास्त्रेसु शुम्भ कोपपरययौ ॥२१

महाबली भयंकर भाई निशु भ को पृथ्वी पर गिरता देख कर राक्षस शु भ अत्यन्त क्रोधपूर्वक देवी को मारने आया ।।१५।। तथा बहुत लम्बी महा पराक्रमयुक्त अष्टभुजाओ सहित और बडे बडे शस्त्र लेकर रथ मे बैठकर वह सम्पूर्ण आकाश मे फैला हुआ दीखने लगा ।।१६।। उसे आता देखकर देवी ने शख बजाकर अत्यन्त असहनीय शब्द धनुष की प्रत्यचा से किया ।।१७।। तथा सम्पूर्ण असुरो की सेना का गतिशील विनाश करने वाले अपने घण्टे की शब्द-ध्वनी से सम्पूर्ण दिशाओ को भर दिया ।।१८।। अनन्तर सिंह ने भी हाथियों के महामद को नष्ट करने वाले महानाद से आकाश, पृथ्वी एव दस दिशाओं को पूर्ण कर दिया ।।१६।। फिर देवी काली ने आकाश मे उछलकर अपने दोनो हाथो से पृथ्वी पर आघात किया जिसकी शब्द ध्वनि से पहली समस्त शब्द-ध्वनि मन्द हो गयी ।।२०।। शिवदूती भी शत्रु राक्षसो का अमगल करने वाली तेज हसी मे हँसी, उस के शब्द से राक्षस लोग दुखी हुए और शु भ अत्यन्त क्रोधित हुआ ।।२१।।

शुम्भेनागत्ययाशक्तिर्मु क्ताज्वालातिभीषणा ।
आयांतीवह्निकूटाभासानिरस्त महोल्कया ॥२३

सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तंलोकत्रयांतरम् ।
निर्घातनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥२४
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेदस्वशरैरुग्रैःशतशोथसहस्रशः ॥२५
तत सा चण्डिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ।
सतदाभिहतोभूमौमूर्छितोनिपपातह ॥२६
ततोनिशुंभः सम्प्राप्यचेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघानशरैर्देवींकालींकेसरिणतथा ॥२७
पुनश्चकृत्वाबाहूनामयुतदनुजेश्वरः ।
चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचण्डिकाम् ॥२८

आकाश में स्थित देवगण तब जय-जय शब्द करने लगे जब अम्बिका ने शुंभ से कहा "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" ॥२२॥ असुर शुंभ ने अत्यन्त भयंकर तेज अग्नि वाली शक्ति छोड़ी, अग्नि के समान आती हुई उन शक्ति को देवी ने महोल्कानाम्नी शक्ति से काट कर दूर फेंक दी ॥२३॥ फिर तीनों लोक शुम्भ दानव के सिंहनाद से पूर्ण हो गये, तब हे अवनीपाल ! आकाश से उत्पन्न विद्युत् की भयानक शब्द-ध्वनि ने शुंभ के नाद पर विजय पाली ॥२३॥ शुंभ द्वारा चलाये गये सौ सहस्र शरों को देवी ने अपने तेज बाणों से काट डाला और देवी द्वारा चलाये गये सैंकड़ों सहस्रों बाणों को शुंभ ने भी अपने तेज बाणों से काट डाला ॥२५॥ तत्पश्चात् चण्डिका देवी ने क्रोध सहित शूल द्वारा शुंभ को घायल किया और शूल से आहत असुर शुंभ अचेत होकर धरती पर गिर गया ॥२६॥ इसके बाद चेतना आने पर निशुंभासुर धनुष के बाणों से देवी काली और सिंह को आहत करने लगा ॥२७॥ फिर राक्षसराज दैत्य निशुंभ ने दस हजार भुजाऐं धारण कीं और उनसे चक्र व युद्धास्त्रों द्वारा चण्डिका देवी पर छा गया ॥२८॥

ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गार्त्तिनाशिनी ।
चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकांश्चतान् ॥२९॥

ततोनिशु भोवेगेनगदामादायचण्डिकाम् ।
अभ्यधावतवैहतु दैत्यसेनासमावृत ॥३०
तस्यापततएवाशुगदाचिच्छेदचण्डिका ।
खड्गेनशितधारेणसचशूलसमाददे ॥३१
शूलहस्तंतमायान्तंनिशु भममरार्दनम् ।
हृदिविव्याधशूलेनवेगाविद्धेनचण्डिका ॥३२
भिन्नस्यतस्यशूलेनहृदयान्नि सृतोपर ।
महाबलोमहावीर्यस्तिष्ठेतिपुरुषोवदन् ॥३३
तस्यनिष्क्रामतोदेवीप्रहस्यस्वनवत्तत ।
शिरश्चिच्छेदखड्गेनततेसावपतद्भुवि ॥३४
तत सिंहश्चखादोग्रद ष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरास्तांस्तथाकालीशिवदूतीतथापरान् ॥३५

इससे क्रोधित हुई सकट नाशिनी देवी दुर्गा ने उन सम्पूर्ण बाणो और चक्र को काट डाला ॥२६॥ उसके पश्चात् निशु भ दैत्यो की सेना सहित गदा लेकर उन देवी को नष्ट करने के लिए अत्य त तेजी से दौडा ॥३०॥ तब निशु भ राक्षस की उस आती हुई गदा को चण्डिका देवी ने अत्यन्त तेज धार वाली तलवार से काट डाला फिर निशु भ ने शूल ले लिया ॥३१॥ फिर शूल लेकर सामने आते हुए असुर निशु भ को देवी ने महान् गति से अपना त्रिशूल चला कर हृदय के बीच वेध दिया ॥३८॥ तो शूल से बिंधे असुर हृदय से एक दूसरा महाबली और महावीर्यवान् पुरुष देवी से 'ठहर' शब्द कहता हुआ निकला ॥३३॥ तब देवी ने हंसकर नाद करते हुए उस बाहर आये हुए असुर का सिर तलवार से काट डाला और वह धरती पर गिर पडा ॥३४॥ इसके बाद सिंह तज दांतोंसे गर्दन चबाकर असुर का भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्य दूसरे राक्षसो का भक्षण करने लगी ॥३५॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्ना केचिन्नेशुर्महासुरा ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेनतोयेनान्येन्निराकृता ॥३६

माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्नाःपेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुंडघातेनकेचिन्चूर्णीकृताभुवि ।।३७
खंडखडचचक्रेणवैष्णव्यादानवाःकृताः ।
वज्रेणचैंद्रीहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे ।।३८
केचिद्विनेशुरसुरा केचिन्नष्टामहाहवात् ।
भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगाधिपैः ।।३९

कई विकराल राक्षस कौमारी-शक्ति के बल से कटकर मरगये। ब्रह्माणी के मन्त्रपूत जल को छूने से ही अपने आप अनेक राक्षस समाप्त हो गये ।।३६।। माहेश्वरी के त्रिशूल की चोट से बहुत से अनेक दानव अलग-अलग होकर गिर पडे और कोई-कोई दानव वाराही के मुख के आघात से पिसकर भूमि पर गिर गये ।।३७।। वैष्णवी ने चक्र से अन्य दूसरे असुरो को टुकडे-टुकडे कर डाला और ऐन्द्री द्वारा छोडे गये वज्र से घायल होकर ।।३८।। उन दानवो मे कोई समाप्त हुए और कोई-कोई महायुद्ध से भाग गये। तथा जो बचे, उनका काली, शिवदूती और सिंह ने भक्षण कर लिया ।।३९।।

८२-शुम्भ वध

निशुम्भनिहतंदृष्ट्वाभ्रातरंप्राणसमितम् ।
हन्यमानंबलचैवशुम्भःक्रुद्धोब्रवीद्वचः ।।१
बलावलेपाद्दुष्टेत्वंमादुर्गेगर्वमावह ।
अन्यासांबलमाश्रित्ययुध्यसेयातिमानिनी ।।२
एकैवाहजगत्यत्रद्वितीयाकाममापरा ।
पश्यैतादुष्टमय्येवविशन्त्योमद्विभूतयः ।।३
ततःसमस्तास्तादेव्याब्रह्माणीप्रमुखालयम् ।।
तस्यादेव्यास्तनौजग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ।।४

अहविभूत्यावहुभिरिहरूपैर्यास्थिता ॥
तत्संहृतंमयैकैवतिष्ठाम्याजौस्थिरोभव ॥५
तत प्रवृते युद्ध देव्या शुम्भस्यचोभयो ।
पश्यतासर्वदेवानामसुराणांचदारुणम् ॥६
शरवर्षैं शितैं शस्त्रैस्तथाचास्त्रैःसुदारुणैः ।
ततोयुद्धमभूद्भूय सर्वलोकभयंकरम् ॥७

ऋषि बोले—शुम्भ ने प्राणों के समान भाई निशुम्भ और सेना को मरा देखकर क्रोधपूर्वक कहा ॥१॥ हे दुष्ट दुर्गे ! तू बल का अभिमान न कर, तू दूसरों के बल पर आश्रित होकर मानवों के समान युद्ध करती है ॥२॥ देवी ने कहा—अरे दुष्ट ! इस समर में केवल एक मैं ही हूँ, मेरे अलावा दूसरा कौन है ? देख, यह मेरी सब विभूति मुझ में ही विद्यमान है ॥३॥ ऋषि ने कहा—इसके पश्चात् ब्रह्माणी आदि समस्त शक्तियाँ देवी की देह में विलीन हो गईं और तब अकेली अम्बिका ही सम्मुख रह गईं ॥४॥ फिर देवी बोली—अरे शुम्भ ! इस स्थान पर मैं अपनी विभूति द्वारा अनेक रूप में विद्यमान थी, अब उन सभी रूपों को नष्ट करके मैं युद्ध-क्षेत्र में अकेली ही रही हूँ, तू स्थिर हो ॥५॥ ऋषि ने कहा—"तदनन्तर यह सब देखते हुए देवता और दानवों के सामने असुर शुम्भ और देवी दानवों का भयंकर युद्ध होने लगा ॥६॥ फिर देवी और शुम्भासुर में परस्पर बाणवर्षा, शोणित व दारुण अस्त्रों के प्रहार द्वारा ऐसा युद्ध हुआ, जो सम्पूर्ण लोगों में भय उत्पन्न करने वाला था ॥७॥

दिव्यान्यस्त्राणिशतशोमुमुचेयान्यथाम्बिका ।
बभजतानिदैत्येंद्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥८
मुक्तानितेनचास्त्राणिदिव्यानिपरमेश्वरी ।
बभञ्जलीलयैवोग्रहुँकारोच्चारणादिभिः ॥९
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयतसोसुरः ।
साचतत्कुपितादेवीधनुश्चिच्छेदचेषुभिः ॥१०

छिन्नेधनुषिदैत्येंद्रस्तथाशक्तिमथाददे ।
चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥११
ततःखड्गमुपादायशतचन्द्रचभानुमत् ।
अभ्यधावत्ततादेवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१२
तस्यापतततएवाशु खड्गं चिच्छेदच डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥१३
अश्वांश्चपातयामासरथसारथिनासह ।
हताश्वःसतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ।
जग्राहमुद्गरघोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१४

अम्बिका द्वारा छोड़े गये शत-शत दिव्य अस्त्रों को उस दैत्यराज शुंभासुर ने उनको काटने वाले अस्त्रों से सभी अस्त्रों को काट डाला ॥८॥ और शुंभासुर द्वारा छोड़े गये सभी दिव्यास्त्रों को देवी चण्डिका ने अपनी लीला से व हुंकार द्वारा तोड़ डाला ॥९॥ फिर उस भयंकर राक्षस ने सैकड़ों वाणों की वर्षा द्वारा देवी को आच्छादित कर दिया। तब देवी ने भी क्रोध से वाणों द्वारा उसका धनुष काट डाला ॥१०॥ धनुष कट जाने पर शुंभ राक्षस ने शक्ति ले ली, किन्तु देवी ने उस शक्ति को भी चक्र से उसके हाथों ही में काट डाला ॥११॥ तब वह दैत्यराज ने दीप्तियुक्त विशिष्ट चन्द्रढाल और तलवार लेकर देवी पर आक्रमण वाला हुआ ॥१२॥ तब देवीने शुंभ की तलवार एवं सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल ढाल को धनुष से तीक्षण वाण छोड़कर काट डाला ॥१३॥ जब उस राक्षस-राज के रथ के घोड़े निर्जीव हो गये, धनुष खण्डित होगया और सारथी भी नष्ट हो गया, तब वह भयंकर मुगद्‌र लेकर अम्बिका को मारने के लिये तैयार हुआ ॥१४॥

चिच्छेदापततस्तस्यमुद्गरंनिशितैः शरैः ।
तथापिसोऽभ्यधावत्तांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥१५
सर्मुष्टिंपातयामासहृदयेदैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तंचापिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥१६

तलप्रहाराभिहतोनिपपातमहीतले ।
सदैत्यराज सहसापुनरेवतथोत्थित ॥१६
उत्पत्यचप्रगृह्योच्चैर्देवीगगनमास्थित ।
तत्रापिसानिराधारायुयुधेतेनचण्डिका ॥१८
नियुद्ध खेतदादैत्यश्चण्डिकाचपरस्परम् ।
चक्रतु प्रथमसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१६
ततानियुद्ध सुचिरकृत्वातेनाम्बिकासह ।
उत्पात्यभ्रामयामासचिक्षेपधरणीतले ॥२०
सक्षिप्तोधरणीप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगित ।
अभ्यधावनदुष्टात्माचण्डिकानिधनेच्छया ॥२१

तब सामने आये दानव का मुद्गर देवी ने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर दिया, किन्तु फिर भी वह महादानव मुष्टिका तानकर तेज गति से देवी पर दौड़ा ॥१५॥ महादानव ने वह मुष्टिका प्रहार देवी के हृदय पर किया। तब देवी ने भी थप्पड़ द्वारा उसके सीने पर आघात किया॥१६॥ थप्पड़ के आघात से पीड़ित दैत्यराज पृथ्वी पर गिरा और तुरन्त ही पुन उठा ॥१७॥ इसके पश्चात् उछल कर देवी को लेकर शुभ आकाश में पहुँच गया और देवी भी आकाश में निरालम्ब होकर केवल भुजाओं से युद्ध करने लगी ॥१८॥ आकाश में शुभ व चण्डिका देवी अद्वितीय और मुनियों को अचम्भे में डालने वाला युद्ध करने लगे ॥१६॥ उस दानव के साथ बिना अस्त्र केवल भुजाओं से युद्ध करके उसे उछाल कर ऊपर घुमाया और फिर धरती पर पटक दिया ॥२०॥ धरती पर गिरकर वह दुष्टात्मा दानव मुष्टिका उठाकर चण्डिका को मारने की इच्छा से आक्रामक हुआ ॥२१॥

तमायांततदेवीसर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यापातयामासभित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥२२
सगतासु पपातोर्व्यांदेवीशूलाग्रविक्षत ।
चालयन्सकलापृथ्वीसाब्धिद्वीपासपर्वताम् ॥२३

ततः प्रसन्नमखिलंहतेतस्मिन्दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलंचाभवन्नभः ॥२४
उत्पातमेघाःसोल्कायेप्रागासंस्तेशमययुः ।
सरितोमार्गवाहिन्यस्तथासुम्भेनिपातिते ॥२५
ततोदेवगणाःसर्वेहर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहतेतस्मिन्गंधर्वाललितंजगुः ॥२६
अवादयंस्तथैवान्येननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुःपुण्यास्तथावाताःसुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥२७
जज्वलुश्चाग्नयःशांताःशान्ताःदिग्जनितस्वनाः ॥२८

उस दैत्यराज शुंभ को आक्रामक देव देवी ने अपने शूल से उसका हृदय वेध दिया और उसको पुनः पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२२॥ देवी के शूल के अग्र भाग द्वारा शुंभ का हृदय आहत हुआ जब वह निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिरा तो उस समय समुद्र, द्वीप और पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी विचलित हो गई ॥२३॥ उस दुरात्मा दानव के मारे जाने पर सभी आनन्दित हुए, समार बहुत स्वस्थ हुआ और आकाश पूर्णतः स्वच्छ होगया ॥२४॥ शुंभ के रहते हुए जो भी अनिष्टकारी मेघ और उत्पातगण विद्यमान थे, वे सब शुंभ के मृत्यूपरान्त अदृश्य होगये और नदियाँ भी अपने समुचित मार्गों में बहने लगी ॥२५॥ (उस दानव के समाप्त होने पर सम्पूर्ण देवगण के चित्त में अत्यन्त हर्ष हुआ और गन्धर्व मधुर गान करने लगे ॥२६॥ कोई वाद्य बजाने लगा और अप्सराएँ नाचने लगी,) शीतल मन्द वायु चलने लगी और सूर्य ने भी सुन्दर आभा फैला दी ॥२७॥ यज्ञ की बुझी अग्नि जलने लगी और सभी दिशाओं में शान्त शब्द फैला प्रतीत हुआ ॥२८॥

८३—देवी स्तोत्र

देव्याहतेतत्रमहासुरेन्द्रे सेन्द्राःसुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनींतुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकासिवक्त्राब्जविकासिताशाः ॥१

देवाऊचु' देविप्रपन्नार्तिहरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ।
प्रसीदविश्वेश्वरिपाहिविश्व त्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥२
आधारभूताजगतस्त्वमेकामहीस्वरूपेणयत स्थितासि ।
अपास्वरूपस्थितयात्वयैतदाप्याय्यतेकृत्स्नमलघ्यवीर्ये ॥३
त्वंवैष्णवीशक्तिरनतवीर्याविश्वस्यबीजपरमासिदेवि ।
मायासमोहितदेविसमस्तमेतत्त्वंप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥४
विद्या समस्तास्तवदेविभेदा स्त्रिय समस्ता सकलजगत्सु ।
त्वयैकयापूरितमबयैतत्कातेस्तुतिःस्तव्यपरापरोक्ति ॥५
सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वस्तुतास्तुतयेकावाभवतिपरमोक्तय. ॥६
सर्वस्यबद्धिरूपेणजनस्यहृदिसस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥७

ऋषि ने कहा—देवी ने जब उस महादानव को नष्ट कर दिया, तो समस्त देवता अपने इच्छित फल प्राप्त होने के कारण प्रसन्न मुख कमलो से इन्द्र व अग्नि को आगे कर समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर उन कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ॥१॥ देवता बोले—"हे शरणागत दुख-भजन देवि ! प्रसन्न हो, हे सम्पूर्ण जगत् की जननी प्रसन्न हो, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न हो, तुम विश्व की रक्षा करो, हे देवि ! चराचरो की तुम ही ईश्वरी हो ॥२॥ हे देवि ! तुम ही जगत् की आधार रूप हो, क्योकि पृथ्वी का रूप तुम्हीं मे स्थित है हे देवि ! जल का स्वरूप भी तुम ही धारण करके इस सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लघन नही किया जा सकता ॥३॥ हे देवि ! अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति तुम ही हो, ससार की हेतुभूत परमलीला तुम ही हो, सम्पूर्ण जगत् को तुमने ही मोहित कर रखा है, हे देवि ! तुम जब प्रसन्न होती हो, तब ही पृथ्वी पर मुक्ति का कारण होती हो ॥४॥ हे देवि ! तुम्हारी मूर्ति विशेष मे ही समस्त विद्या विद्यमान हैं और त्रिलोक मे समस्त स्त्रियाँ तुम्हारी मूर्ति विशेष हैं, हे जननी ! तुम एक अकेली इस जगत् मे व्याप्त हो तुम स्तुति से परे और तुम्हारी स्तुति हो श्रेष्ठ उक्ति है और अधिक क्या

स्तुति करे ॥५॥ समस्त प्राणी-स्वरूप में तुम ही प्रकाशमान हो और स्वर्ग व मुक्ति तुम ही प्रदान करती हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के लिए कोई भी उक्ति श्रेष्ठ नहीं है,क्योंकि तुम निर्गुण हो और निर्गुण के गुणों की कीर्तन रूप स्तुति किस प्रकार सम्भव है ? ॥६॥ तुम बुद्धि के रूप में सबके हृदय में बसी हो, हे स्वर्ग-मुक्ति दाता ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥७॥

कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौशक्तेनारायणिनमोऽस्तुते ॥८
सर्वमङ्गलमाङ्गल्येशिवेसर्वार्थसाधिके ।
शरण्येत्र्यम्बकेगौरिनारायणिनमोऽस्तुते ॥९
सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ।
गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोऽस्तुते ॥१०
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरेदेविनारायणिनमोऽस्तुते ॥११
हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिकेदेविनारायणिनमोऽस्तुते ॥१२
त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोऽस्तुते ॥१३
मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थानेनारायणिनमोऽस्तुते ॥१४

हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥११॥ हंस युक्त विमान में ब्राह्मी रूप धारण कर युद्ध क्षेत्र में कुशाभिमन्त्रित जल छिड़कती हो, हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१२॥ माहेश्वरी रूप में बैल पर सवार होकर अर्द्धचन्द्र और नाग भूषण सहित त्रिशूल आपने धारण किया,हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥१३॥ तुमने कौमारी रूप में मयूर और कुक्कुट युक्त होकर महा शक्ति धारण की, हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१४॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग गृहीतपरमायुधे ।
प्रसीदवैष्णवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥१५
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणिशिवेनारायणिनमोस्तुते ॥१६
नृसिंहरूपेणोग्रेणहतुं दैत्यान्कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहितेनारायणिनमोस्तुते ॥१७
किरीटिनिमहावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरेचैंद्रिनारायणिनमोस्तुते ॥१८
शिवदूतीस्वरूपेणहतदैत्येमहाबले ।
घोररूपेमहारावेनारायणिनमोस्तुते ॥१९
दंष्ट्राकरालवदनेशिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डेमुण्डमथनेनारायणिनमोस्तुते ॥२०
लक्ष्मिलज्जेमहाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधेध्रुवे ।
महारात्रेमहामायेनारायणिनमोस्तुते ॥२१

वैष्णवी रूप में शंख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष परम आयुधों को तुमने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१५॥ वराह रूप में तुमने हे शिवे ! हे नारायणि ! दाँतों से जल-मग्न पृथ्वी को उठाकर महाचक्र ग्रहण किया, तुमको नमस्कार ॥१६॥ नृसिंह रूप में दानवों के नाश को उद्यत हो त्रैलोक्य की रक्षा करने वाली हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१७॥ हे नारायणि ! हे ऐन्द्री ! हजारों नयनों से उज्ज्वल किरीटों के धारण करने वाली एवं महावज्र ग्रहण करने वाली, तुमको नमस्कार ॥१८॥ शिवदूती के रूप में

भयंकर स्वरूप धारण कर हे नारायणि तुमने महाबलि दानवों को समाप्त किया,तुमको नमस्कार ॥१९॥ दंष्ट्रा और कराल मुख के सिरों की माला धारण कर हे नारायणि ! तुमने चण्ड और मुण्ड नाम के दानवों को नष्ट किया, तुमको नमस्कार ॥२०॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि, महामाया, ध्रुवा तुम ही हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२१॥

मेधेसरस्वतिवरेभूतिबाभ्रवितामसि ।
नियतेत्वप्रसीदेशेनारायणिनमोस्तुते ॥२२
सर्वत पाणिपादातेसर्वतोक्षिशिरोमुखे ।
सर्वत श्रवणघ्राणेनारायणिनमोस्तुते ॥२३
सर्वस्वरूपेसर्वेशेसर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहिनोदेविदुर्गेदेविनमोस्तुते ॥२४
एततेवदनसौम्यलोचनत्रयभूषितम् ।
पातुनः सर्वभीतिभ्य कात्यायनिनमोस्तुते ॥२५
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलपातुनोभीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते ॥२६
हिनस्तिदैत्यतेजासिस्वनेनापूर्यंयाजगत् ।
साघंटापातुनोदेविपापेभ्योन सुतानिव ॥२७
असुरासृग्वसापंकचर्चितस्तेकरोज्ज्वलः ।
शुभायखड्गोभवतुचंडिकेत्वानतावयम् ॥२८

मेधा, सरस्वती, भूति, बाभ्रवी, तामसि तुम ही हो, हे नारायणि ! हे ईशे ! हे नियते ! तुम प्रसन्न हो, तुमको नमस्कार ॥२२॥ सर्वत्र हाथ, पैर, सिर, मुख, कान, नासिका तुम्हारे ही स्वरूप हैं हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥२३॥ सर्वस्वरूप, सर्वेश्वरी, सर्वशक्ति समन्वित हे देवि ! हे दुर्गे ! भय से रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२४॥ तुम्हारा सौम्य मुख और उस पर विभूषित त्रिनेत्रों वाली हे कात्यायनि ! सबसे रक्षा करो, तुमको नमस्कार ॥२५॥ ज्वाला से भी अधिक कराल बहुत तेज और दैत्यासुर को नष्ट करने वाला

तुम्हारा त्रिशूल हे भद्रकालि ! हमारी भय से रक्षा करे तुमको नमस्कार ॥२६॥ अपनी ध्वनि से विश्व को पूरित कर दानवों के तेज को नष्ट करने वाला तुम्हारा घंटा पुत्रवत् पापो से हमारी रक्षा करे ॥२७॥ असुरगण के लहू और वसा के पङ्क से चर्चित किरणो के समान उज्ज्वल यह शोभायमान तलवार, हे चण्डिके ! हमारा कल्याण करे ॥२८॥

रोगानशेषानपहंसितुष्टारुष्टातुकामान्सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानानविपन्नराणांत्वामाश्रिताह्याश्रयतांप्रयांति ॥२९
एतत्कृतंयत्कदनंत्वयाद्यधर्मद्विषादेविमहासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिकृत्वाम्बिकेतत्प्रकरोतिकान्या ॥३०
विद्यासुशास्त्रेषुविवेकदीपेष्वाद्येषुवाक्येषुचकात्वदन्या ।
ममत्वगर्त्तेतिमहांधकारेविभ्रामयत्येतदतीवविश्वम् ॥३१
रक्षांसियत्रोग्रविषाश्चनागायत्रारयोदस्युबलानियत्र ।
दावानलोयत्रतथाब्धिमध्येतत्रस्थितात्वंपरिपासिविश्वम् ॥३२
विश्वेश्वरीत्वंपरिपासिविश्वंविश्वात्मिकाधारयसीतिविश्वम् ।
विश्वेशवद्याभवतीभवतिविश्वाश्रयायेत्वयिभक्तिनम्रा ॥३३
देविप्रसीदपरिपालयनोरिभीतेर्नित्ययथासुरवधादधुनैवसद्य ।
पापानिसर्वजगतांप्रशमंनयाशुउत्पातपाकजनिताश्चमहोपसर्गान् ॥३४
प्रणतानांप्रसीदत्वंदेविविश्वार्त्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्येलोकानांवरदाभव ॥३५

प्रसन्न होने पर सभी रोगो को नष्ट करती हो एवं अप्रसन्न होने पर सभी आकांक्षित वस्तुओं को छीन लेती हो। तुम्हारे आश्रितो पर कभी कोई विपत्ति नहीं रहती और तुम्हारे आश्रित ही अन्य सबको आश्रय देने वाले होते हैं ॥२९॥ अनेक रूप धारण कर तुमने धर्म के विरोधी घोर असुरो का नाश यह क्या कोई दूसरी नारी कर सकती है ? ॥३०॥ विद्या, सद्शास्त्रो विवेक-दीप और वेदो व आदि वाक्यो के होते हुए भी महा अंधकारमय ममत्व रूपी गर्त मे विश्व को तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन बचा सकता है ॥३१॥ जहाँ असुर हैं, विकराल सर्प हैं, शत्रु हैं, चोरो के समूह हैं, दावानल है, तुम वहाँ

इत्थयदायदावाधादानवोत्थाभविष्यति ।
तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसक्षयम् ।।५१

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी सूखा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेंगे उस समय मैं बिना मनुष्य योनि के ही जन्म लूँगी ।।४३।। उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे "शताक्षी" कहकर कीर्त्तन करेंगे ।।४२।। तत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरगण ! स्वकीय देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूँगी ।।४५।। इसलिए जगत् म मेरा "शाकम्भरी" नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुर्गम नाम के महादानव को समाप्त करूँगी ।।४६।। और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूँगी ।।४७।। उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊँगी ।।४८।। जिस काल मे अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों मे भारी विपत्ति पैदा करेगा,उस समय अनेक षट्पद समन्वित भ्रमरों का रूप ग्रहण कर ।।४९।। तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव को मारूँगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से स्तुति करेंगे ।।५०।। इस तरह जिस काल मे असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जायगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूँगी ।।५१।।

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभि स्तवैश्चमांनित्यस्तोष्यतेय समाहित ।
तस्याहसवलांवाधांनाशयिष्याम्यसशयम् ।।१
मधुकैटभनाशचमहिषासुरघातनम् ।
कोर्त्तयिष्यतियेतद्वद्वधसुम्भनिशुम्भयो ।।२
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतस ।
स्तोष्यन्तिचैवयेभक्त्याममामाहात्म्यमुत्तमम् ।।३

शत्रुओं को नष्ट करती रहो, यही वर हम माँगते हैं ॥३७॥ देवी बोली—वैवस्वत मनवन्तर के बीच अट्ठाईसवें युग में दो महादानव शुंभ और निशुंभ के नाम से जन्म लेंगे ॥३८॥ उस समय मैं यशोदा के गर्भ से नायनन्द के गेह में जन्म लूँगी और विन्ध्याचलवासिनी होकर उन दोनों को नष्ट करूँगी ॥३९॥ फिर पृथ्वी पर अत्यन्त विकराल रूप में अवतार लेकर वैप्रचित्त नाम के असुरों का विनाश करूँगी ॥४०॥ वैप्रचित्त नाम के भीषण दैत्यों को भक्षण करते हुए मेरी दन्तमुक्तावली कुसुम के समान लाल रंग की हो जायगी ॥४१॥ इसके पश्चात् स्वर्ग में देवगण और मर्त्यलोक में मानव स्तुति करते हुए सदैव मुझे "रक्त दन्तिका" के नाम से पुकारेंगे ॥४२॥

भूयश्चशतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।
मुनिभिःसंस्तुताभूमौसंभविष्याम्ययोनिजा ॥४३
तत शतेननेत्राणांनिरीक्षिष्यामियन्मुनीन् ।
कीर्तयिष्यतिमनुजा शताक्षीमितिमानत ॥४४
ततोहमखिललोकमात्मदेहसमुद्भवै. ।
भरिष्यामिसुरा शाकैरावृष्टे प्राणधारकै ॥४५
शाकम्भरीतिविख्यातितदायास्याम्यहभुवि ।
तत्रैवचवधिष्यामिदुर्गमाख्यमहासुरम् ।
(दुर्गादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ।
पुनश्चाहयदाभीमरूपकृत्वाहिमाचले) ॥४६
रक्षांसिभक्षयिष्यामिमुनीनां त्राणकारणात् ॥४७
तदामामुनय सर्वेस्तोष्यत्यानम्रमूर्तय ।
भीमादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ॥४८
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्येमहाबाधांकरिष्यति ।
तदाहंभ्रामररूपकृत्वासंख्येयषट्पदम् ॥४९
त्रैलोक्यस्यहितार्थायवधिष्यामिमहासुरम् ।
भ्रामरीतिचमांलोकास्तदास्तोष्यन्तिसर्वत ॥५०

इत्ययदायदावाधादानवोत्थाभविष्यति ।
तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।५१

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी मृत्वा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेंगे उस समय मैं बिना मनुष्य योनि के ही जन्म लूंगी ।।४३।। उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूंगी और मुनिगण मुझे "शताक्षी" कहकर कीर्तन करेंगे ।।४४।। तत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरगण ! स्वकीय देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूंगी ।।४५।। इसलिए जगत् में मेरा "शाकम्भरी" नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुगम नाम के महादानव को समाप्त करूंगी ।।४६।। और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूंगी ।।४७।। उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊंगी ।।४८।। जिस काल में अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों में भारी विपत्ति पैदा करेगा, उस समय अनेक षट्पद समन्वित भ्रमरों का रूप ग्रहण कर ।।४९।। तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव को मारूंगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से स्तुति करेंगे ।।५०।। इस तरह जिस काल में असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जायगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूंगी ।।५१।।

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभि स्तवैश्चमांनित्यस्तोष्यतेय समाहित ।
तस्याहंसकलांवाधांनाशयिष्याम्यसंशयम् ।।१
मधुकैटभनाशचमहिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यतियेतद्वधशुम्भनिशुम्भयो ।।२
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतसः ।
स्रोष्यन्तिचैवयेभक्त्याममामाहात्म्यमुत्तमम् ।।३

नतेषांद्दुष्कृतंकिंचिदुष्कृतोत्थानचापद ।
नभविष्यतिदारिद्र्यनचैवेष्टवियोजनम् ॥४
शत्रुतोनभयतेषांदस्युतोवानराजत ।
नशस्त्रानलतोयोघात्कदाचित्सभविष्यति ॥५
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यंपठितव्यंसमाहितै ।
श्रोतव्यंचसदाभक्त्यापरस्वस्त्ययनमहत् ॥६
उपसर्गानशेषांस्तुमहामारीसमुद्भवान् ।
तथात्रिविधमुत्पातमाहात्म्यंशमयेन्मम ॥७

देवी ने कहा—इन सभी वचनों से सचेत होकर जो मनुष्य मेरी प्रतिदिन स्तुति करेगा, यह सदेहहीन है कि मैं उन सभी विपत्तियों का विनाश करूँगी ॥१॥ मधुकैटभ, शुभ निशुभ और महिषासुर की कथा का उत्तम माहात्म्य जो मनुष्य एक चित्त होकर भक्ति पूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी या नवमी तिथि मे सुनें या कहे ॥२॥ तो उनको पाप एव पाप से पैदा कोई बाधा नहीं रहेगी, दरिद्रता दूर होगी एव प्रियजनों का वियोग भी न होगा ॥४॥ दुश्मन, चोर और राजा से किसी स्थान पर भय न होगा और अस्त्र, अग्नि व पानी से भी निडर रहेंगे ॥५॥ इसलिए मेरा यह माहात्म्य दत्तचित्त होकर अध्ययन करे और श्रवण करे। मेरा यह माहात्म्य ही मेरी सर्वश्रेष्ठ स्तुति है ॥६॥ यह महामारी जन्य सभी विपदाओं और तीनों प्रकार की विपत्तियों को नाश करता है ॥७॥

यत्रैतत्पठ्यतेसम्यङ्नित्यमायतनेमम ।
सदानतद्विमोक्ष्यामिसांनिध्यतत्रमेस्थितम् ॥८
बलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे ।
सर्वंममैतच्चरितमुच्चार्यंश्राव्यमेवच ॥९
जानताजानतावापिबलिपूजांतथाकृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहंप्रीत्यावह्निहोमंतथाकृतम् ॥१०
शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकी ।
तस्यांममैतन्माहात्म्यंश्रुत्वाभक्तिसमन्वित ॥११

सर्वबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसमन्वित ।
मनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसशय ॥१२
श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यमयोत्पत्ती पृथक्शभा ।
पराक्रमांश्रयुद्धेपुजायतेनिभय पुमान् ॥१३
रिपव सक्षय यांतिकल्याणचोपपद्यते ॥
नन्दतेचकुलपु साँमाहात्म्य ममश्रृण्वताम् ॥१४

जिस गृह मे यह माहात्म्य समुचित विधि से मनन किया जाता है, मैं सर्वदा उसी गृह मे अथवा उसके समीप वास करती हूँ ॥८॥ पूजा-कार्य या बलि के अवसर पर तथा यज्ञ कार्य आदि उत्सवो मे मेरी यह समस्त कथा बोलनी और सुननी चाहिए ॥६॥ प्राणीगण जाने या अनजाने जो पूजा करें, बलि दे या अग्नि मे आहुति देते हैं, वह सब मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करती हूँ ॥१०॥ शरद् ऋतु म वार्षिक महा पूजा के अवसर पर मेरा यह चरित्र भक्ति-पूर्वक सुनने से ॥११॥ मनुष्य मेरा प्रसाद पाकर समस्त बाधाग्रो से विमुक्त होते है और यह सदेह से परे है कि वे धन, सम्पत्ति और पुत्र प्राप्त करते हैं ॥१२॥ यह माहात्म्य, शुभ उत्पत्ति की कथा एव युद्ध-कौशल चरित्र सुनने से मनुष्य को भय नही रहता ॥१३॥ उसके शत्रुग्रा का शमन होता एव उसका कल्याण होता है । और मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले मनुष्य का परिवार आनन्द-पूर्ण हो जाता है ॥१४॥

शान्तिकर्मणिसर्वत्रतथादुःस्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासुचोग्रासुमाहात्म्यश्रृणुयान्मम ॥१५
उपसर्गा शमयातिग्रहपीडाश्चदारुणा ।
दुःस्वप्नचनृभिर्दृष्टसुस्वप्नमुपजायते ॥१६
बालग्रहाभिभूतानाबालानाशातिकारकम् ।
सघातभेदेचनृणामैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७
दुर्वृत्तानामशेषाणाबलहानिकरपरम् ।
रक्षोभूतपिशाचानापठनादेवनाशनम् ॥१८
सर्वममतन्माहात्म्यममसनिधिकारकम् ॥१६

पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।
विप्राणांभोजनैर्होमैःप्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥२०
अन्यैश्चविविधैर्भोगैःप्रदानैर्वत्सरेणया ।
प्रीतिर्मेक्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चरितश्रुते ॥२१

सभी शाति कार्यों, भयानक स्वप्न देखने के अवसर पर और घोर पारिवारिक दुःख के समय मेरा यह चरित्र सुने ॥१५॥ इसके श्रवण से विपदाऐं एवं घोर पारिवारिक दुःख मिट जाते हैं और जैसे मनुष्य को दुखद स्वप्न शीघ्र फलदायक बनते है, उसी प्रकार तुरन्त उत्तम फल प्रदान करते है ॥१६॥ मेरी यह कथा पूतना, डकिनी, शाकिनी, बालको पर आयी ग्रहो को शमन करने वाली है और यदि मनुष्यो मे आपस मे मतभेद व शत्रुता हो जाय तो श्रेष्ठ विधि से पुनः प्रीति कराने वाली है ॥१७॥ यह समस्त अविचारी व दुष्ट मनुष्यो को निर्बल करता, उनके बल को घटाता है, इसके अध्ययन से असुर, भूत व पिशाच नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥ माहात्म्य के अध्ययन से अध्ययन करने वाला मेरे निकट आता है। यह प्रारम्भ, मध्य और समाप्ति पर मुझे सर्व प्रकार प्रसन्न करता है ॥१६॥ उत्तम पशु, फूल, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्रह्मभोज, यज्ञ, प्रोक्षणीय एव ॥२०॥ अन्य दूसरी रीतियो से एक वर्ष पर्यन्त दिन रात पूजा करने वाले से मैं जितनी प्रसन्न हो सकती हूँ, उतनी इस माहात्म्य को सिर्फ एक ही बार श्रवण से प्रसन्न हो जाती हूँ ॥२१॥

श्रुतहरतिपापानितथारोग्यप्रयच्छति ।
रक्षाकरोतिभूतेभ्योजन्मनाकीर्त्तनमम ॥२२
युद्धेपुचरितयन्मेदुष्टदैत्यनिवर्हणम् ।
तस्मिञ्छ्रुतेवैरिकृतभयपुंसानजायते ॥२३
युष्माभिःस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिःकृताः ।
ब्रह्मणाचकृतायास्ताःप्रयच्छंतिशुभागतिम् ॥२४
अरण्येप्रांतरेवापिदावाग्निपरिवारितः ।
दस्युभिर्वावृतःशून्येगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥२५

हे मनुजेन्द्र ! समस्त ब्रह्माण्ड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय मे यह ब्रह्माण्ड महामारी के रूप मे महामारी से युक्त होता है ॥३५॥ वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप मे मनुष्यो की रक्षा करती है ॥३६॥ आनन्द के समय वही प्राणियो के गेह मे विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नहीं होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य चला जाता है व विनाश हो जाता है ॥३७॥ उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ॥३८॥

८४—सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्ते कथितंभूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवंप्रभावासादेवीययेदंधार्यतेजगत् ॥१
विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ।
तयात्वमेषवैश्यश्चतथैवान्येविवेकिनः ।
मोह्यन्तेमोहिताश्चैवमोहमेष्यन्तिचापरे ॥२
तामुपैहिमहाराजशरणंपरमेश्वरीम् ।
आराधितासैवनृणांभोगस्वर्गापवर्गदा ॥३
इतितस्यवचः श्रुत्वासुरथःसनराधिपः ।
प्रणिपत्यमहाभागंतमृषिंशंसितव्रतम् ॥४
निर्विण्णोऽतिममत्वेनराज्यापहरणेनच ।
जगामसद्यस्तपसेसचवैश्योमहामुने ॥५
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ।
सचवैश्यस्तपस्तेपेदेवीसूक्तंपरंजपन् ॥६
तौतस्मिन्पुलिनेदेव्याः कृत्वामूर्तिंमहीमयीम् ।
अर्हणांचक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥७

जगद्विध्वंसकेतस्मिन्महोग्रेतुलविक्रमे ।
निशुम्भेचमहावीर्येशेषा पातालमाययुः ॥३२
एवंभगवतीदेवीसानित्यापि पुनः पुनः ।
सम्भूयकुरुतेभूपजगतः परिपालनम् ॥३३
तयैतन्मोह्यतेविश्वंसैवविश्वंप्रसूयते ।
सायाचिताचविज्ञानंतुष्टाऋद्धिंप्रयच्छति ॥३४

मेरे चरित्र को बार-बार मनन करने वाले प्राणी को देखकर ही मेरे प्रभाव से सिंह जैसे हिंसक पशु, चोर और शत्रु भी पलायन कर जाते हैं ॥२९॥ ऋषि ने कहा—यह ऐसा उपदेश देती हुई महा पराक्रमी चण्डिका देवी सुर-गण के सम्मुख एकदम अन्तर्धान होगई ॥३०॥ तत्पश्चात् शत्रु भी के भय से निर्भीक सुरगण यज्ञ भाग भोजन करते हुए अपने-अपने कार्यों में व्यस्त होगये ॥३१॥ विश्व का विनाश करने वाले महा पराक्रमी व देवताओं के शत्रु शुंभ एवं महाबली निशुंभ को जब रण स्थल में चण्डिका ने नष्ट कर दिया तो शेष असुरगण पाताल को चले गये ॥३२॥ हे राजा ! यह भगवती देवी नित्य होकर भी अनेक बार पृथ्वी पर प्रकट होकर इस विश्व का पोषण करती है ॥३३॥ उसी भगवती की माया से यह जगत् मोहित है, वही इस जगत् की सृष्टि-कर्त्ता है और उसकी समीप स्तुति करने पर वह प्रसन्न होकर तत्त्वज्ञान एवं धन-धान्य प्रदान करती है ॥३४॥

व्याप्तंतयैतत्सकलंब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।
महाकाल्यामहाकालेमहामारीस्वरूपया ॥३५
सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिंकरोतिभूतानांसैवकालेसनातनी ॥३६
भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदागृहे ।
सैवाभावेतथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥३७
स्तुतासम्पूजितापुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददातिवित्तंपुत्रांश्चमतिंधर्मेगतिंशुभाम् ॥३८

हे मनुजेश्वर ! समस्त ब्रह्माड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय मे यह ब्रह्माण्ड महामारी के रूप मे महाकाली से युक्त होता है ।।३५।। वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप मे मनुष्यो की रक्षा करती है ।।३६।। आनन्द के समय वही प्राणियो के गेह मे विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नही होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य चला जाता है व विनाश हो जाता है ।।३७।। उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ।।३८।।

८५—सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्ते कथितभूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवप्रभावासादेवीययेद धार्यतेजगत् ।।१
विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ।
तथात्वमेषवैश्यश्चतथैवान्येविवेकिन ।
मोह्य तेमोहिताश्चैवमोहमेष्यतिचापरे ।।२
तामुपैहिमहाराजशरणपरमेश्वरीम् ।
आराधितासैवनृणाभोगस्वर्गापवर्गदा ।।३
इतिनस्यवच श्रुत्वासुरथःसनराधिपः ।
प्रणिपत्यमहाभागतमृषिसशितव्रतम् ।।४
निर्विण्णोतिममत्वेनराज्यापहरणेनच ।
जगामसद्यस्तपसेसचवैश्योमहामुने ।।५
सदर्शनार्थमवाया नदीपुलिनसस्थित ।
सचवैश्यस्तपस्तपेदेवीसूक्त परजपन् ।।६
तौतस्मिन्पुलिनेदेव्या कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ।
अर्हणाचक्रतुस्तस्या पुष्पधूपाग्नितर्पणै ।।७

ऋषि ने कहा—हे भूप ! आपको मैंने यह सर्वोत्तम माहात्म्य देवी का वर्णन किया। वह देवी जो इस विश्व को धारण करने वाली विष्णु माया भगवती की कृपा ऐसी है कि वही मनुष्य को तत्वज्ञान प्रदान करती हैं और वही तुम्ह इस वैश्य को एव अन्य दूसरे बुद्धिमान् व्यक्तियों का भी मोहित किये हुए है, साथ ही भविष्य मे भी मनुष्य उनके ही द्वारा मोहित रहेंगे ।।१।। हे राजा ! ऐसी परमेश्वरी भगवती की शरणागत होओ जिनकी पूजा करने से ही वह प्राणी को आनन्द स्वर्ग एव मुक्ति प्राप्त होती है ।।३।। मार्कण्डेय ने कहा–"हे महर्षि ! भारी ममता एव राज्य के हरण होने से बहुत दुखी वह कठोर व्रत करने वाला सुरथ मुनि के इन वचनो को सुनकर वह उन मुनि को प्रणाम करके तुरन्त तपस्या करने चला गया एव वह वैश्य भी तपस्या करने चला गया ।।४-५।। तत्पश्चात् राजा व वैश्य दोनो नदी के तट पर पहुँचे और वहाँ देवी के दर्शनो के लिए सर्वोत्तम देवी–सूक्त जपते हुए तपस्या मे लीन होगये ।।६।। वही दोनो ने मिट्टी से देवी की मूर्ति स्थापित की और पुष्प, सुगन्ध, धूप, यज्ञ एव तर्पण से उनकी आराधना की ।।७।।

निराहारौयतात्मानौतन्मनस्कौसमाहितौ ।
ददतुस्तौबलिंचैवनिजगात्रासृगुक्षितम् ।।८
एवसमाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैयतात्मनो ।
परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षप्राहचडिका ।।९
यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूपत्वयाचकुलन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतासर्वपरितुष्टाददामितत् ।।१०
ततोवव्रे नृपोराज्यमविभ्रं श्यप्रजन्मनि ।
अत्रं वचनिजराज्यहतशत्रुबलवलात् ।।११
सोपिवैश्यस्ततोज्ञानवव्रे निर्विण्णमानस ।
ममेत्यहमितिप्राज्ञ सगविच्युतिकारकम् ।।१२
स्वल्पैरहोभिर्नृपतेस्वराज्यप्राप्स्यतेभवान् ।
हत्वारिपूनस्खलिततवतत्रभविष्यति ।।१३

मृतश्चभूय· सप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वत: ।
सावर्णिकोनाममनुर्भवान्भुविभविष्यति ॥१४
वैश्यवर्यत्वयास्मत्तोवरोयश्चाभिवाछित: ।
तप्रयच्छामिससिद्धयं तवज्ञानभविष्यति ॥१५
इतिदत्त्वातयोर्देवीयथाभिलपितवरम् ।
वभूवांर्तहितासद्योभक्त्याताभ्यामभिष्टुता ॥१६
एवदेव्यावरलब्ध्वासुरथ: क्षत्रियर्पभ: ।
सूर्याज्जिजन्मसमासाद्यसावर्णिर्भवितामनु: ॥१७

वे दोनो आहार बिना अथवा सूक्ष्म आहार लेकर आराधना मे लीन हुए और उन्होंने अपने शरीरो से रक्त की वलि दी ॥८॥ इस तरह तीन वर्ष पर्यन्त एकाग्र चित्त से तपस्या करने पर जगत् उद्धारक चण्डिका ने प्रसन्न हो उनके सम्मुख आकर कहा ॥९॥ देवी ने कहा—हे राजा ! और हे श्रेष्ठ कुल वैश्य ! तुम जो मेरी आराधना करते हो, तुम मेरे समीप होकर सभी इच्छित फल प्राप्त करोगे, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें प्रदान करती हू ॥१०॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—दूसरे पश्चात् नृप ने वर मागा कि द्वितीय जन्म मे अखण्ड-राज्य और इस जन्म मे वल द्वारा अपने शत्रुओ को नष्ट कर अपना राज्य पुन पा सकूँ ॥११॥ पीडित मन वाले विवेकी वैश्य ने 'यह मेरा' और 'मैं' के मोह नाश करने वाला ज्ञान मांगा ॥१२॥ देवी ने कहा—हे राजा ! कुछ ही समय में तुम शत्रुओ का दमन करके अपने राज्य को पुन प्राप्त करोगे एव भविष्य मे तुम्हे अपने राज्य का त्याग नहीं करना होगा ॥१३॥ फिर मरने के बाद तुम उत्पत्ति लाभ प्राप्त करके पृथ्वी पर सावर्णि नामक प्रसिद्ध मनु होओगे ॥१४॥ हे वैश्य ! तुमने जो वर मुझसे मांगा है, उसकी सिद्धि के लिए तुमको वर प्रदान करती हूँ ॥१५॥ मार्कण्डेय ने कहा—इस प्रकार उन दोनो को इच्छित वरदान प्रदान कर तुरन्त ही वह अन्तर्धान होगई उससे पूर्व उन्होने पूर्ण भक्ति से देवी की स्तुति की ॥१६॥ अब क्षत्रिय मे श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी से वर प्राप्त करके सूर्यदेव से उत्पत्ति लाभ प्राप्त कर पृथ्वी पर सावर्णि नामक मनु होंगे ॥१७॥

८६—पाँच मन्वन्तर कथन

सावर्णिकमिदसम्यक्प्रोक्त मन्वन्तरतव ।
तथैवदेवीमाहात्म्यमहिपासुरघातनम् ॥१
उत्पत्तयश्चयादेव्यामातृणाश्चमहाहवे ।
तथं वसभवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभव ॥२
शिवदूत्याश्चमाहात्म्यवध शुम्भनिशुम्भयो ।
रक्तबीजवधश्चं वसर्वमेतत्तवोदितम् ॥३
श्रूयतांमुनिशार्दूलसावर्णिकमथापरम् ।
दत्तपुत्रश्चसावर्णिभावीयोनवमोमनु ॥४
कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामुनयोनृपा ।
पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तथासुरा ॥५
एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशकागणा ।
तेषामिद्रोभविष्यस्तुसहस्राक्षोमहाबल ॥६
साम्प्रतकार्तिकेयोयोवह्निपुत्र षडानन ।
अद्भुतोनामशक्रोऽसौभावीतस्यान्तरेमनो ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषि श्रेष्ठ ! यह सावर्णिक का मन्वन्तर आपसे वर्णन किया एव इसी सदर्भ मे देवी माहात्म्य, महिषासुर-हनन ॥१॥ घोर रण मे मातृगणो एव देवी की उत्पत्ति, चामुण्डा देवी की उत्पत्ति ॥२॥ शिवदूती माहात्म्य, शुभ निशुभ और रक्त बीज वध इन सभी को उचित प्रकार से आपसे कहा ॥३॥ हे ऋषिवर ! अब नवे दक्ष-पुत्र सावर्णिक के मन्वन्तर का वर्णन सुनो ॥४॥ उसम मनु के मानव-काल मे जो देवता, मुनि और राजा होंगे, वह सुनो । पाराशर, मरीचि, भर्ग और सुधर्मा देवताओ के ॥५॥ यह तीन गण एव प्रत्यक गण म बारह सख्य देवगण हैं । वर्तमान बन्हि पुत्र षडानन कार्तिकेय, इस भविष्य के मन्वन्तर मे महा पराक्रमी सहस्राक्ष इन्द्र होंगे ॥६ ७॥

भूरिद्युम्न सुपर्वाचतस्यैतेतनयामनो· ।
भविष्याधर्मपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरश्रृणु ॥१६
विहगमा कामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ।
त्रि प्रकाराभविष्यन्तिएकेकस्त्रिशकोगण. ॥१७
मासर्तु दिवसायेतुनिर्माणपतयस्तुते ।
विहङ्गमारात्रयोऽथमोहूर्त्ताःकामगागणा ॥१८
इन्द्रोवृषाख्योभवितातेषाप्रख्यातविक्रम ।
हविष्माश्चवरिष्ठश्चऋष्टिरन्यस्तथारुणि ॥१९
निश्चरश्चानघश्च वविष्टिश्चान्योमहामुनि. ।
सप्तर्षयोऽन्तरेतस्मिन्नग्नितेजाश्चसप्तम ॥२०
सर्वत्रग सुशर्माचदेवानीक पुरूद्वहः ।
हेमधन्वादृढायुश्चभाविनस्तस्सुतानृपा ॥२१

सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जय-द्रथ ॥१५॥ भूरिद्युम्न और सुपर्वा दस पुत्र दशम मनु के हैं, अन्य मनु धर्म पुत्र सावर्ण का मन्वन्तर इस प्रकार है ॥१६॥ विहगम, का मन एव निर्माण पति तीन गण देवताओ के हैं और प्रत्येक गण मे तीस सुर होगे ॥१७॥ मास, ऋतु एव दिवस निर्माण-पति हैं, रात्रि विहङ्गमदेव और सम्पूर्ण मुहूर्त जन्य विषय-कामग सुरो के गण हैं ॥१८॥ महा पराक्रमी वृषाख्य इन्द्र होगे। इस मन्वन्तर की अवधि मे हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ॥१९॥ निश्चर, अनघ, विष्टि एव सप्तम अग्निदेव, सप्तर्षि होगे ॥२०॥ सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानिक, पुरुद्वह, हेमधन्वा व दृढायु उन मनु के पुत्र होगे और राजा होगे ॥२१॥

द्वादशेरुद्रपुत्रस्यप्राप्तेमन्वन्तरेमनो ।
सावर्णाख्याश्चयेदेवामुनयश्चश्रृणुष्वतान् ॥२२
सुधर्माण सुमनसोहरितोरोहितस्तथा ।
सुवर्णाश्चसुरास्तत्रपञ्च तेदशवागणा ॥२३
तेषामिन्द्रस्तुविज्ञेयऋतधामामहाबल ।
सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ता सप्तर्षीनपिमेश्रृणु ॥२४

द्युतिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ।
तपोरतिस्तथैवान्य सप्तमन्तुतपोधृतिः ॥२५
देववानुपदेवश्चदेवश्रेष्ठोविदूरथः ।
मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपा. ॥२६

सावर्ण मनु के द्वादश मन्वन्तर के बीच जो देव और ऋषि होंगे, अब उनका वर्णन सुनो ॥२२॥ उनके मन्वन्तर में सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित एवं सुवर्ण इस प्रकार के देवता होंगे और प्रत्येक गण में दस देवगण होंगे ॥२३॥ इंद्र के समस्त गुणों से युक्त पराक्रमी ऋतधामा इंद्र होंगे । महर्षियों का वर्णन सुनो ॥२४॥ महर्षियों के नाम हैं द्युति,तपस्वी,सुतपा.,तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति एवं सप्तम तपोधृति ।।२५॥ देववान्' उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् एवं मित्रविन्द उन मनु के पुत्र एवं भावी नृप होंगे ॥२६॥

त्रयोदशान्यपर्य्यायेरौच्याख्यस्यमनो सुतान् ।
सप्तर्षींश्चनृपांश्चैवगदतोमेनिशामय ॥२७
सुधर्माण.सुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ।
सुशर्माणःसुराह्येतेमस्तामुनिसत्तम ॥२८
महाबलोमहावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ।
भविष्यानयसप्तर्षीन्गदतोमेनिशामय ॥२९
धृतिमानव्ययश्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ।
निर्मोहःसुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तम. ॥३०
चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयोदृढः ।
सुनेत्रःक्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुता' ॥३१

अब मैं रौच्य नाम के त्रयोदश मनु के मन्वन्तर में जो महर्षि और उनके पुत्र राजा होंगे, उनका वर्णन सुनो ॥२७॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! उनके मन्वन्तर में सुधर्मा और सुकर्मा देवता होंगे ॥२८॥ महापराक्रमी दिवस्पति इन्द्र होंगे । साथ ही महर्षियों के विषय में भी सुनो ॥२९॥ धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा एवं सप्तम निष्प्रकम्प महर्षि होंगे ॥३०॥ एवं रौच्य

मनु के पुत्र चित्रसेन, विचित्र नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि और सुव्रत नामक पुत्र होंगे ॥३१॥

८७–रुचि को पितरों का गार्हस्थ्य उपदेश

रुचि प्रजापति पूर्वंनिर्ममोनिरहङ्कृतः ।
यत्रास्तमितशायीचचचारपृथिवीमिमाम् ॥१
अनग्निमनिकेतन्तमेकाहारमनाश्रमम् ।
विमुक्तसङ्ग तद्दृष्ट्वाप्रोचुस्तात्पितरोमुनिम् ॥२
वत्सकस्मात्त्वयापुण्योनकृतोदारसग्रह ।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशंविना ॥३
गृहीसमस्तदेवानापितृणाञ्चतथार्हणाम् ।
ऋषीणामतिथीनाञ्चकुर्वंल्लोकानुपाश्नुते ॥४
स्वाहोच्चारणतोदेवान्स्वधोच्चारणत पितृन् ।
विभजत्यन्नदानेनभूताद्यानतिथीनपि ॥५
सत्वदेवादृणाद्बन्धबन्धमस्मदृणादपि ।
प्राप्नोपिमनुष्यपिभूतेभ्यश्चदिनेदिने ॥६
अनुत्पाद्यसुतान्देवानसन्तर्प्यपितृँस्तथा ।
भूतादीश्चकथमौढ्यात्सुगतिगन्तुमिच्छसि ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—प्राचीन काल की बात है कि प्रजापति रुचि ने
समस्त ममता का त्याग कर दिया और अहङ्कार रहित होकर जहाँ भी सूर्यास्त
हो जाय, वहीं सो जाते थे इस प्रकार वे पृथिवी में भ्रमण करने लगे ॥१॥
उनके पितरो ने जब उन्हें अग्नि रहित, गृह-रहित, एकाहारी, निराश्रय और
सग त्यागी के रूप मे देखा तो इस प्रकार बोले ॥२॥ पितरो ने कहा—हे वत्स !
तुमने स्त्री का पाणिग्रहण क्यों नहीं किया, क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष का
कारण है, विवाह के न होने से तो सभी बन्धन हैं ॥३॥ सभी देवता, पितर,

का कारण नहीं हो सकता ॥१०॥ ममता रूपी कीचड में लिप्त होने वाले आत्मा को जो परिग्रह हीन पुरुष नित्यप्रति चित्त रूपी जल से धोते हैं वही पुरुष श्रेष्ठ हैं ॥११॥ अनेक जन्मो मे उत्पन्न कर्मरूपी कीचड मे सने हुए आत्मा को सद्वासना रूपी जल से स्वच्छ करना ही बुद्धिमानो को उचित है ॥१२॥ पितर बोले—यह ठीक है कि संयतेन्द्रिय पुरुषो को आत्मा को स्वच्छ करना चाहिये, परन्तु हे वत्स ! तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, क्या यह मार्ग मोक्ष प्राप्ति कराने वाला है ? ॥१३॥ जैसे निष्काम दान से अमगल का नाश होता है, वैसे ही शुभ अशुभ फल के भोग से पूर्व जन्म के संचित कर्म का नाश होता है ॥१४॥

एवनवन्धोभवतिकुर्वत कारणात्मक ।
नचवन्धायतत्स्वमंभवत्यनभिसन्धितम् ॥१५
पूर्वकर्मकृतभोगं क्षीयतेऽहर्निशतथा
सुखदु खात्मकैर्वत्सपुण्यापुण्यात्मरैर्नृणाम् ॥१६
एवप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्माबन्धाच्चरक्ष्यते ।
नत्वेवमविवेकेनपापपङ्के नलिप्यते ॥१७
अविद्यापठघलेवेदं कर्ममार्ग पितामहा ।
तत्यथकर्मणोमार्गभवन्तोयोजयन्तिमाम् ॥१८
अविद्यासत्यमेवैतत्कर्मनैतन्मृषावच ।
किन्तुविद्यापरिप्राप्तोहेतुःकर्मनसशय ॥१९
विहिताकरणात्पु भिरसद्भि क्रियतेत्तुय ।
सयमोमुक्तयेनासौप्रत्युताऽधोगतिप्रद ॥२०
प्रक्षालयामीतिभवान्वत्सात्मानन्नुमन्यते ।
विहिताकरणोद्भूतं पापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ॥२१
अविद्याप्युपकारायविषवज्जायतेनृणाम् ।
अनुष्ठि त्युपायेनबन्धायान्यायतोहिमा ॥२२
तस्माद्वत्सकुरुष्वत्वविधिवद्दारसग्रहम् ।
माजन्मविफलतेऽस्तुसम्प्राप्यतुर्लोकिरम् ॥२३

अनभिसंधि के कर्म बन्धन का कारण न होने से कर्म करने वालों को ही संसार के बन्धन मे नहीं पड़ना होता ॥१५॥ हे पुत्र ! सुख, दुःख के रूप मे भोगे जाने वाले भोग से ही पूर्व जन्म के संचित पुण्य पाप युक्त कर्म दिन रात क्षीण होते रहते हैं ॥१६॥ बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अविवेक रूप पाप के कीचड़ मे निमग्न न हो और आत्मा को इस प्रकार स्वच्छ करे तथा बन्धन से अपने को बचावे ॥१७॥ रुचि ने कहा—हे पितरगण ! वेद में कर्म मार्ग को ही अविद्या कहा गया है, फिर आप मुझे कर्म मार्ग मे क्यों प्रवृत्त करना चाहते हैं ॥१८॥ पितरों ने कहा—कर्ममार्ग को अविद्या कहा है, वह यथार्थ है, परन्तु कर्म के द्वारा यह वचन असत्य हो जाता है, क्योंकि कर्म से ही तो विद्या की प्राप्ति होती है ॥१९॥ सभी करने योग्य कार्यों के न करने से असत् पुरुष मोक्ष के लिये जो संयमादि करते हैं, अन्त मे वह अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ हे पुत्र ! तुम समझते हो कि मैं आत्मा को धो रहा हूं, परन्तु यह निश्चय समझो कि विहित कर्म के न करने से उसके पाप से जलते हैं ॥२१॥ जैसे अपकार करने वाला विष औषधि रूप मे मनुष्य का उपकार करने वाला होता है, वैसे ही यह अविद्या भी मनुष्य के लिये उपकारिणी होती है, अन्य गुण वाला होने पर भी अनुष्ठित कार्य उचित उपाय के द्वारा हमारे लिये कल्याण-प्रद होता है ॥२२॥ हे पुत्र ! इसलिये तुम अब विवाह कर लो, जिससे सांसारिक धर्म की प्राप्ति न होने से तुम्हारा जन्म असफल न हो ॥२३॥

८८—रुचिकृत पुत्रस्तव

सतैनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानस. ।
कन्याभिलाषीविप्रर्षिःपरिवभ्राममेदिनीम् ॥१
कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपित ।
चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानस. ॥२
किंकरोमिक्वगच्छामिकथमेदाम्परिग्रह. ।
क्षिप्रभवेत्पितृणांयोममभ्युदयकारक ॥३

इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जातामहात्मनः ।
तपसारायाम्येनब्रह्माणकमलोद्भवम् ॥४
ततोवर्षशतदिव्यतपस्तेपेसवेधसम् ।
दिदृक्षु सुचिरकालपरनियममास्थितः ॥५
तत स्वदर्शयामासब्रह्मालोकपितामहः ।
उवाचतप्रपन्नोऽस्मीरवुच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
ततोऽसौप्रणिपत्याहब्रह्माणजगतोगतिम् ।
पितृणावचनात्तेनयत्कर्तु मभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्माचाहरुचिविप्रश्रुत्वातस्याभिवाञ्छितम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—ब्रह्मर्षि रुचि ने पितरो का ऐसा मन्तव्य सुन कर उद्विग्न चित्त से कन्या की इच्छा की और इसके लिये पृथिवी मे विचरण करने लगे ॥१॥ पितरो की वाणी रूपी अग्नि मे तपने के पश्चात् कन्या प्राप्त न होने से उन्हे बडी चिन्ता हुई ॥२॥ पितरो का अभ्युदय करने वाला मेरा विवाह कार्य किस प्रकार से शीघ्रता पूर्वक सम्पन्न हो ? इसके लिये मुझे क्या करना और कहाँ जाना चाहिये ? ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन्होने निश्चय किया कि मुझे तपस्या के द्वारा भगवान् ब्रह्माजी को आराधना करनी चाहिये ॥४॥ ऐसा निश्चय कर ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिये विधिवत् दिव्य सौ वर्ष तक तप किया ॥५॥ तब ब्रह्माजी उसके समक्ष साक्षात् रूप से प्रकट हुए और रुचि से उन्होने कहा—मैं प्रसन्न हुआ हूँ, तुम अपना इच्छित वर माँगो ॥६॥ यह सुनकर रुचि ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और पितरो के आदेशानुसार जो कामना की है वह उनसे निवेदन की, तब रुचि की इच्छा जान कर ब्रह्माजी बोले ॥७॥

प्रजापतिस्त्वभवितासष्टव्याभवताप्रजा ।
सृष्टाप्रजा सुतान्विप्रसमुत्पाद्यक्रियास्तथा ॥८
कृत्वाकृताधिकारस्त्वततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।
सत्वयथोक्त पितृभि कुरुदारपरिग्रहम् ॥९

कामचेममनिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ।
तएवतुष्टाःपितर प्रदास्यन्तितवेप्सितान् ।
पत्नीसुताश्चसन्तुष्टाः किंनदद्युःपितामहाः ॥१०
इत्यृषेर्वचनश्रुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
नद्याविविक्तेपुलिनेचकारपितृतर्पणम् ॥११
तुष्टावचपितृन्विप्र स्तवैरेभिस्तथादृतः ।
एकाग्र प्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२
नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धे येवसन्त्यधिदेवता ।
देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्राद्धेस्वधोत्तरैः ॥१३
नमस्तेऽहपितृन्स्वर्गेयेतर्प्यन्तेमहर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४

उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजा को उत्पन्न करने वाले प्रजापति जब तुम प्रजा की सृष्टि और सन्तानोत्पत्ति करके समस्त क्रिया ॥८॥ करके अधिकार से च्युत होजाओगे, तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी इसीलिये पितर गण तुम्हें विवाह करने का आदेश देते हैं ॥९॥ इसे अपना कर्तव्य मानकर पितरो का पूजन करो, वह सन्तुष्ट होकर तुम्हें इच्छित पत्नी और पुत्र देंगे ? सन्तुष्ट हुए पितर गण क्या नही दे सकते ? ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का ऐसा आदेश पाकर रुचि ने नदी के निर्जन तट पर पितरो का तर्पण किया ॥११॥ उन्होने अत्यन्त आदर पूर्वक, एकाग्रचित्त से, भक्तिभाव के द्वारा मस्तक झुका कर स्तोत्र के द्वारा पितरो को प्रसन्न किया ॥१२॥ रुचि ने कहा—श्राद्ध काल मे जो अधिदेवता रूप से निवास करते हैं और श्राद्ध मे देवगण भी स्वाहा कह कर जिनका तृप्ति-विधान करते हैं, उन पितरो को मैं नमस्कार करता हू, ॥१३॥ जिन्हे महर्षि गण भुक्ति-मुक्ति की कामना युक्त श्राद्ध मे तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१४॥

नमस्येऽहपितृन्स्वर्गेसिद्धा सन्तर्पयन्तियान् ।
श्राद्धेषुदिव्यैः सकलोपहारैरनुत्तमैः ॥१५

नमस्येऽहपितृन्मत्यरर्च्यन्तेभुवियेसदा ।
श्राद्धे पुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७
नमस्येऽहपितृन्विप्रैरर्च्यन्तेभुवियेसदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभायप्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८
नमस्येऽहपितृन्येवैतर्प्यन्तेऽरण्यवासिभि ।
वन्यैं श्राद्धैं र्यताहारैस्तपोनिर्धू तकिल्विषैं ॥१९
नमस्येऽहपितृन्विप्रैर्नैऽकव्रतचारिभि ।
येसयतात्मभिर्नित्यसतर्प्यन्तेसमाधिभि ॥२०
नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्तियान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥२१

जिन पितरो को सिद्ध स्वर्ग मे श्राद्ध के समय सभी दिव्य उपहारो से तृप्त करते हैं उनको मैं नमस्कार करता हू ॥१५॥ जिन पितरो का प्रत्युत्कृष्ट समृद्धि की कामना वाले गुह्यकगण भक्ति से तन्मय होकर पूजन करते हैं, उन पितरो को मेरा नमस्कार है ॥१६॥ मर्त्यलोक के निवासी मनुष्यगण इच्छित लोको के दाता जिन पितरो की श्राद्ध मे श्रद्धा सहित पूजा करते हैं, उन पितरो को नमस्कार है ॥१७॥ जो पितरगण प्राजापत्य पद प्रदान करने वाले हैं, वे ब्राह्मणो के द्वारा इच्छित विषय की प्राप्ति के निमित्त पूजे जाते हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ ॥१८॥ जिन वन वासियो के पाप मिताहार और तपस्या के कारण क्षीण होगये हैं, वे वन्य श्राद्ध द्वारा जिन पितरो को तृप्त करते हैं, उन्हे मेरा नमस्कार है ॥१९॥ सयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी विप्र जिन पितरो को समाधि द्वारा तृप्त करते हैं, उन्हे मेरा नमस्कार है ॥२०॥ तीनो लोकों मे फल देने वाले जिन पितरो को क्षत्रियगण श्रद्धा पूर्वक कव्य देकर तृप्त करते है, उन पितरों को नमस्कार है ॥२१॥

नमस्येऽहपितृन्वैश्यैरर्च्यतेभुवियेसदा ।
स्वकर्माभिरतैं नित्यपुष्पधूपान्नवारिभि ॥२२
नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धै र्येशूद्रै रपिभक्तित ।
सन्तप्यन्तेजगत्यत्रनाम्नाख्याता· सुकालिन ॥२३

नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै पातालेयेमहासुरै ।
सन्तर्प्यन्तेस्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदै सदा ॥२४
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै रर्च्यन्तेयेरसातले ॥
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैं कामानभीप्सुभि ॥२५
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै सर्पै सन्तर्पितान्सदा ।
तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितै ॥२६
पितृन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाद्ये देवलोकेचतथान्तरिक्षे ।
महीतलेयेचसुरादिपूज्यास्तेमेप्रतीच्छन्तुमयोपनीतम् ॥२७
पितृन्नमस्येपरमात्मभूतायेवै विमानेनिवसन्तिमूर्त्ता ।
यजन्तियानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वरा क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८

अपने कम म लगे हुए वैश्य जिन पितरो को पुष्प, धूप, अन्न और जल के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरो को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२२॥ इस ससार म जिन सुकालीन नामक प्रसिद्ध पितरा को शूद्रगण श्रद्धा भक्ति पूर्वक तृप्त करते हैं उन पितरो को नमस्कार है ॥२३॥ जिन स्वधाहारी पितरो को पातालवासी महाअसुर दम्भ और मद का त्याग करके श्राद्ध के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरो को नमस्कार है ॥२४॥ काम की अभिलाषा वाले नागवंशीय रसातल मे जिन पितरो को अशेष भोग और श्राद्ध से सदा तृप्त करते हैं, उन पितरा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२५॥ जिन पितरो को वे सर्पगण मन्त्र, भोग और सम्पत्ति स युक्त होकर श्राद्ध द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरो को नमस्कार करता हूँ ॥२६॥ जो पितरगण देवलोक और अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष रूप से रहत हैं और भूतल म देवताओं द्वारा जिनका अर्चन किया जाता है, उनको नमस्कार है वह मेरी प्रार्थना स्वीकार करें ॥२७॥ जो परम आत्मभूत पितर विमान म साक्षात् रूप से निवास करते हैं तथा जिन पितरों की क्लेश नाशिनी वाणी द्वारा यन म आराधना करते हैं उन्हें प्रणाम करता हू ॥२८॥

पितृन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ता स्वधाभुज काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ता सकलेप्सितानांविमुक्तिदायेऽनभिसहितेषु ॥२६

तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितर समस्ताइच्छावत्तायेप्रदिशन्तिकामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमताऽधिकवासुतान्पशून्स्वानिवलगृहाणि ॥३०
सोमस्ययेरश्मिषुयेऽर्कविम्वेशुक्लेविमानेचसदावसन्ति ।
तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैगंन्धादिनापुष्टिमितोव्रजन्तु ॥३१
येपाहुतेऽग्नौहविपाचतृप्तिर्येभुञ्जते विप्रशरीरसंस्था. ।
येपिण्डदानेनमुदप्रयान्तितृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयै. ॥ ३२
कव्यान्यशेषाणिचयान्यभीष्टान्यतीवतेपाममरार्चितानाम् ॥३३
तेपातुसान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येपुमयाकृतेपु ॥३४
दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्चामासातपूज्याभुवियेऽष्टकासु ।
येवत्सरातेऽभ्युदयेचपूज्या प्रयान्तुतेमेपितरोऽत्रतृप्तिम् ॥३५॥

जो स्वर्ग मे मूर्तिमान् रहकर काम्यफल के निमित्त स्वधा का आहार करते हैं और प्राथियो को इच्छित प्रदान करने मे समर्थ हैं तथा निष्काम कर्म मे मोक्ष प्रदान करते है, उन पितरो को प्रणाम है ॥२९॥ जो प्राथियो को प्रार्थित वस्तु प्रदान करते हैं और जो देवत्व, इन्द्रत्व अथवा इससे भी बढ कर हैं तथा जो पुत्र, पशु, धन, बल, घर आदि कामना के अनुसार देते हैं, वह पितरगण मेरे इस पूजन से तृप्ति को प्राप्त हो ॥३०॥ जो पितरगण सोम-किरणो, सूर्य-विम्ब और श्वेत विमान मे निवास करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होते हुए अन्न, जल, गधादि से पुष्टि को प्राप्त हो ॥३१॥ जो अग्नि मे घृत की आहुति देने से तृप्ति को प्राप्त होते हैं। जो ब्राह्मण के देह मे प्रविष्ट होकर भोजन-ग्रहण करते हैं तथा जो पिण्डदान से संतुष्ट होते हैं, वह पितरगण इस अन्न और जल के द्वारा सन्तुष्ट हो ॥३२-३३॥ देवताओ द्वारा पूजित उन पितरो के लिए जो कव्य अभीष्ट हैं, उन्हो पुष्प, गन्ध, अन्नादि पदार्थों का मैंने सग्रह किया है, वह इनके निकट आवें ॥३४॥ जो नित्यप्रति पूजा ग्रहण करते और प्रतिमास अष्टका मे पूजे जाते है, तथा वर्ष के अन्त में जिनका पूजन होता है, वह पितरगण मेरे इस पूजन द्वारा तृप्त हो ॥३५॥

पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो येक्षत्रियाणां चनवार्कवर्णाः ।
तथाविशांयेकनकावदातानीलीनिभा शूद्रजनस्ययेच ॥३६
तेऽस्मिन्समस्ताममपुष्पगंधधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेनचयांतुतृप्तिंसदापितृभ्य प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३७
येदेवपूर्व्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्तिकव्यानिशुभाहुतानि ।
तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवतितृप्यन्तुतेस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३८
रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ।
आद्या सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३९
अग्निष्वात्तावर्हिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ।
व्रजंतुतृप्तिंश्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पितामया ॥४०
अग्निष्वात्ताःपितृगणा प्राचीरक्षन्तुमेदिशम् ।
तथावर्हिषदःपान्तुयाम्यांयेपितर स्मृताः ॥४१
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपिसोमपाः ।
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२

जो पितरगण श्वेत वर्ण वाले और प्रभा से सम्पन्न होकर देवताओं के द्वारा पूजनीय होते हैं तथा नवोदित सूर्य के समान रक्त वर्ण वाले होकर क्षत्रियों के द्वारा पूजित होते हैं जो स्वर्ण जैसी कान्ति वाले होकर वैश्यों द्वारा पूजे जाते हैं और नीलिमा रूप होकर शूद्रों द्वारा पूजनीय होते हैं ॥३६॥ वह सभी पितरगण मेरे द्वारा किये गये पुष्प, धूप, अन्न तथा जलादि की भेंट और अग्निहोत्र से तृप्त हों, उन पितरों को मेरा प्रणाम है ॥३७॥ जो अत्यन्त तृप्ति के लिये देवताओं के समक्ष होमे गये सब श्रेष्ठ अन्न रूप कव्य का आहार करके तृप्त होते और अणिमादि आठों सिद्धियाँ प्रकट करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जो पितरगण राक्षस, भूत और विकराल असुरों को नष्ट करने वाले और अमंगल को मिटाने वाले हैं तथा जो देवताओं के आदि पुरुष और इन्द्र के पूजनीय हैं, वह पितरगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद,

आज्यपा और सोमपा पितरगण मेरे द्वारा तर्पण को प्राप्त होकर इस श्राद्ध म तृप्त हो ।।४०।। अग्निष्वात्ता पितर पूर्व दिशा म मेरी रक्षा करें और बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा म रक्षा करें ।।४१।। आज्यपा पितर पश्चिम दिशा म तथा सोमप पितर उत्तर दिशा म राक्षस, भूत, पिचास और असुरों द्वारा उत्पन्न किय उपद्रव से रक्षा करें ।।४२।।

सर्वतश्चाधिपस्तेपायमोरक्षाकरोतुमे ।
विश्वोविश्वभुगाराध्योधर्म्मोधन्य शुभानन ।।४३
भूतिदोभूतिकृद्भू ति पितृणायेगणानव ।
कल्याण कल्यताकर्त्ताकल्य कल्यतराश्रय ।।४४
कल्यताहेतुरनघ षडिमेतेगणा स्मृता ।
वरोवरेण्योवरद पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ।।४५
विश्वपातातथाधातासप्तैवेतेतथागणा ।
महान्महात्मामहितोमहिमावान्महाबल ।।४६
गणा पञ्चतथैवेतेपितृणांपापनाशना ।
सुखदोधनदश्चान्योधर्मदोऽन्यश्चभूतिद ।।४७
पितृणांकथ्यतेचैतत्तथागणचतुष्टयम् ।
एकत्रिंशत्पितृगणायैर्व्याप्तमखिलजगत् ।
तेमेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तुयच्छन्तुचसदाहितम् ।।४८

जिन पितरो के विश्व, विश्वभुक् आराध्य धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृद और भूति यह नौ सख्यक गण हैं उनके अधिपति यम मेरी सब ओर से रक्षा करें, कल्याण, कल्यता, कर्त्ता कल्य, कल्यतराश्रय ।।४३-४४।। कल्यता हेतु और अनघ यह छ प्रकार के गण जिन पितरो के हैं तथा जिन पितरो के वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ।।४५।। विश्वपाता और धाता यह सात प्रकार के गण हैं तथा महान्, महात्मा, महित, महिमावान्, महाबल ।४६।। यह पाँच प्रकार के गण जिन पितरो के हैं एव सुखद, धनद, धर्मद और भूतिदाता यह चार प्रकार के पितरो के गण हैं यह सब मिलाकर

इकत्तीस पितरगण सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किये हुए हैं, वह सभी मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त होकर मेरी कामना पूर्ण करें और मेरे लिए सदैव हितकारी हों ॥४८॥

८६—रुचि को पितरों का वरदान

एवन्तुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्बभूवसहसागगनव्याप्तिकारकः ॥१
तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमाछाद्यस्थितंजगत् ।
जानुभ्यामवनिंगत्वारुचिः स्तोत्रमिदंजगौ ॥२
अमूर्त्तानाञ्चमूर्त्तानांपितॄणांदीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामिसदातेषांध्यानिनांदिव्यचक्षुषाम् ॥३
इन्द्रादीनाञ्चनेतारोदक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणांतथान्येषांतान्नमस्यामिकामदान् ॥४
मन्वादीनांमुनीन्द्राणांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहंसर्वान्पितरश्चार्णवेषुये ॥५
नक्षत्राणांग्रहाणाञ्चवाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृताञ्जलिः ॥६
देवर्षीणांग्रहाणाञ्चसर्वलोकनमस्कृतान् ।
अक्षय्यस्यसदादातॄन्नमस्येऽहंकृताञ्जलिः ॥७

मार्कण्डेय जी कहा—रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर उनके समीप उच्च शिखायुक्त और आकाश व्यापी तेज सहसा प्रकट हुआ ॥१॥ उस तेज का सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित करके अवस्थित देखा तो रुचि ने जानु से पृथिवी को स्पर्श करके इस स्तोत्र का कीर्तन किया ॥२॥ रुचि बोले— उन ध्यान सम्पन्न, दिव्य नेत्र, दीप्त तेज, निराकार एवं पूजितपितरों को मैं

नमस्कार करता हूँ ॥३॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि तथा इन्द्रादि के नेता स्वरूप काम के देने वाले पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥ मनु इत्यादि मुनीश्वरों तथा सूर्य-चन्द्रमा के नेता और काम के प्रदान करने वाले, समुद्र और जल में अवस्थित उन सभी पितरों को मैं नमस्कार करता हूं ॥५॥ नक्षत्र, ग्रह वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवी के नेता तथा काम प्रदायक पितरों को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ॥६॥ देवर्षियों के उत्पत्ति कर्त्ता, अक्षय फल के दाता और सब लोकों द्वारा नमस्कार किये जाने वाले पितरों को करबद्ध प्रणाम करता हूँ ॥७॥

प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥८
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु ।
स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥९
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥१०
अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् ।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥११
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥१२
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥१३

प्रजापतियों में कश्यप और सोम, वरुण तथा योगेश्वर स्वरूप हैं, उन पितरों को मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूं ॥८॥ जो सात लोकों में सात गणों के मध्य स्थित हैं, उन्हें तथा जो योग-चक्षु स्वयम् ब्रह्मा स्वरूप हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हूं ॥९॥ जो पितर सोम के आश्रय, योगमूर्ति, सोम-रूप एवं जगत्पिता हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं ॥१०॥ जिन अशेष पितरों के द्वारा अग्नि सोम और जगत् उत्पन्न हुआ है, उन अग्नि रूपी अन्यान्य

सभी पितरगण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥११॥ जो चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूपी तेज में स्थित होकर विश्व स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं उन समस्त योगी पितरों को मैं अपने संयत मन के द्वारा बारम्बार नमस्कार करता हूँ, वे स्वधा का आस्वादन करने वाले पितर मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२-१३॥

एवंस्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ।
निश्चक्रमुस्तेपितरोभासयन्तोदिशोदश ॥१४
निवेदितञ्चयत्तेनपुष्पगंधानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथमतान्ददृशेपुरतःस्थितान् ॥१५
प्रणिपत्यपुनर्भक्त्यापुनरेवकृतांजलिः ।
नमस्तुभ्यनमस्तुभ्यमित्याहपृथगादृतः ॥१६
ततः प्रसन्ना पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरंवृणीष्वेतिसतानुवाचाननकंधरः ॥१७
सम्प्रतसर्गकर्तृत्वमादिष्टंब्रह्मणाममः ।
सोऽहंपुत्रीमभीप्सामिधन्यांदिव्याप्रजावतीम् ॥१८
अद्यैवसद्यःपत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ।
तस्यांचपुत्रोभवितामवतोमनुरुत्तमः ॥१९
मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचेरौच्यइतिख्यातिंयांयास्यतिजगत्त्रये ॥२०
तस्यापिबहवः पुत्रामहाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्तिमहात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे मुनिवर ! रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए पितरगण प्रकट हुए ॥१४॥ फिर उन्हें जो पुष्प, गंध चन्दनादि अर्पण किया गया था, उससे विभूषित हुए पितरों को रुचि ने अपने सामने आते हुए देखा ॥१५॥ तब वह मुनि सहित हाथ जोड़ कर प्रणाम पूर्वक सब को नमस्कार करने लगे ॥१६॥ फिर पितरों ने प्रसन्न होकर मुनिवर रुचि से कहा—वर माँगो, इस पर रुचि ने नीचा नीचे

करके उनसे निवेदन किया ॥१७॥ रुचि बोले—मुझे ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने का आदेश दिया है, इसलिए मैं अब सन्तानोत्पत्ति के निमित्त भार्या प्राप्त करना चाहता हूं ॥१८॥ पितरों ने कहा—हे वत्स ! तुम्हें अभी इसी स्थान में मनोहारिणी भार्या की प्राप्ति होगी, उसके गर्भ से तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र की उत्पत्ति होगी ॥१९॥ हे रुचे ! तुम्हारा वह पुत्र बुद्धिमान् मन्वन्तराधिपति होगा और तुम्हारे नाम के अनुसार ही उसकी ख्याति होगी अर्थात् वह 'रौच्य' नाम से विश्व में विख्यात होगा ॥२०॥ फिर उस रौच्य के भी महाबली, पराक्रमी, पृथिवी का पालन करने वाले बहुत से महात्मा पुत्र उत्पन्न होंगे ॥२१॥

त्वंचप्रजापतिभूं त्वाप्रजा.सृष्ट्वाचतुर्विधा ।
क्षीणाधिकारोधर्मज्ञततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥२२
स्तोत्रेणानेनचनरोयोऽस्मांस्तोष्यतिभक्तित ।
तस्यतुष्टावयंभोगानात्मज्ञानतथोत्तमम् ॥२३
शरीरारोग्यमर्थंचपुत्रपौत्रादिकन्तथा ।
प्रदास्यामोनसदेहोयच्चान्यदभिवांछितम् ॥२४
तस्मात्पुण्यफलंलोकेवांछद्भि सततंनरैः ।
पितृणांचाक्षयांतृप्तिस्तव्या स्तोत्रेणमानवैः ॥२५
वांछद्भि.सततंस्तव्या स्तोत्रेणानेनवैयतः ।
श्राद्धेचमइमभवत्याप्रस्मत्प्रीतिकरस्तवम् ॥२६
पठिष्यंतिद्विजाग्र्याणांभु जतामुपुरतःस्थितः ।
स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्यासंन्निधानेपरेकृते ॥२७
अस्माकमक्षयंश्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम् ।
यद्यप्यश्रोत्रियंश्राद्ध यद्यप्युपहतंभवेत् ॥२८

तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न करोगे और जब धर्म-ज्ञाता तथा अधिकार से क्षीण होगे तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी ॥२२॥ जो मनुष्य इस स्तोत्र के सहित भक्ति भाव पूर्वक हमारा स्तवन करेंगे, हम

उन पर सतुष्ट होंगे और उन्हें भोग तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥२३॥ जो शरीर की आरोग्यता, धन, पुत्र-पौत्रादि की कामना अथवा अन्यान्य अभिलाषा करेंगे वह इस स्तोत्र के द्वारा हमारी स्तुति करने पर, हम से अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥२४॥ इसलिए ससार मे पुण्यफल प्राप्ति की कामना वाले मनुष्यों को इस स्तोत्र के द्वारा पितरो की अक्षय तृप्ति करनी उचित है ॥२५॥ जो हमें प्रसन्न करना चाहें, वह इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करें, श्राद्ध के समय भोजन करते हुए ब्राह्मणो के समक्ष स्थित होकर जो मनुष्य हमारी प्रीति उत्पन्न करने वाले ॥२६॥ इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पाठ करेगा और स्तोत्र सुनने से उत्पन्न हुई प्रीति के द्वारा निकट में स्थित को इष्ट मानेगा, उसके द्वारा हमारा अक्षय श्राद्ध अवश्य ही सम्पन्न होगा यदि श्राद्ध श्रोत्रिय रहित अथवा दोष युक्त हो ॥२७॥

अन्यायोपात्तवित्ते नयदिवाकृतमन्यया ।
अश्राद्धार्हैरुपहृतैरुपहारैस्तथाकृतम् ॥२९
अकालेप्यथवाऽदेशेविधिहीनमथापिवा ।
अश्रद्धयावापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् ॥३०
अस्माकंतृप्तयेश्राद्ध तथाप्येतदुदीरणाद् ।
यत्रैतत्पठतेश्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३१
अस्माकं जायतेतृप्तिस्तत्रद्वादशवार्षिकी ।
हेमतेद्वादशाब्दानितृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३२
शिशिरेद्विगुणाब्दांश्चतृप्तिस्तोत्रमिदं शुभम् ।
वसंतेषोडशसमास्तृप्तयेश्राद्धकर्मणि ॥३३
ग्रीष्मेचषोडशैवंतत्पठिततृप्तिकारकम् ।
विकलेऽपिकृतेश्राद्धे स्तोत्रेणानेनसाधिते ॥३४
वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे ।
शरत्कालेऽपिपठितश्राद्धकालेप्रयच्छति ॥३५

अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिर्चदशाब्दिकीम् ।
यस्मिन्गृहेचलिखितमेतत्तिष्टतिनित्यदा ॥३६
सन्निधानकृतेश्राद्धे तत्रास्माकभविष्यति ।
तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धे विप्राणांभुञ्जतपुरः ॥३७

या अन्याय द्वारा उत्पादित धन के द्वारा किया जाय या असमय में, विपरीत स्थान मे या अविधि से अश्रद्धा पूर्वक अथवा दूषित उपहार से इसी मनुष्यो के द्वारा सम्पन्न किया जाय ॥२८-२९-३०॥ तो भी इस स्तोत्र का पाठ होने से वह श्राद्ध मे तृप्ति देने वाला होगा, जिस श्राद्ध मे हमें सुखी करने वाले इस स्तोत्र का पाठ होता है ॥३१॥ उस श्राद्ध से हमें बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है, या हमन्त काल म यह स्तोत्र हमे बारह वर्ष तक तृप्ति देने वाला होता है ॥३२॥ शिशिर ऋतु मे,यह स्तोत्र चौबीस वर्ष तक और वसंत ऋतु मे करने पर सोलह वर्ष तक तृप्ति दायक होता है ॥३३॥ ग्रीष्मकाल में इस स्तोत्र के पाठ पूर्वक श्राद्ध करने से सोलह वर्ष तक तृप्ति रहती है, किसी कारणवश श्राद्ध दूषित हो तो इस स्तोत्र के पाठ से श्रेष्ठ हो जाता है ॥३४॥ हे रुचे ! वर्षाऋतु मे श्राद्ध के समय इस स्तोत्र के पढने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है, यदि शरद् ऋतु मे इस स्तोत्र के पाठ सहित श्राद्ध का द्रव्य अर्पण करे तो पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति होगी है, जिस घर मे यह स्तोत्र लिखा हुआ श्रेष्ठ स्थान पर रखा रहता है, उस घर में श्राद्ध करने से हमारी सन्निधि प्राप्त होती है, अर्थात् हम उस घर मे उस समय उपस्थित रहते हैं, इसलिये तुम श्राद्ध मे भोजन करते हुए ब्राह्मणो के सम्मुख हमारे इस स्तोत्र को पढ कर सुनाओ । इससे हमारी पुष्टि होगी । इस प्रकार रुचि को समझा कर पितृगण स्वर्ग को चले गये ॥३५-३८॥

९०—रौच्य मनु का जन्म

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौमनोरमा ।
प्रम्लोचानामतन्वङ्गीतत्समीपेवराप्सरा ॥१

साचोवाचमहात्मानर्रुचिंसुमधुराक्षरम् ।
प्रश्रयावनतासुभ्रू प्रम्लोचावैवराप्सरा ॥२
अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपतावर ।
जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥३
सागृहाणमयादत्ताभार्य्यार्थेवरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यासमुत्पत्स्यतितेसुत ॥४
तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उज्जहारतत कन्यामालिनीनामनामत. ॥५
नद्याश्चपुलिनेतस्मिंस्सरुचिर्मु निसत्तम ।
जग्राहपाणिंविधिवत्समानाय्यमहामुन न् ॥६
तस्यातस्यसुतोजज्ञे महावीर्योमहामति ।
रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर उस नदी में से प्रम्लोचना नाम की एक
सरा बाहर आई और उन रुचि नामक मुनि से कहने लगी—हे महात्मन् !
ी मालिनी नामक एक कन्या है जो वरुण देव के पुत्र श्रीमान् पुष्कर द्वारा
त्पन्न की गई है। उस अत्यन्त रूपवती सुशील कन्या रत्न को मैं आपको
र्पित करती हू। आप उसे भार्या रूप में ग्रहण करके गृहस्थी बनिये (उसके
र्भ से आपका जो पुत्र उत्पन्न होगा वही आगामी मन्वन्तर मे मनु बनेगा।
(से ४) मार्कण्डेयजी कहने लगे कि उस अप्सरा के ऐसे वचन सुनकर रुचि
उसे स्वीकार कर लिया और उसी नदी के तट पर महामुनियो को एकत्र
रके उस मालिनी कन्या से विधिवत् विवाह कर लिया। कुछ काल उससे जो
हापराक्रमी और वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ वह अपने पिता के नाम के अनुसार
ौच्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७॥

तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ।
तनयाश्चनृपाश्चैवतेसम्यक्कथितास्तव ॥८
धर्मवृद्धिस्तथारोग्यधनधान्यसुतोद्भव ।
नृणाभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वतरेश्रु ते ॥९

पितृस्तवतथाश्रुत्वापितृणांचतथागणान् ।
सर्वान्कामानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥१०

इस रौच्य नामक मन्वन्तर के देवता, सप्तर्षि और समस्त राजाओं तथा उनके पुत्रों के विषय में पहले बतलाया जा चुका है ॥८॥ इस मन्वन्तर की कथा सुनने से धर्म की वृद्धि होती है, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है। जो पितरों की स्तुति और उनके गुणों को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करता है उसकी सभी अभिलाषायें पूरी होती हैं ॥९-१०॥

६१—भौत्य मन्वन्तर आरम्भ

अत परं शुभौत्यस्यसमुत्पत्तिनिशामय ।
देवानृषींस्तथापुत्रास्तथैववसुधाधिपान् ॥१
बभूवाङ्गिरस शिष्योभूतिर्नाम्नातिकोपनः ।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्ग्येमुनिरागस्यसोम्यवाक् ॥२
तस्याश्रमेमातरिश्वानववावतिनिष्ठुरम् ।
नातितापरविश्चक्रेपर्ज्जन्योनातिकर्दमम् ॥३
नातिशीतचशीतांशुःपरिपूर्णोऽपिरश्मिभि ।
चकारभीत्याभ्रतस्यकोपनस्यातितेजसः ॥४
ऋतवश्चक्रमंत्यक्त्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ।
तस्यपुष्पफलचक्रुराज्ञयासार्वकालिकम् ॥५
ऊहुरापश्चच्छन्देनतस्याश्रमसमीपगा ।
कमण्डलुगताश्चैवतस्यभीतामहात्मनः ॥६
नातिक्लेशसहोविप्र.सोऽभवत्कोपनोभृशम् ।
अपुत्रश्चमहाभाग सतपस्यकरोन्मनः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—"तत्पश्चात्" भौत्य नामक मनु के उत्पन्न होने और उनके मन्वन्तर के सुरगण, ऋषि और उनके नृप पुत्रों का वर्णन सुनो ॥१॥

हर्षि अङ्गिरा के भृगि मुनि शिष्य थे, जो कि क्रोधी और क्षणिक अप-
राध पर ही घोर शाप देते थे एवं अनजाने ही निरपराधी को उनके कटु वचनों
ा सामना करना पड़ता था ॥२॥ उन क्रोधी और तेजस्वी का ऐसा भय छाया
हुआ था कि उनके आश्रम में वायु सरल स्वभाव बहती थी, सूर्य असहनीय
उष्णता नहीं देते थे, इन्द्र अनपेक्षित वर्षा नहीं करते थे ॥३॥ पूर्ण चन्द्रमा
पनी चाँदनी से शीत प्रदान नहीं करता था एवं उनके भय से असहनीय शीत
ही होता था ॥४॥ ऋतुएँ भी उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सभी ऋतुओं
' सभी प्रकार के फल पुष्प उनके आश्रम की वृक्षावलियों में उत्पन्न करती थीं
॥५॥ ऋषि भृगि के भय से आश्रम के समीप बहता हुआ जल भी उनकी इच्छा-
नुसार क्षणमात्र में उनके कमण्डलु में आ जाता था ॥६॥ हे ब्राह्मण ! वह
हा क्रोधी ऋषि किसी बाधा को सहन नहीं करते थे, चूंकि उनके पुत्र उत्पन्न
हीं हुआ इस कारण वह तपस्या में लीन हुए ॥७॥

पुत्रकामोयताहार शीतवातानलाहतः ।
तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे ॥८
तस्येन्दुर्नातिशीतायनातितापायभास्करः ।
ववन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने ॥९
आपीड्यमानोद्वन्द्वै भ्रमभूतिमुनिसत्तमः ।
अनवाप्याभिलापंततपस सन्यवर्त्तत ॥१०
तस्यभ्रातामुवर्च्चाऽभूद्यनेतेनाभिमन्त्रित. ।
यियासु शान्तिनामानशिष्यमाहमहामतिम् ॥
प्रशान्तमकप्रनिमविनीतगुरकर्मणि ।
सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥१२
अहयनं गमिष्यामिभ्रातु शान्तेसुवर्च्चस· ।
तेनाहूतन्त्वयाचेहयत्कर्त्तव्यश्रृणुष्वतत् ॥१३
अतिजागरणंवह्नेस्त्वयाकार्य्यंममाश्रमे ।
तथातथाप्रयत्नेनयथाग्निर्नशमव्रजेत् ॥१४

पुत्र की इच्छा से तपस्या करने वाले उन महात्मा ने संयत आहार एवं शीत, वायु व अग्नि की वेदना सहकर भी तपस्या करने का व्रत लिया और अन्तत तपस्या में ही चित्त लगाया ॥८॥ हे महर्षि ! उनके तपस्या काल में भी भयभीत चन्द्रमा शीत एवं सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे तथा वायु भी समक्ष में मन्द-मन्द व स्वाभाविक बहती थी ॥६॥ वह ऋषि श्रेष्ठ भूति शीत एवं ताप दोनों ही से पीडित रहकर अपनी मनोकामना प्राप्त न कर सके, तो उन्होंने तपस्या त्याग की ॥१०॥ उनके एक भाई सुवर्चा ने उनको यज्ञ में आमन्त्रित किया उस समय भाई के यहाँ जाने की इच्छा कर उन्होंने अपने शिष्य शान्तिनाम को बुलाया अपने नाम के अनुकूल वह गुरु के कार्य में सदैव तत्पर और उदार चित्त एवं सदाचारी थे ॥१२॥ भूति बोले—हे शान्ते ! अपने भाई सुवर्चा के आमन्त्रण पर मैं यज्ञ में जाता हू, अब तुम्हे आश्रम में रहकर जो कार्य करने है, वह ध्यान से सुनो ॥१३॥ मेरे आश्रम में प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित रखना वह बुझे नहीं ऐसे यत्नशील रहना ॥१४॥

इत्याज्ञाप्यतथेत्युक्तोगुरु शिष्येणशान्तिना ।
जगामयज्ञ तभ्रातुराहूत सयवीयस ॥१५
सचशान्तिर्गनाद्यावरसमित्पुष्पफलादिकम् ।
उपानयतिभूत्यर्थंगुरोस्तस्यमहात्मन ॥१६
अन्यच्चकुरुतेकर्मगुरुभक्तिवशानुग ।
प्रशान्तस्तावदनलोयोऽसौभूतिपरिग्रह ॥१७
तद्दृष्ट्वासौऽनलशान्तशान्तिरत्यन्तदु खित ।
भीतश्चभूतेर्वहुधाचिन्तामापमहामति ॥१८
किंकरोमिकथ वात्रभविताग‌मनगुरो ।
मयाद्यप्रतिपत्तव्यकिंकृतेसुकृतमवेत् ॥१६
प्रशान्ताग्निमिमधिष्ण्ययदिपश्यतिमेगुरु ।
ततोमाविपमेह्यद्यव्यसनेन्नियोक्ष्यति ॥२०
यद्यन्यग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितत् ।
सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्मसोऽवश्यमाकरिष्यति ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—शिष्य शान्ति ने गुरु की आज्ञा को 'इसी प्रकार होगा' कहकर शिरोधार्य किया। तब भूति अपने भाई के यहाँ यज्ञ में गये ॥१५॥ तदनन्तर अपने गुरु की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए जंगल से समिधा, पुष्प, फल आदि एकत्रित कर लाते ॥१६॥ साथ ही गुरु-भक्ति में वशीभूत शान्ति अन्य दूसरे कार्य भी करने लगे, उसी समय भूति द्वारा प्रज्वलित रखी गई, अग्नि किसी प्रकार बुझ गई ॥१७॥ बुद्धिमान् मुनि शान्ति उस अग्नि को बुझी हुई देखकर दुखी हुए और अपने गुरु भूति के भय से चिन्ता-ग्रस्त होगये ॥१८॥ वह विचारने लगे कि क्या किया जाय ? इस समय क्या उचित कर्म हो, जिससे भला हो सके, अब गुरु किस प्रकार आयेंगे ?॥१९॥ मेरे गुरु यदि आश्रम में अग्नि को बुझी हुई देखेंगे तो तत्काल मुझे दण्ड देकर दुख देंगे ॥२०॥ और यदि मैं पुनः अग्नि प्रज्वलित करता हूँ, तो वह सर्वज्ञानी गुरु मुझे निश्चय ही भस्म कर देंगे ॥२१॥

> सोऽहपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ।
> तथात्माननशोचामियथापापक्तृतगुरोः ॥२२
> दृष्ट्वाप्रशान्तमनलंनूनशप्स्यतिमांगुरुः ।
> ययावापावकःक्रुद्धस्तयावीर्य्योहिसद्विजः ॥२३
> यस्यप्रभावाद्विन्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ।
> कृतागससमांयुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥२४
> बहुधंवंविचिन्त्यासौभीतस्तस्यसदागुरोः ।
> ययौमतिमताश्रेष्ठ शरणजातवेदसम् ॥२५
> सचकारतदास्तोत्रंसम्यर्च्चयंतमानसः ।
> सचैकचित्तोमेदिन्यान्यस्तजानु कृताञ्जलिः ॥२६

मैं पापात्मा उन गुरु के क्रोध और शाप का वैसा शोक नहीं कर सकता जिस तरह गुरु के समीप हुए पाप का शोक होता है ॥२२॥ गुरु जब आयेंगे तो अग्नि को बुझी देखकर अवश्य घोर रूप में क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे अथवा उनसे भयभीत अग्नि भी मुझे शाप दे सकती है, क्योंकि मेरे गुरु का

वीर्य ही ऐसा है ॥२३॥ जिनसे भयभीत होकर सुरगण भी उनके पराधीन हो गये हैं,वह मुझ अपराधी को देखकर किस प्रकार दण्डित करेंगे ? ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने गुरु से भयभीत विवेकी शिष्य शान्ति इस प्रकार चिन्तित हुए जातवेदः अग्नि की शरण मे पहुँचे ॥२५॥ इसके पश्चात् वह शान्त संयत चित्त होकर धरती मे घुटने नवा एव हाथ जोड सप्तशिखा युक्त अग्नि-स्तोत्र का पाठ करने लगे ॥२६॥

ओनम.सर्वभूतानासाधनायमहात्मने ।
एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूयेपडात्मने ॥२७
नम समस्तदेवानावृत्तिदायसुवर्च्चसे ।
शुक्ररूपायजगतामशेषाणास्थितिप्रद ॥२८
त्वं मुखसर्वदेवानात्वयात्त भगवन्हविः ।
प्रीणयस्यखिलान्देवास्त्वत्प्राणासर्वदेवताः ॥२९
हुतहविस्त्वय्यनलमेघत्वमुपगच्छति ।
सतश्चजलरूपेणपरिणाममुपतियत् ॥३०
तेनाखिलौपधीजन्मभवत्यनिलसारथे ।
औपधीभिरशेपाभि.सुखंजीवन्तिजन्तवः ॥३१
वितन्वतेनरायज्ञास्त्वत्सृष्टास्वोपधीपुच ।
यज्ञै र्देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षांसिपावक ॥३२
आप्याय्यन्तेचतेयज्ञास्त्वदाधाराहुताशन ।
अत.सर्वस्यस्ययोनिस्त्व वह्ने सर्वमयस्तथा ॥३३
देवतादानवायक्षादैत्यागन्धर्व्वाराक्षसा. ।
मानुपा पशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ॥३४
आप्याय्यन्तेत्वयासर्वेसंवर्ध्यन्तेचपावक ।
त्वत्तएवोद्भवयान्तित्वय्यन्तेचतथालयम् ॥३५

शान्ति बोले—समस्त प्राणियो के साधन, महात्मा, दो पच रूप एव राजसूय यज्ञ मे षण्मूर्ति धारण करने वाले, उनको नमस्कार ॥२७॥ सम्पूर्ण सुरगण को वृत्ति प्रदान-कर्त्ता सुवर्चा और सम्पूर्ण विश्व को स्थिति प्रदान करने

वाले शुक्र रूप तुमको नमस्कार ॥२८॥ हे सम्पूर्ण देवगण के मुख-स्वरूप ! ईश्वर तुम्हारे द्वारा ही घृत पान कर देवगण को सन्तुष्ट करते हैं एवं तुम ही समस्त देव गण के प्राण रूप हो ॥२६॥ तुम ही मे हवि हुत होकर अमल मेध्यत्व प्राप्त करती है और फिर उसका जल स्वरूप हो जाता है ॥३०॥ हे अनिलसार ! तुम से ही सभी औषधियों की उत्पत्ति होती है और उन औष- धियो स ही प्राणिगण सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं ॥३१॥ हे पावक ! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न औषधियों से प्राणी जो यज्ञ करते हैं, ऐसे यज्ञो से ही सुर, दैत्य और असुर ॥३२॥ तृप्त होते हैं। हे हुताशन ! उन सभी यज्ञो के तुम आधार रूप हो। इसलिए हे वह्ने ! तुम सभी के उत्पन्न करने वाले और सर्व व्यापी हो ॥३३॥ हे पावक ! सुर, असुर, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मानव, पशु,वृक्ष,मृग,आपही से तृप्त व पोषित होते हैं एवं तुम से ही उत्पन्न अन्त में तुम ही मे मिल जाते हैं ॥३५॥

अप.सृजसिदेवत्वत्वमत्सिपुनरेवता ।
पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनापुष्टिकारणम् ॥३६
देवेपुतेजोरूपेणकान्त्यासिद्धे ष्ववस्थित ।
विषरूपेण नागेपुवायुरुप पतत्रिपु ॥३७
मनुजेपुभवान्क्रोधोमोह पक्षिमृगादिपु ।
अवष्टम्भोऽसितरुपुकाठिन्य त्व महीप्रति ॥३८
जलेद्रवस्त्व भगवाञ्जवरूपीतयाऽनिले ।
व्यापित्वेनतथैवाग्नेनभसित्व व्यवस्थित ॥३६
त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपालयन् ।
त्वामेकमाहु कवयस्त्वामाहु स्त्रिविधपुन ॥४०
त्वयासृष्टमिदविश्व वदन्तिपरमर्पय ॥४१
त्वामृतेहिजगत्सर्व सद्योनश्येद्धुताशन ।
तुभ्य कृत्वाद्विज पूजास्वकर्मविहितागतिम् ॥४२

हे देव ! तुम ही जल के उत्पादक हो और फिर उसको पान करते हो, तथा तुम्हारे द्वारा ही उसका पाचन होता है, जो प्राणियों को पुष्टिकारक

बनाता है ।।३६।। देवगण मे तुम्ही तेज स्वरूप सिद्धो मे कान्ति स्वरूप, नागो मे विष स्वरूप एवम् पक्षियो मे वायु स्वरूप हो ।।३७।। मनुष्यो में क्रोध रूप मे पक्षी व मृगादि मे मोह रूप मे, वृक्षो मे जड रूप मे, पृथिवी में कठोर रूप मे ।।३८।। जल मे द्रव्य रूप मे तुम ही स्थित हो और वायु की गति रूप में और आकाश को व्याप्त रूप मे आत्मा द्वारा अवस्थित किया है ।।३९।। हे अग्ने ! पोषण करते हुए तुम ही उन प्राणियो के अन्तर मे विचरते हो । यद्यपि कवि तुम्हारा निर्देश एक से ही करते हैं, फिर भी तुम त्रिविध कहलाती हो ।।४०।। कविगण तुम्हारी अष्टधा के रूप में कल्पना करके आप यज्ञ की कल्पना करते है, तुम से ही विश्व की उत्पत्ति हुई है, ऐसा महान् ऋषियो ने कहा है ।।४१।। हे हुताशन ! समस्त विश्व तुम्हारे नष्ट होने पर विनाश होता है ।।४२।।

प्रयातिहव्यकव्याद्यं स्वधास्वाहाम्युदीरणात् ।
परिणामात्मवीर्याणिप्राणिनाममरार्चित ।।४३
दहन्तिसर्वभूतानिततोनिष्क्रम्यहेतयः ।
जातवेदस्त्वयैवेदविश्वं सृष्टं महाद्यु ते ।।४४
तवैववैदिककर्मसर्वभूतात्मकजगत् ।
नमस्तेऽनलपिंगाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ।।४५
पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहव्यवाहन ।
त्वमेवसर्वभूतानांपावनाद्विश्वपावनः ।
त्वमेवभुक्तपीतानापाचनाद्विश्वपाचकः ।।४६
सस्यानांपाककर्त्तात्वपोष्टात्वंजगतस्तथा ।
त्वमेवमेघस्त्वंवायुस्त्वबीजंसस्यहेतुकम् ।।४७
पोषायसर्वभूतानांभूतभव्यभवोह्यसि ।
त्वंज्योति. सर्वभूतेषुत्वमादित्योविभावसु: ।।४८
त्वमहस्त्वतथारात्रिरुभेसन्ध्येतथामवान् ।
हिरण्येतास्त्वंवह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ।।४९

विप्रगण हव्य कव्यादि द्वारा तुम्हारी आराधना करके 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके स्वकर्म विहित गति प्राप्त करते हैं। हे अमरार्चित अर्थात् सुरगण द्वारा पूजित ! प्राणियों के परिणामात्मा वीर्य स्वरूप ॥४३॥ तुम से उत्पन्न सम्पूर्ण अग्निशिखाएँ भूतगणों को भस्म करती हैं, हे महाद्युते जातवेद ! सम्पूर्ण विश्व के तुम सृष्टि-कर्त्ता हो ॥४४॥ हे अनल ! सर्वभूतात्मक यह विश्व एवम् वैदिक कर्म तुम्हारे अधीन हैं। हे पिङ्गाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार, हे हुताशन ! तुमको प्रणाम ! ॥४५॥ हे आद्य ! हे पावक तुमको प्रणाम, तुम ही भोज्य एवम् पेय को पचाने वाले विश्व-पावन हो, हे विश्व पावन ! तुम सर्व भूत पवित्रकर्त्ता हो ॥४६॥ अन्न को पकाने वाले तुम विश्व को पुष्टिकरण एव तुम ही मेघ, वायु व सस्य उत्पादन के लिए बीज रूप भी हो ॥४७॥ सभी का पोषण करने वाले तुम ही भूत, भविष्य और वर्त्तमान रूप हो। तुम ही सम्पूर्ण प्राणियों में ज्योति का स्वरूप और आदित्य सूर्य हो ॥४८॥ दिन, रात्रि और सन्ध्या तुम ही हो। हे वह्ने ! रेता एवम् हिरण्य की उत्पत्ति कारक तुम ही हो ॥४९॥

हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्य सदृशप्रभ ।
त्वमुहूर्त्तक्षणश्चत्वत्वत्रुटिस्त्वतथालव ॥५०
कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासिजगत्प्रभो ।
त्वमेतदखिलकाल परिणामात्मकोभवान् ॥५१
याजिह्वाभवत कालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५२
करालीनामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ।
तयान पापिपापेभ्यऐहिकाच्चमहानयात् ॥५३
मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५४
करोतिकामभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५५

मधुम्रवर्णायाजिह्वाप्राणिनांरोगदायिका ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५६

तुम ही हिरण्य गर्भ एवं हिरण्य के समकक्ष कान्तिमान् हो । मुहूर्त, क्षण त्रुटि एवं लव तुम ही हो ॥५०॥ हे जगत्प्रभो ! कलाकाष्ठा और निमेषादि के रूप में तुम ही परिणामात्मक अन्तकाल हो ॥५१॥ हे प्रभो ! अपनी कालनिद्रा पूर्ण कामी जीभ द्वारा पाप, भय एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ॥५२॥ करालो नामक जो जीभ तुम्हारी महाप्रलय के समय से है, उसके द्वारा हमारी ऐहिक भय और पापो से रक्षा करो ॥५३॥ अपनी लघिमागुण युक्त मनोज्वा जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५४॥ प्राणियो की कामना पूर्ति करने वाली अपनी सुलोहिता नामक जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापो से रक्षा करो ॥५५॥ प्राणियो के रोगो का शमन करने वाली, धूम्रवर्ण जीभ से ऐहिक भय और पापो से हमारी रक्षा करो ॥५६॥

स्फुलिंगिनीचयाजिह्वायत सकलपुद्गला ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५७
यातेविश्वसृजाजिह्वाप्राणिनांशर्मदायिनी ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५८
पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवर्त्महुताशन ।
त्राहिमासर्वदोषेभ्य ससाराद्युद्धरेहमाम् ॥५६
प्रसीदवह्ने सप्तार्चि कृशानोहव्यवाहन ।
अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरित ॥६०
अग्नेऽग्रे सर्वभूतानासमुत्पत्तिविभावसो ।
प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय ॥६१
त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूप समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्र ।
तवाव्ययभीममशेषलोकसवर्धकहन्त्यथवातिवीर्य्यम् ॥६२
त्वमुत्तमतत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुण्डरीकस्थमनन्तमीड्यम् ।
त्वयाततविश्वमिदचराचरहुताशनैकोवहुधात्वमत्र ॥६३

आत्मा एवं देह को उत्पन्न करने वाले स्फुलिङ्गिनी जीभ से ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५७॥ प्राणियों को मङ्गल दाता विश्वा नामक अपनी जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५८॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिंगल वर्ण, ग्रीवा लोहित वर्ण और तुम्हारी देह कृष्ण वर्ण है। तुम सर्व प्रकार के दोषों से मेरी रक्षा करो और इस विश्व से उद्धार कीजिये ॥५९॥ हे वह्ने ! आठ नामों वाले हो सप्तार्चि, हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र नाम से विख्यात तुम प्रसन्न होओ ॥६०॥ हे अग्ने ! समस्त भूतों से तुम उत्पन्न हो। हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ उससे तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६१॥ हे वह्ने ! तुम अक्षय हो, तुम्हारा अचिन्त्य रूप है, तुम समृद्धिमान्, आश्रयदाता एवं अत्यन्त तीव्रतापूर्ण हो और अव्यय व भीम तुम्हारे मूर्तिमान् रूप अत्यन्त बलशाली एवं समस्त विश्व का भी विनाश करने वाले हैं ॥६२॥ हे हुताशन ! तुम श्रेष्ठ सत्त्व और समस्त जीवों के हृदय कमल सदृश हो और तुम उन सबके पूज्य अनन्त ब्रह्म रूप हो। उस ब्रह्म स्वरूप से तुमने इस प्राणी जगत् को परिपूर्ण कर रखा है। इसलिए तुम एक होकर भी अनेक रूप से इस विश्व में स्थिति करते हो ॥६३॥

त्वमक्षय सगिरिवनावसुन्धरानभ ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्च वाडवोभवान्विभुःपिबतिपयांसिपावक ॥६४
हुताशनस्त्वमितिमदाभिपूज्यसेमहाक्रतौनियमपरैर्महर्षिभि ।
अभिष्टुत पिबसिचसोममध्वरेवषट्कृतान्यपिचहवींषिभूतये ॥६५
त्वविप्रै सततमिहेज्यसेफलार्थवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्यधिगमयन्तिसर्वकाले ६६
त्वब्रह्मायजनपरस्तथैवविष्णुर्भूतेश सुरपतिरर्यमाजलेश. ।
सूर्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यै सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ६७
अर्चिभिं परमहतोपघातदुष्ट स्पृष्ट तवशुचितामुपैतिसमस्तम् ।
स्नानानापरममतीवभस्मनानत्सन्ध्यायांमुनिभिरतीवसेव्यसेन्त् ६८

तत्पूत्वाश्रिदिवमवाप्नुवन्तिलोका: ।
सद्भक्त्यासुखनियता सभूहगीतम् ॥६९
प्रसीदवह्ने शुचिनामधेयप्रसीदवायोविमलातिदीप्ते ।
प्रसीदमेपावकवैद्युताभप्रसीदहव्याशनपाहिमात्तम् ॥७०
यत्ते वह्ने शिवरूपयेचतोसप्तहेतय ।
तैः पाहिन:स्तुतोदेवापितापुत्रमिवात्मजम् ॥७१

हे अनल ! तुम अक्षय हो, एव सूर्य सहित पृथ्वी तुम्हारे ही स्वरूप हैं और चन्द्रमा एवं सूर्य सहित आकाश स्वरूप तुम ही हो, दिन और रात के रूप मे निखिल कालस्वरूप हो, तुम ही महा समुद्र के अन्तर्गत बडवाग्नि और परम विभूति से समस्त किरणो में विद्यमान हो ॥६४॥ हे हुताशन ! तुम्हारा भोजन हुतहवि है इसीलिए नियम परायण परम मुनिगण यज्ञो मे तुम्हारी सदैव पूजा करते हैं और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर विश्व के कल्याणार्थ सोमरस और वषटकारसहित हवि. सेवन करते हो ॥६५॥ सम्पूर्ण वेदाग मे तुम्हारा गायन है और यज्ञ परायण हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण सदैव वेदाग अध्ययन करते हैं ॥६६॥ यजन परायण ब्रह्मा, विष्णु, भूतनाथ महादेव तुम ही हो। देवराज इन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य एव चन्द्रमा तुम ही हो, सुर एवं असुर हव्य द्वारा तुम्हे सतुष्ट कर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥६७॥ महा उपघात से दूषित समस्त वस्तुऐं तुम्हारी लौ के स्पर्श मात्र से पवित्र होती हैं, अनेक स्नानो मे भस्म द्वारा ही स्नान उत्तम माना जाता है, अतएव ऋषिगण सन्ध्या समय यही स्नान करते हैं ॥६८॥ इस प्रकार करने वाले मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं और सच्ची भक्ति से सर्व सुख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ हे वह्ने ! इसीलिए ही तुम्हारा नाम शुचि है, आप उसी रूप मे मुझ पर प्रसन्न होवें। तुम स्वच्छ एव प्रबल वायु स्वरूप, उसी रूप मे मुझ पर प्रसन्न होवें। हे पावक ! तुम वैद्युताग्नि आदि नामों से कीर्तिमान् हो, उसी रूप मे मुझ पर प्रसन्न होओ। हे हव्याशन ! तुम प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करो ॥७०॥ हे वह्ने ! तुम मङ्गलमय रूप हो। जो सप्तहेति ज्वालाएँ हैं, उनसे हे देव मेरी

स्तुति से प्रसन्न होकर जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार मेरी रक्षा करो ।।७१।।

९२-सर्व मन्वन्तर श्रवण फल कथन

एवस्तुतस्ततस्तेनभगवान्हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतोमुने ।।१
देवोविभावसुःप्रीतस्तोत्रेणानेनवैद्विज ।
सदान्तिमाहप्रणतमेघगम्भीरवागथ ।।२
परितुष्टोऽस्मितेविप्रभक्त्यायातेस्तुतिःकृत्वा ।
वरददामिभवतेप्रार्थ्यतायत्तवेप्सितम् ।।३
भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वापश्यामिरूपिणम् ।
तथापिभक्तिनम्रस्यभवताश्रूयतांमम ।।४
भ्रातृयज्ञगतोदेवममाचार्योनिजाश्रमात् ।
आगतआश्रमधिष्ण्यत्वत्सनाथसपश्यतु ।।५
ममापराधात्सन्त्यक्त धिष्ण्ययदोविभावसो ।
तत्त्वयाधिष्ठितसोऽद्यपूर्ववत्पश्यतुद्विज ।।६
तथान्यदपिमेदेवप्रसाद कुरुयेयदि ।
पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरो ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषि ! शान्ति की ऐसी स्तुति पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामाला सहित उनके समक्ष प्रकट हुए ।।१।। हे ब्राह्मण ! विभावसु देव ने स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर उन प्रणत तपस्वी शान्ति से मेघ सम गम्भीर शब्दों में कहा ।।२।। अग्नि ने कहा—'हे ब्राह्मण मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण स्तुति से प्रसन्न हुआ हूँ । तुम अपने इच्छित वर की प्रार्थना करो मैं वर देता हूँ ।।३।। शान्ति बोले—हे भगवन् ! आपके स्वरूप को देख कर मैं

कृतकृत्य हुआ हूँ। फिर भी नम्रता एवं भक्तिपूर्वक मेरा कथन सुनिये ॥४॥ हे देव ! मेरे गुरु अपने इस आश्रम से भाई के यहाँ यज्ञ में गये हैं। आश्रम में आकर वह अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित देखें ॥५॥ हे विभावसो जिस अग्निकुण्ड को तुमने मेरे अपराध के कारण वंचित किया है वह द्विज श्रेष्ठ गुरु आने पर पहिले की भांति ही प्रज्वलित देखें ॥६॥ हे देव ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो, तो दूसरा निवेदन है कि मेरे पुत्रहीन गुरु के गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो ॥७॥

तथाचमैत्रीतनयेसवरिष्यतिमेगुरु ।
तथासमस्तसत्त्वेषुभवत्वस्यमनोमृदु ॥८
यश्चत्वास्तोष्यतेऽनेनप्रीतियातोऽसिमेऽव्यय ।
स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेथामत्प्रसादित ॥९
एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यतमाहद्विजसत्तमम् ।
स्तोत्रेणराधितस्तेनगुरभक्त्याचपावक ॥१०
गुरोरर्थेयतोब्रह्मन्याचितमेवरद्वयम् ।
नात्मार्थंतेनमेप्रीतिस्त्वय्यतीवमहामुने ॥११
भविष्यत्येतदखिलगुरोर्यत्प्रार्थितत्वया ।
मैत्रीसमस्तभूतेषुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥१२
मन्वन्तराधिप पुत्रश्चभौत्योनामभविष्यति ।
महाबलोमहावीर्य्योमहाप्राज्ञागुरुस्तव ॥१३
अनेनयश्च स्तोत्रेणस्तोष्यतेमांससमाहित ।
तस्याभिलषतसर्वंपुण्यंचास्यभविष्यति ॥१४

अपने उस पुत्र से मेरे आचार्य जिस प्रकार प्रीति करें उसी प्रकार समस्त प्राणियों से प्रीति और कोमल व्यवहार करने वाले हों ॥८॥ हे अव्यय ! मुझ पर इस प्रकार तुम्हें प्रसन्न हुआ देख कर जो प्राणी भविष्य में तुम्हारी आराधना करें, उनके लिए भी, तुम मेरे लिए प्रसन्न होकर, वर प्रदान करने वाले हो ॥९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—गुरु भक्ति एवं इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न

अग्नि देव द्विज शांति की प्रार्थना सुन कर बोले ॥१०॥ अग्नि ने कहा—हे ब्राह्मण ! तुमने अपने निज के लिए वर न मांगकर केवल अपने गुरु के लिए वर की प्रार्थना की, हे महर्षि ! इस कारण मैं तुम से अत्यधिक प्रसन्न हूँ ॥११॥ गुरु के हेतु तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति उनकी प्रीति होगी और उनको पुत्र-प्राप्ति होगी ॥१२॥ तुम्हारे गुरु अत्यन्त मेधावी हैं, उनके महापराक्रमी, वीर्यवान् भौत्य नाम का पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति होगा ॥१३॥ साथ ही जो मनुष्य एकचित्त होकर मेरे इस स्तोत्र से मेरी आराधना करेगा, उसकी सम्पूर्ण मन की इच्छाएँ पूरी होंगी और पुण्य का भागी भी होगा ॥१४॥

यज्ञेपुपर्वकालेपुतीर्थेज्याहोमकर्मसु ।
धर्मायपठतामेतन्ममपुष्टिकरंपरम् ॥१५
अहोरात्रकृतपापंश्रुतमेतरमकृद्द्विज ।
नाशयिष्यत्यसन्दिग्धंममनुष्टिकरंपरम् ॥१६
अहोमकालदोपादीनयोग्यैरपितत्कृतैः ।
यैदोपास्तानिदंसद्यःशमयिष्यतिमंश्रुतम् ॥१७
पौर्णमास्याममावास्यापर्वस्वन्येपुचस्तवः ।
मर्मपमंश्रुतोमत्यं भविताऽपापनाशनः ॥१८
इत्युक्त्वाभगवानग्निःपश्यतस्तस्यवैमुने ।
बभूवादर्शनःसद्योदीपस्योनिर्वृतोयथा ॥१९
सचशान्तिर्गतेवह्नौरितुष्टेनचेतसा ।
हर्षरोमाञ्चिततनुःप्रविवेशाश्रमंगुरोः ॥२०
जाज्वल्यमानंनत्रासौगुरधिष्ण्येहुताशनम् ।
ददर्शपूर्ववत्प्राप्ततःपरमामुदम् ॥२१

यज्ञ, पर्वकाल, तीर्थ यज्ञ, धर्मार्थ, व यज्ञ-कर्म में यह वलदाता स्तोत्र जप करने अथवा केवल एक बार सुनने से ही दिन रात के सम्पूर्ण पापों का बिना सन्देह विनाश होगा । हे ब्राह्मण मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त संतुष्टि दायक

है ॥१६॥ यज्ञकाल के व्यतीत होने पर यज्ञ करने एवं अनधिकारी पुरुष द्वारा यज्ञादि करने पर जो दोष होता है, वह सभी इस स्तोत्र के श्रवण से ही तुरन्त नष्ट होगा ॥१७॥ यह उत्तम स्तोत्र पूर्णिमा, अमावस्या या अन्य किसी पर्व के अवसर पर श्रवण करने से प्राणियों के पापों का शमन होगा ॥१८॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषिवर ! किसी दीपक की लौ जिस प्रकार अचानक बुझ जाती है, उसी प्रकार वे अग्नि भगवान् यह वर देकर उन शान्ति मुनि के सामने अन्तर्धान हो गये ॥१९॥ पावक के अन्तर्धान होने पर शान्ति मुनि सन्तुष्ट हृदय एवं आनन्द से पूर्ण होकर अपने गुरु के आश्रम में पहुँचे ॥२०॥ तदनन्तर शान्ति मुनि अग्निकुण्ड में उसी प्रकार अग्नि को प्रज्वलित देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरेसोऽपिगुरुस्तस्यमहात्मनः ।
भ्रातुर्यवीयसोयज्ञादाजगामस्वमाश्रमम् ॥२२
तस्याग्रतश्चशिष्योऽसौचक्रेपादाभिवन्दनम् ।
गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः ॥२३
वत्साहार्द स्वयिमेतथान्येषुचजन्तुषु ।
नवेत्सिकिमिद त्वञ्चेद्वि त्स्येतत्कथाशुभे ॥२४
सत्तः प्रशान्तिस्ततसर्वमाचाय्यायमहामुने ।
अग्निनाशादिकविप्र समाचष्टेयथातथम् ॥२५
तच्छ्रुत्वासपरिष्वज्यस्नेहार्द्र नयनोगुरु ।
शिष्यायप्रददौवेदान्सांगोपाङ्गान्महामुने ॥२६
भौत्योनाममनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत ।
तस्यमन्वन्तरेदेवानृषीन्भूपांश्चमेश्रृणु ॥२७
भविष्यस्यभविष्यास्तुगदतोममविस्तरात् ।
देवेन्द्रोयश्चभवितातस्यविख्यातकर्मणः ॥२८

उसी समय शान्ति के गुरु वह ऋषि श्रेष्ठ छोटे भाई के यहाँ से यज्ञ में से अपने आश्रम में वापिस आये ॥२२॥ तब सम्मुख आकर शिष्य शान्ति ने

उनकी चरण-वन्दना की। उसके पश्चात् गुरु पूजा वन्दन पूर्ण कर आसन ग्रहण कर शान्ति से बोले ॥२३॥ हे वत्स ! तुम्हारे व अन्य दूसरे जीव प्राणियों के प्रति मेरे हृदय मे प्रीति उत्पन्न हुई है, ऐसा कैसे हुआ, मैं अनभिज्ञ हूं। हे वत्स ! कदाचित्, यदि तुम्हारे ज्ञान में हो, तो मुझ से वर्णन करो ॥२४॥ हे महर्षि ! तब विप्र शान्ति ने अग्नि बुझने आदि की सम्पूर्ण विगत कथा गुरु से कही ॥२५॥ हे महर्षि ! गुरु ने समस्त घटना सुनकर प्रेम से आर्द्र नेत्रों से शिष्य शांति को आलिगन बद्ध कर लिया और उसे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेद भी प्रदान किये ॥२६॥ इस प्रकार उन भूनि ऋषि के पुत्र भौम मनु ने जन्म लिया। उन मनु के मन्वन्तर के बीच जो देवगण, ऋषि, राजा और इन्द्रादि होंगे उनका विस्तार पूर्वक वर्णन सुनो ॥२७-२८॥

चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा।
धारावृकाश्चैवतेवै पञ्चदेवगणा स्मृताः ॥२९
शुचिरिन्द्रस्तदातेषांविदशानाभविष्यति।
महाबलोमहावीर्य्यं सर्वं रिन्द्रगुणैर्युतं ॥३०
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मुक्तोऽथमाधव।
शुक्रोऽजितश्चसप्तैतेतदामसर्षय-स्मृता ॥३१
गुरुर्गंभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा।
श्रीमानौग्रप्रतीरश्चविष्णु संक्रन्दनस्तथा ॥३२
तेजस्वीसुबलश्चं वभौत्यस्यैतेमनो सुताः।
चतुर्दशमयैतत्तेमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३
श्रुत्वामन्वन्तराणीत्यक्रमेणमुनिसत्तम।
पुण्यमाप्नोतिमनुजस्तथाक्षीणाचसन्ततिम् ॥३४
श्रुत्वामन्वन्तरपूर्वधर्ममाप्नोतिमानवः।
स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥३५

चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक प्रकार से देवगण होंगे ॥२९॥ उस काल में इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण महापराक्रमी बीर्यवान्

"शुचि" उनके इन्द्र होंगे ॥३०॥ उस मन्वन्तर में अग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित नामक सप्त महर्षि होंगे ॥३१॥ गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमानि, प्रवीर, विष्णु, गत्रमण तथा ॥३२॥ तेजस्वी सुबल नामक पुत्र भौत्य मनु के होंगे। इस प्रकार मैंने आप से चौदह मन्वन्तरों के विषय में कहा ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह समस्त मन्वन्तरों का क्रमबद्ध वर्णन सुनने से मनुष्य पुण्य-लाभ प्राप्त करते हैं एवं उनका परिवार सदैव अक्षुण्ण रहता है ॥३४॥ प्रथम मन्वन्तर का वर्णन सुन कर धर्म में आस्था बढ़ती है और दूसरे मन्वन्तर के श्रवण से उनकी समस्त मन की इच्छाऐं पूरी होती हैं ॥३५॥

औत्तमेधनमाप्नोतिज्ञानमाप्नोतितामसे ।
रैवतेचश्रुतेबुद्धिसुरूपाविन्दतेस्त्रियम् ॥३६
आरोग्यचाक्षुवेपु साश्रुतेवैवस्वतेबलम् ।
गुणवत्पुत्रपौत्रान्तुसूर्य्यसावर्णिकेश्रुते ॥३७
माहात्म्यब्रह्मसावर्णेधर्मसावर्णिकेशुभाम् ।
मतिमाप्नोतिमनुजोरुद्रसावर्णिकेजयम् ॥३८
ज्ञातिश्रेष्ठोगुणैर्युक्तोदक्षसावर्णिकेश्रुते ।
निशात्रयत्यरिबलरौच्यश्रुत्वानरोत्तम ॥३९
देवप्रसादमाप्नोतिभौत्येमन्वन्तरेश्रुते ।
तथाग्निहोत्रपुत्रांश्चगुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०
सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्चश्रृणोतिमुनिसत्तम ।
मन्वन्तराणितस्यापिश्रूयतांफलमुत्तमम् ॥४१

तृतीय मन्वन्तर औत्तम के श्रवण से धन व चतुर्थ तामस मन्वन्तर के श्रवण से ज्ञान प्राप्ति होती है। पंचम रैवत मन्वन्तर के श्रवण से बुद्धिमान् एवं रूपवती भार्या मिलती है ॥३६॥ षष्ठ मन्वन्तर चाक्षुष के श्रवण से मनुष्य नीरोग रहते हैं, सप्तम मन्वन्तर वैवस्वत के श्रवण से पराक्रम एवं अष्टम सूर्य सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से गुणी पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होते हैं ॥३७॥

नवम ब्रह्म सावर्णि मन्वन्तर के श्रवण से माहात्म्य, दशम धर्म सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से कल्याण और ग्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से सुबुद्धि और विजय प्राप्त होती है ॥३८॥ हे नर श्रेष्ठ ! बारहवें मन्वन्तर दक्ष सावर्णिक के श्रवण से पुरुष जाति में सर्वोत्तम और गुणवान् होता है, तेरहवें मन्वन्तर रौच्य के श्रवण से शत्रुओं का बल शमन करने की समर्थता प्राप्त होती है ॥३९॥ चौदहवें मन्वन्तर भौत्य के श्रवण से भगवान् का प्रसाद, अग्निहोत्र फल एवं गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है ॥४०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! प्रथम मन्वन्तर से क्रमबद्ध सभी मन्वन्तरों का श्रवण करने वाले मनुष्यों को किस प्रकार श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है, इसका वर्णन सुनो ॥४१॥

तत्रदेवान्नृपोनिन्द्रान्मनून् स्तत्तनयान्नृपान् ।
श्रुत्वावंशांश्चसर्वेभ्य पापेभ्योप्रमुच्यते ॥४२
देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्येयेतन्मन्वन्तराधिपाः ।
तेप्रीयन्तेनयाप्रीता प्रयच्छन्तिशुभांमतिम् ॥४३
ततः शुभांमतिप्राप्यकृत्वाकर्मतथाशुभम् ।
शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४४
सर्वेम्युर्त्तवःसौम्याःसर्वेसौम्यास्तथाग्रहाः ।
भवन्त्यसंशयश्रुत्वाक्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५

हे ब्राह्मण ! उन मन्वन्तरों के देवगण, सम्पूर्ण ऋषिगण, मनु के नृप पुत्रगण एवं उनकी वंशावलि वर्णन का श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाते हैं ॥४२॥ देवगण, मुनिगण, इन्द्र, नृपतिगण एवं उस मन्वन्तर के अधिपति अपर, वे सब सन्तुष्ट होते हैं एवं सन्तुष्ट होने पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं ॥४३॥ इस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त कर शुभ कार्य करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब-तब सद्बुद्धि मनुष्य प्राप्त करते रहेंगे ॥४४॥ क्रम-बद्ध मन्वन्तरों का वर्णन श्रवण करने सम्पूर्ण ऋतुएँ सहनीय होती हैं और निस्सन्देह सम्पूर्ण ग्रह भी शान्त हो जाते हैं ॥४५॥

६३—राज वंशानुकीर्तन

[illegible] ।
[illegible] ॥१
[illegible] ।
[illegible] ॥२
[illegible] ।
[illegible] ॥३
[illegible] ।
[illegible] ॥४
[illegible] ।
उत्तत[illegible] ॥५
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दातशः ॥६॥ धर्मात्मा, यज्ञ कर्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापो से विमुक्त हो जाता है ॥७॥

तदयश्र् यतोवंशोयतोवंशा सहस्रशः ।
भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ॥८
ब्रह्माप्रजापतिःपूर्वं सिसृक्षुर्विविधा.प्रजाः ।
अंगुष्टाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥६
वामङ्गुष्ठाञ्चतत्पत्नीजगत्सूतिकृरोविभुः ।
ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतोकारणपरम् ॥१०
अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।
तस्यांचकश्यपोदेवं मार्तंडसमजीजनत् ॥११
ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।
आदिमध्यान्तभूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु ॥१२
यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ।
यस्स्वरूपंजगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३
यःसर्वभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ।
आदित्यामभवद्भास्वान्पूर्वं माराधितस्तया ॥१४

एक वटवृक्ष के एक अंकुर से ही एक अलग पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता है, उसी तरह मनुजेन्द्रो के सहस्रो वंश उत्पन्न होगये, वह सुनिये ॥८॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की आकांक्षा से प्रजापति ब्रह्माजी ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्ष प्रधिपति को जन्म दिया ॥६॥ विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए अपने बाये हाथ के अंगूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ॥१०॥ अदिति नाम की एक सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहां जन्म लिया। उस कन्या और कश्यप से मार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ॥११॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो अशेष इस विश्व को वरदाता है, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व अन्त स्वरूप

६३—राज वंशानुकीर्तन

भगवन्कथितासम्यक्त्वयामन्वन्तरस्थितिः ।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचैवावधारिता ॥१
ब्रह्माद्यमखिलवंशभूभुजाद्विजसत्तम ।
श्रोतु ममेच्छतःसम्यग्भगवन्प्रब्रवीहिमे ॥२
शृणुवत्सनृपाणांत्वमशेषाणांसमुद्भवम् ।
चरितचजगन्मूलमादौकृत्वाप्रजापतिम् ॥३
अयहिवंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः ।
सग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैःशतसख्यैरलकृत ॥४
श्रुत्वाचैषांनरेद्राणांचरितानिमहात्मनाम् ।
उत्पत्तयश्चपुरुष सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥५
मनुर्यत्रतथेक्ष्वाकुरनरण्योभगीरथः ।
अन्येचशतशोभूपाःसम्यक्पालितभूमयः ॥६
धर्मज्ञायज्विन शूरा परमार्थार्थवेदिनः ।
श्रुतेतस्मिन्पुमाग्वशेपापौघाद्विप्रमुच्यते ॥७

क्रौष्टकि बोले—हे महाराज ! मन्वन्तरो के विषय मे आपने भली प्रकार वर्णन किया है और मैंने भी उसे विस्तारपूर्वक श्रवण किया है ॥१॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं अधिपतियो की ,सम्पूर्ण वंशावलि ब्रह्माजी से प्रारम्भ कर सुनने का इच्छुक हूँ । हे महाराज ! वह मुझ से सम्यक् प्रकार से कहिये ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विश्वाधार ब्रह्माजी से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण अधिपतियो की जन्म-गाथा एव चरित्र का वर्णन सुनो ॥३॥ यह वश यज्ञ करने वाले, रण विजेता, धर्मज्ञ सैकडो विविध नृपो से अलकृत है ॥४॥ इन महान् नृपतियो के जन्म और चरित्र के विषय मे सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता है ॥५॥ मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ, एवं अन्य दूसरे

दातश: ॥६॥ धर्मात्मा, यज्ञ कर्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाता हैं ॥७॥

तदयथ यतोवंशोयतोवंशा सहस्रश: ।
भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामङ्करोहाययावटात् ॥८
ब्रह्माप्रजापति:पूर्वं सिसृक्षुर्विविधा.प्रजा: ।
ग्रंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥९
वामङ्गुष्ठात्ततत्पत्नीजगत्मूतिकरोविभु: ।
ससर्जंभगवान्ब्रह्माजगतांकारणपरम् ॥१०
ग्रदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।
तस्यांचकश्यपोदेव मार्तंडसमजीजनत् ॥११
ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।
ग्रादिमध्यान्तभूतंचसर्गस्थिरयतकर्मसु ॥१२
यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ।
यत्स्वरूपंजगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३
य:सर्वभूत:सर्वात्मापरमात्मासनातन: ।
ग्रादित्यामभवद्भास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥१४

एक वटवृक्ष के एक अङ्कुर से ही एक सघन पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता , उसी तरह मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न होगये, वह सुनिये ॥८॥ हे ाह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की ग्राकांक्षा से जापति ब्रह्माजी ने ग्रपने दाहिने हाथ के ग्रंगूठे से दक्ष प्रजापति को जन्म िया ॥९॥ विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए ग्रपने ायें हाथ के ग्रंगूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ॥१०॥ अदिति नाम की क सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया। उस कन्या ग्रौर कश्यप से ार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ॥११॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो ग्रशेष इस िश्व को वरदाता हैं, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व ग्रन्त स्वरूप

हैं ॥१२॥ समस्त विश्व के जन्म दाता, जिनमे समस्त विश्व विद्यमान है असुर और मनुष्यों सहित यह विश्व उनका स्वरूप है ॥१३॥ जो सर्व स्वरूप और सर्वात्मा सनातन परमात्मा हैं, अदिति द्वारा स्तुति करने पर उन्हीं भास्कर सूर्य ने उसके गर्भ से जन्म ग्रहण किया ॥१४॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामियत्स्वरूपविवस्वत ।
यत्कारणचादिदेव सोऽभवत्कश्यपात्मज. ॥१५
यथाचाराधितोदेव्यासोऽदित्याकश्यपेनच ।
आराधितेनचोक्त यत्तेनदेवेनभास्वता ॥१६
प्रभावचावतीर्णस्ययथावन्मुनिसत्तम ।
भवताकथितसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषत: ॥१७
विस्पष्टापरमाविद्याज्योतिर्भाशाश्वतीस्फुटा ।
कैवल्यज्ञानमाविर्भू प्राकाम्यसविदेवच ॥१८
बोधश्चावगतिश्च वस्मृतिर्विज्ञानमेवच ।
इत्येनानीहरूपाणितस्यारूपस्यभास्वत ॥१९
श्रूयताचमहाभागविस्तराद्वदतोमम ।
यत्पृष्टवानसिरवेराविर्भावोयथाभवत् ॥२०

क्रौष्टुकी बोले—हे महाराज ! भास्वान् सूर्य के स्वरूप जिसके कारण वह आदि देव कश्यप के पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुए उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१५॥ एव अदिति व कश्यप ने जिस प्रकार आराधना की और आराधना से प्रसन्न सूर्यदेव ने जो कहा ॥१६॥ एव गृहीत जन्मा सूर्य का प्रकार जैसे पहले आपने वर्णन किया है श्रेष्ठ ! वह सभी सम्यक् प्रकार से श्रवण करने की इच्छा है ॥१७॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योति, शाश्वती, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, सवित् ॥१८॥ बोध, अवगति, स्मृति एवं विज्ञान आदि सभी सूर्यदेव के स्वरूप हैं । हे महाभाग ! रवि के अविर्भाव के विषय मे विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥२०॥

निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोकेसर्वतस्तमसावृते ।
बृहद्दण्डमभूदेकमक्षरकारणपरम् ॥२१

तद्विभेदतदन्त-स्थोभगवान्प्रपितामह् ।
पद्मयोनि स्वयब्रह्माय स्रष्टाजगताप्रभु ॥२२
तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दोमहामुने ।
ततोभूस्तुभुवस्तस्मात्तत्रस्वरनन्तरम् ॥२३
एताव्याहृतयस्तिस्र स्वरूपतद्विवस्वत ।
ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तुसूक्ष्मरूपरवे परम् ॥२४
ततोमहरितिस्थूलजनस्थूलतरतत ।
ततस्तपस्तत सत्यमितिमूर्तानिसप्तधा ॥२५
स्थितानितस्यरूपाणिभवन्तिनभन्तिच ।
स्वभावभावयोर्भावयतोगच्छन्तिसक्षयम् ॥२६
आद्यन्तयत्परसूक्ष्ममरूपपरमस्थितम् ।
ओमित्युक्त मयाविप्रतत्परब्रह्मतद्वपु ॥२७

सृष्टि के पूर्व, जब यह विश्व आभाहीन, अन्धकारमय था तब क्षय रहित एक विशाल अण्ड उत्पन्न हुआ ॥२१॥ उसी समय जगत् के जन्मदाता प्रपितामह ब्रह्मा पद्म-योनि में विद्यमान थे, उन्हीं ने स्वय इस अण्डे को भेद दिया ॥२२॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी के मुखारविन्द से उस समय ॐ शब्द हुआ। ओंकार शब्द से पहले भू, भुव एव तत्पश्चात् स्व उत्पन्न हुआ ॥२३॥ यह व्याहृति भगवान् भास्कर का स्वरूप है। ॐ शब्द के स्वरूप से सूर्य का अत्यन्त सूक्ष्म रूप हुआ है ॥२४॥ उससे स्थूल रूप मह' तत्पश्चात् स्थूल रूप 'जन' फिर स्थूल रूप 'तप' अनन्तर स्थूल रूप 'सत्य' उत्पन्न होगया। सूर्य का सपूर्ण रूप स्थूल है। विवस्वान् सूर्य के स्थूलो के सूक्ष्म भेद से ओंकार के सप्त रूप उत्पन्न हुए ॥२५॥ सूर्य भगवान् के सप्त रूप भी कभी कभी सम्मुख होते हैं और कभी छिप रहते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव एव प्रकृति का अस्तित्व सदात्मक होता है ॥२६॥ हे ब्राह्मण ! इस जगत् के प्रारम्भ व अन्त मे निराकार परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान हैं, ॐ कार से मेरा अभिप्राय उन्हीं से है। हे ब्राह्मण ! वह ब्रह्मस्वरूप ही मार्कण्ड देव की देह है ॥२७॥

६४—वेदमय-मार्तण्ड की उत्पत्ति

तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन: ।
ऋचोबभूवु प्रथमप्रथमाद्वदनान्मुने ॥१
जपापुष्पनिभा सद्यस्तेजोरूपाह्यसहता ।
पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्तत ॥२
यजूंषिदक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् ।
याहग्वर्णंतथावर्णान्यसंहतिधराणिच ॥३
पश्चिमयद्विभोर्वक्त्र ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
आविर्भूतानिसामानितत्तच्छन्दांसितासितान्यथ ॥४
अथर्वणामशेषचभृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ।
यावद्घोरस्वरूपतदाभिचारिकशान्तिकम् ॥५
उत्तराप्रवटीभूतवदनात्तस्यवेधस. ।
सुखसत्त्वतम प्रायसौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥६
ऋचोरजोगुणा सत्त्वयजुषाचगुणामुने ।
तमोगुणानिसामानितम सत्त्वमयर्वसु ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—'हे द्विज ! उस अण्डे के भेदन पर अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी साकार हुए और उनके मुख से निकले वचनों से ऋग्वेद की रचना हुई ॥१॥ वह जपापुष्प तुल्य तेजस्वरूप और पृथक् विभिन्न रजो रूप धारण करने वाला था ॥२॥ ब्रह्माजी के दक्षिण मुख से स्वर्ण तुल्य वर्ण युक्त असंहति धारण करने वाले समस्त यजु की अनिरुद्ध भाव से रचना हुई ॥३॥ तदनन्तर परमात्मा ब्रह्माजी के पश्चिम मुख से साम की रचना हुई, सम्पूर्ण साम छन्द पूर्ण था ॥४॥ ब्रह्माजी के उत्तर मुख से भृंग व अञ्जन के स्तूप के समान आभापूर्ण कृष्ण वर्ण, आभिचारिक, शान्तिकर्त्ता, सुख, सत्त्व, तम से युक्त सौम्य और असौम्य स्वरूप अथर्व की रचना हुई ॥५-६॥ हे मुनि ! सम्पूर्ण ऋक् में रजोगुण, सम्पूर्ण यजुः में सत्त्व गुण, सम्पूर्ण साम में तमोगुण एवं सम्पूर्ण अथर्व में सत्त्व एवं तमोगुण है ॥७॥

एतानिज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेनवै ।
पृथक्पृथगवस्थानर्माञ्चपूर्वमिवाभवन् ॥८
ततस्तदाद्य यत्तेजश्रोमित्युक्त्वाभिक्षव्दचते ।
तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्यसस्थितम् ॥९
यथायजुर्मयतेजस्तद्वत्साम्नामहामुने ।
एकत्वमुपयातानिपरेतेजसिमश्रये ॥१०
शान्तिकपौष्टिकचैवतथाचैवाभिचारिकम् ।
ऋगादिपुलयग्रह्यखितयत्रिष्वथागमत् ॥११
ततोविश्वमिदमद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् ।
विभावनीयविप्रर्पेतिर्य्यगूर्ध्वमवस्तथा ॥१२
ततस्तन्मण्डलीभूतछान्दसतेजउत्तमम् ।
परेणातेजसाब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्यतत् ॥१३
आदित्यसज्ञामगमदादावेवयतोऽभवत् ।
विश्वस्यास्यमहाभागकारणश्चाव्ययात्मकम् ॥१४

इन सभी ने अद्वितीय तेज से प्रकाशवान् होकर पृथक्-पृथक् भाव से स्थिति की ॥८॥ उसके पश्चात् प्रथम का वह तेज, जिसके लिये ॐ शब्द प्रयुक्त हुआ है, उससे उत्पन्न जो तेज है, उसे वह अपने में समेट कर स्थित हुआ ॥९॥ हे महर्षि ! इस प्रकार साम युक्त तेज एवं यजुर्युक्त तेज को भी अपने में समेट लिया, इस प्रकार सम्पूर्ण तेज उस ॐ स्वरूप परम तेज में आवृत होकर एक होगये ॥१०॥ हे विप्र ! इसके बाद ऋक्, साम यजु तीनों वेदों में, शान्ति युक्त, पौष्टिक, आभिचारिक इन तीनों में अर्थात भेद भी मिल गया ॥११॥ हे ब्रह्मर्षे ! अन्धकार नष्ट होने पर समस्त जगत् तुरन्त स्वच्छ होगया, जिससे उसका ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् अथवा पार्श्व देश प्रकाश में आये ॥१२॥ हे विप्र ! तत्पश्चात् वह परम छन्दस तेज मण्डलीभूत हो फिर श्रेष्ठ ॐ कार तेज में लीन होकर एक होगया ॥१३॥ इस प्रकार इस तेज को आदि में उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' की सज्ञा दी गई । हे महाभाग ! यही इस जगत् का अव्ययात्म कारण है ॥१४॥

प्रातर्म्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्णिके ।
त्रयीतपतिसाकालेऋग्यजु.सामसंज्ञिता ॥१५
ऋचस्तपतिपूर्वाह्णे मध्याह्णे चयजूंषिवै ।
सामानिचापराह्णे वैतपन्तिमुनिसत्तम॥१६
शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णे यजुष्येवचपौष्टिकम् ।
विन्यस्तसाम्निसायाह्णे ह्याभिचारिकमन्तत. ॥१७
मध्यन्दिनेऽपराह्णे चसमेचैवाभिचारिकम् ।
अपराह्णे पितृणान्तुसाम्नाकार्य्याणितानिवै ॥१८
विसृष्टौऋङ्मयोब्रह्मास्थितौविष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्र.साममयोन्तेचतस्मात्तस्याशुचिध्वनिः ॥१९
तदेवभगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसंस्थित ।
वेदविद्यात्मकश्चैवपर:पुरुषउच्यते २०
सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरज सत्वादिकान्गुणान् ।
आश्रित्यब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञामभ्येतिशाश्वत ॥२१
देवैं सदेड्य.सतुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिं. ।
विश्वाश्रयज्योतिरवेद्यधर्मावेदान्तगम्य परम.परेश ॥२२

ऋक्, यजु और साम तीनों संज्ञाऐं प्रात , मध्याह्न एव अपराह्न काल मे तपती हैं ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उनमे ऋक् प्रात काल, यजु मध्याह्न मे और साम अपराह्न मे तपता है ॥१६॥ पूर्वाह्न-काल ऋक् मे शान्ति कर्म, मध्याह्न मे यजु मे पौष्टिक एव अपराह्न काल मे साम मे सम्पूर्ण आभिचारिक कर्म निहित है ॥१७॥ मध्याह्न और अपराह्न समय मे ही अभिचारिक-कर्म करे एव साम द्वारा केवल अपराह्न में ही पितरो का कार्य सम्पन्न करे ॥१८॥ सृष्टि के समय मे ब्रह्मा ऋक्मय, स्थितिकाल मे विष्णु यजुर्मय एव शमन काल मे रुद्र साम मय होते हैं, इसलिये अपराह्न काल को अशुचि कहते है ॥१९॥ इस कारण उपर्युक्त प्रकार से वेदात्मा, वेद संस्थित एव वेद विद्यायुक्त भगवान् भास्वान् परम पुरुष नाम उच्चारण किया गया है ॥२०॥ सृष्टि के आदि,स्थिति व प्रलयकर्त्ता यह शाश्वत आदित्य सत्व रज एव तमोगुण को आश्रय कर ब्रह्मा,विष्णु और महेश नाम प्राप्त होते हैं ॥२१॥ देवताओ द्वारा सदैव आराध्य

की स्तुति करने लगे ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—जो समस्त जगत् के आत्मा रूप और इस जगत् में विद्यमान हैं, विश्व जिनका मूर्त्त रूप है एवं योगी भी जिस अनिन्द्रियगाह्य श्रेष्ठ ज्योति की आराधना करते हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ ऋग्वेद युक्त अचिन्त्य शक्ति, यजुर्वेद के आधार साम की रचना के कारण, स्थूलता प्रभृति तीनों में निहित, अर्द्ध मात्रा स्वरूप, परब्रह्म रूप और महान् गुणी हैं ॥६॥ सब प्रथम उन्हीं सर्वाधार स्वी परम पूज्य, परमेश्वर, अवह्निरूप, परमज्योति, देवात्मता के लिये स्थूल रूप एवं श्रेष्ठों से श्रेष्ठतम आदि पुरुष भगवान् भास्कर को नमस्कार करता हूँ ॥७॥

सृष्टिकरामियदहतवशक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविपयाप्रणवाद्यशेपानात्मेच्छयास्थितिलयावपितद्वदेव ॥८
वह्निस्त्वमेवजलशोपणात पृथिव्या सृष्टिकरोपिजगताचतथाद्यपाकम् ।
व्यापीत्वमेवभगवन्गगनस्वरूपत्वपञ्चधाजगदिदपरिपासिविश्वम् ॥६
यज्ञैर्यजन्तिपरमात्मविदोभवन्त विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयविवस्वन् ।
ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरपरममात्मविमुक्तिकाम १०
नमस्तेदेवरूवपाययज्ञरूपायतेनम ।
परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमानाययोगिभि ॥११
उपसहरतेजोयत्तेजस सहतिस्तव ।
सृष्टेर्विघातायविभोसृष्टौचाहसमुद्यत ॥१२
इत्येवसस्तुतोभास्वान्ब्रह्मणासर्गकर्तृणा ।
उपसहृतवास्तेज परस्वल्पमधारयत् ॥१३
चकारचतत सृष्टिजगत पद्मसम्भव ।
तथातेषुमहाभाग पूर्वकल्पान्तरेपुवै ॥१४
देवासुरादीन्मर्त्यांश्चपश्वादीन्वृक्षवीरुध ।
ससर्जपूर्ववद्ब्रह्मानरकांश्चमहामुने ॥१५

हे देव ! आपकी ही शक्ति नित्या है, क्योंकि मैं उससे प्रेरणा पाकर ही, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि देवतादि एवं प्रणवादि अशेष की सृष्टि करता हूँ। इस प्रकार स्थिति और प्रलय भी स्वेच्छा से नहीं करता, वह सब भी

आपकी प्रेरणा से ही करता हूँ ॥८॥ हे भगवन् ! तुम वह्निरूप भी हो। जिस समय अग्नि में तुम जल शुष्क करते हो तब मैं विश्व-सृष्टि एवं प्रथम पाक सम्पन्न करता हूँ, सर्वव्यापी आकाश स्वरूप आप ही हो, पञ्चरूप इस जगत् के रक्षक भी आप ही हो ॥९॥ हे भास्कर ! परमार्थविद् मनुष्य यज्ञमय विष्णु स्वरूप में यज्ञ द्वारा आपकी आराधना करते हैं, आत्म-मोक्ष के आकांक्षी जितेन्द्रिय यति भी आपको परम सर्वेश्वर मानकर आपका मनन करते हैं ॥१०॥ आप देवरूप हैं, आपको प्रणाम करता हूँ, आप ही यज्ञरूप और परब्रह्म स्वरूप मानकर योगी आपका चिन्तन करते हैं, आपको प्रणाम करता हूँ ॥११॥ हे प्रभो ! आप तेज को त्यागें, मैं सृष्टि की रचना के लिए उद्यत हूँ, आपका तीव्र तेज सृष्टि की रचना में बाधक है ॥१२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान् भास्कर ने सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की याचना से प्रसन्न होकर अपना तीव्र तेज त्याग दिया और केवल सामान्य तेज धारण किया ॥१३॥ फिर महाभाग ब्रह्माजी ने पूर्व कल्पान्त कल्प में विश्व की सृष्टि रचना की ॥१४॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी ने पूर्व की भाँति सुर, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि एवं अनन्त नरक की रचना की ॥१५॥

९६—कश्यप प्रजापति की सृष्टि

सृष्ट्वाजगदिदंब्रह्माप्रविभागमथाकरोत् ।
वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानांपूर्ववद्यथा ॥१
देवदैत्योरगादीनांरूपस्थानानिपूर्ववत् ।
वेदेभ्यएवभगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥२
ब्रह्मणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरितिविश्रुतः ।
कश्यपस्तस्यपुत्रोऽभूत्कश्यपोनामनामतः ॥३
दक्षस्यतनयाब्रह्मंस्तस्यभार्यास्त्रयोदश ।
बहुवस्तत्सुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥४

अदितिर्जनयामासदेवास्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवानुरुविक्रमान् ॥५
गरुडारुणौचविनतायक्षरक्षांसिवैखसा ।
कद्रू सुपावनागाश्चगन्धर्वान्सुपुवेमुनि ॥६
क्रोधायाजज्ञिरेकुल्यारिष्टायाश्चाप्सरोगणा ।
ऐरावतादीन्मातङ्गानिराचसुपुवेद्विज ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी ने विश्व की रचना करके पूर्व की भाँति वर्णो, आश्रम, समुद्र, गिरि और सम्पूर्ण द्वीपो का विभाजन किया ॥१॥ भगवान् ब्रह्माजी ने देवगण दैत्य एव उरगणो का रूप तथा स्थिति देवगणा से प्रारम्भ कर पूर्व की भाँति ही निर्दिष्ट किये ॥२॥ ब्रह्माजी के मरीचि नामक पुत्र से कश्यप नामक एक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि कश्यप नाम से ही विख्यात हुए ॥३॥ हे विप्र ! दक्ष की तेरह कन्याएँ उनकी पत्नियाँ हुई, जिनके गर्भ से देव, दैत्य और उरग आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ अदिति से त्रिभुनेश्वर देवताओ को जन्म दिया, दिति ने दैत्यो और दनु ने महापराक्रमी क्रोधी दानवो को जन्म दिया ॥५॥ विनता ने गरुण व अरुण खगा ने यक्ष व राक्षसो, कद्रू ने नागो एव मुनि ने गन्धर्वो को जन्म दिया ॥६॥ हे ब्राह्मण ! क्रोधा से कुल्यागण, रिष्टा से अप्सराऐ और ईरा से ऐरावत इत्यादि हथियो ने जन्म लिया ॥७॥

ताम्नाचसुपुवेश्येनीप्रमुखा कन्यकाद्विज ।
यासाप्रसूता खगमा श्येनभासशुकादय ॥८
इलाया पादपाजाता प्रधायायादसागणा ।
आदित्यायासमुत्पन्नाकश्यपस्येतिसन्तति ॥९
तस्याश्चपुत्रदौहित्रै पौत्रदौहित्रिकादिभि ।
व्याप्तमेतज्जगत्सूत्यातेषातासाश्चवैमुने ॥१०
तेषाकश्यपपुत्राणाप्रधानादेवतागणा ।
सात्विकाराजसास्त्वेते तामसाश्चमुनेगणा ॥११

देवान्यज्ञभुजश्चक्रेनथात्रिभुवनेश्वरान् ।
ब्रह्मब्रह्मविदाश्रेष्ठ.परमेष्ठीप्रजापति ॥१२
तानवाधन्तसहिता स पत्नादैत्य दानवा ।
राक्षसाश्चतथायुद्ध तेषामासीत्सुदारुणम् ॥१३
दिव्यवर्षसहस्रन्तुपराजीयन्तदेवता: ।
जयिनश्चाभवन्विप्रवलिनोदैत्यदानवा: ॥१४

ताम्रा से श्येनी आदि कन्याऐं उत्पन्न हुई । इन कन्याओं से ही श्येन, भास एवं शुकादि खेचरगण उत्पन्न हुए ॥८॥ इला ने पादपगणों एवं प्रधा से पतङ्ग गणों ने जन्म लिया । हे ऋषिवर ! अदिति के गर्भ से उत्पन्न कश्यप की जो सन्तानें थी ॥९॥ उनके पुत्र खेवले और नानी, खेवते आदि एवं उनकी सन्तानें समस्त विश्व में व्याप्त हो गई ॥१०॥ हे ऋषि ! कश्यप के पुत्रों में देवता ही प्रमुख हैं, उनके त्रिविधगण, सात्विक, राजस एवं तामस हैं ॥११॥ परमेष्ठ एवं ब्रह्मज्ञ श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्माजी देवतागणों को त्रिभुनेश्वर एवं यज्ञ-भुक् किया था ॥१२॥ किन्तु विमाताओं से उत्पन्न दैत्य, दानव और राक्षस मिलकर देवतागणों के प्रति शत्रुता का आचरण करते हुए बाधा पैदा करते थे, इसलिये उनका देवगणों के साथ हजारों वर्षों तक विकराल युद्ध हुआ । हे ब्राह्मण ! इस महायुक्त में देवगणों की पराजय हुई और बलवान् दैत्य व दानव जीत गये ॥१३-१४॥

ततोनिराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ।
हृतत्रिभुवनान्दृष्ट्वाह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५
आच्छिन्नयज्ञभागाश्चक्षुचासपीडिताभृशम् ।
आराधनायसवितु परयत्नप्रचक्रमे ॥१६
एकाग्रानियताहारापरनियममास्थिता ।
तुष्टावतेजसाराशिंगगनस्थदिवाकरम् ॥१७
नमस्तुभ्यपरासूक्ष्माभौवर्णोविभ्रतेतनुम् ।
धामधामवतामीशधाम्नामाधारशाश्वत ॥१८

यद्रूपजीवनायैकवीरुधाममृतात्मकम् ।
पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनम ॥२६
आप्यायदाहरूपाभ्यांरूपविश्वमयन्तव ।
समेतमग्नीषोमाभ्यानमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७
यद्रूपमृग्यजुसाम्नामैक्येनतपतेतव ।
विश्वमेतत्त्रयीमञ्जनमस्तुमेविभावसो ॥२८

जल वर्षा से उत्पन्न अशेष औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणे ! सस्य-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! वसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अशेष देवता एवं पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है उसको नमस्कार करती हूँ ॥२५॥ सम्पूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एवं सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो जगत्मय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२८॥

यत्तुतस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ।
अस्थूलानन्तममलनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९
एवमानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहाराविवस्वन्तमाराधयिपुर्मुने ॥३०
ततः कालेनमहताभगवास्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥३१
सादर्दर्शमहाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।
जगादमेप्रसीदेतिनत्वापश्यामिगोपते ॥३२
यथादृष्टवतीपूर्वमम्बरस्यसुदुर्दृशम् ।
निराहाराविवस्वन्तंतपन्तनदनन्तरम् ॥३३

जगतामुपकारायतथापस्तवगोपते ।
आददानस्ययद्रूपतीव्र तस्मैनमाम्यहम् ॥१९
ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयरसम् ।
विभ्रतस्तवयद्रूपमतितीव्र नतास्मितत् ॥२०
तमेवमुञ्चत सवरसवेवर्षणायायत् ।
रूपमाप्यायकुभास्वस्तस्मैमेधायतेनम ॥२१

हे ऋषिश्रेष्ठ ! तदुपरान्त दैत्य दानवो द्वारा त्रिभुवन का हरण किया गया एव इस प्रकार अपने पुत्रो को पराजित हुआ एव यज्ञ भागो से वचित किये हुए देखकर, अदिति शोक एव पीडा सहित भगवान् भास्कर देव की स्तुति करने लगी ॥१५-१६॥ एकचित्त नियताहार एव उत्तम नियम परायणता का पालन करती हुए आकाश मडल मे विद्यमान तेज राशि भगवान् सूर्यदेव की आराधना करन लगी ॥१७॥ अदिति बोली—हे शाश्वत ! आप सुन्दर सूक्ष्म सुवर्ण तन धारक हो आप ज्योति स्वरूप, ज्योतिष्गणो मे मुख्य एव ज्योति के आधार हो, आपको नमस्कार ॥१८॥ हे गोपते ! विश्व का कल्याण करने के लिये जल ग्रहण करन वाली आपकी तीव्र मूर्ति को नमस्कार ॥१९॥ आठ महीन की अवधि पयन्त इन्दुमय रस ग्रहण करने वाली आपकी अत्यन्त तीव्र मूर्ति को प्रणाम करती हू ॥२०॥ हे भगवन् ! उस एकत्रित सम्पूर्ण रस को परित्याग कर वर्षा करने के लिये आप जो तृप्ति कारक मेघ रूप धारण करते हो, उस मेघरूप आपकी मूर्ति को प्रणाम ॥२१॥

वायुं रसर्गविनिष्पन्नमशेषश्चौषधीगणम् ।
पाकायतवयद्रूपभास्करतनमाम्यहम् ॥२२
यच्चरूपतवातीतहिमोत्सर्गादिशीतलम् ।
तत्कालसस्यपोषायतरणेतस्यतेनम ॥२३
नाति तीव्र चयद्रूपनातिशीतचयत्तव ।
वसन्तत्तौरवेसौम्यतस्मैदवनमोनमः ॥२४
आप्यायनमशेषाणादवानाचतथापरम् ।
पितृणाचनमस्तस्मैमस्यानापारहेतव ॥२५

यद्रूपजीवनायैकवीरुघाममृतात्मकम् ।
पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनम ॥२६
श्राप्यायदाहम्पाम्यात्पविश्वमयन्तव ।
समेतमग्नीषोमाम्यानमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७
यद्रूपमृग्यजु साम्नामैक्येनतपतेतव ।
विश्वमेतत्त्रयीसज्ञनमस्तमैविभावसो ॥२८

जल वर्षा से उत्पन्न अशेष औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणे ! शस्य-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! बसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अशेष देवता एव पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है उसको नमस्कार करती हूँ ॥२५॥ सपूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एव सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो जगत्मय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२७॥

यत्तुतम्मात्परररूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ।
अस्थूलानन्तममलनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९
एवसानियतादेवीचक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहाराविवस्वन्तमाराधयितुम्ने ॥३०
ततकालेनमहताभगवास्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥३१
साददर्शमहाकूट तेजसोऽम्बरसश्रितम् ।
जगादमेप्रसीदतिनत्वापश्यामिगोपते ॥३२
यथादृश्वतोपूर्वमम्बरस्यसुदुर्दर्शम् ।
निराहाराविवस्वन्ततपन्तनदनन्तरम् ॥३३

सघाततेजसातद्वदिहपश्यामिभूतले ।
प्रसादकुरुपश्येययद्रूपन्तेदिवाकर ।
भक्तानुकम्पकविभोभक्ताहपाहिमेसुतान् ।।३४

इसके अतिरिक्त आपका जो उत्तम सूक्ष्म, अनन्त एव स्वच्छ ओंकार रूप कहा जाता है उस नित्यस्वरूप का नमस्कार ।।२६।। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! अदिति देवी इस प्रकार नियमपरायण एव निराहार जीवन पालन कर भास्कर भगवान् की आराधना करने की आकाक्षा से दिन रात उनकी स्तुति करने लगी ।।३०।। हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर भगवान् सूय गगन स्थित हुए दक्ष सुता के समक्ष दिखाई देने लगे ।।३१।। जो एकदम चमकने वाली अ शुमाला द्वारा आकाश मडल मे भी स्पष्ट दर्शनीय नही थे, उन्ही तेजराशि स्वरूप रवि भगवान् को अदिति ने पृथ्वी के तल पर विद्यमान देखा । उन्हें देखकर अदिति बहुत भयभीत हुई और बोली—"हे गोपते ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, मैं आपको देख नही सकती ।।३२।। प्रारम्भ मे निराहार होकर आकाश मे विद्यमान असहनीय सूयदेव को जिस प्रकार तप्तता प्रदान करते देखा, अब इस धरातल पर भी मैं उसी प्रकार तीव्र तेजवान् मूर्ति को देख रही हूँ । हे दिनकर ! मुझ पर प्रसन्न होवें, जिससे मैं आपको स्वाभाविक स्वरूप का दर्शन कर सकूँ । हे प्रभो ! आप भक्तो पर कृपा करते हैं, मैं आपकी भक्त हू, आप मेरे पुत्रो की रक्षा करें ।।३३-३४।।

त्वधाताविसृजसिविश्वमेतत्त्वपासिस्थितिकरणायसप्रवृत्त ।
वय्यन्तेलयमखिलप्रयातितात्वत्त्वत्तोऽन्यानहिगतिरस्तिसर्वलोके ।।३५
त्वग्रह्माहरिरजसज्ञितस्त्वमिन्द्रोवित्तेश पितृपतिरप्पति समीर ।
सोमाऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धि ।
किस्तव्यतवसकलात्मरूपधाम्न ।।३६
यज्ञेशत्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ता ।
स्तुवन्तोत्रिविधपदैर्द्विजायजन्ति ।
ध्यायन्तोविनियतचेतसोभवन्तयोगस्था परमपद प्रयान्तिमर्त्या ।।३७

तपसिपचसिविश्वं पासिभस्मीकरोपि,
प्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भे ।
सृजसिकमलजन्मापालयस्य,
च्युतास्य क्षपयसिचयुगान्तेरुद्ररूपस्त्वमेकः ॥३८

आप ब्रह्मा के रूप मे इस जगत् के जन्मदाता हैं, जगत् की सृष्टि के पश्चात् स्थिति काल मे इसका पोपण करते हैं एव प्रलय काल म सम्पूर्ण तत्व आप मे ही विलीन होते हैं। इसलिए सभी लोगो मे आपके अतिरिक्त अन्य कोई गति नही है ॥३५॥ आप ब्रह्मा, हरि, अजसज्ञित शिव, इन्द्र, धनपति कुवेर, यम, वरुण एव समीर हैं और आप ही अग्नि, आकाश, पृथ्वी का आधार एव सागर हैं। आप ही समस्त तेज पदार्थों के आत्मरूप हैं, अधिक आपकी क्या स्तुति करें ? ॥३६॥ हे यज्ञेश ! आपके कर्मोमें लीन ब्राह्मण लोग प्रतिदिन विभिन्न छन्दो द्वारा स्तुति करके आपकी पूजा करते हैं। एकाग्रचित्त योगी पुरुप आपका ध्यान करते हुए परमधाम प्राप्त करते हैं ॥३७॥ विश्व को उष्णता प्रदान कर्त्ता तुम ही जगत् को रक्षित, भस्म किरणो द्वारा प्रकाशित करते हो एव जल गर्भ की भेदने वाली किरणों के समूह स आह्लादित एव पुन उत्पन्न करते हो, देवगण व मनुष्य सदैव आपको प्रणाम करत हैं और पापी मनुष्य एकचित्त होन पर भी आपको प्राप्त नहीं कर सक्त ॥३८॥

६७—अदिति के गर्भ से आदित्य का जन्म

ततस्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतोविभावसु ।
अदृश्यनतदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभ ॥१॥
अथताप्रणतादेवीतम्यसदर्शनान्मुने ।
प्राहभास्वान्वृणुष्वेष्टवरमत्तायमिच्छसि ॥२
प्रणताशिरसासाचजानुपीडितमेदिनी ।
प्रत्युवाचविवस्वन्तवरदसमुपस्थितम् ॥३

ततोरश्मिसहस्रात्तु मोगुम्नाम्योरवे कर ।
विप्रावतारसचक्रे देवमातुरथोदरे ॥११
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाचचक्रेसमाहिता ।
शुचि मधारयामासदिव्यगर्भमिनिद्विज ॥१२
ततस्ताकश्यप प्राहकिञ्चत्कोपप्लुताक्षरम् ।
किम्मारयसिगर्भाण्डमितिनित्योपवासिनी ॥१३
साचतप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ।
नमारित विपक्षाणांमृत्यवेतद्भविष्यति ॥१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ब्राह्मण ! उनके पश्चात् जल शुष्क करने वाले भगवान् भास्कर प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक अदिति से बोले ।।८।। हे अदिते ! सहस्रांशु तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रगण के शत्रु समस्त दैत्य व दानवों को समूल नष्ट करूँगा । तुम्हारे पीड़ित पुत्र तुरन्त ही सुखी होंगे ।।६।। इस प्रकार वर देकर भगवान् भास्कर अदिति के सामने से अन्तर्धान हो गये और अदिति ने भी मनोवाञ्छित वर प्राप्त करके तपस्या त्याग दी ।।१०।। हे ब्राह्मण ! तदुपरान्त सूर्य की जो पुत्र किरण सहस्रांशु से अदिति के गर्भ से अवतरित हुई ।।११।। हे ब्राह्मण ! वह अदिति सावधानी पूर्वक कृच्छचांद्रायण आदि व्रत व अनुष्ठान करती हुई पवित्रता पूर्वक दिव्य गर्भ धारण करने लगी । तब कश्यप जी ने क्रोधित हो कहा—तुम प्रतिदिन उपवास करके अपने इस गर्भ को नष्ट करोगी ।।१३।। अदिति बोली—"हे कुपित स्वभाव, मैं इस गर्भ को नष्ट नहीं कर रही, यह तो शत्रु दैत्य और दानवों का दमन करने वाला होगा ।।१४।।

इत्युक्त्वातततदागर्भमुत्समर्जसुरारणि ।
जाज्वल्यमानतेजाभि पत्युर्वचनकोपिता ॥१५
तदृष्ट्वाकश्यपागर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात् ।।१६
सस्तूयमान सतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसाव्याप्तदिङ्मुख ॥१७

अथान्तरिक्षादाभाष्यकश्यपमुनिसत्तमम् ।
सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ।।१८
मारितंतेयत प्रोक्तमेतदण्डस्त्वयामुने ।
तस्मान्मुनेसुतस्तेऽयमार्त्तण्डाख्योभविष्यति ।।१९
सूर्याधिकारचविभुर्जगत्येषकरिष्यति ।
हनिष्यत्यसुरांश्चाययज्ञभागहरानरीन् ।।२०
देवानिशम्येतिवचोगगनात्समुपागमन् ।
प्रहर्षमतुलयातादानवाश्चहततौजस ।।२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार कह देवमाता अदिति पति के वचनो को सुनकर तेज एव जाज्वल गर्भ को परित्याग किया ।।१५।। उगते हुए सूर्य के तुल्य प्रभावान् उस गर्भ को देख कर कश्यप आदर सहित नत-मस्तक होकर मन्त्रोच्चारण द्वारा स्तुति करने लगे ।।१६।। कश्यप की स्तुति का सुन कर वह भास्कर तेजस्वी किरणो को दिशाओ मे फैलाते हुए पद्मपत्र तुल्य वर्णयुक्त होकर गर्भाण्ड से प्रकट हुए ।।१७।। इसके पश्चात् जलपूर्ण मेघ के समान अतंरिक्ष के मध्य कोई विदेह वाणी ऋषिवर कश्यप को सम्बोधित करते हुए कहने लगी ।।१८।। हे ऋषि, आपने इस अण्ड को 'मरित' कहा, इसलिए आपके इससे उत्पन्न पुत्र का नाम मार्तण्ड होगा ।।१९।। यह महा-पुरुष, विश्व मे सूर्य की भाँति तेजस्वी होगे एव आपके देव पुत्रो के यज्ञ भाग हरने वाले दैत्य, दानव और असुरो का विनाश करेंगे ।।२०।। अतंरिक्ष वाणी के इन वचनो रो सुन कर देवगण अत्यन्त हर्षित होकर आकाश से आये एव दैत्य, दानवगण तेज विहीन हो गये ।।२१।।

ततोयुद्धायदैतेयानाजुहावशतक्रतु ।
सहदेवैर्मुदायुक्तोदानवाश्चसमभ्ययु ।।२२
तेपायुद्धमभूद्घोरदेवानामसुरैः सह ।
शस्त्रास्त्रदीप्तिसदीप्त समस्तभुवनान्तरम् ।।२३
तस्मिन्युद्धे भगवतामार्त्तण्डेननिरीक्षिता ।
तेजसादह्यमानास्तेभस्मीभूतामहासुराः ।।२४

ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ता सर्वेदिवौकसः ।
तुष्टुवुस्तेजसांयोनिमार्त ण्डमदितितया ॥२५
स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्चपूर्ववत् ।
भगवानपिमार्तण्डःस्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वचररश्मिभिः ।
वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदग्धेनातिस्फुरद्वपुः ॥२७

उसके पश्चात् सुरगण सहित इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया तो वे उत्साहपूर्वक आये ॥२२॥ उस समय दानवों से सुरगण का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया और त्रिभुवन सुरों व असुरों के शस्त्रास्त्रों की चमक से भी उसी प्रकार तेजपूर्ण हो गया ॥२३॥ उस महाभयकर संघर्ष में तमोगुण युद्ध में असुरगण भगवान् मार्तण्ड के तेज द्वारा नष्ट हो गये और देवगण शक्तिमान् होकर हर्ष मनाने लगे उन्होंने सूर्य भगवान् और अदिति की स्तुति की ॥२४-२५॥ अब देवता अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करके यज्ञ भाग पाने लगे और सूर्य भगवान् और भी अधिक प्रकाशमान होकर आकाश में कदम्ब पुष्प की तरह स्थित होकर सर्वांग तेजोमयी किरणों का प्रसार करने लगे ॥२६:२७॥

६८—भानुतन लेखन

अथतस्मैददौकन्यांसंज्ञांनामविवस्वते ।
प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१
वैवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्यांविवस्वतः ।
पूर्वमेवतयाख्याततत्स्वरूपंविशेषतः ।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिमार्त ण्डस्यमहात्मनः ।
चरितंहतियत्पापकलौसंश्रृण्वतांनृणाम् ॥२
त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ।
द्वौपुत्रौसुमहाभागौकन्याञ्चयमुनांमुने ॥३

मनुर्वैवस्वतोज्येष्ठ श्राद्धदेव प्रजापति ।
ततायमोयमीचैवयमलौसबभूवतु ॥४
यत्तेजोऽस्यधिकतस्यमार्तंडस्यविवस्वत ।
तेनातितापयामासत्रील्लोकन्सचराचरान् ॥५
गोलाकारन्तुतद्दृष्ट्वासंज्ञारूपविवस्वतः ।
असहन्तीमहत्तं ज स्वाछायाप्रेक्ष्यसाऽब्रवीत् ॥६
अहयास्याभिभद्र तेस्वमेवभवनपितु ।
निर्विकारस्त्वयाप्यत्रस्थेयमच्छासनाच्छुभे ॥७
इमौचवालकौमह्य कन्याचवरवर्णिनी ।
सभाव्यौनैवचाख्येयमिद भगवतेत्वया ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—तदनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य नारायण ने सम्मुख प्रणत होकर उन्हे प्रसन्न किय। और अपनी 'संज्ञा' नाम की कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया संज्ञा के गर्भ से जिन 'वैवस्वत मनु, का जन्म हुआ उनका वर्णन विस्तार पूर्वक पहले ही किया जा चुका है। यह सुनकर क्रौष्टिक ने प्रार्थना की कि उसके पश्चात् मार्तण्ड का जो कुछ और चरित्र हो उसको भी मैं सुनना चाहता हूँ, क्योकि उनका पुण्य चरित्र कलि-काल के पापो को मिटाने वाला है। मार्कण्डेय जी कहने लगे कि संज्ञा से सूर्य-भगवान् के तीन सतानें उत्पन्न हुई, वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र और यमुना नाम की पुत्री इनमें से वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं और उनके पश्चात् यम और यमी जुडवाँ भाई-बहिन उत्पन्न हुए। उस समय का सूर्य का तेज बहुत अधिक था जिससे वह तीनो लोको को बहुत अधिक तप्त करते थे। उनकी पत्नी संज्ञा उस महान् तेज को सहन करने मे असमर्थ हुई और उसने अपनी छाया से एक बार कहा—हे शुभे! तुम्हारा कल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाती हूँ। तुम मेरी आज्ञानुसार यही रह कर मेरी इन तीनो सन्तानो को प्रेमपूर्वक पालन करती रहना और इस वृतान्त को सूर्य भगवान् को कभी मालूम न होने देना ॥१-८॥

आवेशग्रहणाद्विग्राशापान्नैववर्हिचित् ।
आख्यास्यामिमतत्तुभ्यगम्यतायत्रवाञ्छितम् ॥६
इत्युक्ताछायासञ्ज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ।
तत्रावसत्पितुर्गेहेकञ्चित्कालशुभेक्षणा ॥१०
भर्तुः समीपयाहीतिपित्रोक्तासापुन पुन ।
अगच्छद्वडवाभूत्वाकुरुन्विप्रोत्तरांस्तत ॥११
तत्रतेपेतप साध्वीनिराहारामहामुने ।
पितु समीपयातायां सञ्ज्ञायांवाक्यतत्परा ॥१२
तद्रूपधारिणीछायाभास्करसमुस्थिता ।
तस्यांचभगवान्सूर्य्य सञ्ज्ञेयमितिचिन्तयन् ॥१३
तथैवजनयामासद्वौसुतौकन्यकांतया ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्य सावर्णिस्तेसोऽभवत् ॥१४
यस्तयो प्रथमजात पुत्रयोर्द्विजसत्तम ।
द्वितीयोयोऽभवत्तान्य सग्रहोऽभूच्छनैश्चर ॥१५

छाया ने कहा—जब तक सूर्य भगवान् जब तक दण्ड देने के भाव से मेरे केश नहीं पकड़ेंगे अथवा शाप देने को उद्यत न होंगे तब तक मैं इस रहस्य को कदापि प्रकट न होने दूँगी। यह सुन कर सज्ञा अपने पिता के घर चली गई और कुछ समय तक वहीं निवास करती रही। इसके पश्चात् जब उसके पिता विश्वकर्मा ने उससे पति के घर जाने का कहा तो वह बडवा (घोडी) का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर निराहार तपस्या करने लगी। इस बीच में छाया सज्ञा सूर्य भगवान् की सेवा करती रही और उन्होंने उसे अपनी पत्नी सज्ञा ही समझकर उससे भी दो सन्तानें उत्पन्न कीं इनमें से एक सावर्णि मनु और दूसरे शनिश्चर (ग्रह) थे ॥६–१५॥

कन्याभूत्तपतीयातावव्रे संवरणोनृप. ।
सञ्ज्ञातुपार्थिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत् ॥१६
स्नेहात्मपूर्वजातानातथाऽकृतवतीसती ।
मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्यायमश्चास्यानचक्षमे ॥१७

बहुशोयाच्यमानस्तुपितु पत्न्यासदु खित ।।
सव कोपाच्चबाल्याच्चभाविनोऽर्थस्यवैबलात् ।।१८
पदामन्तर्जयामासछायासज्ञायमोमुने ।।
तत शशापचयमसंज्ञासामर्पिणीभृशम् ।।१६
पदातर्जयसेयस्मात्पितृभार्य्यागरीयसीम् ।
तस्मात्तवैवचरण पतिष्यतिनसशय ।।२०

छाया के गर्भ से एक 'तपती' नाम की कन्या भी हुई जिसका विवाह यथा समय संवरण नामक नृप से किया गया। छाया-संज्ञा अपनी सन्तानों से जितना अधिक स्नेह करती थी उतनी प्रथम पत्नी की तीनों सन्तानो से नहीं करती थी। उसके इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार को देखकर वैवस्वत मनु ने तो कुछ न कहा पर यम के द्गत उसे सहन न कर सके और एक बार उन्होंने रोष पूर्वक तथा होनहार के वशीभूत होकर छाया संज्ञा को डाट कर मारने के लिये पैर उठाया। इस पर छाया को बड़ा क्रोध आया और उसने कहा—कि मैं तुम्हारे पूजनीय पिता की पत्नी हू, फिर भी तुमने मुझे मारने को लात उठाई इसके फल स्वरूप तुम्हारा यह पैर कट कर गिर जायगा" ।।१६-२०।।

यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ।
मनुनासहधर्मात्मासर्वंनिवेदयत् ।।२१
स्नेहेनतुल्यमस्मासुमातादेवनवर्तते ।
विसृज्यज्यायसोऽस्यस्मात्कनीयासौबुभूर्षति ।।२२
तस्यामयोद्यत पादोनतुदेहेनिपातित ।
बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ।।२३
शप्तोऽहतातकोपेनजनन्यातनयोयत ।
ततोनमन्येजननीमिमावैतपतांवर ।।२४
विगुणेष्वपिपुत्रेपुनमाताविगुणापित ।
पादस्तेपततापुत्रकथमेतत्प्रवक्ष्यति ।।२५
तवप्रसादाच्चरणोनपतेद्भगवन्यथा ।
मातृशापादयमेऽद्यतथाचिन्तयगोपते ।।२६

इस शाप को सुनकर यम बड़े दुःखी हुए और पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त उनको सुनाया और कहा कि हे देव ! माता हमारी अपेक्षा छोटे भाई-बहिनों का अधिक स्नेह और पालन-पोषण करती है। इससे असन्तुष्ट होकर बाल-स्वभाव वश अथवा भूल से मैंने उसकी ओर लात उठाई, पर मारा नहीं। फिर भी मैं उस अपराध को आपसे क्षमा चाहता हूँ॥ यम ने फिर कहा—पिता जी ! यदि कोई पुत्र दुष्ट, दुराचारी होता है तो भी माता उसका कभी अहित नहीं करती। पर उसने क्रोध करके 'तुम्हारा पैर गिर जाय' ऐसा जो शाप दे डाला इससे मुझे वह अपनी माता नहीं जान पड़ती। अब आप ऐसी कृपा करें कि माता के क्रोध पूर्वक दिये शाप के कारण मेरा यह पैर न गिरे ॥२१-२६॥

असंशयमिदंपुत्रभविष्यत्यत्रकारणम् ।
येनत्वामाविशत्क्रोधोधर्मज्ञंसत्यवादिनम् ॥२७
सर्वेषामेवशापानांप्रतिघातोहिविद्यते ।
नतुमात्राभिशप्तानांक्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥२८
नशक्यमेतन्मिथ्याकर्तुंमातुर्वचस्तव ।
किञ्चित्तेविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९
कृमयोमांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ।
कृतंतस्यावचःसत्यंत्वंचत्रातोभविष्यसि ॥३०
आदित्यस्त्वब्रवीच्छायांकिमर्थंतनयेषुवै ।
तुल्येष्वप्यधिकःस्नेहएकत्रक्रियतेत्वया ॥३१
नूनंनैषात्वंजननीसंज्ञाकापित्वमागता ।
विगुणेष्वप्यपत्येषुकुर्यात्मातानपेलुनम् ॥३२

सूर्य भगवान् ने कहा—पुत्र ! तुम धर्मज्ञाता और सत्य परायण होकर भी जब क्रोध के वशीभूत हो गये तो उसका यह दुष्परिणाम होना सम्भव है। और सब शापों से छुटकारा मिल सकता है पर माता के शाप से बच सकने का कोई मार्ग नहीं है। इसलिये तुम्हारी माता के वचनों को मिथ्या करने में तो असमर्थ हूँ पर तुम्हारे हित के कारण कोई अन्य उपाय बतलाऊँगा। जिस

से तुम्हारी माता की बात पूरी हो जाय और तुम्हारा पैर भी बच जाय। इसलिये ऐसा होगा कि कृमि तुम्हारे पैर का माँस लेकर पृथ्वी तल पर डाल देंगे—ऐसा होने पर तुम्हारी माता का शाप पूरा हो जायगा और फिर तुम्हारा पैर भी ठीक हो जायगा। इसके पश्चात् सूर्य भगवान् ने छाया से कहा कि—तुम्हारे लिये सभी सन्तान समान रूप से प्रिय होनी चाहिये। पर ऐसा न करके तुम किसी के प्रति कम और किसी से अधिक स्नेह करती हो। इससे मालूम पड़ता है कि तुम इनकी माता नहीं हो, यदि माता होती तो पुत्र को ऐसा शाप नहीं दे सकती थीं" ॥ २७-३२ ॥

सातरपरिहरन्तीचनाचचक्षेविवस्वतः ।
सचात्मानसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥३३
तशान्मुचतद्दृष्ट्वाछायासज्ञादिवस्पतिम् ।
भयेनकपिताब्रह्मन्यथावृत्तन्यवेदयेत् ॥३४
विवस्वास्तुततोक्रुद्धश्रुत्वाश्वसुरमभ्यगात् ।
सचापितमथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ।
निर्दग्धुकामरोषेणसान्त्वयामाससुव्रत ॥३५
तवातितेजसाव्याप्तमिदरूपसुदुःसहम् ।
असहन्तीतत सज्ञावनेचरतिवैतपः ॥३६
द्रक्ष्यतेताभवानद्यस्वभार्याशुभचारिणीम् ।
रूपार्थं भवतोऽरण्येचरन्तीसुमहत्तप ॥३७
स्मृतमेब्रह्मणोवाक्यमदितेदेवरोचते ।
रूपनिवर्तयाम्येतत्तवकान्तदिवस्पते ॥३८
यतोहिभास्वतोरूपप्रागासीत्परिमण्डलम् ।
ततस्तथेतितप्राहत्वष्टारभगवान्रविः ॥
विश्वकर्मात्वनुज्ञातःशाकद्वीपेविवस्वत ।
भ्रमिमारोप्यतत्तेज शातनायोपचक्रमे ॥४०

तब छाया संज्ञा ने सत्य बात छिपा कर कुछ बहाना बना दिया इस पर सूर्य भगवान् ने आत्मिक दृष्टि से समस्त घटना की वास्तविकता जान ली और

वे छाया-संज्ञा को शाप देने के लिये उद्यत हुये। इस पर छाया-संज्ञा भयभीत होकर कांप उठी और जो कुछ घटना घटी थी वह सब खोल कर सुनादी। सारा हाल जान कर सूर्य को बड़ा क्रोध पैदा हुआ और मन में आया समस्त विश्व को दग्ध कर दें। तब विश्व-कर्मा ने उनकी यथाविधि पूजा करके उनको शान्त किया और कहा कि तुम्हारे इस अत्यन्त दुःसह तेज को सहन न कर सकने से संज्ञा तप करने चली गई है। उसे अब भी एकान्त वन में तपस्या और संयम का पालन करते देख सकते हैं। अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके वर्तमान रूप और आकार को सौम्य और दर्शनीय रूप में परिवर्तन करूँ। सूर्य भगवान् ने विश्व की बातों से संतुष्ट और प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही करो।' तब भगवान् भास्कर शाकद्वीप में चले गये और विश्व कर्मा उन्हें खराद के समान घुमाकर नवीन सौम्य रूप देने लगे ॥ ३३-४० ॥

भ्रमताऽशेष जगता नाभिभूतेनभास्वता ।
समुद्राद्रिवनोपेतासारुरोहमहीनभः ॥४१
गगनश्चाखिलब्रह्मन्सचन्द्रग्रह तारकम् ।
अघोगतमहाभागवभूव।क्षिप्तमाकुलम् ॥४२
विक्षिप्त सलिलाःसर्वेवभूवुश्चतयाऽब्धय. ।
व्यभिद्यन्तमहाशैला.शीर्णमानुनिवन्धना ॥४३
ध्रुवाधाराण्यशेषाणिधिष्ण्यानिमुनिसत्तम ।
त्रुट्यद्रश्मिनिवन्धानिह्यधोजग्मु सहस्रशः ॥४४
वेगभ्रमण सजातवायुक्षिप्ता.समन्ततः ।
व्यशीर्यंतमहामेघाघार रावविराविण. ॥४५
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसातलम् ।
जगादाकुलमत्यर्थतदासीन्मुनिसत्तम ॥४६
त्रैलोक्येसकलेविप्रभ्रममाणेसुरर्षयः ।
देवाश्चब्रह्मणासार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवु ॥४७
आदिदेवोऽसिदेवानाज्ञातमेतत्स्वरूपतः ।
स्वर्गस्थित्यन्तकालेपुत्रिधाभेदेनतिष्ठसि ॥४८

स्वस्तितेऽस्तुजगन्नाथधर्मवर्पाहिमावर ।
जुषस्वशान्ति लोकाना देवदेवदिवाकर ॥४९
इन्द्रश्चागत्यतदेवलिख्यमानयथाऽस्तुवत् ।
जयदेवजगद्व्यापिञ्जयाशेष जगत्पते ॥५०

मार्कण्डेय जी कहने लगे—समस्त विश्व के नाभि स्वरूप भगवान् भास्कर के घूमने से समुद्र, पर्वत, वन, जलस्रोत, पृथ्वी, आकाश आदि अस्थिर होने लगे। उस समय चन्द्रमा, ग्रह, तारागण आदि के सहित सम्पूर्ण गगन-मण्डल ही नीचे गिरता हुआ सा जान पड़ने लगा। समस्त सागर, नदी, जलाशयों की जलराशि मे हलचल पैदा होगई और महापर्वतो के शिखर-बिखरने लगे। ध्रुव अपने स्थान से च्युत होने लगा और इससे समस्त आकाशस्थ पिंडों की स्थिति उलटी-पलटी होने लगी। सब नीचे गिरने लगे। वायु भी महा भयङ्कर वेग से चक्कर काटने लगी और महामेघ घोर शब्द करने लगे। इस प्रकार सूर्य भगवान् के घूम जाने पर पृथ्वी, आकाश और रसातल म सर्वत्र विश्रृंखलता, गड़बड़ी उत्पन्न होकर समस्त विश्व मे आकुलता फैल गई। इस प्रकार त्रिलोक घूम जाने से सर्वत्र सङ्कट आया देखकर देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा आदि भगवान् आदित्य की स्तुति, प्रार्थना करने लगे—आप समस्त देवो मे आदि देव हैं आपकी महिमा सर्वत्र विदित है, आप ही स्वर्ग आदि समस्त लोकों और अखिल भुवनों की स्थिति का कारण है, आप ही सबकी रक्षा और कल्याण करने वाले हैं। हे जगन्नाथ! आप ही ग्रीष्म, वर्षा और शीत स्वरूप हैं। हे सब देवो में महान् दिवाकर देव! प्रसन्न होकर त्रिलोक की व्याकुलता को दूर करो। स्वर्गाधिपति इन्द्र ने भी आकर सूर्य भगवान् की स्तुति की—हे देव! आप ही सर्वत्र व्याप्त है, आपकी जय हो, हे अखिल जगत् पति आपकी जय हो ॥४१ से ५०॥

ऋषयश्चतत सप्तवसिष्ठात्रिपुरोगमा ।
तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रं स्वस्तिस्वस्तीतिवादिन ॥५१
वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्चतुष्टुवु ।
भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानमुदायुता ॥५२

त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षोध्येयस्त्वंध्यानिनांपरः ।
त्वंगति.सर्वभूतानाकर्मकाण्डेऽपिवर्त्तताम् ॥५३
शंप्रजाभ्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ।
शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे ॥५४
ततोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ।
कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभि प्रणतारविम् ॥५५
ऊचुरवं विधावाचो मन श्रोत्रसुखावहाः ।
सह्य भवतुतेतेजोभूतानाभूतभावन ॥५६

इसके पश्चात् वसिष्ठ, अत्रि आदि सातो ऋषियों ने स्वस्ति वचन उच्चारण करके सूर्य भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति की। वालखिल्य ऋषि भी ऋग्वेद के भाद्य वचनो द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे भगवन्! आप ही मुमुक्षजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले, ध्यानी पुरुषो के ध्येय और कर्मकाण्ड वालो को शुभ फल देने वाले तुम्ही हो। हे देव! हे जगन्नाथ! आप समस्त प्रजा का, हमारा और हमारे द्विपद तथा चतुष्पद जीवो का कल्याण करो। फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदि सब हाथ जोडकर सूर्य भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे—हे भगवन्! आपका तेज समस्त छोटे-बडे जीवो के सहन करने योग्य हो। सब कोई उससे सुखी हो सकें ॥५१ से ५६॥

ततोहाहाहुहूश्चैवनारदस्तुम्बुरुस्तथा ।
उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम् ॥५७
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ।
मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसप्रयोगं सुखप्रदम् ॥५८
विश्वाचीचघृताचीचउर्वशयथतिलोत्तमा ।
मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा ॥५६
ननृतुर्जगनामीदोलिख्यमानेविभावसो ।
भानभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयावहून् ॥६०

प्रावाद्यन्ततस्तत्रवेणुवीणादिझर्झरा ।
पणवा पुष्कराश्चैवमृदङ्गा पटहानवा: ॥६१
देवदुन्दुभय शङ्खा शतशोऽथसहस्रशः ।
गायद्भिश्चैवगाधर्वनृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥६२
तूर्यवादित्रघोषैश्चसर्वकोलाहलीकृतम् ।
तत कृताञ्जलिपुटाभक्तिनम्रास्ममूर्तय ॥६३
लिख्यमानसहस्रांशु प्रणेमु सर्व देवता: ।
तत कोलाहलेतस्मिन्सर्व देवसमागमे ।
तेजस शातनञ्चक्रे विश्वकर्माशनै शनै ॥६४
इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखननिशम्यभानोर्व्रजसिदिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥६५

(इसके अनन्तर सगीत शास्त्र मे निपुण हाहा-हूहू, तुम्बरु, नारद आदि षडज, मध्यम और गाधार तीनो ग्रामो तथा मूर्च्छना, ताल आदि के नियमानुसार सूर्य भगवान् के सम्मुख श्रेय गायन करने लगे ॥५७-५८॥ उसी अवसर पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या, रम्भा आदि स्वर्ग की अप्सराऐं भी सूर्य भगवान् के नवीन रूप से प्रसन्न होकर हाव-भाव पूर्वक तरह तरह के नृत्यो का प्रदर्शन करने लगी ॥५९-६६॥ देवनन्द द्वारा वेणु, वीणा, दुर्दर पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटह, आनक, दुन्दभी, शख आदि हजारो वाद्यो की ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गन्धर्वों के सगीत, अप्सराओ के नृत्य और देवगणों के वाद्यो के शब्द द्वारा उस समय समस्त जगत् महान् ध्वनि से भर गया । फिर सब किसी ने अत्यन्त भक्ति और विनय सहित भगवान् भास्कर को नमस्कार किया । उसी कोलाहल के बीच विश्वकर्मा धीरे-धीरे सूर्य के तेज को कम करते गये ॥६१–६४॥) जो सूर्य भगवान् जाडा, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओ के उत्पादक हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनकी स्तुति करते उनकी यह तनुलिखन की कथा भक्ति पूर्वक सुनने से भानुलोक मे सद्गति प्राप्त होती है ॥६५॥

९९–विश्वकर्मा द्वारा सूर्यस्तवन

लिख्यमानेततोभानौविश्वकर्माप्रजापतिः ।
उद्भूतपुलक स्तोत्रमिदचक्रे विवस्वतः ॥१
विवस्वतेप्रणतहितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ।
सुतेजसेकमलकुलाववोधिनेनमस्तम.पटलपटावपाटिने ॥२
पावनातिशयपुण्यकर्मणेनैककामविपयप्रदायिने ।
भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणे नम ॥३
अजायलोकत्रयकारणायभूतात्मनेगोपतयेवृपाय ।
नमोमहाकारुणिकोत्तमायसूर्य्यायचक्षु प्रभवालयाय ॥४
विवस्वतेज्ञानभृतेन्त रात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैपिणे ।
स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुपेसुरोत्तमायामिततेजसेनम. ॥५
क्षणमुदयाचलमौलिमणि सुरगणमहितहितोजगतः ।
त्वंमयूखसहस्रवपुर्जगतिविभासितमासिनुदन् ॥६
भवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहता ।
मिहिरविभासियत सुतरानिभुवनभावनभानिकरं ॥७

मार्कण्डेय जी कहने लगे—जिस समय विश्वकर्मा जी सूर्य भगवान् के तेज को क्षीण करके सहन योग्य बना रहे थे, उस समय उसके नवीन रूप के दर्शन से पुलकित होकर उन्होंने उस मूर्ति का स्तवन किया। विश्वकर्मा जी बोले—जो जीव आपके सम्मुख प्रणत हो रहे हैं। उन सबका आप कल्याण और कृपा करने वाले हैं। आप ही सम वेग वाले, सप्त अश्व वाले, कमलों को खिलाने वाले और अन्धकार को दूर करने वाले हैं, आपको नमस्कार हो। अत्यन्त पवित्र, पुण्य शाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अत्यन्त तीव्र किरणों से युक्त और समस्त लोकों के हितकारी भगवान् भास्कर को नमस्कार हो तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, पंचभूतों के मूल, रश्मि पति, धर्म स्वरूप, कृपालु और नेत्रों को प्रकाश देने वाले सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। जगत् के आधार अन्तरात्मा के प्रकाश, स्वयम्भू, अखिल विश्व को दृष्टि शक्ति

देने वाले, देवों में श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। हे भगवन् ! तुम ही जगत् के हितकारी और उदयाचल के शिखर के माला स्वरूप हो, तुम ही सहस्रो रूप ग्रहण करके जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम्हीं तिमिर रूपी आसव को पान करने के निमित्त लोहित मूर्ति धारण करके किरणो द्वारा दीप्तिमान् होते हो ॥१–७॥

रथमधिरुह्यसमावयवचारुविकंपितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिन्नहयैर्भवभ्रमसिजगद्धितायविततम् ॥८
अमृतमयेनरसेनसमविबुधपितॄनपितर्पयसे ।
अरिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपेत्यलिखामिवपुः ॥९
धुकसमवर्णहयप्रथिततवपदपांसुपवित्रतमम् ।
नतजनवत्सलमाप्रणतत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥१०
इतिसकलप्रसूतिभूतत्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतत्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदास्वाम् ॥११

हे सूर्य नारायण ! जिस रथ पर चढ़कर सात घोड़ो के द्वारा जगत् के हितार्थ तुम विचरण करते हो वह समान अवयव वाला, आकर्षक विस्तार युक्त और किंचित् काँपने वाला है। हे शत्रुहन्ता ! तुम देवता और पितरों को एक ही साथ जीवन प्रदायक सुधा प्रदान करते हो। इसी निमित्त जगत् की हित कामना से मैंने प्रथम ही आपको प्रणाम करके आपके देह को लिखा है (तराशा) है। हे भक्तवत्सल ! हे त्रिभुवन को पवित्र करने वाले ! मैं आपकी ही इस हरी-भरी सृष्टि के कारण विख्यात हुआ हूँ और तुम्हारी चरण-रज के प्रताप से अत्यन्त पवित्र माना जाता हूँ आप मेरी रक्षा करें। इस तरह मैं सर्वदा संसार के कारण रूप, त्रिभुवन को पवित्र बनाने वाले, तेज के भण्डार, जगत् के प्रकाशक और निर्माणकर्त्ता भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हूँ ॥८–११॥

१००—रविमाहात्म्य वर्णन

एवंसूर्यंस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मादिवस्पतेः ।
तेजसः षोडशभागमण्डलस्थमधारयत् ॥१
शातितैस्तेजसोभागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा ।
अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीत्तदावपुः ॥२
शातितञ्चास्ययत्तेजस्तेनचक्रं विनिर्मितम् ।
विष्णोः शूलञ्चशर्वस्यशिबिकांधनदस्यच ॥३
दण्डं प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा ।
अन्येषाञ्चैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥४
चकारतेजसाभानोर्भासुराण्यरिशान्तये ।
इतिशातिततेजाः ससुशुभेनातितेजसा ॥५
वपुर्दधारमार्तण्डः सर्वावयवशोभनम् ।
सददर्शसमाधिस्थःस्वांभार्यांवडवाकृतिम् ॥६
अधृष्यांसर्वभूतानांतपसानियमेनच ।
उत्तरांश्चकुरून्गत्वाऽश्वोभानुरागमत् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—विश्वकर्मा जी इस प्रकार सूर्य नारायण की स्तुति करके उनके तेज का पन्द्रह अंश निकाल कर सोलहवाँ भाग शेष रहने दिया। इससे सूर्य का कलेवर अत्यन्त सुन्दर, सौम्य और कांति वाला बन गया जो पन्द्रह अंश तेज निकाला गया था उसके द्वारा विश्वकर्मा ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर की पालकी, यम का दण्ड, कार्तिकेय की शक्ति और अन्य कितने ही अमोघ अस्त्र निर्माण किये जिनसे देवगण शत्रुओं को जीत सकें। इस प्रकार मार्तण्ड का तेज नियन्त्रित हो जाने पर उनकी शोभा बहुत बढ़ गई और जगत् के हितार्थ उनका कलेवर अत्यन्त उत्तम बन गया। इस प्रकार परमोपयोगी आकार पाकर वे अपने स्थान पर स्थित हुए और फिर ध्यान लगाकर अपनी पत्नी को घोड़ी के रूप में देखा जो कुरु प्रदेश में उनके हितार्थ अत्यन्त संयम नियम सहित तपस्या कर रही थी। तब सूर्यदेव भी घोड़े का स्वरूप रखकर उसके पास पहुँचे ॥१-७॥

साचदृष्ट्वातमायान्तपरपुंसोविशङ्कया ।
जगामसम्मुखेतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥८
ततश्चनासिकायोगतयोस्तत्रसमेतयो ।
वडवायाञ्चतेतेजोनासिकाभ्याविवस्वत ॥९
देवौतत्रसमुत्पन्नावश्विनौभिषजावरौ ।
नासत्यदस्रौतनयावश्विवक्त्राद्विनिर्गतौ ॥१०
मार्त्तण्डस्यसुतावेतावश्वरूपधरस्यहि ।
रेतसोऽन्तेचरेवन्त खड्गीधन्वीतनुत्रधृक् ॥११
अश्वारूढ समुद्भूतोबाणतूणसमन्वित. ।
तत स्वरूपममलदर्शयामासभानुमान् ॥१२
तस्यशान्तसमालोक्यसारूप्यमुदमाददे ।
स्वरूपधारिणीचेमासनिनायनिजालयम् ॥१३
सज्ञाभार्य्यांप्रीतिमतीभास्करोवारितस्कर ।
तत पूर्वसुतोयोऽस्यासोऽभूद्वैवस्वतोमनु ॥१४

उनको समीप आते देखकर सज्ञा को अपने सतीत्व रक्षा की चिन्ता हुई और वह उनके सामने मुँह करके खड़ी हुई। जब दोनों की नासिकायें मिली तो सूर्य भगवान् का तेज नाक के मार्ग से ही घोड़ी के भीतर प्रविष्ट हुआ और उससे दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए जो देवगण के वैद्य बने। उनके मुख से निकले तेज से 'नासत्य' और 'दस्र' की उत्पत्ति हुई और शेष भाग से 'रेवन्त' का जन्म हुआ जो रक्षा आवरण, खड्ग और धनुष धारी हैं। फिर जब सूर्य भगवान् ने अपना निर्मल शान्त रूप दिखाया तो सज्ञा परम प्रसन्न हुई और अपना वास्तविक रूप ग्रहण करके उनके साथ स्वगृह में आगये ॥८–१४॥

द्वितीयश्चयम शापाद्धर्मदृष्टिरनुग्रहात् ।
यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस. ॥१५
धर्मोभिरोचतेयस्माद्धर्मराजस्तत स्मृत. ।
कृमयोमासमादायपादतस्तेमहीतलम् ॥१६

पतिष्यन्तीतिशापान्ततस्यचक्रे पितास्वयम् ।
धर्मदृष्टियंतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥१७
ततोनियोगेतयाम्येनकारतिमिरापह ।
तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥१८
पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकर ।
यमुनाचनदीचक्रे कलिंदान्तरवाहिनीम् ॥१९
अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ।
गुह्यकाधिपतिस्त्वेचरेवन्तोविनियोजित ॥२०

सज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु की पदवी पर अधिष्ठित हुए, उनसे छोटे यम धर्म के ज्ञाता होने से धर्मराज बने। वे धर्म और सत्य पर स्थिर रहकर प्रत्येक प्राणी के साथ न्याय युक्त व्यवहार करते थे, इसे उन्हें जीवों के कर्मों का फल देने का कार्य दिया गया। उनको छाया सज्ञा ने जो शाप दिया था उसके फलस्वरूप उनके पैर का मांस कृमि पृथ्वी तल पर ले गये। सूर्य भगवान् ने उनको लोकपाल और पितरो का अधिकार भी दिया। पुत्री यमुना को कलिन्द देश मे बहने वाली नदी बनाया गया। अश्विनी कुमारो को देवताओं का वैद्य, रेवन्त को गुह्यकों का शासक नियुक्त किया ॥१५-२०॥

एवमप्याहचततोभगवाँल्लोकभावित ।
त्वमप्यदोपलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥२१
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेपुच ।
त्वास्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥२२
क्षेमवृद्धिसुखराज्यमारोग्यकीर्तिमुन्नतिम् ।
नराणापरितुष्टस्त्वपूजित सप्रदास्यसि ॥२३
छायासज्ञासुतश्चापिसावर्णि सुमहायशा ।
भाव्य सोऽनागतेकालेमनु सावर्णिकोऽष्टम. ॥२४
मेरुपृष्ठेनपोघोरमद्यापिचरतिप्रभु ।
भ्राताशनैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवे ॥२५

यवीयसीतुयाकन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम ।
अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपतीलोकपावनी ॥२६
यस्तुज्येष्ठोमहाभाग सर्गोयस्येहसाम्प्रतम् ।
विस्तरतस्यवक्ष्यामिमनोर्वैवस्वतस्यह ॥२७
इदयोजन्मदेवानाशृणुयाद्वापठेतवा ।
विवस्वतस्तनूजानारवेर्माहात्म्यमेवच ॥२८
आपदप्राप्यमुच्येतप्राप्नुयाच्चमहायशः ।
अहोरात्रकृतपापमेतच्छ्रमयतेश्रु तम् ।
माहात्म्यमादिदेवस्यमार्तण्डस्यमहात्मनः ॥२९

भगवान् सूर्य नारायण ने रेवन्त से कहा कि तुम सब लोकों में पूजनीय होंगे और जो कोई अग्नि, शत्रु, चोर आदि के भय से आक्रान्त होकर तुम्हारा स्मरण करेगा तो तुम विपत्ति में उनकी रक्षा करने में समर्थ होंगे । छाया सज्ञा के पुत्र सावर्ण मेरु पर्वत पर तपस्या में निरत हैं और वे आगामी 'सावर्णक' नाम के मन्वन्तर में मनु होकर महान् यशस्वी होंगे । उनके भ्राता शनैश्चर को प्रमुख ग्रह नियत किया । यमुना जी को भी नदियों में श्रेष्ठ स्थान दिया गया और वे लोकपावनी प्रसिद्ध हुई । वैवस्वत मनु का मन्वन्तर समय में चल रहा है । उनके वंश का विस्तार और वर्णन मन्वन्तर किया जायगा । इस प्रकार जो व्यक्ति सूर्य भगवान् का माहात्म्य और उनकी सन्तानों की कथा श्रद्धा पूर्वक श्रवण करते हैं वे सब प्रकार की आपत्तियों से छुटकारा पाकर सुख सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं और उनके समस्त पाप दूर हो जाते हैं ॥२१-२९॥

१११—राज्य वर्द्धन की आयुवृद्धि

भगवन्पितं सम्यग्भानो सन्ततिसभव ।
माहात्म्यमादिदेवस्यस्वरूपन्चातिविस्तरात् ॥१
भूयोऽपिमाख्यत सम्यङ्माहात्म्यमुनिसत्तम ।
श्रोतुमिच्छाम्यहंतन्मेप्रसन्नोवक्तुमर्हसि ॥२

श्रूयतामादिदेवस्यमाहात्म्यकथयामिते ।
विवस्वतोयच्चकारपूर्वमाराधितोजनै. ॥३
दमस्यपुत्रोविख्यातोराजाभूद्राज्यर्धन ।
ससम्यक्पालनचक्रे पृथिव्या पृथिवीपति ॥४
धर्मत पाल्यमानतुतेनराष्ट्र महात्मना ।
ववृधेऽनुदिन विप्रजनेनचधनेनच ॥५
हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेपत ।
निर्भय सकलश्चोर्व्यापौरजानपदोजनः ॥६
नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्भवभयम् ।
नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रमहीपतौ ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! सूय के माहात्म्य को मैं पुन श्रवण करना चाहता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होकर उसे मुझे सुनाइये ॥१-२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—आदि देव भगवान् सूर्य ने पुराकाल मे आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब तुम्हारे प्रति वर्णन करता हू ॥३॥ दम के पुत्र राज्यवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होने भले प्रकार से पृथ्वी का पालन किया ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने अपने धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा की, इसलिये उनके शासन काल म धन, जन से राष्ट्र की नित्य वृद्धि होने लगी ॥५॥ उनके राज्यारूढ होने पर अन्य राजा पुरजन और सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त पुष्ट हुई ॥६॥ उन राजा राज्यवर्द्धन के राज्य म कोई उपसग, रोग हिंसक जीवों का तथा अनावृष्टि का भय आदि नही था ॥७॥

सईजेचमहायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ।
सुधर्मस्याविराधेनवुभुजेविषयानपि ॥८
तस्यैवकुर्वतोराज्यसम्यक्पालयत प्रजा ।
सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्यथा ॥९
विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृत ।
तस्यपत्नीबभूवाथमानिनोनाममानिनो ॥१०

कदाचित्तस्यसासुभ्रू शिरसोऽप्यञ्जनादृता ।
पश्यतोराजलोकस्यमुमोचाश्रू णिमानिनी ॥११
तदश्रु विन्दवोगात्रेयदातस्यमहीपते ।
तदावीक्ष्याश्रु वदनातामपृच्छतमाननीम् ॥१२
किमेतदितिपप्रच्छमाननीराज्यवधनः ॥१३
पृष्टासातुततस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ।
नकिंचिदितिताभूय पप्रच्छसमहीपति ॥१४

वह महायज्ञो का अनुष्ठान करके अभ्यर्थियों को दान देते और विषयो का भोग भी धर्म सहित करते थे ॥८॥ इस प्रकार राज्य शासन चलाते और भले प्रकार प्रजा पालन करते हुए उनका सात सहस्र वर्ष का समय एक दिन के समान व्यतीत होगया ॥६॥ उनका विवाह दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पुत्री मानिनी से हुआ था ॥१०॥ एक समय राजपुरुषो के समक्ष रानी मानिनी राजा के शिर पर तेल मल रही थी, तभी उसके नेत्र से आँसू टपक पडा ॥११॥ जब वह आँसू राजा के शरीर पर पडा, तब उन्होने उसके अश्रु-पूर्ण नेत्र देखकर उसका कारण पूछा ॥१२॥ परन्तु,उसने कोई उत्तर नही दिया और वह बिना शब्द किय रुदन करने लगी, यह देखकर राजा ने पूछा—तुम क्यो रो रही हो ? ॥१३॥ रानी ने राजा क प्रश्न का उत्तर 'कोई बात नही' कहकर दिया ॥१४॥

बहुश पृच्छतस्तस्यभूभृत सासुमध्यमा ।
नकिंचिदितिहोवाचसाभूयोराज्यवर्धनम् ।
किमेतदितिपप्रच्छमानिनीपार्थिवःपुन ।
बहुश प्रेरितातेनसाभर्त्रातित्रभामिनी ।)
दर्शयामासपलितकेशभारान्तरोद्भवम् ॥१५
पौराणाचमहीपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ।
ममातिमन्दभाग्यायाजहासाथनृपस्तत ॥१६
सविहस्याहृतापत्नीशृण्वतासर्वभूभृताम् ।
पौराणाचमहीपालायेतत्रासन्समावृता ॥१७

शोकेनालविशालाक्षिरोदितव्यनतेशुभे ।
जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकारा सर्वजन्तुषु ॥१८
अधीता सकलावेदाइष्टायज्ञा सहस्रश ।
दत्ताद्विजानापुत्राश्चसमुत्पन्नावरानने ॥१६
भुक्ताभोगास्त्वयासार्द्धं येमर्त्यैरतिदुर्लभा ।
सम्यक्चपालितापृथ्वीशौर्ययुद्धं ष्वनुष्ठितम् ॥२०
मित्रै सहेष्टं हंसितविहृतचवनान्तरे ।
किमन्यन्नकृतभद्रे पलितेभ्योबिभेपियत् ॥२१

राजा के पुन अनेक बार प्रश्न करने पर भी जब रानी ने कोई उत्तर नही दिया, तो राजा का आग्रह बढा और उनके बारम्बार पूछने पर रानी ने उनके बालो के बीच मे एक श्वेत बाल दिखाया ॥१५॥ और बोली—हे महाराज ! क्रोधित होने का कोई कारण नही है, आप इसे देखिये, यह मेरा मन्द भाग्य ही है, रानी की यह बात सुनकर राजा बडे जोर से हँस पडे ॥१६॥ उन्होंने हँसते हँसते ही राजपुरुषो और पुरजनो के समक्ष ही रानी मानिनी से कहा ॥१७॥ हे कल्याणी ! हे विशाल नेत्र वाली ! तुम रोओ मत, क्योंकि सभी जीवो मे जन्म, वृद्धि और परिणामादि विकार उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये इस विषय मे शोक नही करना चाहिये ॥१८॥ मैंने सभी वेदो का अध्ययन, हजारो यज्ञो का अनुष्ठान, ब्राह्मणो को दान और पुत्रोत्पादन ॥१६॥ मनुष्यो के लिय दुर्लभ सुखो का तुम्हारे साथ उपभोग, भले प्रकार पृथिवी-पालन, न्याय पूर्वक सग्राम ॥२०॥ तथा मित्रो के साथ हास-परिहास और वन-विहार आदि सभी कार्य किये हैं, ऐसा कौन-सा कार्य मेरे द्वारा होने से रह गया है, जिसके लिये तुम मेरा पका हुआ बाल देखकर डर रही हो ॥२१॥

भवन्तुकेशा.पलितावलय सन्तुमेशुभे ।
शैथिल्यमेतुमेकाय.कृनकृत्योऽस्मिमानिनि ॥२२
मूर्ध्निश्चर्द्दर्शितभद्रे भवत्यापलितमम ।
चिकित्सामेवतस्याहंकरोमिवनमश्रयात् ॥२३

वाल्येबालक्रियापूर्वंतद्वत्कौमारकेचया ।
यौवनेचापियायोग्यावार्द्धं केवनसश्रया ॥२४
एवमत्पूर्वजैर्भद्रे कृतत्वत्पूर्वजैश्चयत् ।
अतोनतेश्रु पातस्यकिंचित्पश्यामिकारणम् ॥२५
अलन्तेमन्युनाभद्रे नन्वभ्युदयकारिमे ।
दर्शनपलितस्यास्यमारोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥२६
तत प्रणम्यतभूपा पौराश्च वसमीपगाः ।
साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षेराज्यवर्धनम् ॥२७
नरोदितव्यमनयातवपत्न्यानराधिप ।
रोदितव्यमिहास्माभिरयवासर्वजन्तुभि ॥२८

हे शुभे ! चाहे मेरे बाल पक गय हो, चाहे देह शिथिल हो जाय, इसमे अब मैं कोई हानि नही समझता, क्योंकि मैं अब धन्य होगया हूँ ।।२२।। तुमने मेरे शिर में जो पका हुआ बाल देखा है, उसकी चिकित्सा वन कर आश्रय लेकर करूँगा ।।२३।। वाल्यकाल मे बाल-क्रीडा, कौमारावस्था में उसके अनुरूप कार्य और युवावस्था मे भोगादि तथा वृद्धावस्था के प्राप्त होने पर वन का ही आश्रय लेना चाहिये ।।२४।। मेरे पूर्व पुरुषो ने तथा उनके भी पूर्व पुरुषो ने इसी प्रकार किया है, इसलिये मैं तुम्हारे रुदन को व्यर्थ ही समझता हूँ, इसलिये शोक को छोड दो ।।२५।। मेरे इस श्वेत केश का दिखायी देना, मेरा भाग्योदय होना ही है, इसलिये रुदन नही करना चाहिये ।।२६।। मार्कण्डेय जी ने कहा—हे महर्षे ! फिर पास मे बैठे हुए राज पुरुषो और पुरवासियो ने महाराज राज्यवर्द्धन को प्रणाम करके विनय पूर्वक कहा ।।२७।। हे राजन् ! आपकी भार्या का रुदन व्यर्थ है, परन्तु अब हमारे अथवा अन्य सब प्राणियो के रोने का समय आगया है ।।२८।।

त्वयब्रवीपियथानाथवनवामाश्रितवचः ।
पतन्तितेनन प्राणान्नानितानास्त्वयानृप ॥२९
सर्वयास्यामहेभूपयदियातिभवान्वनम् ।
ततोऽस्मिपभियाहानि सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०

भविष्यतिनसन्देहस्त्वयिनाथवनाश्रये ।
साचधर्मोपघाताययदितत्प्रविमुच्यताम् ॥३१
सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयपालितामही ।
तत्समुत्थमहापुण्यमालोकयनराधिप ॥३२
वनेवसन्महाराजत्वकरिष्यमियत्तप ।
तन्महीपालनस्यास्यकलानार्हतिषोडशीम् ॥३३
सप्तवर्षसहस्राणिमयेयपालितामही ।
इदानीवनवासस्यममकालोयमागत. ॥३४
ममापत्यानिजातानिदृष्टामेऽपत्यसन्तती ।
स्वल्पैरेवमहोभिर्मेह्यन्तकोनसहिष्यति ॥३५

हे नाथ ! आप हमारा प्रति पालन करने वाले हैं, आपके मुख से वन का आश्रय ग्रहण करने की बात सुनकर हमारे प्राण ही निकले जा रहे हैं ॥२६॥ यदि आप वन को जाते हैं, तो हम सभी आपके साथ चलेंगे, क्योंकि आपके वनवासी होने पर मनुष्यों की सभी क्रिया नष्ट हो जायगी ॥३०॥ यदि आप इससे धर्म की हानि समझें तो अपने वनाश्रयी होने के विचार को छोड दीजिये ॥३१॥ हे राजन् ! आपको इस पृथिवी का पालन करते हुए सात सहस्र वर्ष हुए हैं, इतने काल मे कितने महा-पुण्य की उपलब्धि हुई है, इस पर विचार कीजिये ॥३२॥ हे राजन् ! वन मे निवास करके वहाँ आप जितनी तपस्या करेंगे, उसका फल इस पृथिवी पालन रूप कर्म के सोलहवें भाग के बराबर भी नही होगा ॥३३॥ राजा बोले—मैं सात सहस्र वर्ष से इस पृथिवी का पालन कर रहा हू, अब वनवास करने का उपयुक्त अवसर मेरे समक्ष उप- स्थित है ॥३४॥ मेरे पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, उन पुत्रों की जो सन्तान होगी उसे देखकर यमराज अब कुछ समय के लिये भी मेरा जीवित रहना सहन नही करेंगे ॥३५॥

यदेतत्पलितमूर्ध्नितद्विजानीतनागराः ।
दूतभूतमनार्य्यस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥३६

सोऽहं राज्येसुतंकृत्वाभोगांस्त्यक्त्वावनाश्रयः ।
तपस्तप्स्येसमायान्तिनयावद्यमसैनिका. ।।३७
ततोयियासु सवनदेवज्ञानवनीपतिः ।
पुत्रराज्याऽभिषेकायदिनलग्नान्यपृच्छत ।।३८
श्रुत्वाचतेतुनृपतेर्वचोव्याकुलचेतस ।
दिनलग्नचहोराश्चनविदु शास्त्रदृष्टय ।।३९
ऊचुश्चतमहीपालदेवज्ञावाष्पगद्गदम् ।
ज्ञानानिन प्रणष्टानिश्रुत्वैतदेवचोनृप ।।४०
ततोऽन्यनगरेभ्यश्चभृत्यैराष्ट्रेभ्यएवच ।
ततस्तस्माच्चनगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ।।४१
समुत्पत्यमहीपालतयियासु मुनेवनम् ।
प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ।।४२

हे नागरिको ! मेरे शिर मे जो श्वेत केश देखा गया है, उसी केश को उग्र कर्म वाली मृत्यु का दूत समझो ।।३६।। इसलिये मैं पुत्र का राज्याभिषेक करके और सम्पूर्ण भोगो को छोड़ कर वन मे निवास करता हुआ यम-सैनिकों को आने तक तप करूँगा ।।३७।। मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर राजा ने वन मे जाने का दृढ निश्चय कर ज्योतिषियो से पुत्र के राज्याभिषेक दिन और लग्न दिखवाया ।।३८।। राजा के वचन को सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी भी व्याकुल हृदय होगये और इस कारण लग्नादि देखने मे असमर्थ रहकर ।।३९।। गद्गद स्वर से राजा के प्रति बोले—हे राजन् ! आपकी बात सुनकर हमारा सभी ज्ञान लुप्त होगया है ।।४०।। हे मुने ! इसके पश्चात् जो अन्यान्य राज्य उन महाराज के आधीन हुए थे, उनसे तथा उसी राजधानी के अन्य नगरों से अनेकानेक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ ।।४१।। आये और उन्होने अपने शिर को कम्पित करते हुए राजा से इस प्रकार कहा ।।४२।।

प्रसीदपाहिनोराजन्पालिता स्मयथापुरा ।
सीदिष्यत्यखिलोलोकस्त्वयिभूपवनाश्रये ।।४३
त्वकुरुष्वतथाराजन्ययानोसीदतेजगत् ।

यावज्जीवामहेत्वीरस्वल्पकालमिमेवयम् ।
नेच्छामश्चभवच्छून्यद्रष्टु सिंहासनविभो ॥४४
इत्येवतैस्तथान्यैश्चद्विजे पौरगुर रारैं ।
भूपैर्भृ त्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्त पुन.पुनः ॥४५
वनवासविनिर्वन्धनोपसहरतेयदा ।
क्षमिष्यत्यन्तकोनेतिददौसचतदोत्तरम् ॥४६
ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ।
समेत्यमन्त्रयामासु किमत्रक्रियतामिति ॥४७
तेषामन्नयताविप्रनिश्चयोऽयमजायत ।
अनुरागवतातत्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥४८
सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयाम समाहिताः ।
तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपते ॥४६

हे राजन् ! प्रसन्न होइये, हम पर अनुग्रह क ते हुए पहिले के समान ही हमारा पालन कीजिये, हे महाराज ! आपके वन मे जाने से सभी जीव अत्यन्त दु खित होंगे ॥४३॥ इसलिये, जिस प्रकार यह विश्व दु खी न हो वैसा ही कार्य करिये, हमारा जीवन अल्पकाल का ही रह गया है, इतने समय मे हम इन सिंहासन को सूना नहीं देखना चाहते ॥४४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— उन विप्रगण, राजागण, प्रजाजन, मन्त्रिगण और भृत्यो के द्वारा बारबार अनुरोध किये जाने पर भी ॥४५॥ उन्होंने वनवास की इच्छा को नहीं छोड़ा और उन सबको यही उत्तर दिया कि 'यम मुझे क्षमा नहीं करेंगे' ॥४६॥ तब, ब्राह्मणो, वृद्ध पुरवासियो, मन्त्रियो और भृत्यों ने परस्पर विचार करना प्रारभ किया कि 'अब क्या करें ?' ॥४७॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के प्रति स्नेह रखने वाले उन विप्रादि ने यही निश्चय किया कि ॥४८॥ हम भले प्रकार ध्यान पूर्वक तप के द्वारा भगवान् सूर्य का आराधन करें और इन राजा की आयु के लिये प्रार्थना करें ॥४६॥

ततेकनिश्चया.कार्य्येकेचिद्गेहेचभास्करम् ।
सम्यगर्घोपचाराद्यं रुपहारैरपूजयन् ॥५०

अपरेमौनिनोभूत्वाऋग्जापेनतथाऽपरे ।
यजुषामथसाम्नाचतोषर्याश्चक्रिरेर वम् ॥५१
अपरेचनिराहारानदीपुलिनशायिन ।
तपासिचक्रुरिच्छतोभास्करराधनद्विजाः ॥५२
अग्निहोत्रपराश्चान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् ।
जेपुस्तथापरेतस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टय ॥५३
इत्येवमतिनिर्बन्धभास्कराराधनप्रति ।
बहुप्रकारचक्रुस्तेततविधिमुपाश्रिता ॥५४
तथातुयततातेषाभास्कराराधनप्रति ।
सुदामानामागन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत् ॥५५
यद्याराधनमिष्ट वोभास्करस्यद्विजातय ।
तदेतत्क्रियतायेनभानु प्रीतिमुपैष्यति ॥५६

ऐसा निश्चय करके सब सूर्य की पूजा करने लगे, किसी ने अर्घ्य देकर और किसी ने अन्य विधि से सूर्य भगवान् का पूजन किया ॥५०॥ किसी ने मौनावलम्बन कर ऋक् मन्त्र से, किसी ने सामवेद के मन्त्रो से और किसी ने यजुर्वेद के विधान से भगवान् भास्कर को सन्तुष्ट किया ॥५१॥ कोई नदी तट पर निराहार रह कर और कोई कठिन तप करके सूर्य को प्रसन्न करने लगे ॥५२॥ किसी ने अग्निहोत्र परायण होकर दिन रात्रि निरन्तर रविसूक्त का जप किया और कोई भगवान् सूर्य की ओर देखते हुए ही खडे रहे ॥५३॥ इस प्रकार वे सब अपनी-अपनी विधि से भास्कर की आराधना मे निश्चय पूर्वक लग गये ॥५४॥ उन्हे इस प्रकार सूर्य के आराधन मे दृढता से लगे हुए देखकर एक सुदामा नामक गन्धर्व वहाँ आया और उन आराधको से कहने लगा ॥५५॥ हे विप्रगण ! यदि सूर्य की ही आराधना आपका लक्ष्य है तो, इस प्रकार से आराधना करो जिससे वह प्रसन्न हो सकें ॥५६॥

तस्माद्गुरविशालाख्यवनसिद्धनिषेवितम् ।
कामरूपेमहाशैलेगम्यतातत्रवैलघु ॥५७

तस्मिन्नाराधनभानोः क्रियतां सुसमाहितैः ।
सिद्धक्षेत्रे हितत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥५८
इतितेतद्वचः श्रुत्वागत्वातत्काननंद्विजा ।
ददृशुर्भास्वतस्तत्रपुण्यमायतनंशुभम् ॥५९
तत्रतेनियताहारावर्णाविप्रादयोद्विज ।
धूपपुष्पोपहाराढ्यापूजाचक्रुरतन्द्रिताः ॥६०
पुष्पानुलेपनाद्यैश्चधूपगन्धादिकैस्तथा ।
जपहोमान्नदानाद्यैःपूजनंतेसमाहिताः ।
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तंद्विजातयः ॥६१

कामरूप महापर्वत में एक गुह्य विशाल नामक वन है, जो सिद्धों द्वारा सेवित है, तुम उसी वन में जाकर ॥५७॥ सावधान चित्त से सूर्य का आराधन करो, इससे आपके इच्छित कार्य की सिद्धि होती है, क्योंकि ऐसे कार्यों के अनुष्ठान में सिद्ध क्षेत्र ही अधिक फल देने वाला होता है ॥५८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! गन्धर्व की यह बात सुनकर सब आराधक ब्राह्मण उस वन में पहुँचे, वहाँ उन्हें भगवान् सूर्य का पवित्र मन्दिर दिखायी दिया ॥५९॥ ब्राह्मणादि सभी वर्णों ने वहाँ नियत आहार का अवलम्बन करके, प्रमाद रहित हो गन्ध-पुष्पादि के द्वारा सूर्य का पूजन किया ॥६०॥ हे विप्र ! गन्ध, पुष्प, अनुलेप, धूप, दीप, नैवेद्य पूर्वक जप, होमादि करते हुए सावधान चित्त से सभी आराधक ब्राह्मण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥६१॥

देवदानवयक्षाणांग्रहाणांज्योतिषामपि ।
तेजसाभ्यधिकंदेवंव्रजामःशरणंरविम् ॥६२
दिविस्थितंचदेवेशंद्योतयन्तंसमन्ततः ।
वसुधामन्तरिक्षंचव्याप्नुवन्तंमरीचिभिः ॥६३
आदित्यंभास्करंभानुंसवितारंदिवाकरम् ।
पूषाणमर्यमाणंचस्वर्भानुंदीप्तदीधितिम् ॥६४

चतुर्युगान्तकालाग्निदुष्प्रेक्ष्यप्रलयान्तगम् ।
योगीश्वरमनन्तंचरक्तं पीतंसितासितम् ॥६५
ऋषीणामग्निहोत्रेषुयज्ञदेवेष्ववस्थितम् ।
अजामशरणदेवतेजोराशितमच्युतम् ।
अक्षरपरमगुह्य मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६
छन्दोभिरश्वरूपैश्चसकृद्युक्तं विहङ्गमम् ।
उदयास्तमनेयुक्तं सदामेरो प्रदक्षिणे ॥६७
अनृतं चऋतचैवपुण्यतीर्थंपृथग्विधम् ।
विश्वस्थितिमचिन्त्यचप्रपन्ना स्मप्रभाकरम् ॥६८

ब्राह्मणों ने कहा—देवता, दैत्य, यक्ष और ज्योतिष-ग्रहों में अत्यधिक तेज सम्पन्न भगवान् भास्कर की शरण में हम आये हैं ॥६२॥ जो देवेश्वर आकाश में रह कर सभी दिशाओं को प्रकाशित तथा अपनी रश्मियों से सम्पूर्ण पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रहे है ॥६३॥ जो आदित्य, भास्कर, भानु, सविनादेव, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्त, दीधिति ॥६४॥ और योगीश्वर कहे जाते हैं और चतुर्युगी के अन्त में दुष्प्रेक्ष्य कालाग्नि के समान होते हैं अथवा जो अनन्त, लाल, पीले, श्वेत और कृष्ण हैं ॥६५॥ जो ऋषियों के अग्निहोत्र के समय यज्ञदेव के रूप में अवस्थित होते हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, अत्यन्त श्रेष्ठ मुक्तिद्वार रूप ब्रह्म हैं, जो एक बार युक्त हुए छन्द रूप अश्व पर आरूढ होकर आकाश में स्थित हैं, उदय और अस्त तक गमनशील और सुमेरु की प्रदक्षिणा में सदा तत्पर रहते है ॥६६-६७॥ जो असत्य, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथक् रूप से विश्व में अवस्थित हैं, उन अदिति-पुत्र अचिन्त्य स्वरूप आदिदेव भगवान् प्रभाकर की हमने शरण ग्रहण की है ॥६८॥

योब्रह्मायोमहादेवोयोविष्णुर्य प्रजापतिः ।
वायुराकाशमापश्चपृथिवीगिरिसागराः ॥६९
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानस्पत्यद्रुमौषधम् ।
व्यक्ताव्यक्तंपुभूतेपुधर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥७०

शाह्मीयाहेम्वगेनेवर्द्वैपणवोनैरनेनतु ।
यिधायन्यम्वन्यतु भानोर्नाम्वान्प्रसीदतु ॥७१
यन्यनवंमयस्येदम ह्न भूनजगत्पनो: ।
गन प्रसीदनाभाम्यान्जगनायकजीवनम् ॥७२
यस्य रमहारम्पप्रभामण्डलदृद्दं शम् ।
द्वितीयमेन्दयमीन्यमनोनाम्वान्प्रसीदतु ॥७३
ताभ्यांननन्यम्पाभ्यामिदविश्वविनिर्मितम् ।
यग्नीपोममयभान्वान्मनोदेय प्रसीदतु ॥७४
दयन्तुन्यानदानान्याभम्यादूजात्रियाननः ।
तुनोपभगवान्भास्वान्भिर्मासीद्विजोत्तम ॥७५
ततःगमण्डलाद्रुप्रनिर्जायवनमग्रन ।
प्रयनीयंस्दोनेग्यांदुदं सोदसंनरयि: ॥७६
ततस्तैस्पष्टम्पताग्विनाग्मजजनाः ॥
पुनरोनम्पिनोत्रिप्राभक्तिनम्राःप्रणेमिरे ॥७७
नमोनमस्तेम्नुमहस्रदमेनवंस्पहेतुस्वयमोपवेनु: ।

जब उन्होंने तीन महीने तक पूजन किया, तब भगवान् प्रसन्न हुए ॥७५॥ तथा स्वयं दुर्दश होकर भी उन्होंने आकाश मंडल में प्रकट होकर अपनी उदयकालीन प्रभा सहित उन्हें दर्शन दिया ॥७६॥ उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करके पुलकायमान हुए उन मनुष्यों ने भक्ति से विनम्र होकर उन अनादि सवितादेव को प्रणाम करते हुए कहा ॥७७॥ हे सहस्ररश्मे ! आपको नमस्कार है, आप सभी भूतों के कारण और अखिल विश्व के पताकारूप हो, हे अखिल यज्ञधाम ! आप ही सब यज्ञों के आश्रय और योगियों के ध्यान योग्य हो, आप हम पर प्रसन्न हो ॥७८॥

६२—राजा और प्रजा की आयु वृद्धि

ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ।
प्रियतायदभिप्रेतमत्त प्राप्तु द्विजादय ॥१
ततस्तेप्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्राद्ययोजना ।
ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्यपुरःस्थितम् ॥२
भगवन्य दिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह ॥३
दशवर्षसहस्राणिततोनोजीवतांनृप ।
निरामयोजितारातिं सुकोश स्थिरयौवन ॥४
तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ।
तेऽपिलब्धवरास्हृष्टा समाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥५
यथावृत्तं चतेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् ।
वरलब्ध्वासहस्रांशो सकाशादखिलं द्विज ॥६
तच्छ्रुत्वाजत्हृपेतस्यसापत्नीमानिनीद्विजा ।
(प्रहर्षपरमयाताहर्षोद्गततनूरुहा)
सचराजाचिरद्यौनार्हकिंचिन्नतजनम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उन सब

ने कहा—हे ब्राह्मणो ! तुम मुझ से जो प्राप्त करना चाहते हो, वह मुझ से माँगो ॥१॥ तब उन ब्राह्मणों ने उनको अपने सामने देख कर उन्हें प्रणाम किया और उन वरदायक भगवान् से बोले ॥२॥ विप्र प्रजागण ने कहा—हे भगवन् हे अन्धकार का नाश करने वाले प्रभो ! यदि आप हमारी भक्ति के कारण हम पर प्रसन्न हुए हैं ॥३॥ हमारे महाराज राज्यवर्द्धन रोग-रहित, शत्रुओं के विजेता और स्थिर यौवन वाले होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहें ॥४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महा मुने ! भगवान् सूर्य ने उनसे 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये तब वे सभी ब्राह्मण वर प्राप्ति से प्रसन्न-चित्त होकर राजा के पास पहुँचे ॥५॥ हे ब्रह्मन् ! सहस्र रश्मि वाले भगवान् सूर्य से वर प्राप्त होने इत्यादि का सम्पूर्ण वृत्तान्त उन ब्राह्मणों ने राजा को बताया ॥६॥ उस वृत्तान्त को सुन कर राजमहिषी मानिनी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई, जिससे उसका देह पुलकित हो गया, परन्तु राजा मौन रह कर बहुत समय तक विचार करते रहे ॥७॥

ततः सामानिनीभूपहर्षापूरितमानसा ।
दिष्टयाऽऽयुपामहीपालवर्द्धस्वेत्याहतपतिम् ॥८
तथातयामुदाभर्त्तामानिन्यायसभाजित. ।
नाहकिंचिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ॥९
सापुन प्राहभर्त्तारचिन्तयानमधोमुखम् ।
कस्मान्नहर्पमभ्येपिपरमाभ्युदयेनृप ॥१०
दशवर्पसहस्राणिनीरुजःस्थिरयौवन ।
भावीत्वमद्यप्रभृतिकितथापिनहृष्यसे ॥११
किन्तुतत्कारणब्रूहियच्चिन्ताकृष्टमानस ।
परमाभ्युदयेऽपित्वसप्राप्तेपृथिवीपते ॥१२
कथमभ्युदयोभद्रे किसभाजयसेचमाम् ।
प्राप्तोदु स्वसहस्राणिकिमभाजनमिष्यते ॥
दशवपसहस्राणिजीविष्याम्यहमेकक. ।
नत्वतनविपत्तौमेकिन्नु दुःखमविष्यति ॥१४

फिर मानिनी ने प्रसन्नचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! इस बढ़ी हुई आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हों ॥८॥ प्रसन्न चित्त वाली मानिनी के सत्कृत वचन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया ॥९॥ चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर मानिनी ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ॥१०॥ अब आप निरामय और स्थिर यौवन हो कर दस सहस्र वर्ष तक और जीवित रहेंगे फिर आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ॥११॥ हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता से व्याकुल हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ॥१२॥ राजा ने कहा—हे भद्रे ! मेरा कौन-सा भाग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस लिये कर रही हो ? सहस्रों दुःखों को प्राप्त होकर भी मैं किस आनन्द का उपभोग करूँगा ? ॥१३॥ मैं एकाकी ही दस सहस्र वर्ष जीवित रहूंगा, परन्तु तुम जीवित नहीं रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दुःख नहीं होगा ॥१४॥

पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्चतथान्यान्निष्टबान्धवान् ।
पश्यतोमेमृतान्दुःखकिमल्पंहिभविष्यति ॥१५
भृत्येषुचातिभक्तेषु मित्रवर्गेतथामृते ।
भद्रे दुःखमपारमेभविष्यतितुसन्ततम् ॥१६
यैर्मदर्थंतपस्तप्तं कृशैर्धमनिसन्ततैः ।
तेमरिष्यन्त्यहंभोगीजीविष्यामीतिधिक्करम् ॥१७
सेयमापद्वरारोहेप्राप्तानाभ्युदयोमम ।
कथंवामन्यसेनत्वंयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ॥१८
महाराजयथात्थत्वंतथैतन्नात्रसंशयः ।
मयापौरैश्चदोषोऽयंप्रीत्यानालोकितस्तव ॥१९
एवंगतेऽत्रकिंकार्य्यंनरनाथविचिन्त्यताम् ।
नान्यथाभाविवयत्प्राहप्रसन्नोभगवान्रविः ॥२०
उपचारःकृतःपौरैः प्रीत्याभृत्यैश्चयोमम
यथभोक्ष्याम्यहंभोगांस्त्यक्त्वातेषामनिर

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दुःख भोगना पड़ेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नहीं है ? ॥१७॥ मेरी यह दस सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नहीं हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मनिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दुःख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियों ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नहीं दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियों और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख को भोगूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिगत्वानियतमानस ।
(पौरलोकहितार्थंचतोपयिष्यामिभास्करम् ।
यथापौराममक्तेवान्धवाश्चसमन्तत ।
आराधनाण्देवेशतथाहमपिसाप्रतम्) ।
तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यत. ॥२२
दशवर्षसहस्राणियथाहस्थिरयौवन. ।
तस्यप्रसादाद्वस्वजीविष्यामिनिरामय. ॥२३
तथायदिप्रजा.सर्वाभृत्यास्त्ववसुताश्चमे ।
पुत्रा पौत्रा प्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने ॥२४
जीवन्त्येतप्रसादंचकरोतिभगवाश्रवि. ।
ततोऽहमविताराज्येभोक्ष्येभोगास्तथामुदा ॥२५
नचेदेवकरोत्यर्कस्तदाद्रौतत्रमानिनि ।
तपस्तप्स्येनिराहारयावज्जीवितसक्षय. ॥२६

फिर मानिनी ने प्रसन्नचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! इस बढ़ी हुई आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हो ॥८॥ प्रसन्न चित्त वाली मानिनी के सस्कृत वचन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया ॥६॥ चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर मानिनी ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रसन्न क्यो नही हैं ? ॥१०॥ अब आप निरामय और स्थिर यौवन हो कर दश सहस्र वर्ष तक और जीवित रहेगे फिर आप प्रसन्न क्यो नही हैं ? ॥११॥ हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता से व्याकुल हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ॥१२॥ राजा ने कहा—हे भद्रे ! मेरा कौन-सा भाग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस लिये कर रही हो ? सहस्रो दु खो को प्राप्त होकर भी मैं किस आनन्द का उपभोग करूँगा ? ॥१३॥ मैं एकाकी ही दश सहस्र वर्ष जीवित रहूगा, परन्तु तुम जीवित नही रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दु ख नही होगा ॥१४॥

पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्चतथान्यान्निष्टवान्धवान् ।
पश्यतोमेमृतान्दु खकिमल्पहिभविष्यति ॥१५
भृत्येपुचातिभक्तेपुमित्रवर्गेतथामृते ।
भद्रेदु खमपारमेभविष्यतितुसन्ततम् ॥१६
यैर्मंदर्थंतपस्तप्तंकृशैर्धमनिसन्ततै ।
तेमरिष्यन्त्यहंभोगीजीविष्यामीतिधिक्करम् ॥१७
सेयमापद्वरारोहेप्राप्तानाभ्युदयोमम ।
कथवामन्यसेनत्वयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ॥१८
महाराजयथात्यत्वतथैतन्नात्रसशय ।
मयापौरैश्चदापोऽयप्रीत्यानालोचितस्तव ॥१६
एवगतेऽत्रकिकार्यंनरनाथविचिन्त्यताम् ।
नान्यथाभावियत्प्राहप्रसन्नोभगवान्रवि ॥२०
उपकारःकृत पौरे प्रीत्याभृत्यैश्चयोमम ।
यथभोक्ष्याम्यहंभोगान्गत्वातेषामनिष्कृतिम् । २१

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दुःख भोगना पड़ेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नहीं है ? ॥१७॥ मेरी यह दश सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नहीं हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मानिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दुःख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियों ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नहीं दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियों और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख का भागूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिगत्वानियतमानस ।
(पौरलोकहितार्थंचतोपयिष्यामिभास्करम् ।
यथापौराममभक्तेवान्धवाश्चसमन्ततः ।
आराधनाद्देवेशतथाहमविसाप्रनम्) ।
तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यत. ॥२२
ददावर्षसहस्राणियथाहस्थिरयौवन ।
तस्यप्रमादाद्वस्यजोविष्यामिनिरामय ॥२३
तथायदिप्रजा सर्वाभृत्यास्त्वचनुताश्रमे ।
पुत्रा पौत्रा प्रपौत्राश्चमुत्हृदश्चवरानने ॥२४
जीवन्त्येतप्रसाद चकरोतिभगवान्रवि ।
ततोऽहभविताराज्येभोक्ष्येभोगास्तथामुदा ॥२५
नचेदेवकरोत्यर्कस्तदाद्रौतत्रमानिनि ।
तपस्तप्स्येनिराहारयावज्जीवितसचय ॥२६

इत्युक्तासातदातेनतथेत्याहनराधिपम् ।
जगामतेनचसमसाऽपितधरणीधरम् ॥२७
सतदायतनगत्वाभार्ययासहपार्थिवः ।
भानोराराधनचक्रे शुश्रूषानिरतोद्विज ॥२८

इससे तो यही उचित है कि मैं अब प्रभृति पर्वत पर जाकर पुरवासियों के लिये घोर तप करू̐, जिस प्रकार उन्होंने मेरे हितार्थ आराधन किया है, उसी प्रकार मैं भी उनके हितार्थ भगवान् सूर्य की आराधना के उद्देश्य से निराहार रह कर तपस्या करू̐गा ॥२२॥ जैसे उनकी कृपा से मैं स्थिर यौवन और रोग रहित होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहूँगा, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण प्रजा, भृत्य, तुम, पुत्री, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और सभी सुहृदगणादि जीवित रहे, यदि भगवान् भास्कर मुझ पर कृपा करेंगे तभी मैं प्रसन्न चित्त पूर्वक राज्य का भार वहन करता हुआ सुख-भोग करू̐गा ॥२३-२५॥ परन्तु, यदि भगवान् सूर्य ने ऐसी कृपा नहीं की तो, जब तक मेरा यह जीवन रहेगा, तब तक निराहार कर उसी पर्वत मे तप करता रहूगा ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज की बात सुन कर राजमहिषी भामिनी ने उनका अनुमोदन किया और वह अपने पति के साथ उसी पर्वत मे चली गई ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! अपनी पत्नी सहित राजा उसी मंदिर मे पहुचे और तपस्या पूर्वक भगवान् सूर्य की उत्कट आराधना मे तत्पर हुए ॥२८॥

निराहाराकृशासाचयथासौपृथिवीपतिः ।
तेपेतपस्तथैवोग्र शीतवातातपक्षमा ॥२९
तस्यपूजयतोभानु तप्यतश्चतपोमहत् ।
साग्रे सवत्सरेयातेतत प्रीतोदिवाकर ॥३०
समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणाचकृतेद्विज ।
ददौयथाभिलषितवरद्विजवरोत्तम ॥३१
लब्ध्वावरसनृपति समभ्येत्यात्मन पुरम् ।
चकारमुदितोराज्यप्रजाधर्मेसपालयन् ॥३२

ईजेयज्ञान्सचवहुन्ददौदानान्यर्हनिशम् ।
मानिन्यासहितोभोगान्नुभुजेचमधर्मवित् ॥३३
दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिःसह ।
भृत्यं.पौत्रं .प्रमुदित.सोऽभवत्स्थिरयौवन ॥३४
तस्यैतिचरितदृष्ट्वाप्रमतिर्नामभार्गवः ।
विस्मयाकृष्टहृदयोगाथामेतामगायत ॥ ५

जैसे निराहार रहने के कारण राजा दिनो दिन कृश होते जा रहे थे, वैसे ही रानी भी शीत, वायु, उष्णतादि के कष्टो को सहती हुई क्षीण देह होने लगी और तपस्या में लगी रही ॥२६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जब उन्होंने इस प्रकार भगवान् सूर्य की उपासना में एक वर्ष से अधिक काल व्यतीत कर दिया, तब भगवान् ने प्रसन्न होकर ॥३०॥ समस्त भृत्य, पुरजन और पुत्रादि के सहित वाला मनोवाछित वर उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ वर प्राप्त करके राजा पत्नी के सहित अपने घर को लौटे और प्रसन्नचित्त से धर्मपूर्वक प्रजा का पालनादि करते हुए राज्य करने लगे ॥३२॥ वह धर्मात्मा महाराज अपनी राजमहिषी के सहित अनेक यज्ञानुष्ठान करते और सत्पात्रो को दान देते हुए सुख भोगने लगे ॥३३॥ इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरवासी आदि के सहित स्थिर यौवन और प्रसन्न चित्तता लाभ करके दस सहस्र वर्ष व्यतीत किये ॥३४॥ उस समय भृगुवंशी महर्षि प्रमति ने उनका ऐसा चरित्र देख कर विस्मय युक्त होकर इस प्रकार गाथा कीर्त्तन की थी ॥३५॥

भानुभक्ते रहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धन ।
आयुषोवर्द्धनेजात स्वजनस्यनयात्मन ॥३६
इतितेकथितविप्रयत्पृष्टोऽहत्वयोदित. ।
आदिदेवस्यमाहात्म्यमादित्यस्यविवस्वत ॥३७
विप्रं तदग्निवत् स्वाभानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पठश्चमुच्यतेपापे सप्तरात्रकृतेनरः ॥३८
आरोग्यधनानाढ्य कुलेमर्हनिधीमताम् ।
जायतेचमहाप्राज्ञोवश्च तदाग्येदबुध ॥३९

(यजतेचमहायज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ।
श्रुत्वाचरितमेतद्धिसमानलभतेफलम् ॥)
मन्त्राश्चयेऽत्राभिहितामास्वतोमुनिमत्तम ।
जपःप्रत्येक मेतेपात्रिसध्यपातकापहः ॥४०
समस्तमेतन्माहात्म्ययत्रस्रायतनेरवे ।
पठयतेतत्रभगवान्सान्निध्यनविमुचति ॥४१
तस्मादेतत्त्वयाब्रह्मन्मानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
धार्य्यमनसिजाप्यचमहत्पुण्यमभीप्सता ॥४२
सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीपयस्विनीगाप्रददातियोहि ।
शृणोतिचैतत्यहमात्मवान्नर समतयाःपुण्यफलद्विजन्मय ॥४३

भगवान् भास्कर की कितनी आश्चर्यमय शक्ति है, जिसके प्रभाव से राजा राज्यवर्द्धन ने अपनी और अपने आत्मीयजनों की आयु वृद्धि की ॥३६॥ हे ब्रह्मन्! तुमने आदि देव सूर्य के जिस माहात्म्य के विषय में प्रश्न किया था वह तुम्हारे प्रति कहा गया ॥३७॥ सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को ब्राह्मण के मुख से सुनने और पाठ करने वाले मनुष्य सप्तरात्र के किये हुए पापों से मुक्त होते हैं ॥३८॥ उन सूर्य के माहात्म्य को जो बुद्धि पूर्वक रखते हैं, वह धनी, नीरोग और महान् विद्वान् होकर जन्म लेते हैं ॥३९॥ तथा महान् दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुष्ठाता होते और इस चरित्र को सुन कर समान फल को प्राप्त करते हैं, मूर्ख व्यक्ति, पाप कर्म करके भी यदि सूर्य के इस माहात्म्य का जप करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ जिस देव-मन्दिर में सूर्य के इस माहात्म्य का पाठ होता है, उसके सामीप्य से भगवान् नहीं हटते ॥४१॥ इसलिये, हे ब्रह्मन्! तुम भी महान् पुण्य की कामना से सूर्य के इस माहात्म्य को हृदय में धारण कर जप करो ॥४२॥ जो मनुष्य सोने से सींगों को मढ़ाकर दूध वाली गौ का दान करते और जो संयत चित्त से तीन दिन तक इस माहात्म्य को सुनते हैं उन दोनों को समान फल की प्राप्ति होती है ॥४३॥

६६—सूर्य वंशानुक्रम

एवंप्रभावोभगवाननादिनिधनोरविः ।
यस्यत्वंक्रौष्टुकेभक्त्यामाहात्म्यंपरिपृच्छसि ।।१
परमात्मासयोगिनायुञ्जताचेतसालयम् ।
क्षेत्रज्ञःसांख्ययोगानांयज्ञेशोयज्विनामपि ।।२
सूर्याधिकारवहनोविष्णोरीशस्यवेधसः ।
मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ।।३
मन्वन्तराधिपोविप्रयस्यसप्तममन्तरम् ।
इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टोमहाबलपराक्रमः ।।४
नरिष्यन्तोऽथनाभागःपृषध्रोधृष्टएवच ।
एतेपुत्रामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः ।।५
विख्यातकीर्त्तयःसर्वेसर्वेशास्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमिच्छन्मनुःपुत्रंतथापुनः ।।६
मित्रावरुणयोरिष्टिंचकारधृतिनांवरः ।
यत्रचापह्नुतेहोतुरपचारान्महामुने ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे क्रौष्टुकि ! तुमने जिन भगवान् भास्कर का माहात्म्य भक्ति सहित पूछा था, वह भगवान् ऐसे प्रभाव वाले हैं ।।१।। वह समस्त चित्त धारियों के ईश्वर, सांख्य योग वालों के क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकों के यज्ञेश्वर हैं ।।२।। ब्रह्मा विष्णु, शिव स्वरूप सूर्याधिकार के वहन करने वाले उन भगवान् भास्कर के संशय रहित एक पुत्र 'मनु' नाम से हुआ ।।३।। जिस मनु का सातवाँ मन्वन्तर इस समय चल रहा है, महाबली एवं पराक्रमी इक्ष्वाकु नाभाग, रिष्ट ।।४।। नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक यह सभी मनु-पुत्र पृथक् पृथक् राज्यों के परिपालन करने ।।५।। सभी प्रसिद्ध यश वाले शास्त्रों में पारङ्गत और सम्पूर्ण विद्या के ज्ञाता हुए, इन मनु ने उनके पश्चात् श्रेष्ठ विशिष्ट पुत्र की अभिलाषा से ।।६।। मित्रावरुण का यजन किया, परन्तु वह यज्ञ होता के अपचार से प्रभावहीन हो गया ।।७।।

इलानामसमुत्पन्नामनो कन्यासुमध्यमा ।
तादृष्ट्वाकन्यकातत्रसमुत्पन्नातनोमनु ॥८
तुष्टावमित्रावरुणौवाक्यचेदमुवाचह ।
भवत्प्रसादात्तनयोविशिष्टोमेभवेदिति ॥९
कृतेमखेसमुत्पन्नातनयाममधीमत. ।
यदिप्रसन्नौवरदौतदियत्तनयामम ॥१०
प्रसादाद्भवतो पुत्रोभवत्वतिगुणान्वितः ।
तथेतिचाभ्यामुक्ते तुदेवाभ्यासैवकन्यका ॥११
इलासमभवत्सद्य सुद्यु म्नइतिविश्रु त ।
पुनश्चे श्वरकोपेनमृगयामटतावने ॥१२

इस कारण इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, उस यज्ञ से उत्पन्न हुई कन्या को देख कर ॥८॥ मनु ने मित्रावरुण की स्तुति की और उनसे निवेदन किया कि आपकी कृपा से मुझे एक असाधारण पुत्र की प्राप्ति ॥९॥ इसी कामना से मैंने यह यज्ञ किया, जिससे इस कन्या की प्राप्ति हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो आपकी कृपा से मेरी यह कन्या ही ॥१०॥ अत्यन्त गुण सम्पन्न पुत्र हो जाय, इस पर दोनो देवताओं ने 'ऐसा ही हो' कहा और वह कन्या ॥११॥ उसी समय पुत्र होगई, जिसका नाम सुद्युम्न हुआ, वह मेधावी मनु पुत्र एक दिन वन मे आखेट के लिये गये और ईश्वर के क्रोधित होने से यह पुन स्त्री हो गये ॥१२॥

स्त्रीत्वमासादिततेनमनुपुत्रेणधीमता ।
पुरूरवसनामानचक्रवर्तिनमूर्जिम् ॥१३
जनयामासतनयंत्रसोमसुतावुधः ।
जातेसुतेपुन.कृत्वासोऽश्वमेधमहाक्रतुम् ॥१४
पुरुपत्वमनुप्राप्त सुद्यु म्न पार्थिवोऽभवत् ।
सुद्यु म्नस्यत्रयःपुत्राउत्कलोविनियोगय ॥१५
पुरुपत्वेमहावीर्य्यायज्विन पृथुलौजस. ।
पुरुपत्वेतुयेजातास्तस्यराज्ञस्त्रय सुता ॥१६

बुभुजुस्तेमहीमेतांधर्मेनियतचेतसः ।
स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्यराज्ञःपुरूरवा ॥१७
नसलेभेमहीभागयतोबुधसुतोहिसः ।
ततोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानपुरोत्तमम् ।
तस्मैदत्त सराजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥१८

ऐसा होते ही चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया जो पुरूरवा नामक चक्रवर्ती राजा हुआ, उस पुत्र के उत्पन्न होने के पश्चात् अश्वमेध का अनुष्ठान करने से ॥१३-१४॥ उन सुद्युम्न को पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जब वे पुरुष राजा हुए तब उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥१५॥ तीन अत्यन्त वीर, यज्ञ करने वाले और विपुल तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, वे तीनों पुत्र ॥१६॥ राज्य को प्राप्त करके धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे और राजा जब स्त्री हुए थे, तब उनके जो पुरूरवा नामक पुत्र हुए थे ॥१७॥ वह बुध के पुत्र होने के कारण भू भाग प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु वसिष्ठ ऋषि की आज्ञा से उन्हें प्रतिष्ठान नामक एक श्रेष्ठ नगर दिया गया, जहाँ के वह राजा हुए ॥१८॥

१००—पृषध्रोपाख्यान

पृषध्रारव्योमनोःपुत्रोमृगयामगमद्वनम् ।
तत्रचक्रममाणोऽसौविपिनेनिर्जनेवने ॥१
नाससादमृगंकश्चिद्भानुदीधितितापितः ।
क्षुत्तृट्तापपरीताङ्गःइतश्चेतश्चचक्रमन् ॥२
सददर्शतदातत्रहोमधेनुंमनोहराम् ।
लतान्तर्देहच्छिन्नार्धांब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥३
समन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् ।
पपातसापितद्बाणविभिन्नहृदयाभुवि ॥४

सोऽपिराज्ञोविनाशाय कोपचक्रे द्विजोत्तम ।
तमभ्येत्यत्वरायुक्तोवारयामासवैपिता ॥१२
वत्सालमलमत्यर्थंकोपेनातीववैरिणा ।
ऐहिकामुष्मिकहित समएवद्विजन्मनाम् ॥१३
कोपस्तपोनाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः ।
क्रुद्धस्यगलतेज्ञानक्रुद्धश्चार्थाच्चहीयते ॥१४
नधर्म क्रोधशीलस्यनार्थंचाप्नोतिरोषण. ।
नालसुखायकामास्ति कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५

राजा के मुख से अपने लिये ऐसे भर्त्सनायुक्त वाक्य सुनकर वे 'मौलि' नामक ऋषि के पुत्र रोष मे आगये और शाप दिया कि तुम 'शूद्र ही हो जाओगे और गाय का वध करने के कारण तुम्हारी पढी हुई समस्त विद्या नष्ट हो जायगी ॥९-१०॥ इस शाप को सुनकर राजा भी बडा दुखी और कुपित हुआ और ऋषि-बालक को प्रतिशाप देन के उद्देश्य से हाथ मे जल लिया ।११। इस पर 'बाभ्रव्य' और भी क्रोध मे आ गया और राजा को नष्ट करने के लिये दूसरा शाप देने को उद्यत हुआ। पर उसी समय उसके पिता वहाँ आ पहुँचे और उसे रोकते हुए समझाने लगे—पुत्र ! इस प्रकार का क्रोध अन्त मे अपने लिये ही अहितकारी होता है। ब्राह्मण का धर्म तो शान्ति ही है और उसी से लोक तथा परलोक मे उसका कल्याण होता है ॥१२-१३ यह क्रोध हर प्रकार से अनुचित है। इससे तपस्या का नाश, आयु का क्षय, ज्ञान का लोप, औ धन का नाश होता है। क्रोध के वशीभूत होने वाला धर्म, अर्थ, काम सबसे वचित हो जाता है और बहुत दुख पाता है ॥१४-१५॥

यदिराज्ञाहताधेनुरियंनिजानिनास ।।
युक्तमत्रदयाकर्तुमात्मनोहितबोधिना ॥१६
अथवाऽजानताऽनेनुरियव्यापादितामम ।
नरकयशापर्याग्योऽयदुष्ट नास्यमनोयतः ॥१७
आत्मनोहितमन्विच्छन्वाचतेयोऽपरनरः ।
कर्तव्यामूढविज्ञानेदयातत्रदयालुभि. ॥१८

अज्ञानत कृतेदण्डपातयन्तिवुधायदि ।
वुधेभ्यस्समहमन्येवरमज्ञानिनोनरा ॥१९
नाद्यशापस्त्वयादेय पार्थिवस्यास्यपुत्रक ।
स्वकर्मणैवपतितागौरेपादु खमृत्युना ॥२०
पृषध्रोऽपिमुने पुनप्रणम्यानम्रकन्धर ।
प्रसीदेतिजगादोच्चै रज्ञानाद्धातितेतिच ॥२१
भयागवयवुद्धयागौरवध्याघातितामुने ।
अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वचनोमुने ॥२२

ऋषि ने फिर कहा—हे पुत्र अगर राजा ने गाय का बध जान कर किया है अपना हित चाहने वाले को इस पर दया ही करनी चाहिये। यदि यह कार्य अनजान मे भूलवश हो गया तो शाप देने का कोई कारण हो ही नहीं सकता,क्योंकि मन म किसी प्रकार पाप की भावना नही होती ॥१६–१७॥ दयालु पुरुष तो उन व्यक्तियो का भी अहित नही करते जो जान बूझकर उनके दु ख का कारण होते हैं, फिर भूल से होने वाले अपराध पर दण्ड देना तो अज्ञानियों के लिये भी अनुचित है ॥१८–१६॥ मैं जानता हूँ कि अपने भाग्य-वश ही इस दुर्घटना मे ग्रस्त हुई है, उसके लिये राजा को शाप देना उचित नही ॥२०॥ राजा न भी ऋषि पुत्र के सम्मुख मस्तक झुका कर प्रार्थना की—हे मुनि श्रेष्ठ ! प्रसन्न होइये, मैंने भूल से ही इस धेनु पर बाण चलाया था। मैं ने उसे जगली गवय ही अनुमान किया था, अतएव आप क्रोध को त्याग कर मुझे क्षमा करें ॥२१-२२॥

याजन्मनोमहीपालनमयाव्याहृतमृषा ।
क्रोधश्चायमहाभागनान्ययामेवदाचन ॥२३
तस्माहमेमवचनोमिशापवतु नृपान्यया ।
यस्तेगमुद्यत नापोद्वितीय सनिवर्तित ॥२४
इत्युक्तवन्ततवासमादायसपितातत ।
जगामस्वाश्रमसोऽपिपृषध्र शूद्रतामगात् ॥२५

ऋषि ने कहा—राजन् ! मैंने आज तक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया इसलिये मेरे मुख से जो वचन निकल चुका वह अब मिट नहीं सकता। पर मैं आपको जो दूसरा शाप देने वाला था उससे अब विरत होता हूँ। ऋषि पुत्र का यह कथन सुनकर मुनि उसे आश्रम के भीतर लिवा ले गये और पृषध्र भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ॥२३-२४॥

१०१—नाभागोपाख्यान (१)

कारुषा क्षत्रिया शूरा करूषस्याभवन्सुता ।
तेतुसप्तशतवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रश ॥१
दिष्टपुत्रस्तुनाभाग स्थित प्रथमयौवने ।
ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥२
तस्यासहष्टमानायामदनाक्षिप्तमानस ।
बभूवभूपतनयोनि श्वासासेपतत्पर ॥३
तस्या.सगत्वाजनकवव्रे तावैश्यकन्यकाम् ।
ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिनृपात्मजम् ॥४
तचाहसपितातस्याराजपुत्र कृताजलिः ।
विभ्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतवच ॥५
भवन्तोभूभुजोभृत्यावयव.करदायका. ।
कथसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥६

मार्कण्डेयजी ने वर्णन किया कि करुष नामक राजा के दशक कारुष क्षत्रिय हुए जिनकी सख्या पहले सात सौ थी फिर उनसे अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए। इसी वश मे दिष्ट नामक राजा के पुत्र 'नाभाग' ने युवावस्था मे किसी समय एक परम सुन्दरी वैश्य कन्या को देखा। वह उसे देखते ही मोहासक्त होगया और वैश्य से कन्या का विवाह अपने साथ कर देने की प्रार्थना

करने लगा। इस पर वैश्य ने राजभय से भयभीत होकर हाथ जोड़ कर कहा कि आप राजा हैं और हम सेवक की भाँति आपकी प्रजा हैं, इसलिये आप ऐसे असमान सम्बन्ध का प्रस्ताव क्यों करते हैं ? ॥१–६॥

साम्यमानुपदेहस्यकाममोहादिभि कृतम् ।
तथापिकालेतैरेवयोज्यतेमानुपवपु ॥७
तथैवचोपकारायजायन्तेतस्यतान्यपि ।
अन्यानिचान्येजीवन्तिभिन्नजातिमतासताम् ॥८
तथान्यान्यप्ययोग्यानियोग्यतायान्तिकालत ।
योग्यान्ययोग्यतायान्तिकालवश्याहियोग्यता ॥९
आप्याय्यतेयच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितै ।
कालज्ञात्वानथाभुक्त तदेवपरिशिष्यते ॥१०
इत्थममैषाभिमतातनयादीयतात्त्वया ।
अन्यथाभन्छरीरस्याविपत्तिरुपलक्ष्यते ॥११
परतन्त्रावयत्वचपरसन्तोमहीभुज ।
पितातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वगृहाणददाम्यहम् ॥१२

राजपुत्र 'नाभाग' ने कहा कि सभी मनुष्यों के भीतर काम, क्रोध आदि ब्रह्माजी ने ही उत्पन्न किए हैं। पर ये काम, क्रोध सदैव बने रहते हों ऐसी बात नहीं है, किसी समय संयोगवश वे उत्पन्न हो जाते हैं। ये काम, क्रोध विभिन्न जाति के व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के भावों में प्रकट होते हैं, पर उनका अभाव किसी में नहीं होता और वे किसी परिस्थिति में उचित और किसी में अनुचित बन जाते हैं। उनका बुरा या अच्छा कहा जाना काल के ही अधीन है। जिस प्रकार भोजन द्वारा शरीर की पुष्टि होती है, पर यदि उसको असमय में ग्रहण किया जाता है तो वह उल्टा हानिकारक हो जाता है।७-१०। इसलिये संयोगवश तुम्हारी कन्या के लिये मेरी अभिलाषा हुई है तो तुम उसे मुझे दे दो, अन्यथा मेरा अन्त हो जायगा। इस पर वैश्य ने कहा कि मुझे राजा के अधीन रहना पड़ता है और आपको भी महाराज के अनुकूल रहना है, इसलिये आप उनकी आज्ञा ले लें, मैं कन्या का विवाह कर दूँगा ॥११-१२॥

प्रष्टव्या.सर्वकार्य्येषुगुरवोगुरुवर्तिभि ।
नत्वीदृशेष्वकार्य्येषुगुरूणावाक्यगोचर ॥१३
क्वमन्मथकथालापोगुरुणाश्रवणक्वच ।
विरुद्धमेतदन्यत्रप्रष्टव्यागुरवोनृभि. ॥१४
एवमेनत्स्मरालापस्तवायपृच्छ्यमागुरुम् ।
ग्रहपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रय ॥१५
इत्युक्त सोऽभवन्मौनीराजपुत्र.सचापितत् ।
तत्पित्रेसर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम् ॥१६
ततस्तस्यपिताविप्रान्ऋचीकादीन्द्विजोत्तमान् ।
प्रवेद्यराजपुत्र चयथास्थानन्यवेदयत् ॥१७
निवेद्यचतत प्राहमुनीनेवव्यवस्थिते ।
यत्कर्तव्यतदादेष्टु महन्तिद्विजसत्तमा· ॥१८
राजपुत्रानुरागस्तेयद्यस्यावैश्यसन्ततौ ।
तदस्तुधर्मएवैपकिन्तुन्यायक्रमेणस: ॥१९
मूर्धाभिषिक्ततनयापाणिग्रहोत्सव.पुरा ।
भवत्वनन्तरचेयतवभार्याभविष्यति ॥२०
एवनदोषोभवतितथेमामुपभुञ्जत. ।
अन्यथाऽस्येतितेजातिरुत्कृष्टावालकानयात् ॥२१

राजपुत्र ने कहा कि यद्यपि मनुष्यों को गुरुजनों की इच्छानुसार चलना चाहिये और सभी विषयों में उनकी आज्ञा लेनी चाहिये, पर यह विषय ऐसा है जिसे उनके सम्मुख प्रकट नहीं किया जा सकता। कहाँ तो गुरुजनों का पद और महत्व और कहाँ यह काम कथा का वर्णन, इन दोनों बातों में कोई मेल नहीं, इसलिये इस बात को उनके सामने नहीं कह सकता। वैश्य ने कहा—ठीक है, इस सम्बन्ध में गुरुजनों की आज्ञा लेना काम कथा होगी, पर यदि मैं इस सम्बन्ध में चर्चा करूँ तो वह काम-कथा नहीं मानी जायगी॥१३–१५॥ इस बात पर राजकुमार निरुत्तर होगया और वैश्य ने सब वृत्तान्त राजा के समक्ष जाकर निवेदन किया। राजा ने अपने पुत्र तथा ऋचीक आदि धर्मज्ञ

वेत्ताओ को सामने बुलाकर समस्त हाल कह सुनाया और पूछा कि इस विषय मे आप क्या निर्णय करते हैं ? ऋषियो ने कहा—राजकुमार ! यदि आप वैश्य कन्या पर आसक्त होगये हैं तो इसमे कोई बडा अधर्म नही है, पर इसका न्यायोचित मार्ग यह है कि पहले आप किसी स्वजातीय कन्या का पाणिग्रहण करलें, जो राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त हो सके, उसके पश्चात् इस वैश्य कन्या को भी अपनी पत्नी बनावें । इस प्रकार वैश्य-कन्या से विवाह करने से किसी प्रकार का दोष नही होगा । अन्यथा हीन वर्ग की कन्या से सम्बन्ध हो जाने पर आपको भी उसी हीन जाति का होजाना पड़ेगा ॥१६-२१॥

इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेषामहात्मनाम् ।
विनिष्क्रम्यगृहीत्वातामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥२२
राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता ।
यस्यसामर्थ्यमस्तिसएतांमोचयत्विति ॥२३
तत सवैश्यस्तांदृष्ट्वागृहीतातनयाद् तम् ।
आहीतिपितरंतस्यप्रययौचरणद्विज ॥२४
ततस्तस्यपिताक्रुद्धश्चादिदेशायलमहत् ।
हन्यताहन्यतादुष्टोनाभागोधर्मदूषक ॥२५
ततस्तद्युधेसैन्यतेनभूभृत्सुतेनवै ।
शस्त्रास्त्रेणतदास्त्रेणतत्प्राचुर्य्येणपातितम् ॥२६
सश्रुत्वानिहतंसैन्यराजपुत्रेणभूपति ।
स्वयमेवययौयोद्धुंस्वसैन्यपरिवारित ॥२७
ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुज स्वसुतेनवत् ।
राजपुत्रेणदास्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयित पिता ॥२८
ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिव्राट्सहसामुनि ।
प्रत्युवाचमहीपालविरमस्वेतिसंयुगात् ॥२९
स्वसुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयमहात्मन ।
तवापिवैश्येनमहद्युद्धं धर्मयन्नृप ॥३०

यद्यपि इस प्रकार ऋषियो ने राजपुत्र को बहुत समझाया, पर यह मार्ग उसे पसन्द न आया और उसने बाहर आकर वैश्य-कन्या को पकड़ लिया और तलवार निकाल कर कहा कि—मैं इसके साथ बल पूर्वक राक्षस-विवाह करता हूं जिसकी सामर्थ्य हो वह इसे मुझसे छुडाले ॥२२-२३॥वैश्य यह देखकर भागा हुआ राजा के पास गया और 'रक्षा करो' यह कहकर पुकारने लगा। इस पर क्रोधित होकर राजा ने आज्ञा दी कि 'इस अधर्मी 'नाभाग' को शीघ्र ही मारो।' राजा की आज्ञा पाकर सेना 'नाभाग' के साथ लड़ने लगी, पर उसने अस्त्र-शास्त्रों का प्रयोग करके शीघ्र ही उसे हरा दिया। सेना के पराभव का वृत्तान्त सुन कर राजा स्वयं उससे लड़ने आया और संघर्ष होने पर'नाभाग' को दबा दिया। पर उसी समय आकाश मार्ग से नारद मुनि का वहाँ पर आगमन हुआ और उन्होंने राजा दिष्ट से कहा—महाराज ! अब आप युद्ध बन्द कर दीजिये। आपका यह पुत्र अपने वर्ण से पतित होकर वैश्य होगया है,इसलिये उसके साथ आपका युद्ध करना धर्म संगत नहीं है ॥२४-३०॥

ब्राह्मण्यांब्राह्मण पूर्वंकुर्वन्दारपरिग्रहम् ।
ब्राह्मण्यारसर्ववर्णोंपुनर्ह्यानिमुपगच्छति ॥३१
तथक्षत्रियसुताक्षत्रिय.पूर्वमुद्वहन् ।
इतरैश्चततोराजस्च्यवतेनस्वधर्मत ॥३२
पूर्वं वैश्यस्तथावैश्यापश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ।
नह्रीयतेवैश्यकुलादयन्याय क्रमोदित ॥३३
ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्या सवर्णपाणिसग्रहम् ।
अकृत्वान्यभवापाणे पतन्तिनृपनग्रहात् ॥३४
यस्यायस्याहिहीनायाःकुरुतेपाणिसग्रहम् ।
अकृत्वावर्णसयोगसोऽपितद्वर्णभाग्भवेत् ॥३५
सोऽयंवैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्र सुमन्दधी ।
नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ॥३६
वयमेतन्नजानीम कारणनृपनन्दन ।
मयाभविष्यतीदचनिवर्तरणकर्मत ॥३७

नारदजी ने कहा—शास्त्र का यह विधान है कि यदि ब्राह्मण पहले ब्राह्मण-स्त्री से विवाह करके उसके पश्चात् तीनो वर्णं मे से किसी भी वर्ण की स्त्री को ग्रहण करे तो उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नही होता। इसी प्रकार क्षत्रिय अगर पहले अपने वर्णं की कन्या का पाणिग्रहण करके फिर वैश्य-शूद्र आदि की कन्या से विवाह करे तो वह पतित नही होता। वैश्य भी अपने वर्णं की कन्या से विवाह करने के पश्चात् शूद्र कन्या से विवाह करले तो अपने वैश्य कुल से भ्रष्ट नहीं होता। पर किसी भी वर्ण का व्यक्ति यदि प्रथम अपने वर्णं की कन्या स विवाह किये बिना दूसरे वर्ण की कन्या से विवाह कर लेता है तो वह उसी हीन वर्ण का हो जाता है जिस वर्ण की वह कन्या होती है। एवं प्रथम सवर्णा कन्या से विवाह न करने के कारण वह पिता के उत्तराधिकार का पात्र भी नही माना जाता। इस नियम के अनुसार आपका यह मन्द बुद्धि पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त होगया और आप क्षत्रिय हैं इससे आप दोनो का युद्ध उपयुक्त नही। आगे इसका क्या परिणाम होगा यह तो नही कहा जा सकता। पर अब आप युद्ध बन्द करदें ॥३१–३७॥

१०२—नाभागोपाख्यान (२)

निवृत्तोसौनतोभूप सग्रामात्स्वसुतेनवै।
उपयमेचतावैश्यतनयासोऽपितत्सुत ॥१
तत सर्ववैश्यतांप्राप्त ममुपेत्याहपार्थिवम्।
भूपालयन्मयाकार्य्यंतत्समादिश्यतामम ॥२
धर्माधित्रएणयुक्ताबाभ्रव्यश्चात्तपस्विन।
यदम्यकर्मधर्मायनद्वदतुतयाचर ॥३
ततस्तेमुनयस्तस्यपायुपात्यतथाश्रिम्।
वाणिज्यवपरधर्ममाचचरगु सभासद ॥४
तथैवचक्रे समुनस्तस्यराजोयथोदितम्।
तंधर्मयादिभिर्धर्मच्युतस्यनिजधर्मत ॥५

तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दन. ।
समात्राप्रहितोगच्छद्गोपालोभवपुत्रक ॥६
मात्रातयानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ।
राजर्षिमगमन्नीपहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥७

इस प्रकार नारदजी के समझाने पर राजा ने युद्ध बन्द कर दिया और नाभाग भी वैश्य-कन्या से विवाह करके वैश्यत्व को प्राप्त होगया। फिर वह राजा के पास गया और पूछा—"महाराज! अब मैं क्या काम करके जीवन-निवाह करूँ उसका आदेश दें।" राजा ने कहा कि बाभ्रव्य आदि जो ऋषिगण धर्माधिकरण का निर्णय करते हैं, उनसे पूछ कर जैसा वह बतलावें तदनुसार आचरण करो। तब उन धर्माधिकारी मुनियों ने कहा कि—खेती, पशु-पालन और व्यापार ही वैश्य के लिये निश्चित धर्म है। राजपुत्र नाभाग ने इस निर्णय को स्वीकार किया और वैश्य कर्मों का आचरण करके निर्वाह करने लगा ॥१-५॥ यथा समय उनके भलन्दन नामक पुत्र हुआ। उसके बडे होने पर माता ने आदेश दिया 'पुत्र! गोपाल होओ' अर्थात् गौ पालने का कार्य करो। पर 'गौ' का अर्थ पृथ्वी भी होता है और भलन्दन ने उसी अर्थ को ग्रहण किया। वह हिमालय निवासी नीप नाम राजर्षि की सेवा में उपस्थित हुआ ॥६-७॥

तसमेत्यचजग्राहतस्यपादौयथाविधि ।
प्रणिपत्याहचैवैनराजर्षिमभलन्दन ॥८
आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वभवेतिवै ।
मयाचपालनीयाक्ष्मातस्या स्वीकरणकथम् ॥९
मयाहिगौपालनीयातायदास्वीकृतामवेत् ।
आक्रान्तावन्धुभिः मादायादै पृथिवीमम ॥१०
तायथाप्राप्नुयांपृथ्वीस्त्वत्प्रसादादहविभो ।
तथादिशस्वराप्यामिन्वाज्ञांप्रणतोऽस्मिते ॥११
तत.मनोधोराजर्षिस्तस्मैनिस्वशेषत ।
भलन्दायददौब्रह्मन्नस्त्रग्राममहात्मने ॥१२

प्राप्तास्त्रविद्य सययौपितृव्यतनयान्द्विज ।
वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्ट.समहात्मना ॥१३
अयाचतसराज्यार्धपितृपैतामहोचितद् ।
तेचोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वकथभोक्ष्यसिमेदिनीम् ॥१४

भलन्दन ने राजर्षि नीप की यथा-विधि वन्दना की और कहा कि मेरी माता ने मुझे 'गोपाल' होने का आदेश दिया है, इसलिये पृथ्वी पालन मेरा कर्तव्य है। पर इस समय पृथ्वी पर मेरे अन्य कुटुम्बियों ने अधिकार कर रखा है। इसलिये आप मेरा इस प्रकार मार्ग दर्शन करें जिससे मैं पृथ्वी को प्राप्त करके उस कर्तव्य को पूर्ण कर सकूँ। राजर्षि नीप उसकी शालीनता से सन्तुष्ट हुए और उन्होने उसे सम्पूर्ण अस्त्र विद्या की शिक्षा दी। इस प्रकार अस्त्र-विद्या द्वारा शक्तिशाली बन कर अपने पितृव्य-पुत्र वसुरात् के पास गये और उनसे राज्य का आधा भाग देने को कहा। उन्होने उत्तर दिया कि 'तुम वैश्य सन्तान हो इससे राज्य-शासन का अधिकार नहीं है।" ॥८-१४॥

ततस्तैर्यु द्धमभवद्भलन्दस्यात्मवशजै. ।
वसुरातादिभि क्रुद्धै कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभि ॥१५
सजित्वातान्गदोपास्तुदाम्त्रविक्षतसैनिकान् ।
जहारपृथिवीतेपाधर्मयुद्धेनधर्मवित् ॥१६
सनिर्जितारि सकलापृथ्वीराज्यतयापितु ।
निवेदयामासततस्तत्पिताजागृहेनच ।
प्रत्युवाचनतपुत्रभार्य्यायाःपुरतस्तदा ॥१७
भलन्दराज्यमेतत्तक्रियतापूर्वजै कृतम् ॥१८
यन्मत्कृतवाराज्यनामात्मर्थ्यंसुत.पुरा ।
वैश्यतातुपुरस्कृत्यतथैवाज्ञाकर पितु ॥१९
श्रुत्वाश्रोनिपितुर्यदैवरन्यापरिग्रहात् ।
नपुण्यसांवर्भार्याजायायदाभूलगतत्यम् ॥२०
उत्लघ्याज्ञामगुनस्तस्यपासयामिमहीयदि ।
नाग्निमोक्षलतोनूनममकरणानैरपि ॥२१

नचापियुक्त त्वद्वाहुनिर्जितममानिन ।
राज्यभोक्तुमनीहम्यदुर्वलस्येवकस्यचित् ॥२२
राज्यकुरुस्वयपुत्रदायादेभ्योविमु चवा ।
ममाज्ञापालनशस्तपितुर्नक्षितिपालनम् ॥२३

इस पर भलन्दन ने उनको युद्ध के लिये आह्वान किया और अस्त्रों के प्रयोग से उनकी सब सेना को घायल करके राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार भलन्दन के समस्त राज्य जीत कर पिता के चरणों में अर्पण किया, पर पिता उसे ग्रहण करने को तत्पर नहीं हुए। उन्होंने कहा—हे पुत्र! पूर्वजों द्वारा शासित इस राज्य का उपभोग तुम्हीं करो। मैं राज्य नहीं कर सकता ऐसी बात नहीं है, पर मैंने पिता की आज्ञा को अस्वीकार करके वैश्य कन्या से विवाह किया और इसके लिये राज्य अधिकार को त्याग दिया। अगर अब मैं उस राज्य का पुन अधिकार ग्रहण करूँगा तो यह पिता की आज्ञा का उल्लंघन होगा। इस मिथ्या व्यवहार के कारण मैं और मेरे पिता प्रलय काल पर्यन्त मुक्ति लाभ नहीं कर सकेंगे ॥१५-२१॥ वैसे भी मेरे जैसे निराकांक्षी व्यक्ति का तुम्हारे बाहुबल से जीता राज्य उपभोग करना उचित नहीं है। इसे तुम्हीं भोगो या कुटुम्बियों को ही वापस कर दो। मेरे लिये पिता की आज्ञा पालन करना ही हितकारी है ॥२२-२३॥

तत प्रहस्यतद्भार्य्यासुप्रभानामभामिनी ।
प्रत्युवाचपतिभूपगृह्यताराज्यमूर्जितम् ॥२४
नत्ववैश्यानचैवाहजातावैश्यकुलेनृप ।
क्षत्रियस्त्वतयैवाहक्षत्रियाणाकुलोद्भवा ॥२५
पूर्वमासीन्महीपाल सुदेवइतिविश्रुत ।
तस्याभूत्सखाराजाधूम्राश्वस्यमुतोनलः ॥२५
सतेनसस्त्रासहितोजगामाग्रवनवनम् ।
पत्नीभि ससमरन्तु माधवेमासिपार्थिव ॥२७
तत पानान्यनेकानिभक्ष्याणित्रभुजेतदा ।
भार्य्याभि साहनम्नाभिस्तेनसरयासमन्वितः ॥२८

ततः पुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम् ।
पत्नीं च्यवनपुत्रस्य प्रमतेः पार्थिवात्मजाम् ॥२९
सखा तस्य नलो मत्तो जगृहे तां च दुर्मतिः ।
पश्यतस्तस्य राज्ञश्च तात तातेति वादिनीम् ॥३०

इस वार्तालाप को सुनकर नाभाग की पत्नी सुप्रभा ने हँसते हुए कहा कि वास्तव में आप वैश्य नहीं हैं और मैं भी वैश्य नहीं हूं, मेरा जन्म क्षत्रिय वंश में ही हुआ है। इसलिये आप खुशी से इस राज्य को ग्रहण कर सकते हैं। इसका रहस्य यह है कि मेरे पिता पूर्वकाल में सुदेव नाम के राजा थे और उनके मित्र राजा धूम्राश्व के पुत्र नल नाम के राजा थे। एक दिन राजा और उनके मित्र अपनी पत्नियों सहित आमों के वन में विहार करने गये। वहाँ वे भाँति-भाँति के खान-पान की वस्तुएँ उपभोग करने लगे। इसके पश्चात् नल ने सरोवर के किनारे च्यवन पुत्र प्रमति की सुन्दरी पत्नी को देखा, जो किसी राजा की पुत्री थी। दुष्मति नल ने उस रमणी को आकर पकड़ लिया। इस पर वह 'रक्षा करो' 'रक्षा करो' कहकर राजा के सम्मुख रोने लगी ॥२४-३०॥

आक्रन्दितं निशम्यैवमसत्या प्रमतिः पतिः ।
आजगामास्त्ररायुक्तः किमेतदिति चैव वदन् ॥३१
ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् ।
गृहीतां च तथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना ॥३२
तं सुदेवं प्रमतिः प्राह शाप्यतामिति ।
स्वकर्मणा भव त्वं वैश्यः दुष्टश्चायं नलो नृप ॥३३
तस्यान्यं च्यवनस्थ स्वामुदेवो नागोरवात् ।
प्राह वैश्योऽसि भवत्प्रान्यश च्यवनागारागमात् ॥३४
तत प्रमतिः सुदेवोऽस्मीति ज्ञात्वानिदं हसित्व ।
प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषितम् ॥३५
एवमस्तु भवान्वैश्य क्षत्रिय धनरक्षणात् ।
शापिर्यायोर्यं तेनास्य नाशनाद्दोन्वैदिति ।
गन्धर्वकन्यियो भार्यो दैत्यवशुनापसः ॥३६

उधर से महर्षि प्रमति भी 'क्या हुआ ?' कहते हुए शीघ्रता पूर्वक वहाँ आये। प्रमति ने सुदेव से कहा कि आप इसे रोकिये क्योंकि आप ही यहाँ के शासक हैं और ऐसे कार्य को रोकना आपका कर्तव्य है। प्रमति के इस प्रकार के विनीत वचन सुनकर राजा सुदेव अपने मित्र की सम्मान रक्षा के विचार से बोले—'मैं तो वैश्य हूं आप किसी क्षत्रिय के सम्मुख जाकर रक्षा की प्रार्थना कीजिये।" सुदेव की इस तरह की बात सुनकर प्रमति को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा—"तथास्तु, तुम सचमुच वैश्य हो जाओगे, क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति तो अन्याय-पीड़ितों की रक्षा के लिये ही की गई है। क्षत्रिय इसी लिये शस्त्र धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति अन्याय से पीड़ित न हो। इस धर्म का पालन न करने से तुम क्षत्रिय नहीं रह सकते और वैश्य ही होगे।" ॥२१–२६॥

१०३ कृपावती उपाख्यान

तस्मैदत्त्वाततः शापमलकुद्धोऽब्रवीद्द्विज ।
प्रमतिर्भार्गव कोपात्त्रैलोक्यमिर्दहन्निव ॥१
मदोन्मत्तोयतोभार्य्यामिवानतममाश्रमे ।
बलाद्गृह्णासिमत्स्त्वंतस्माद्व्रजतुमाचिरम् ॥२
तेनोद्दाहृतमात्रेचवाक्येतस्मिंस्तदानल ॥
देहजेनाग्निनामद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥३
दृष्ट्वाप्रभावतस्यसुदेवोविस्मितस्ततः ।
प्रणाममत्र प्राहेदक्षम्यतांक्षम्यतामिति ॥४
यदुक्तवान्स्वानगवन्मृगपानमदाकुलम् ।
तत्क्षम्यताप्रसीदत्वशापोऽयविनिवर्त्यताम् ॥५
एवप्रसादितस्तेनप्रमति प्राहभार्गव. ।
गतक्रोधानलेदग्धेनानेननचनना ॥६

नान्यथाभाविनद्वाक्यंयन्मयासमुदीरितम् ।
तथापितेकरिष्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहपरम् ॥७

इस प्रकार सुदेव को शाप देकर प्रमति ने अत्यन्त क्रोधित होकर नल से कहा—कि "जब तूने उन्मत्त होकर मेरे आश्रम में ही मेरी पत्नी को जब दंस्ती पकड़ लिया तो तू तुरन्त भस्म होजा। यह वचन मुँह से निकलते ही नल के देह में भयङ्कर ज्वाला प्रकट हुई और वह तुरन्त भस्म हो गया। प्रमति का ऐसा प्रभाव देख कर सुदेव की मत्तता दूर भाग गई और वह बार-बार प्रणाम करके कहने लगे 'भगवान्! क्षमा करो। मद्यपान के दूषित प्रभाव के कारण मैंने जो वक्र-भव की उसके लिये क्षमा प्रदान करें और शाप से मुझे मुक्त करें। राजा के इस प्रकार विनय करने और नल के नष्ट हो जाने से प्रमति का क्रोध शान्त हुआ और उन्होने कहा—जो वाक्य मेरे मुख से निकल चुके वे अब मिट नही सकते, तो आपकी प्रार्थना पर कुछ अनुग्रह कर सकता हूँ ॥१-७॥

भवितावैंश्यजातीयोभवानास्त्यत्रसंशय ।
भविनाशश्रियोवश्यमस्तस्मिन्नेवाशुजन्मनि ॥८
भ्रंशोप्यतिश्रनालत्वायदातेक्षनसम्भय ।
तदात्वश्श्रियोवैश्यस्वगृहीतोभविष्यसि ॥९
एवसवैश्योभूपालसुदेवोऽस्पतिपतामवत् ।
अहंचयामहाभागतत्सवंश्रयता त्वया ॥१०
सुरतोनामराजर्षि प्रागासीगदन्वमादने ।
सपस्वीनियताहारस्त्यवनसद्गावनाश्रय ॥११
तत श्येनमुखभ्रष्टाद्दृष्टवाताविषाभुवि ।
गृपात्मजजनितामूर्च्छानिपातस्यमहात्मन. ॥१२
ततोमूर्च्छारसानेऽ्नन्योत्स्यानरोगत ।
ममाद्भ्रजग्राह्रिनामानेनचेतसा ॥१३

यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ।
तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥१४

प्रमति ने कहा—आपको कुछ काल के लिये वैश्य तो अवश्य होना पड़ेगा पर जब कोई क्षत्रिय राजकुमार आपकी कन्या को बल पूर्वक पत्नी बनायेगा तो आप इसी जन्म में पुनः क्षत्रिय हो जायेंगे। इस प्रकार घटनावश मेरे पिता को वैश्य होना पड़ा था। मैं भी ऐसी ही अन्य घटना वश वैश्य के घर उत्पन्न हुई थी। कुछ काल पूर्व गन्धमादन पर्वत के समीप सुरथ नाम के राजवन में रह कर तपस्या करते थे। एक दिन उन्होंने बाज के मुख पर पृथ्वी पर गिरी सारिका छटपटाते देखा तो वे दुःख के मारे मूर्छित हो गये। मूर्छा दूर होने पर मैं उन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुई। उन्होंने मुझे देख कर बड़ा स्नेह किया और कहा कि—इस कन्या का आविर्भाव मेरे कृपाभिभूत होने से हुआ है, इस कारण इसका नाम 'कृपावती' ही होगा ॥८-१४॥

ततोऽहमाश्रमे तस्यवर्धमानदिवानिशम् ।
सखीभिः सहतुल्याभिर्विचरामिवनानिच ॥१५
ततोमुनेरगस्त्यस्यभ्रातागस्त्यइतिश्रुतः ।
सचिन्वन्काननेवन्यसखीभिकोपितोऽशपत् ॥१६
यस्मान्मावैश्यइत्याहभवतीतेनतेशपे ।
वैश्याभविष्यसीत्युक्तेप्रसाद्योक्तोमयामुनिः ।
नापराधकृतवतीतवाहद्विजसत्तम ।
अन्यासामपराधेनकिमर्थंशप्तवानसि ॥१७
दुष्टादुष्टससर्गाद्दुष्टत्वमपिगच्छति ।
सुराविंदुनिपातेनपञ्चगव्यघटाययथा ॥१८
प्रणिपत्यह्यनिष्टापियत्त्वयाहप्रसादिता ।
तस्मादनुग्रहंबालेशृणुष्वचवचोऽमद्म् ॥१९
वैश्ययोनौयदाजातात्वपुत्रबोधयिष्यसि ।
राज्यायजातिस्मरतातदात्वंसमवाप्स्यसि ॥२०

ततोभूय क्षत्रजातिप्राप्स्यपतिनासह ।
दिव्यानवाप्स्यसेभागान्गच्छमीतिरपेतुते ॥२१
एवशप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वमहर्षिणा ।
पिताचमेपूर्वमेवशप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥२२
एववैश्योनराजस्त्वनचवैश्य पितामम ।
नत्वहिमयिससर्गादिदुष्टोदुष्यसेवयम् ॥२३

सुप्रभा ने कहा—' मैं उन्हीं राजर्षि के आश्रम म रह कर पलने लगी और बडी होने पर समान वय की सखियो के साथ विचरण करने लगी । वहाँ एक दिन अगस्त्य मुनि के भ्राता पुष्प बीन रहे थे । उन्हें देख कर मेरी सखियो ने उन्हें चिढाया, जिस पर कोधित होकर उन्होंने मुझे शाप दिया है कि "तुमने मुझको वैश्य कह कर चिढाया है, इस लिये तू वैश्य की ही कन्या हो जायगी । ' इस शाप को सुन कर व्यथित होकर मैंने कहा—" हे महामुने ! मैंने तो आपसे कुछ भी बुरा नही कहा, अन्य सखियो के दोष से कारण मुझे शाप क्यों देते हैं । " ऋषि ने कहा—जिस प्रकार पचगव्य से पूर्ण पवित्र घट मे एक बूँद सुरा के पड जाने से दूषित हो जाता है उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टो के सग मे रहने से दूपित हो जाता है । पर अब तेरी विनय सुन कर मैं तुझ पर यह अनुग्रह करता हूँ कि वैश्य वर्ण मे उत्पन्न होने के पश्चात् जब तू अपने पुत्र को राज्य ग्रहण करने का उपदेश देगी तो तुझे अपनी पूर्व जाति का स्मरण हो जायगा और पति के सग क्षत्रियत्व को प्राप्त कर के दिव्य भोगो की अधिकारिणी होगी । इसलिय अब तू भय त्याग कर अपने आश्रम मे निवास कर ॥१५।२१॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार ऋषि के शाप के कारण मैं वैश्य योनि को प्राप्त हुई थी और मेरे पिता भी महर्षि प्रमति के शाप वश वैश्य हो गये थे । वस्तुत आप व मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं और इस कारण मेरे साथ सम्पर्क होने से आपका वैश्य होना भी निराधार है । ॥१५-२३॥

१०३—भलन्दन वत्सप्रीति चरित्र

इतितस्यावचःश्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिव. ।
पुनःप्रोवाचधर्मज्ञस्तापत्नीतमयतथा ॥१
यन्मयापितुरादेशात्यक्तं राज्यनतत्पुनः ।
ग्रहीष्यामिवृथोक्तेनकिमात्मक्लिश्ययेत्वया ॥२
अहतेसम्प्रदास्यामिकरवैश्यव्रतेस्थित. ।
भुङ्क्ष्वराज्यनशेषत्वमिच्छयावापरित्यज ॥३
इत्युक्तःसतदापित्राराजपुत्रोभलन्दन ।
चकारराज्यधर्मेणतद्दारपरिग्रहम् ॥४
अव्याहततस्यचक्रंपृथिव्यामभवद्द्विज ।
नचाधर्ममनोभूपास्तस्यसर्वेऽभवन्वशे ॥५
तेनेष्टोविधिवद्यज्ञ सम्यक्पालितवसुन्धराम् ।
सएवंकोऽभवद्भर्त्तापृथिव्यामरिशासनः ॥६

पत्नी और पुत्र की बात सुन कर नाभाग ने उत्तर दिया कि चाहे जो कुछ हो, पर जिस राज्य को मैंने पिता की आज्ञानुसार एक बार त्याग दिया, तो अब उसे फिर ग्रहण करके अपनी पतिज्ञा को भंग नहीं कर सकता। अब तुम्हीं इस राज्य के अधिकारी बनो और चाहो तो दूसरे के लिये छोड़ दो, मैं तो वैश्य वृत्ति में रहकर राजा का कर देता रहूगा। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर भलन्दन राज्य शासन करने लगे और यथा समय विवाह करके गृहस्थ बने। राजा भलन्दन बड़े प्रतापी थे और उनका रथ पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करता था, वे कभी अधर्ममार्ग पर अग्रसर नहीं हुए, इसलिये सब राजा उनके अनुगामी बन गये। वे राज्य धर्मानुसार यज्ञानुष्ठान करते और प्रजा का पूर्ण कर्त्तव्य परायणता से पालन करते थे और उन्हें सर्वत्र एक अद्वितीय शासक माना गया ॥१–६॥

अजायतसुतस्तस्यवत्सप्रीतिस्तुनामतः ।
पितातिशयितोयेनगुणौघेनमहात्मना ॥७

तस्यापिभार्य्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनवीर्य्यतः ।
हत्वापुरन्दररिपु कुजृम्भदितिजेश्वरम् ॥८
भगवस्तेनसप्राप्ताकुजृम्भनिधनात्कथम् ॥
एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥९
विदूरथोनामनृप ख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ।
तस्यपुत्रद्वयजातसुनीति सुमतिस्तथा ॥१०
एकदातुवनयातोमृगयार्थसविदूरथ ।
ददर्शगर्तंसुमहद्भू मेर्मु खमिवोद्गतम् ॥११
तद्दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ।
पातालविवरमन्येनैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥१२
चिन्तयन्नितित नासौददर्शविजनेवने ।
ब्राह्मणसुव्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥१३

मार्कण्डेयजी कहने लगे—महाराज भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति हुए जिन्होंने अपने गुणों से पिता की कीर्ति को और भी बढ़ाया। वत्सप्रीति का विवाह विदूरथ की कन्या 'सौनन्दा' से हुआ था और उन्होंने इन्द्र के शत्रु 'कुजृम्भ' नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर क्रौष्टुकी ने पूछा—"भगवन्! वत्सप्रीति का आख्यान बतलाइये कि उसके किस प्रकार कुजृम्भ से सौनन्दा को छुड़ाया।" मार्कण्डेय जी ने कहा—विदूरथ एक बड़े प्रतापशाली और प्रसिद्ध नरेश थे। उनके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र थे। एक दिन राजा ने वन में शिकार के लिये भ्रमण करते हुए एक अथाह गढ़ा देखा। उन्होंने विचार किया कि यह कैसे उत्पन्न हो गया। सम्भवत यह पाताल लोक का मार्ग है। उसी समय वहाँ उनको सुव्रत नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण दिखाई दिये ॥७-१३॥

सतपप्रच्छचनृप किमेतदितिविस्मित ।
अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितातर्गतदरम् ॥१४

किन्नवेत्सिमहीपालवागर्थस्त्वहिमेमतः ।
ज्ञेयसर्वनरेन्द्रेणवर्ततेयन्महीतले ॥१५
दानवःसुमहावीर्य्योवसत्युग्रोरसातले ।
सजृम्भयतित्पुनीकुजृम्भःप्रोच्यतेततः ॥१६
क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्वलत्भूसमहीतले ।
त्रिदिवेवानरपर्पेतंकथवेत्सिनोभवान् ॥१७
सुनन्दंनाममुशलत्वष्टायन्निर्मितपुरा ।
तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरणेरिपून् ॥१८
पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्तिवसुधामिमाम् ।
ततोऽसुराणांसर्वेपाद्वाराणिकुरुतेऽसुरः ॥१९
तेनभिन्नान्वसुधासुनन्दमुशलेनतु ।
भोक्ष्यतेवसुधामेतातमजित्वकथभवान् ॥२०
यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रोदेवानामुपरोधक ।
आप्यायमतिदैतेयान्सवलीमुशलायुध. ॥२१

राजा ने उनको वह गढा दिखा कर पूछा कि यह क्या है ? तपस्वी ने कहा कि क्या आप इसे नहीं जानते ? राजा को तो ऐसी विशेष बातों का पता अवश्य रखना चाहिये । अब मैं आपको इसका सब वृतान्त बतलाता हू । रसातल मे एक बहुत बलवान् दैत्य रहता है । जिसको 'कुजृम्भ' कहते हैं, क्यों कि वह समस्त पृथ्वी को जभाई लिवाता है । पृथ्वी और स्वर्ग के प्राणीमात्र, जँभाई लेना उसी के कारण होता है । प्राचीन समय मे विश्वकर्मा ने 'सुनन्द नाम का जो 'मूसल' (अस्त्र) बनाया था यह दुष्ट राक्षस उसी को लेकर युद्ध मे शत्रुओ को मारता है और पृथ्वी को भेद कर रसातल का मार्ग भी बना देता है । जिससे अन्य दानव भीतर जा सकें । उस सुनन्द मूसल से ही उसने यह विवर बना दिया है । वह शक्तिशाली दैत्य उस 'मूसल' के द्वारा अजेय बन कर यज्ञ और देवताओ को नष्ट करता रहता है और दैत्यों की मनोवाञ्छा पूर्ण करता है ॥१४–२१॥

तस्यापिभार्य्यासीनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनशौर्य्यत. ।
हत्वापुरन्दररिपु कुजृम्भदितिजेश्वरम् ॥८
भगवस्तेनसप्राप्ताकुजृंभनिधनात्कथम् ॥
एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥९
विदूरथोनामनृपःख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ।
तस्यपुत्रद्वयंजातसुनीति सुमतिस्तथा ॥१०
एकदातुवनयातोमृगयांसविदूरथः ।
ददर्शगर्तसुमहद्भूमेमुंखमिवोद्गतम् ॥११
तद्दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ।
पातालविवरमन्येनैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥१२
चिन्तयन्निति नासौददर्श विजनेवने ।
ब्राह्मणंसुव्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥१३

मार्कण्डेयजी कहने लगे–महाराज भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति हुए जिन्होंने अपने गुणों से पिता की कीर्ति को और भी बढ़ाया। वत्सप्रीति का विवाह विदूरथ की कन्या 'सौनका' से हुआ था और उन्होंने इन्द्र के शत्रु 'कुजृम्भ' नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर कौष्टुकी ने

तमन्त्र क्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता ।
तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमृदावती ॥३०
तत कतिपयाहेतुताकन्यावयसा वताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्य कुजृम्भ मसखीवृताम् ॥३१
तच्छ्रुत्वासमहीपाल क्रोधपर्याकुलेक्षणा ।
पुत्रावुयाचत्वरितगच्छतवनकोविदौ ॥३२
निर्विन्ध्यायास्तटेगतस्तेनगत्वारसातलम् ।
सहन्यतायोऽपहर्तामुदावत्या सुदुर्मति ॥३३
ततस्तौतत्सुतौप्राप्यतगर्त्त तत्पदानुगौ ।
युयुधातकुजृम्भेणस्त्रसैन्येनातिकापितौ ॥३४
तत परिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैं ।
वाणैश्चाविरतयुद्ध तेषामासीत्सुदारुणम् ॥३५
ततामायाबलवतातेनदैत्येनतावुभौ ।
राजपुत्रौरणेबद्धौनिहताशेषसैनिकौ ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगर मे वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियो से इस विषय म सलाह करने लगे । उन्होने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियो को बतलाई । उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वही पर बैठी सब बातें सुन रही थी । इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियो के साथ उपवन मे गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड कर ले गया । जब यह खबर राजा को मिली तो वे बडे क्रोधित हुए और अपने दोनो पुत्रो को बुला कर कहा कि तुम दोनो वन प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्ध्या नदी के तटवर्ती पाताल विवर म होकर कुजृम्भ दानव को मारो क्योकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है । राजा के आदेशानुसार दानो राजपुत्र उस विवर पर पहुँचे और वहाँ दानव के पैरो के चिह्न देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये । तब राजपुत्रो की सेना का दानव की सना के साथ घोर

तमन्त्रं क्रियमाणन्तु मन्त्रिभिस्तेन भूभृता ।
तत्पार्श्ववर्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती ॥३०
तत कतिपयाहेतु ता कन्यां वयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्य:कुजृम्भ ससखीवृताम् ॥३१
तच्छ्रुत्वा स महीपाल क्रोधपर्य्याकुलेक्षणा ।
पुत्रावुयाचत्वरितगच्छतवनकोविदौ ॥३२
निर्विन्ध्यायास्तटेगर्त्तंस्तेनगत्वारसातलम् ।
सहन्यतायोऽपहर्तामुदावत्या सुदुर्मति ॥३३
ततस्तौ तत्सुतौ प्राप्य तं गर्त्तं तत्पदानुगौ ।
युयुधाते कुजृम्भेण स्वसैन्येनातिकोपितौ ॥३४
तत परिघनिर्स्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः ।
वाणैश्चाविरतयुद्ध तेषामासीत्सुदारुणम् ॥३५
ततो मायाबलवता तेन दैत्येन तावुभौ ।
राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगर में वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियो से इस विषय में सलाह करने लगे। उन्होंने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियो को बतलाई। उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वहीं पर बैठी सब बातें सुन रही थी। इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियो के साथ उपवन में गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड कर ले गया। जब यह खबर राजा को मिली तो वे बड़े क्रोधित हुए और अपने दोनो पुत्रों को बुला कर कहा कि तुम दोनो वन-प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्ध्या नदी के तटवर्ती पाताल विवर में होकर कुजृम्भ दानव को मारो, क्योंकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है। राजा के आदेशानुसार दोनो राजपुत्र उस विवर पर पहुँचे और वहाँ दानव के पैरो के चिन्ह देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये। तब राजपुत्रों की सेना का दानव की सेना के साथ घोर

स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयद्यं वकुरुतेविधिम् ।
यस्तैतक्रियताभाशुयद्यु त्साहिमनस्तव ॥४४
तत सखङ्ग सधनुर्वद्धगोधाङ्ग लित्राणवान् ।
जगामवीर.पातालतेनगर्तेनसत्वर: ॥४५
ततोज्यास्वनमत्युग्र सचक्रे पार्थिवात्मज: ।
येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६
ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वर: ।
आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारित: ॥४७
ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ।
ससैन्यस्यमसैन्येनवलिनोवलशालिन ॥४८
दिनानित्रीणिसयदायोधियस्तेनदानव ।
तत कोपपरीतात्मामुमलाम्यधावन ॥४९

महाराज विदूरथ ने मित्रपुत्र वत्सप्री का हार्दिक स्वागत करते हुए-- "हे वत्स ! यदि तुम इस कार्य को कर सकोगे तो मैं तुम्हारा मित्र पुत्र होना सार्थक समझूंगा । अतएव यदि तुम्हारे मन में इसके लिये पूर्ण उत्साह हो तो नोघ्रातिशीघ्र इसे पूरा करने का प्रयत्न करो । तदनन्तर महावीर वत्सप्री खड्ग, धनुष, गोधा और अ गुलीत्राण धारण करके शीघ्रतापूर्वक उस विविर मे घुस और वहाँ पहुंच कर अपने शक्तिशाली धनुष की प्रत्यचा की टकार भरी जिमसे वह समस्त विवर महाशब्द से परिपूर्ण हो गया । उस टकार के घोर रव को सुन कर दानव श्रेष्ठ कुजम्भ क्रोध से भर गया और अपनी सेना को लेकर लडने के लिये तैयार हो गया । राज कुमार वत्सप्री और कुजम्भ का युद्ध तीन दिन तक होता रहा, पर तब भी वह वत्सप्री को जीत न सका । तब वह मूसल को लेने के लिए अपने महल मे गया ॥४३-४९॥

गन्धैर्माल्यैस्तथाधूपै:पूज्मान मतिष्ठति ।
अन्त पुरेमहाभागप्रजापतिविनिर्मित: ॥५०
ततोविज्ञानमुसलप्रभावामामुदावती ।
पस्पर्शमुसलश्रेष्ठम तनश्रगिरोधरा ॥५१

पुनर्यावत्सगृह्णातिमुशलतमहासुर ।
तावत्सावन्दनव्याजात्पस्पर्शानेकदा शुभा ॥५२
तत समत्वायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ।
व्यर्थामुशलपातास्तेसजग्मुस्तेपुशत्रुपु ॥५३
परमास्त्र तुनिर्वीर्येसौनन्देमुशलेमुने ।
अस्त्र .शस्त्र अदं सेय सोयुध्यतरणेऽरिणा ॥५४
शस्त्रास्त्र नसमस्तस्यराजपुत्रस्यसोऽसुर ।
मुशलेनवलन्तस्यलञ्चतन्व्यानिराकृतम् ॥५५

राजाविदूरथ की कन्या मुदावती जो दानव के महल मे कैद थी इस मूसल के विषय म सब रहस्य अपने पिता से सुन चुकी थी। इसलिये, उसने उस मूसल को प्रणाम करके उसे छू लिया। जब कुजृम्भ उस मूसल को ले जाने लगा तब तक मुदावती ने पूजा के बहाने उसे बार-बार छुआ जब दानव-पति उस मूसल को लेकर युद्ध क्षेत्र मे लडने लगा तो उसका प्रहार बार-बार असफल होने लगा, क्योंकि उसकी शक्ति स्त्री के स्पर्श के कारण नष्ट हो चुकी थी। यह देख कर दानव अस्त्र शस्त्र द्वारा युद्ध करने लगा। पर अस्त्र युद्ध मे वत्सश्री दानव की अपेक्षा अधिक निपुण था। उसको जिस मूसल का भरोसा था वह अब चतुराई से व्यर्थ कर दिया गया था ॥५०—५५॥

तत पराजित्यसभूपसूनु रस्त्राणिशस्त्राणिचदानवस्य ।
चकारसद्योविरथततश्चमचर्मखड्ग पुनरप्यधावत् ॥५६
तमापतन्तरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोपनिदर्शेन्द्रशत्रुम् ।
शस्त्रेणवह्नेर्भुविराजपुत्राजघानकालानलसप्रभेण ॥५७
सपावकास्त्रेणदृढक्षतोभृशतत्याजदेहंत्रिदशारिरात्मन ।
बभूवमहाश्चमहोरगाणारसातलान्तपुमहानथोत्सव ॥५८
ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतापरि ।
जगुर्गन्धर्वपतयादेववाद्यानिसस्वनु ॥५९
सचापिराजपुत्रस्तहत्वातौनृपतेसुतौ ।
मोचयामास त्रिदशोनाश्च कन्यामुदावतीम् ॥६०

तत्रापिमुशलतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ।
जग्राहनागाधिपतिरनन्त शेषमञ्जिन ॥६१
तस्याश्चपरितुष्टोऽसौशेप सर्वोरगेश्वर ।
मुदावत्यामुदाख्यातमनोवृत्तिस्तपोधन ॥६२
सुनन्दमुशलस्पर्शयच्चकारपुन पुन ।
यावित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञानिशोभना ॥६३
मुदावत्यास्ततोनामनागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामितिमानन्द सौनन्दगुणजद्विज ॥६४

जब वत्सप्री ने दानवराज के सब अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करके उसके रथ को भी नष्ट कर दिया तो वह तलवार, ढाल लेकर वत्सप्री से युद्ध करने के लिये बड़े वेग से दौड़ा। पर वत्सप्री ने उसे बीच में ही कालाग्नि के समान सुप्रकाशित आग्नेयास्त्र से मार दिया ॥५६–५७॥ यह कुजृम्भ देवताओं तथा पातालवासी नागों के लिये बड़ा कष्टकारक थी, इससे उसके मरते ही नागगण महान् उत्सव करने लगे। इस समय चारों ओर से राजपुत्र वत्सप्री पर पुष्पवर्षा होने लगी, गन्धर्व गायन करने लगे और देवगण तरह तरह के वाद्य बजाने लगे। वत्सप्री ने दानव की कैद से राजा विदूरथ के दोनों पुत्र सुनीति तथा सुमति और कन्या मुदावती को छुड़ाया। कुजृम्भ का अन्त हो जाने पर उसके मूसल नागराज अनन्त ने ग्रहण किया और वे राजकन्या मुदावती की चतुराई को जान कर बड़े प्रसन्न हुए। उसी मूसल को बार-बार छूकर उसकी शक्ति को मिटा दिया था और इस प्रकार कुजृम्भ का नाश कराया था। उस मूसल का नाम सौनन्द होने से नागराज ने मुदावती का नाम 'सुनन्दा' रख दिया ॥५८–६४॥

सचापिराजपुत्रस्ताभ्रातृभ्यासहितापितु ।
समीपमानिनायाशुप्रणिपत्याहचेदतम् ॥६५
आनीतौतनयौतातत्वयैवेयमुदावती ।
तवाज्ञयाभयान्यद्यत्कर्तव्यतत्समादिश ॥६६

ततःप्रहर्षसंपूर्णहृदयः समहीपतिः ।
साधुसाध्वित्ययाहोच्चैर्वत्सवत्सेतिशोभनम् ॥६७
सभाजितोऽस्मित्रिदशैर्वत्साहकारणैस्त्रिभिः ।
त्वजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातितः ।
आगताः क्षतास्त्यश्चद्वावपत्यानिमेद्रुनः ।
तद्गृहाणाद्यशस्तेऽह्निपाणिमस्यामयोदितम् ॥६९
त्वराजपुत्रचार्वङ्ग्या कन्यायादुहितुर्मम ।
मुदावत्यामुदायुक्तःसत्यवाक्यकुरुष्वमाम् ॥७०

तत्पश्चात् राजकुमार वत्सप्री ने दोनों राजकुमारों तथा कन्या को अपने साथ लाकर राजा विदूरथ की सेवा में उपस्थित किया और उनको प्रणाम करके निवेदन किया—"महाराज, आपकी आज्ञानुसार आपके दोनों पुत्रों तथा कन्या मुदावती को कुजृम्भ को मार कर छुड़ा लाया हूँ। अब जो अन्य कोई कार्य हो तो वैसी आज्ञा दें ॥६५–६६॥ यह सुन कर राजा बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए और बारम्बार वत्सप्री की सराहना करके उसे धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा—आज मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता का दिन है क्योंकि तीन कारणों से मैं देवताओं द्वारा भी प्रशंसा का अधिकारी बन गया हूँ। प्रथम तो तुम को जमाता के रूप में प्राप्त किया, दूसरे ऐसा दुर्धर्ष शत्रु मारा गया और तीसरे मेरे पुत्र और कन्या सकुशल मुझे प्राप्त हो गये। इसलिये अब मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी कन्या को तुम्हें देता हूँ। तुम उसका पाणिग्रहण करो ॥६७–७०॥

तातस्याज्ञामयाकार्यायद्ब्रवीषिकरोमितत् ।
त्वमेवतातजानीषेनैवाधाधिकृतावयम् ॥७१
ततस्तयो नराजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकक्रमम् ।
मुदावत्याश्चदुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै ॥७२
तत सहतयारेमेवत्सप्रीर्नवयौवन ।
रम्याणीयुदेशेपुप्रासादशिखरेषुच ॥७३
कालेनगच्छतावृद्ध पितातस्यभलन्दनः ।
मन जगामवनवत्सप्री सच्चभूवमहीपतिः ॥७४

इयाजयक्षान्सततंप्रजाधर्मेणपालयन् ।
पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ॥७५
ववृधुर्विपर्येतस्यनचाभूद्वर्णसङ्कर ।
नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीन्नकस्यचित् ।
नोपसर्गभयञ्चैवतस्मिञ्छासतिभूपतौ ॥७६

राजपुत्र वत्सप्री ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आप जानते ही है कि मैं गुरुजनो की आज्ञा पालन को सदैव तत्पर रहा हू। तब राजा विदूरथ ने वत्सप्री तथा मुदावती का विवाह संस्कार बडी धूमधाम से सम्पन्न किया। ये दोनो नवयुवा पति-पत्नी रमणीय स्थानों और महलो मे प्रेमपूर्वक विहार करने लगे। कुछ समय पश्चात् वत्सप्री के पिता भलन्दन अधिक वृद्ध हो जाने से पुत्र को राज्य देकर वन को चले गये। वत्सप्री ने राज्य का सचालन और प्रजा का पालन बडी योग्यता से किया जिससे समस्त प्रजाजन निरन्तर समृद्धिशाली और सुखी होने लगे। उनके राज्य मे कोई वर्णसकर नही होते थे और हिसक जन्तु, दुष्ट लोगो, ठग, धूर्त आदि का भय जाता रहा ॥७१-७६॥

१०४—खनित्र चरित्र (१)

तस्यतस्यासुनन्दायापुत्राद्वादशजज्ञिरे ।
प्राशु प्रवीर शूरश्चसुचक्रोविक्रम क्रम ॥१
वलीबलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रम ।
सुनयश्चमहाभागा सर्वेसग्रामजित्तमा ॥२
तेपाञ्ज्येष्ठोमहावीर्य्य प्राशुरासीन्नराधिप ।
इतरेभृत्यवत्तस्यबभूवुर्वशवर्त्तिन ॥३
तस्ययज्ञद्विजत्यक्तै रनेकैर्द्रव्यराशिभि ।
न्यूनवर्णविसृष्टैश्चमत्यनामावसुन्वरा ॥४

सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजा पुत्रानिवौरसान् ।
योऽभूद्धनचय कोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥५
क्रतव शतसहस्रास्तेतेषासख्यानविद्यते ।
अयुताद्यै नकोटीभिर्नचपद्मादिभिर्मुने ॥६

मार्कण्डेय जी ने कहा—सूर्यवंशोत्पन्न महाराज वत्सप्री के बारह पुत्र हुए थे, जिनके नाम प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और सुनय हुए, यह सब अत्यन्त भाग्यशाली और युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१-२॥ उनमें सबसे प्रांशु राजा हुए और अन्य ग्यारह भाई उनके अधीन भृत्य के समान रहने लगे ॥३॥ उनके यज्ञ करने के समय में ब्राह्मणों तथा अन्य जाति के मनुष्यों ने भी धन का त्याग किया था, इसीलिये पृथिवी का नाम वसुन्धरा पड़ा ॥४॥ उन्होंने अपने पुत्र के समान ही प्रजा का पालन किया तथा उनके राज-कोष में जो धन एकत्र होता था, उसी धन के द्वारा सभी असंख्य यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हुए थे। उन यज्ञों की प्रयुत, करोड़ अथवा पद्म आदि संख्या में गणना सम्भव नहीं है ॥५-६॥

प्रजातिस्तस्यपुत्रोऽभूद्यस्ययज्ञेशतक्रतु ।
अवाप्यतृप्तिमतुलायज्ञभागै सुरै सह ॥७
दानवानासुवीर्य्याणाजघाननवतीर्नव ।
बलचबलिनाश्रेष्ठोजम्भचासुरसत्तमम् ॥८
अन्याश्चसुमहावीर्य्यानाजघानामरद्विप ।
प्रजातेस्तनया पचखनित्रप्रमुखामुने ॥९
तेषाखनित्रोराजाभूत्प्रख्यातोनिजविक्रमै ।
सशान्त सत्यवाक्छूर सर्वप्राणिहितेरतः ॥१०
स्वधर्माभिरतोनित्य वृद्धसेवीबहुश्रुतः ।
वाग्मीविनयसपन्न कृतास्त्रोऽप्यविकत्थन ॥११
सर्वलोकप्रियोनित्यमुवाचैतदहर्निशम् ।
नन्दन्तुसर्वभूतानिस्निह्यन्तुविजनेष्वपि ॥१२

स्वस्त्यस्तुसर्वभूतेपुनिरातङ्कानिसन्तुच ।
माव्याधिरस्तुभूतानामाथयोनभवन्तुच ॥१३

उन राजा प्राशु के प्रजानि नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उनके यज्ञ मे देवताओं के सहित इन्द्र यज्ञ भाग प्राप्त कर तृप्त हुए थे और उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी बल और जम्भ नामक दैत्यों तथा अन्य देव-शत्रु असुरों का वध किया था, उस राजा प्रजाति के खनित्र इत्यादि नाम वाले पाँच पुत्र हुए थे ॥७-६॥ उन पाचों मे खनित्र ही अपने बल, वीर्य से प्रसिद्ध राजा हुए, यह शान्त सत्य-वक्ता, वीर, सब जीवो का हित चिन्तन करने वाले ॥१०॥ अपने धर्म मे परायण, वृद्धजनो की सेवा करने वाले, अनेक शास्त्रों के देखने वाले, वाग्मी, अस्त्र शस्त्र के ज्ञाता, विनयशील, अहङ्कार हीन ॥११॥ तथा सर्व लोकप्रिय थे, यह सदैव कहते रहते—सभी जीव आनन्दित रहें, विजन स्थान मे स्नेह युक्त हों, सभी जीवो का कल्याण हो, सब निर्भय हो, सब की पीडा नष्ट हो और मनोव्यथा किसी को भी न हो ॥१२-१३॥

मैत्रीमशेपभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ।
शिवमस्तुद्विजातीनाप्रीतिरस्तुपरस्परम् ॥१४
समृद्धि सर्ववर्णानासिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ।
भोलोका सर्वभूतेपुशिवावोऽस्तुसदामति ॥१५
यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वदा ।
तथासमस्तभूतेपुवर्त्तध्वहितवुद्धय ॥१६
एतद्वोहितमत्यन्तकोवाकस्यापराध्यते ।
यत्करोत्यहितंकिचित्कस्यचिन्मूढमानस ॥१७
तसमन्येतितन्यूनकर्तृ गामिफलयत ।
इतिमत्वासमस्तेपुभोलोकाहितवुद्धय ॥१८
सन्तुमालौकिकपापलोका प्राप्स्यथ-वैवुधा ।
योमऽद्यस्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदाभुवि ॥१९

सभी प्राणी सबसे मित्रता प्रकट करे, ब्राह्मणो का कल्याण, पारस्परिक स्नेह ॥१४॥ सभी वर्णों की समृद्धि और सभी कर्मों की

हे मनुष्यो ! तुम्हारी मङ्गलमयी बुद्धि सदैव सब प्राणियों के हित में लगी रहे ॥१५॥ जैसे तुम अपनी और अपने पुत्र की शुभ कामना सदा किया करते हो, वैसे ही समस्त प्राणियों के हित की कामना करो ॥१६॥ इसी में तुम्हारा अत्यन्त हित निहित है, कौन किसके प्रति अपराधी है ? जो मन्द बुद्धि मनुष्य किसी का अहित करता है ॥१७॥ उससे उसी का अहित होता है क्योंकि कर्म के फल का भोगने वाला कर्मकर्त्ता ही है, ऐसा विचार करके सभी प्राणियों के हित में अपनी बुद्धि को रखो ॥१८॥ हे ज्ञानियो ! लौकिक पाप में प्रवृत्त मत होना, इसीसे तुम्हें पुण्यलोक प्राप्त हो सकते हैं, मुझमें स्नेह रखने वाले मनुष्य का भूमण्डल में सर्वत्र ही कल्याण हो और जो मेरे प्रति द्वेष करे, उसका भी कल्याण हो ॥१९॥

यश्चमाद्वेष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ।
एवंस्वरूप पुत्रोऽभूत्खनित्रस्तस्यभूपते ॥२०
समस्तगुणसम्पन्न श्रीमानब्जदलेक्षण ।
तेनतेभ्रातर प्रीत्यापृथग्राज्येपुयोजिता ॥२१
स्वयचपृथिवीमेतावभुजेसागराम्बराम् ।
प्राच्यातेनकृत शौरिदक्षिणस्यामुदावसु ॥२२
दिशिप्रतीच्यामुनयउत्तरस्यामहारथा ।
तेपातस्यचभूपस्यपृथग्गोत्रा पुरोहिता ॥२३
बभूवुर्नयश्च वमन्त्रिवंशक्रमागता ।
शौरेरत्रिकुलोद्भूत सुहोत्रानामबेद्विज ॥२४
उदावसो कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत् ।
काश्यप प्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहित ॥२५
महारथस्यवासिष्ट पुरोधाऽभून्महीभृत ।
बुभुजुस्तेन्द्रराज्यानिचत्वारोऽपिनराधिपाः ॥२६
खनित्रश्चाधिपस्तेपामशेषवसुधाधिप ।
तेपुभ्रातृष्वशेषेपुखनित्र ममतोमति ॥२७

प्रजासुचसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहित ।
एकदामन्त्रिणाशौरि सप्रोक्तो विश्ववेदिना ॥२८

वे राजपुत्र खनित्र इस प्रकार की कामना वाले थे, उन्होंने अपने सब भाइयों को पृथक् पृथक् राज्य देकर ॥२०-२१॥ स्वय भी समुद्र तक इस पृथिवी का पालन करते रहे, शौरि को पूर्व प्रदेश मे, उदावसु को दक्षिण मे ॥२२॥ सुनय को पश्चिम मे और महारथ को उत्तर प्रदेश मे बसाया और पृथक् राजा के पृथक् गोत्र के पुरोहित हुए ॥२३॥ खनित्र और उनके भाइयों के मन्त्रिवश के क्रम से उपलब्ध पृथक् गोत्र वाले जो पुरोहित थे, उसी के अनुसार शौरि के अत्रि वशोत्पन्न सुहोत्र ऋषि, उदावसु के गौतम वशोत्पन्न कुशावर्त्त, सुनय के कश्यप गोत्रीय प्रमति तथा महारथ के वसिष्ठजी पुरोहित थे, इस प्रकार चारो भाई राजा होकर राज्य करते थे ।।२४-२६॥ सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी खनित्र उनके अधीश्वर हुए, राजा खनित्र सभी भाइयो और प्रजा के प्रति पुत्र के समान व्यवहार करते थे, एक दिन राजा शौरि से उनके मन्त्री विश्ववेदी ने कहा ॥२७-२८॥

विवित्तं पृथिवीपालकिंचिद्वक्तव्यमस्तिन ।
यस्येयपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥२९
सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्तत ।
इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपा ॥३०
तत्पुनाश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पका ।
कालेनह्रासमासाद्यपुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१
कृष्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ।
नोद्धारकुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहवलार्पण ॥३२
स्नेह व पृथिवीपालपरयोर्भ्रातृपुत्रयो ।
तत्पुत्रयो परतरामतिर्भवतिपार्थिव ॥३३
तत्पुन केनेकार्य्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ।
अथवायेनतेनैवसतोपकुरुतेनृप ॥३४

क्रियतेतत्किमर्थन्तुभूपैर्मंत्रिपरिग्रहः ।
भुज्यतेसकलराज्यमयातेमन्त्रिणासता ॥३५

हे राजन् ! मुझे इस एकान्त के समय में कुछ निवेदन करना है, यह सब पृथिवी और राजागण जिनके अधीन हैं ॥२६॥ वह तथा उन्हीं के वंशधर राजा होते हैं, उनके अन्य भाई पहिले थोडे से राज्य के अधिकारी होते हैं ।३०। फिर उनके पुत्र उनसे भी थोडे और पौत्र तो पुत्रों की अपेक्षा भी अल्पल्प राज्य के अधिकारी होते हैं, समय पाकर क्रमान्तर से पीढी प्रति पीढी राज्य के घटते-घटते अन्त मे ॥३१॥ उस वश के लोग कृषि कर्म से जीविका चलाते हैं, हे राजन् ! भाई के स्नेह मे बँधा हुआ भाई कभी भी अपने भाई का उद्धार नहीं करता ॥३२॥ फिर दोनो भाइयो की सन्तान भी एक दूसरे को पराया ही मानने लगती है, उनके भी जब सन्तान होती हैं, तो वे और भी दूर होती जाती हैं ॥३३॥ उनके मन मे अपनी सन्तति के सुख की ही चिन्ता रहती है, यदि राजागण सतोष का ही अवलम्बन करें ॥३४॥ तो मन्त्रियो की नियुक्ति क्यो करे ? मेरे जैसे मन्त्री के होते हुए आप सम्पूर्ण राज्य का सुख भोग सकते हैं ॥३५॥

तत्किमृधाधारयसेसतोषकुरुतेयदि ।
कार्यनिष्पादकराज्यकरणकर्तु रिष्यते ॥३६
राज्यलब्धुश्चतेकार्यत्वकर्त्ताकरणवयम् ।
सोऽस्माभि करणंराज्यपितृपैतामहकुरु ।
फलप्रदाभविष्याम.परलोकेनसेवयम् ॥३७
ज्येष्ठोभ्रातामहीपालोवयंतस्यानुजायतः ।
तत सभुं क्ते पृथिवीवयचाल्पवसु धराम् ॥३८
वयन्तुभ्रातर.पचपृथ्वीवैकामहामते ।
अतोऽस्या पृथगैश्वर्यंकथकृत्स्नभविष्यति ॥३९
एवमेतद्भवत्वत्रयद्यकावसुधानृप ।
तांत्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठ शास्तुयथाभवान् ॥४०

सर्वाधिपत्यसर्वेभ्योभवत्वमखिलेश्वर ।
यतन्तेचयथाहतेनेपामपिहिमन्त्रिण ॥४१

मैं चेष्टा करने को प्रस्तुत हू तो आप सतोष को व्यर्थ ही क्यो धारण किये हुए हैं ? राज्य को निष्पादन कर देना मन्त्री का कर्तव्य है ॥३६॥ परन्तु उस राज्य प्राप्ति के कार्य म मैं कारण हूंगा और आप कर्ता होंगे, इसलिये कारण के द्वारा अपने पैतृक राज्य पर अधिकार करिये, हम तो इसी लोक मे आपके लिय फल देने वाले हैं, परलोक मे नहीं । ३७॥ राजा बोले—पृथिवी का पालन करने वाले राजा हमारे बडे भाई हैं, इसीलिये वे समस्त पृथिवी का राज्य करते हैं और हम थोडी पृथिवी को भोगते हैं ॥३८॥ हम पाँच भाई हैं और पृथिवी एक ही है इसलिए पृथिवी के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को हम सब पृथक् रूप से किस प्रकार भोग सकते हैं ? ॥३९॥ इस पर विश्ववेदी ने कहा—हे राजन् ! आपका वचन सत्य है परन्तु यदि पृथिवी एक ही है तो इस पर आप ही अधिकार करिये और सबके अधीश्वर होकर इस पृथिवी को भोगिये ॥४०॥ सम्पूर्ण आधिपत्य को प्राप्त होकर सब भाइयो म आप ही सबके स्वामी बनिये, मेरे द्वारा नियुक्त अन्य मन्त्रिगण भी ऐसी ही चेष्टा कर रहे हैं ॥४१॥

ज्येष्ठोराजायथाप्रीत्याभजतेऽस्मान्सुतानिव ।
कथ तस्यकरिष्यामिममत्वजगतीगतम् ॥४२
राज्येस्थित पूजयेथाज्येष्ठ भूपार्हणैर्धनै ।
कनिष्ठज्येष्ठताकेयराज्यप्रार्थयतानृणाम् ॥४३
तथेतिचप्रतिज्ञातेभूभुजातनसत्तम ।
विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातृननयद्वशम् ॥४४
तेषापुरोहिताश्चैवम्रात्मन शान्तिकादिषु ।
नियोजयामासतत खनित्रस्याभिचारके ॥४५
विभेदतस्यनिभृतान्सामदानादिभिस्तथा ।
चक्रेचपरमोद्योगनिजदडप्रभावने ॥४६

राजा बोले—बडे भाई पुत्र के समान सबका परिपालन कर रहे हैं, फिर उनके राज्याधिकार म मुझे ममत्व क्यो करना चाहिये ? ॥४२॥ विश्ववेदी

ने कहा—फिर तो आप राज्याधिकार पूर्वक विभिन्न प्रकार के सत्कारों द्वारा उनका पूजन करिये, वैसे राज्य की कामना वाले पुरुष के लिए छोटे बड़े का विचार करना व्यर्थ ही है ।।४३।। मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा द्वारा विश्व वेदी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर विश्ववेदी ने उनके अन्य भाइयों को अपने वश में किया ।।४४।। तथा उनके पुरोहितों को अपने लिये शान्ति कर्म और खनित्र के प्रति आभिचारिक कर्म करने के लिये नियुक्त किया ।।४५।। तथा खनित्र के विश्वासपात्र भृत्यों को भी सामदानादि की नीति से अपने वश में करने का यत्न करने लगा ।।४६।।

आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिकुर्वताम् ।
पुरेऽधसाचतुर्णाचजज्ञेकृत्याचतुष्टयम् ।।४७
विकरालमहावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ।
समुद्यतमहाशूलप्रभूतमतिदारुणम् ।।४८
तयस्तदागतन्तत्रखनित्रोयत्रपार्थिवः ।
निरस्तचाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनतत् ।।४६
कृत्याचतुष्टयन्तपुनिपपातदुरात्मसु ।
पुरोहितेपुभूपानातथागेविश्ववेदिनि ।।५०
ततानिहन्त्यानिदग्धा कृत्ययातेपुरोहिता ।
विश्ववेदीतयामन्त्रीसत्तोरेदुं ष्टमन्त्रद ।।५१

जब पुरोहितों ने अत्यन्त उग्र अभिचार कर्म किया, तब चार कृत्यायें उत्पन्न होगई ।।४७।। वह सभी विकराल शरीर वाली अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थी, उनके हाथों में महाशूल स्थित थे और वे अत्यन्त विशाल तथा दारुण थी ।।४८।। इसके पश्चात् वे चारों कृत्यायें राजा खनित्र के पास पहुँची, परन्तु पाप-रहित राजा के पुण्य प्रभाव से तेजहीन होकर ।।४६।। उन दुरात्मा पुरोहितों और विश्ववेदी के पास ही लौटकर आगई ।।५०।। देने वाला वह दुष्ट मन्त्री विश्ववेदी, यह सभी उन लौटी कृत्याओं के द्वारा मारे जाकर भस्मीभूत होगये ।।५१।।

१०५—खनित्र चरित्र (२)

ततः समस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् ।
यदेककालने शुम्ते पृथक्पुरनिवासिनः ॥१
तत शुश्राव निधनयातान्भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणश्च तथा भ्रातुर्दग्धलविश्वेदिनम् ॥२
किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम ।
खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात्तच्च कारणम् ॥३
ततो वसिष्ठं पप्रच्छ स राजा गृहमागतम् ।
यत्कारणं विनेशुस्ते भ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥४
तेन पृष्टस्तदा प्राह यथावृत्तं महामुनिः ।
यच्छौरिमन्त्रिणा प्रोक्तं यच्च शौरिरुवाच तम् ॥५
यथा चानुष्ठितं तेन भ्रातृणां भेदकारिणे ।
मन्त्रिणा तेन दुष्टेन यच्च चक्रुः पुरोहिताः ॥६
यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयावतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस समय सभी को यह विस्मय हुआ कि यह पृथक् पृथक् नगर में निवास करने वाले होकर भी एक ही समय में किस प्रकार नष्ट होगये ? ॥१॥ हे मुनिवर ! तदुपरान्त राजा खनित्र ने अपने भाई के पुरोहित और मन्त्री विश्ववेदी का मृत्यु समाचार सुना तो ॥२॥ इसका कारण न समझ कर 'ऐसा क्यों हुआ' इस प्रकार विस्मय युक्त विचार करने लगे ॥३॥ फिर जब वसिष्ठजी घर पर आये तब उनसे राजा ने अपने भाई के मन्त्री और पुरोहितों के इस प्रकार मरने का कारण पूछा ॥४॥ महामुनि वसिष्ठ से पूछने पर उन्होंने शौरि और उनके मन्त्री के मध्य जो वार्ता हुई थी ॥५॥ तथा उस दुष्ट मन्त्री ने भाइयों में फूट डालने के लिए जो कार्य किये थे और पुरोहितों ने जिस कर्म का अनुष्ठान किया था ॥६॥ तथा शत्रुओं पर भी दया करने वाले

वह पुरोहित निरपराध के अपकार में तत्पर होकर स्वयं ही नाश को प्राप्त होगये थे, वह सब वृत्तान्त आद्योपान्त राजा खनित्र को सुना दिया ।।७।।

सतचश्रुत्वाततोराजाहाहतोऽस्मीतिवैवदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थंवसिष्ठस्याग्रतोद्विज ।।८
धिङ्मामपुण्यसस्यानमल्पभाग्यमशोभनम् ।
दैवदोपकृतपापसर्वलोकविगर्हितम् ।।९
मन्निमित्तविनष्ट तत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।
मत्त कोऽन्य पापतरोभविष्यतिपुमान्भुवि ।।१०
नाभविष्यदिपुमानहमत्रमहीतले ।
ततस्तेनविनश्येयुर्ममभ्रातृपुरोहिता ।।११
धिग्राज्यधिक्चमेजन्मभूभुजामहताकुले ।
कारणत्वगतोयोऽहविनाशस्यद्विजन्मनाम् ।
कुर्वन्त स्वामिनातेऽथभ्रातृणाममयाजका ।
नाशमयुर्नदुष्टास्तेदुष्टोऽहनाशकारणे ।।१३
किंकरोमिक्वगच्छामिनान्योमत्तोहिपापकृत् ।
पृथिव्यामस्तिहेतुत्वद्विजनाशस्ययोगत ।।१४

यह वृत्तान्त सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित होकर वसिष्ठजी के समक्ष ही अपने को धिक्कारने लगे ।।८।। राजा ने कहा—मैं कितना मंद भाग्य असंचित पुण्य वाला तथा शोभा रहित हूँ कि दैव भी मेरे अनुकूल नही है, मैं लोक में निन्दा का पात्र और पापी हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है ।।९।। क्योंकि मेरे ही कारण चार ब्राह्मणों की मृत्यु हुई है, इसलिये इस पृथिवी पर मुझसे बढ़कर अन्य कौन पापी हो सकता है ? ।।१०।। यदि मैं इस पृथिवी पर पुरुष के शरीर में उत्पन्न न हुआ होता तो मेरे भाइयों के पुरोहित नाश को प्राप्त न हुए होते ।।११।। उन ब्राह्मणों के नाश का कारण मैं ही हूँ इसलिये मेरे इस राज्य को और महान् राज-वंश में जन्म लेने को धिक्कार है ।।१२।। मेरे भाइयों की प्रयोजन सिद्धि के लिये कर्म करके जो याजकगण नाश को प्राप्त हुए हैं, उनमें वे स्वयं दोषी नहीं थे, उनके नष्ट होने का कारण मैं ही था, इसलिये

दोषी भी मैं ही हुआ ॥१३॥ अब मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे कहाँ जाना चाहिये? ब्रह्महत्या का कारण होने से मेरे समान पापी इस भूमण्डल पर अन्य कोई नहीं है ॥१४॥

इत्थमुद्विग्नहृदय खनिन पृथिवीपति ।
वनयियासु पुत्रस्यकृतवानभिषेचनम् ॥१५
अभिषिच्यसुतराज्येक्षुपसज्ञमहीपति ।
भार्य्याभिस्तिसृभि सार्धंतपसेसवनययौ ॥१६
तत्रागत्वातपस्तेपेवानप्रस्थविधानवित् ।
शतानित्रीणिवर्षाणासार्द्धानिनृपसत्तम ॥१७
तपसाक्षीणदेहस्तुराजवर्य्योद्विजोत्तम ।
निगृह्यसर्वस्त्रोतासितथाजासून्वनेचर ॥१८
तत पुण्यान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्यायेनराधिपै ॥१९
भार्य्याश्चतस्यतास्तिस्र समन्तेनैवतत्पयुजु ।
प्राणानवापु सालोक्यतेनैवसुमहात्मना ॥२०
एतत्खनित्रचरितंश्रु तकल्मषनाशनम् ।
पठता-चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥२१

राजा खनित्र ने इस प्रकार उद्विग्न चित्त से वनवासी होने की इच्छा करके अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया ॥१५॥ क्षुप नामक पुत्र को राज्य देकर स्वयं अपनी तीन पत्नियों को साथ लेकर तप करने के लिये वन में गये ॥१६॥ और वन में वास करते हुए वानप्रस्थी रहकर साढ़े तीन सौ वर्ष तक उन्होंने तप किया ॥१७॥ फिर हे द्विज श्रेष्ठ ! उन वनवासी राजा ने तप के द्वारा कृश शरीर होने पर सब स्रोतों के निरोध पूर्वक प्राण का परित्याग कर दिया ॥१८॥ अन्यान्य राजागण सैंकड़ों अश्वमेध यज्ञों को करके भी जिस लोक को नहीं पा सकते उस सर्व अभीष्ट देने वाले अक्षय पुण्य लोक को राजा खनित्र ने प्राप्त किया ॥१९॥ उनकी तीनों पत्नियाँ भी उनका अनुगमन करके उन्हीं के साथ समान गति को प्राप्त हुईं हे महाभाग ! इस प्रकार खनित्र के चरित्र को

तुम्हारे प्रति कहा है, इसके पढने या सुनने से पापो का नाश होता है, अब क्षुप का चरित्र कहता हू उसे श्रवण करो ॥२१॥

१०६—विविंश चरित्र

क्षुप खनित्रपुत्रस्तुप्राप्यराज्ययथापिता ।
तथैवपालयामासप्रजाधर्मेणरञ्जयन् ॥१
सदानशीलोयष्टाचयज्ञानामवनीपति ।
समःशत्रौचमित्रेचव्यवहारादिवरमनि ॥२
एकदासमहीपालानिजस्थानगतोमुने ।
सूतरुक्तौयथापूर्वंक्षुपोराजातथाऽभवत् ॥३
ब्रह्मणस्तनय पूर्वंक्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ।
यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्य वचेष्टितम् ॥४
श्रोतुमिच्छामिचरितक्षुपस्यसुमहात्मन ।
यदिवादृङ्मयाशक्य चेष्टितु तत्करोम्यहम् ॥५
सचकाराकरान्भूपराजागोब्राह्मणान्पुरा ।
पष्ठांशेनकृताचोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥६
तेषामहार नाराज्ञाकोऽनुयास्यतिमद्विध ।
तयाप्युत्कृष्टचेतानाचेष्टासूत्यमवान्भवेत् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—राज्य मे अभिषिक्त हुए खनित्र पुत्र क्षुप प्रजा

ही सब बातें आपमें हैं ॥४॥ राजा बोले—मैं उन महात्मा का क्षुप का चरित्र सुनना चाहता हूं यदि मैं भी उनके जैसा ही आचरण कर सकूं तो वैसा ही प्रयत्न करूँगा ॥५॥ सूत बोले—हे महाराज ! वह राजा क्षुप गौ-ब्राह्मण से कर प्राप्त नहीं करते थे तथा छटे अंश से यज्ञों का अनुष्ठान करते थे ॥६॥ राजा बोले—मेरा जैसा मनुष्य उनके कार्यों का अनुकरण कैसे कर सकता है ? फिर भी ऐसे महात्माओं के उत्कृष्ट आचरण पर चलने का प्रयत्न करना चाहिए ॥७॥

तच्छ्रूयतांप्रतिज्ञायासाम्प्रतंक्रियतेमया ।
क्षुपस्यानुकरिष्यामिमहाराजस्यचेष्टितम् ॥८
त्रीस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ।
पृथिव्याचतुरन्तायाःप्रतिज्ञेयं कृतामया ॥९
यत्तुगेब्राह्मणाः पूर्वमददन्भूभृतेकरम् ।
तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम् ॥१०
इतिप्रतिज्ञायवचः क्षुपस्तत्कृतवान्नथा ।
सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवर. ॥११
गोब्राह्मणा पुराराज्ञामददद्य चनैकरम् ।
तावत्सत्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥१२
तस्यपुत्रोऽभवद्वीर प्रमथायामनिन्दित ।
यस्यप्रतापशौर्याभ्यांक्रान्तावश्यामहीभृत ॥१३
तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ।
विविंशतनयं तस्याजनयामाससप्रभु ॥१४

इसलिए मैं इस समय प्रण करता हूं उसे श्रवण करो; मैं उन महाराज क्षुप के कार्य का आज से अनुकरण करूँगा ॥८॥ मैं चारों वर्ण और पृथिवी के प्रति यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कृषि आने वाले, वर्तमान और व्यतीत होने वाले समय में तीन-तीन यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा ॥९॥ तथा पहिले जिस-जिस समय में राजाओं ने ब्राह्मणों से जो कर लिया है, उसे मैं उनको लौटा दूंगा ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ राजा क्षुप ने ऐसी प्रतिज्ञा करके उसकी रक्षा की अर्थात् कृषि की उपस्थिति के समय तीन यज्ञानुष्ठान

किये ।।११।। तथा पहिले राजाओं की गौ और ब्राह्मणों ने जितना कर दिया था, उतना धन उनको दे दिया ।।१२।। उनकी प्रमथा नाम की भार्या हुई, उसके गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर और बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, उस पुत्र ने अपनी शूरता और पराक्रम से सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था ।।१३।। उनकी भार्या विदर्भ देश के राजा की पुत्री नन्दिनी हुई, उसके गर्भ से विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।१४।।

विविंशेशासतिमहीमहीपालेमहौजसि ।
महीतलमभून्व्याप्तनिरन्तरतयानरैः ।।१५
ववर्षकालेपर्जन्योमहीसस्यवतीतया ।
सुफलानिचसस्यानिरसवन्तिफलानिच ।।१६
रसा पुष्टिकराश्चासन्नपुष्टिर्नोन्मादकारिणी ।
नवित्तनिचयान्नृणाप्रभूतामदहेतव ।।१७
तत्प्रतापेनरिपवोभयमापुर्महामुने ।
स्वास्थ्य जन सुहृद्वर्गोमुदमापसुपूजितः ।।१८
इष्ट्वासयज्ञान्सुबहून्सम्यक्सम्पाल्यमेदिनीम् ।
सग्रामेनिधनप्राप्यशक्रलोकमितोगत ।।१९

राजा विविंश के राज्यकाल मे पृथिवी पर इतनी प्रजा थी कि कही भी स्थान शेष नही था ।।१५।। उस काल मे मेघ यथा समय वृष्टि करते थे और पृथिवी भी अन्न से परिपूर्ण रहती थी, सभी अनाज फल से युक्त और सभी फल रस से युक्त थे ।।१६।। रस मे पोषक तत्व होते थे, उससे होने वाली पुष्टि से मनुष्य उन्मत्त नही होता था, बहुत धनवान् होकर भी मनुष्यो मे मिथ्यामद नही था ।।१७।। शत्रु उनके बल से सदा भयभीत तथा अस्वस्थ रहते थे, सुहृदो को सदा सन्तोष रहता था ।।१८।। इस प्रकार उस राजा विविंश ने अनेकानेक यज्ञ किये और भले प्रकार प्रजा का परिपालन किया, अन्त मे युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक को गये थे ।।१९।।

१०७—खनित्र चरित्र (३)

तस्यपुत्र खनीनेत्रोमहाबलपराक्रम ।
यस्ययज्ञे प्रगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विता ॥१
खनीनेनसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ।
तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससागरा ॥२
दत्त्वाचसकलापृथ्वीब्राह्मणानामहात्मनाम् ।
तपसाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनय ॥३
यतश्चप्राप्यवित्तर्द्धिमतुलादातृन्तमात् ।
जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यराज्ञ प्रतिग्रहम् ॥४
सप्तषष्टिमहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ।
सप्तषष्टिचयोयज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥५
अपुत्र.समहीपालोमृगयामुपचक्रमे ।
पुनार्थपितृयज्ञायमासकामोमहामुने ॥५
अश्वारूढाविनासैन्यमेकएवमहावने ।
वद्धगाधाङ्गुलित्राणोबाणखङ्गधनुर्धर ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा विविंश के पुत्र खनी नेत्र हुए, वे महाबली और पराक्रमी थे, उनके यज्ञानुष्ठान को देखकर विस्मय को प्राप्त हुए गन्धर्वों ने उनकी गाथा का इस प्रकार कीर्तन किया था ॥१॥ इस पृथिवी पर खनी नेत्र के समान कोई यज्ञकर्त्ता नहीं होगा क्योंकि उन्होंने दस सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया और समुद्र पर्यंत सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया ॥२॥ उन राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणों को सब पृथ्वी दे दी थी और फिर तप के द्वारा धन लाभ करके इस पृथ्वी को छुड़ा लिया था ॥३॥ हे ब्रह्मन्! उन दानियों में श्रेष्ठ राजा खनीनेत्र से ब्राह्मणों ने विपुल द्रव्य प्राप्त करके, पुनः अन्य किसी से दान ग्रहण नहीं किया था ॥४॥ उन्होंने निहत्तर हजार सरसठ यज्ञों का अनुष्ठान किया और सभी यज्ञों में विपुल धन की दक्षिणा दी ॥५॥ एक समय की बात है कि खनी नेत्र ने पुत्र की कामना से पितृ-यज्ञ के अनुष्ठान की इच्छा की, उन

समय अनुष्ठान के निमित्त मृग के लिये धनुष बाण आदि धारण कर और अश्वारूढ होकर वन में आखेट के लिये गये ॥६-७॥

तयाह्यन्ततुरगमन्यतोगहनाद्वनात् ।
विनिष्क्रम्यमृग प्राहमाहत्वाभिमतकुरु ॥८
अन्येमृगाःपलायन्तेमहाभीत्याविलोक्यमाम् ।
कथमात्मप्रदानत्वमृत्यवेकर्तु मिच्छसि ॥९
अपुत्रोऽहममहाराजवृथाजन्मप्रयोजनम् ।
विचारयन्नपश्यामिप्राणानामिहधारणम् ॥१०
अथान्येत्यमृग प्राहतमन्योवसुधाधिपम् ।
मृगस्यतस्यप्रत्यक्षमलमेतेनपार्थिव ॥११
घातयस्वेतिमामासैर्ममकर्मसमाचर ।
यथाकृतार्थ तातेस्यान्ममचाप्युपकारितत ॥१२
पुत्रार्थ त्वमहाराजस्वपितृन्यष्टुमिच्छसि ।
अपुत्रस्यास्यमासेनलप्स्यसेवाञ्छितकथम् ॥१३
याद्दक्कर्मविनिष्पाद्य ताद्दग्द्रव्यमुपाहरेत् ।
दुर्गन्धोनंसुगन्धानागन्धज्ञानविनिर्णय ॥१४

जब उन्होंने एक वन से दूसरे वन में जाने के लिये अपने अश्व को दौड़ाया, तभी एक मृग ने एक ओर से निकल कर उनसे कहा—हे राजन् ! मेरा वध करके अपना इच्छित कार्य करिये ॥८॥ राजा बोले—और सभी मृग तो मुझे देखते ही भाग जाते है, परन्तु तुम मरने के लिये क्यों इच्छा कर रहे हो ? ॥९॥ मृग ने कहा—हे राजन् ! मैं पुत्रहीन हू, इसलिये जीवित रहना व्यर्थ समझता हूँ ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी एक अन्य मृग वहाँ आकर पहिले मृग के ही सामने राजा से बोला—हे राजन् ! इस मृग का आप क्या करेंगे ? ॥११॥ आप मेरा वध करके अपने कार्य का सम्पादन करेंगे तो आपका अभीष्ट सिद्ध होगा और मेरा भी उपकार होगा ॥१२॥ हे राजन् ! आप पुत्र की कामना से जो पितृ यज्ञ करना चाहते हैं उसकी सिद्धि इस पुत्रहीन के मांस से कैसे हो सकेगी ? ॥१३॥ जो कर्म जिस प्रकार का हो, उसके

लिये वैसा ही द्रव्य ग्रहण करना चाहिये, भला कभी दुर्गन्ध से सुगन्ध की पूर्ति हो सकती है ? ॥१४॥

वैराग्यकारणप्रोक्तमनेनापुत्रतामम ।
कथ्यताप्राणमत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ॥१५
वहवोमेसुताभूपवह्व्योदुहितरस्तथा ।
यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ॥१६
सर्वसाध्यानरेन्द्रेयमृगजाति सुकातरा ।
तेष्वपत्येपुमेचातिममत्वतेनदुःखित ॥१७
मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योविभेम्यहम् ।
विहीनात्मवंसत्त्वेभ्य.श्वश्रृगालादपिप्रभो ॥१८
सोऽहनिमित्तवन्घूनामिमाशून्यावसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात्मर्वामिच्छामिसुनृशसकृत् ॥१९
तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजावितुरगादिका. ।
तास्तेपापोपणायाहमिच्छामिनिधनगतान् ॥२०
निष्क्रान्तेपुततस्तेपुममापत्येपुवैपृथक् ।
भवन्तिचिन्ता.शतशोममत्वावृतचेतसः ॥२१

राजा बोले—उस प्रथम मृग ने पुत्रहीनता को ही अपने वैराग्य का कारण बताया है, परन्तु तुमको वैराग्य किसलिये हुआ है, जो अपना प्राण देने को तत्पर हुए हो ? ॥१५॥ मृग ने कहा—हे राजन् ! मेरे पुत्र पुत्रियों की अधिकता है, उन्हीं की चिन्ता से मैं दुःखरूपी अग्नि में जलता रहता हूँ ॥१६॥ यह मृग जाति सभी के वश में हो जाती है, मुझे अपनी सतान के प्रति अत्यन्त मोह है, इसीलिये मैं सदा ही दुःखित रहता हूँ ॥१७॥ हे राजन् ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक तथा सभी प्राणियों में अत्यन्त हीन श्वान और गीदड आदि से भी भयभीत रहता हू ॥१८॥ मैं सदा यही कामना करता हूँ कि इन मनुष्य सिंहादि के डर से,यह पृथिवी मुक्त हो जाय और मैं भी विघ्न रहित हो जाऊँ ॥१९॥ गौ, बकरी, अश्व आदि पशु जब इस पृथिवी के सम्पूर्ण तृण को खा जायेंगे तब मेरे पुत्र-पुत्री आदि क्या खाकर जीवन धारण करेंगे, इसीलिये मुझे अपनी

सतान के पोषणार्थ मैं तृण खाने वाले जीवो के मरने की कामना करता रहा हूँ ॥२०॥ जब मेरे पुत्र पुत्री पृथक पृथक् रूप से गमन करते हैं तब उनके स्नेह के कारण मेरे हृदय मे सैकडो चिन्ताएँ उपस्थित हो जाती हैं ॥२१॥

किंकूटपाशंकिवज्र वा गुरुविसुतोमम ।
प्राप्तश्चरन्वनेकिवानृंसिहादिवशगत ॥२२
प्राप्तोऽपमेक.सप्राप्तास्तेवस्थाकीदृशीमम ।
साम्प्रततेचिरायतेयेगता सुमहावनम् ॥२३
दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाभ्याशमहन्तानात्मजान्नृप ।
ईषदुच्छ्वसित क्षेममिच्छामिरजनीपुन ॥२४
प्रभातेदिवसक्षेममस्तगेऽर्केनिशामपि ।
वाछाम्यहक्दाक्षेमसर्वकालभविष्यति ॥२५
एततेकथितभूपमहोद्वेगस्यकारणम् ।
अत प्रसादनुरुमेबाणोऽयपात्यतामयि ॥२६
इतिदु खशताविष्ट प्राणान्सर्हत्यजामियत ।
तत्कारणनिबोधत्वमू वतोममपार्थिव ॥२७
असूर्यानामतेलोकायान्गच्छन्त्यात्मघातका ।
यज्ञोपयुक्ता पशव सम्प्रयान्त्युच्छ्रिती प्रभो ॥२८

कभी कभी लगता है कि कोई पुत्र किसी कठोर पाश मे बँधा है अथवा वज्र या सिहादि के द्वारा मारा गया है ॥२२॥ यदि एक आजाता है तो दूसरे की चिन्ता रहती है, जो वन मे चरने के लिये गये हैं, वह वहाँ कैसी दशा में होगे यह मुझे ज्ञात नही है ॥२३॥ हे राजन् ! जब वह सब मेरे पास आ जाते हैं, तब उन्हे देखकर कुछ सतोष होता है, परन्तु उस समय भी समस्त रात्रि मगल पूर्वक व्यतीत हो, यही चिन्ता करता रहता हूँ ॥२४॥ प्रात काल होने पर दिन भर की मगल कामना और सूर्यास्त होने पर रात्रि के मगल पूर्वक व्यतीत होने की चिन्ता करता हुआ यही सोचता रहता हू कि यह हर समय निरानन्द अवस्था म रहे ॥२५॥ हे राजन् ! मेरे उद्वेग का यही कारण है जो मैंने आपसे कहा है अब आप कृपा करके मुझ पर बाण चलादये ॥२६॥ हे

राजन् ! मैं जिस लिये सैकड़ो दुःखो से दुःखित हृदय हुआ अपने प्राण त्याग की कामना कर रहा हूँ उसे आप यथार्थ समझिये ॥२७॥ हे प्रभो ! आत्मघात करने वालो को अमूर्य नामक नरक की प्राप्ति होती है और यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुए पशुओ को सद्गति की प्राप्ति होती है ॥२८॥

अग्निः पशुरभत्पूर्वपशुरासीज्जलाधिप ।
भास्वानयोच्छ्रित्ती प्राप्तायज्ञेनिष्ठामुपागताः ॥२९
तन्ममेताङ्कपाकृत्वानयमामुच्छ्रितिंनृप ।
अत्मनश्चे प्सितकामपुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥३०
राजेन्द्रनैपह्न्तव्योधन्योऽप्यसुकृतीमृगः ।
बहवस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहमयन्तति ॥३१
एकदेहभवंयस्यदुःखचन्य सर्वभवान् ।
बहूनियस्यदेहानितस्यदुःखान्यनेकधा ॥३२
एकोयदाहमासतुप्राक्तदादेहजमम ।
दुःखमामीन्ममत्वेतुभार्य्यायास्तदभूद्द्विधा ॥३३
यदाजातान्यपत्यानितदायावन्तितानिवै ।
तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥३४
नक्रनार्योभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भव. ।
इहदुःखायमत्सुति परत्रचविरोधिनी ॥३५
यतोरक्षणपोपार्थमपत्यानाकरोमितत् ।
चिन्तयामिचसभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥३६

पुराकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य भी पशु होकर यज्ञार्थ वियुक्त हुए थे, इसीलिये उनको सद्गति की प्राप्ति हुई थी ॥२९॥ हे राजन् ! इसीलिये मुझ पर कृपा करके आप मुझे सद्गति को प्राप्त कराइये, ऐसा करके आप अपने इच्छित पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥३०॥ प्रथम मृग ने कहा—हे राजन् ! यह मृग अधिक सतान वाला तो स्वय ही सुकर्मवान् हारा है, इसलिये मुझ पुत्रहीन का ही वध करिये ॥३१॥ इस पर दूसरे मृग ने कहा—एक शरीर वाले को एक ही दुःख होता है वह तुम्हारे समान धन्य ही है, परन्तु अधिक देह वाल को

अनेकानेक दुःखों की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जब मैं भी एक था, तब मुझे भी एक देह का ही दुःख था, परन्तु जब पत्नी हुई, तब स्नेह के कारण उसकी दो भागों में विभक्ति हुई ॥३३॥ फिर जितनी सतान होती गई, उतने ही भागों में दुःख बढ़ता गया, इस प्रकार मुझे अनेक देहों के कारण अनेक दुःखों की प्राप्ति हुई है ॥३४॥ जब तुम्हें अधिक दुःख नहीं है तब क्यों तुम धन्य नहीं हो? मुझे तो मेरी यह सतान इस लोक में दुःख का कारण और परलोक में भी अहिततर है ॥३५॥ मैं अपनी सतति के पोषण और रक्षार्थ जो प्रयत्न अथवा चिन्ता करता हूँ, वह सभी मेरी नरक प्राप्ति का साधन रूप ही है ॥३६॥

नवेद्मिपिसन्ततिमान्धन्योऽपुत्रोऽथवामृग ।
पुत्रार्थश्चायमारम्भोममदालायतेमनः ॥३७
दुःखायसन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकायतत् ।
तथाप्यतनयान्प्राप्तिऋणानीतिश्रुतमया ॥३८
सोऽहयतिष्येपुत्रार्थं मृतेप्राणिवधं मृग ।
तपसैवप्रचण्डेनयथापूर्वमहीपतिः ॥३९

राजा बोले—हे मृग! पुत्रहीन और पुत्रवान् इन दोनों में किसका जीवन सफल है, यह मुझे ज्ञात नहीं है, मैं पुत्र प्राप्ति के कार्य में प्रयत्नवान् हूँ, परन्तु मेरा मन अत्यन्त चचलता को प्राप्त हो रहा है ॥३७॥ यद्यपि इहलोक और परलोक में सतान के कारण ही दुःखों की प्राप्ति होती है, परन्तु ऐसा सुना जाता है कि पुत्रहीन पुरुष ऋण-मुक्त नहीं होता ॥३८॥ इसलिये हे मृग! मैं जीवहत्या किये बिना ही, पूर्वकालीन भूपालों के समान घोर तप करके ही पुत्र लाभ का प्रयत्न करूँगा ॥३९॥

१०८—करन्धम चरित्र

ततःसनृपतिर्गत्वागोमतीपापनाशिनीम् ।
तत्रतुष्टावनियतोभूत्वादेवपुरन्दरम् ॥१

तप्यमानस्तपश्चोग्र यतवाक्कायमानस ।
तुष्टावप्रयत शक्रमपत्यार्थमहीपति ॥२
तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वर ।
तुतोपभगवानिन्द्र प्राहचैनमहामुने ॥३
अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ।
परितुष्टोऽस्मितेभूपव्रियताभवतावर ॥४
अपुनस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतावर ।
सदाचाव्याहतैश्वर्योधर्मकृद्दमवित्कृती ॥५
तथेतिचोक्त शक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ।
प्रजा पालयितु भूपआजगामनिजपुरम् ॥६
तत्रास्यकुर्वतोयज्ञ सम्यक्पालयत प्रजा ।
अजायतसुतोविप्रतदाशक्रप्रसादतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर राजा खनीनेत्र ने पापो को नष्ट करने वाली गोमती के किनारे पहुँच कर जितेन्द्रिय रहते हुए पुरन्दरदेव का स्तवन किया ॥१॥ हे मुने ! राजा ने जब देह, मन और वचन से सयत होकर पुत्र की इच्छा से देवेन्द्र की स्तुति की, तब भगवान् पुरन्दर ने उनको भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर कहा ॥२-३॥ हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या, भक्ति और स्तुति से मैं अत्यन्त सतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुम मुझसे वर माँगो ॥४॥ राजा बोले—हे प्रभो ! मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे सभी शस्त्रधारियो से बढकर, बाधा रहित और ऐश्वर्यवान् धर्म के जानने वाला एक पुत्र हो ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इन्द्र ने 'ऐसा ही हो' कहकर जब राजा की प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा अपने नगर मे लोट आये ॥६॥ वहाँ प्रजा पालन मे तत्परता पूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान करने पर इन्द्र की कृपा से उन्हे एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥७॥

तस्यनामपिताचक्रेबलाश्वइतिभूपति ।
अस्त्रग्राममशेषचग्राहयामासतसुतम् ॥८
पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृप ।
सबलाश्वोवशानिन्येभुविमर्वमहीक्षितः ॥९

करचदापयामाससारग्रहणपूर्वकम् ।
ससर्वंभूमिपाश्राजापालयामासचप्रजा. ॥१०
अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदा ।
नचाम्युत्थायमततेचास्मैप्रददु करान् ॥११
व्युत्थिता स्वेपुराष्ट्रे पुनसन्तोषपरास्तत ।
भुवतस्यनरेन्द्रस्यजगृहुस्तेनराधिपा ॥१२
सगृहीत्वास्वकराज्यपृथिवीशोबलान्मुने ।
तस्थौस्वनगरेभूपैविरोधोवहुभि हृत ॥१३
समेत्यसुमहावीर्य्या ससाधनघनास्तत ।
रुरुधुस्तमहीपालपुरेतग्ननरेश्वरा ॥१४

पिता ने उसका नाम 'बलाश्व' रखा और उसे सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र की शिक्षा दी ॥८॥ हे महान्! वह बलाश्व अपने पिता के मरणोपरान्त, पृथिवी के सब राजाओ को जीतकर सम्राट् बन गये ॥९॥ वह उन राजाओ से सार रूप कर को लेकर भले प्रकार प्रजा का पालन करने लगे ॥१०॥ फिर समय प्राप्त कर उन राजाओ और जाति वालो ने राजा का अभ्युत्थान न होने देने के निमित्त कर देना रोक दिया ॥११॥ तब वह राजागण बलाश्व के अधीनता से मुक्त होकर ही सतुष्ट न हुए वरन् उन्होने राजा बलाश्व की भूमि भी छीन ली ॥१२॥ राजा बलाश्व अपने शत्रुओ से युद्ध करते-करते इतने बलहीन होगये कि उनके पास अपना राज्य मात्र ही रह गया और वह अपनी राजधानी मे ही रहने लगे ॥१३॥ इसके पश्चात् उन धन साधन सम्पन्न राजाओ ने इन राजा बलाश्व को उनके नगर मे ही घेर लिया ॥१४॥

पुररोधेनतेनाथकुपित समहीपति ।
स्वल्पकोशोल्पदण्डश्चवैरनव्यपरमगत ॥१५
अपश्यमान शरणमरणोद्विजगत्तम ।
करोमुखाग्रकृत्वानिश्वासार्तमानस ॥१६
ताोऽस्यहस्तांगुलीरन्ध्रात्मुख्यानिलसमाहृता ।
निर्जग्मु शतशोयोधारथनागतुरङ्गमा ॥१७

ततः क्षणेनतत्सर्वंनगरंतस्यभूपते ।
व्याप्तमासीद्बलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥१८
अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ।
निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिप ॥१९
जित्वाचवशमानीयचकारकरदान्पुनः ।
यथापूर्वंमहाभागमहाभाग्योनरेश्वरः ॥२०
धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् ।
बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्वोऽभिधीयते ॥२१
सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रः सर्वजन्तुषु ।
करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥२२
सम्प्राप्तस्यनरामार्त्तिददावरिविनाशनम् ।
बलन्धर्मेणचाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥२३

नगर के घिर जाने से बलाश्व को बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु वह अल्पकोष और अल्प दण्ड व्यवस्था वाले होने के कारण ॥१५॥ रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक मुख को दोनों हाथों से ढक कर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे ॥१६॥ ऐसा करने से उनके मुख की वायु के साथ ही सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और अश्व निकल पड़े ॥१७॥ हे मुने ! क्षण भर में ही इस प्रकार अत्यन्त बल युक्त सेनाओं के द्वारा राजा बलाश्व का सम्पूर्ण नगर व्याप्त होगया ॥१८॥ तब उन राजा बलाश्व ने अपनी उस महान् सेना के सहित नगर से बाहर आकर युद्ध किया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त की ॥१९॥ और उन सबको अपने अधीन करके उन्हें पुनः करदाता बनाया, इस प्रकार वह पुनः सौभाग्यशाली हुए ॥२०॥ बलाश्व के काँपते हाथों से जो सेना उत्पन्न हुई उसके कारण राजा बलाश्व की प्रसिद्धि 'करन्धम' नाम से हुई ।२१। करन्धम त्रैलोक्य में प्रसिद्ध, धर्मात्मा तथा सब प्राणियों के प्रति सख्य भाव वाले थे ॥२२॥ वह राजा स्वयं बल प्राप्त करके परम आर्त्त हुए प्राणियों के शत्रुओं या दुःखों का नाश करने वाले हुए ॥२३॥

१०६—अवीक्षित चरित्र (१)

वीर्यचन्द्रसुतासुभ्रू र्वीरानामशुभव्रता ।
स्वयंवरेसाजगृहेमहाराजकरन्धमम् ॥१
तस्यापुत्रसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ।
अविक्षितमितिख्यातिमुपेतजगतीतले ॥२
जातेतस्मिन्सुतेराजासदैवज्ञानपृच्छत ।
कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रेशस्तलग्नेसुतोमम ॥३
कच्चिच्चालोकितजन्ममपुत्रस्यशोभनं ।
ग्रहै कच्चिन्नदुष्टानाग्रहाणांद्दक्पथगतम् ॥४
इत्युक्तास्तेनदैवज्ञास्तमूचुर्नृपतितत ।
शस्तेमुहूर्तेनक्षत्रेलग्नेचैवसुतस्तव ॥५
समुत्पन्नामहावीर्योमहाभागोमहाबल ।
भविष्यतिमहाराजमहाराजस्तवात्मज ॥६
अवैक्षतेमदेवानागुरु शुक्रश्चसप्तम ।
सोमश्चतुर्थ स्तनयतवैनसमवैक्षत ॥७
उपान्तसस्थितश्चं वसोमपुत्रोप्यवैक्षत ।
नावैक्षतेमसवितानभौमोनशनैश्चर ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज करन्धम ने स्वयंवर मे वीर्यचन्द्र नरेश की कन्या शुभव्रता वीरा का पाणिग्रहण किया था। वीरा के गर्भ से महाराज करन्धम के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका अवीक्षित नाम लोक में प्रसिद्ध है। उसके जन्म लेने पर राजा ने ज्योतिषियो को बुलाकर कहा कि मेरे पुत्र ने प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्र मे तो जन्म लिया है ? इसके लग्न स्थान मे शुभ ग्रहों की दृष्टि है ? किसी दुष्ट ग्रह की दृष्टि तो नही पडी ? राजा के प्रश्न सुनकर ज्योतिषियो ने गणना करके बतलाया कि 'महाराज उत्तम मुहूर्त, शुभ नक्षत्र और श्रेष्ठ लग्न मे उत्पन्न हुआ है। इसलिये बडे भाग्यशाली, बडे पराक्रमी, असीम शक्तिशाली नृपति होंगे। इनकी कुण्डली मे वृहस्पति तथा शुक्र सप्तम

हैं और सातम घर पर देखते हैं। चौथे घर को चन्द्रमा देख रहा है और ग्या-रहवें पर बुध की दृष्टि है। रवि मंगल तथा शनिश्चर जैसे क्रूर ग्रहों की दृष्टि नहीं है ॥१-८॥

तवपुत्रमहाराजधन्योऽयतनयस्तव ।
सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतोभविष्यति ॥६
इतिदेवज्ञवचननिशम्यवसुधाधिप. ।
हर्षपूर्णमना प्राहनिजस्थानगतस्तदा ॥१०
अवेक्षतेमदेवानागुरुःसोम सितोवुध ।
नावेक्षतेनमादित्योनार्कसूनुर्नभूमिज ॥११
अवेक्षतेतियत्प्रोक्त भवद्भिर्बहुशोवच ।
अविक्षितेतितेनास्यख्यातनामभविष्यति ॥१२
अविक्षित सुतस्तस्यवेदवेदाङ्गपारग ।
अस्त्रग्राममशेषंसच एवपुत्रादयाग्रहीत् ॥१३
सरूपेणातिभिषजौदेवानापार्थिवात्मज. ।
बुद्धयावाचस्पतिकान्त्याशशाङ्क तेजसारविम् ॥१४
धैर्येणाब्धितथोर्वीन्सहिष्णुत्वेनवीर्यवान् ।
शौर्येणनसमस्तस्यकश्चिदासीन्महात्मनः ॥१५

इसलिये महाराज ! आपके पुत्र बड़े मान्य, भाग्यवान् और वैभवशाली होंगे। यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहने लगे कि आपके कथनानुसार 'बृह-स्पति और बुध पुत्र को अवलोकन करते हैं, पर रवि मंगल, शनि की इस पर दृष्टि नहीं है।' आपने बार-बार 'अवेक्षत' शब्द कहा है, इसलिये इसका नाम अवीक्षित रख दिया जाय। मार्कण्डेय जी बोले—बड़ा होने पर राजकुमार अवीक्षित ने वेद-वेदाग की शिक्षा प्राप्त करके कण्वपुत्र से अस्त्र विद्या का पूर्ण रूप से अभ्यास किया। यह राजपुर परम रूपवान्, बुद्धिमान्, कान्तिमान् और तेजस्वी था। वह समुद्र के समान धैर्यवाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु भी था। उस समय उसकी तुलना का कोई और व्यक्ति नहीं मिलता था ॥६-१५॥

स्वयवरेतजगृहेहेमधर्मात्मजावरा ।
सुदेवतनयागौरीसुभद्रावलिन.सुता ॥१६
लीलावती।ीरसुतावीरभद्रसुतानिभा ।
भोमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुद्वती ॥१७
याश्चैननाभिनन्दन्तिस्वयवरकृतक्षरणा ।
ताश्चापिसबलाद्वीरोजग्राहनृपते सुत ॥१८
निराकृत्यनृपान्सर्वांस्तासापितृकुलानिच ।
स्वयहिवीर्यमाश्रित्यबलवान्सबलोद्धतः ॥१६
एकदातुविशालस्यविशालाधिपते सुताम् ।
वद्मालिनीससुदतीस्वयवरकृतक्षणाम् ॥२०
परिभूयाखिलान्भूपान्स्वेच्छयानवृतस्तया ।
वलाज्जग्राहविप्रर्पेयथान्याबलगर्वित ॥२१

धर्म की कन्या वरा, सुदेव की कन्या गौरी, बलि की पुत्री सुभद्रा, वीरभद्र की निभा, वीर–पुत्री लीलावती, भीम पुत्री मान्यवती ने उन्हे स्वयवर मे वरण किया था। और भी अनेक कन्याओ को, जिन्होंने उनको वरण नही किया था वह शक्ति से ग्रहण करके ले आये थे। एकबार विशाल राजा की कन्या सुदती न स्वयवर मे उनको वरण नही किया। इस पर उन्होने बल के गर्व से सब राजाओ को पराजित कर उस भी अन्य कन्याओ की भाँति बलपूर्वक ग्रहण किया ॥१६–२१॥

ततस्तेभूभृत सर्वेबहुशस्तेनमानिना ।
निराकृता.सुनिर्विण्णा प्रोचुरन्योन्यमाकुला ॥२२
क्षमतावचनामेनामेवस्माद्वतशालिनाम् ।
बहूनामेवर्णानाजन्मधिग्वोमहीभृताम् ॥२३
क्षत्रियोय क्षतात्त्राणवध्यमानस्यदुर्मदे ।
करोतितस्यतन्नामपूर्ववान्येहिविभ्रति ॥२४
आत्मनोपिक्षतत्राणदुष्टादस्मादशुर्चताम् ।
भयनाक्षत्रियकुलेजातानाकीदृशोमनि ॥२५

उच्चार्यंतेस्तुतिर्यावःसूतमागधवन्दिभि ।
सामत्यामावृथावीराभवत्वग्गिविनाशनात् ॥२६
चरतामातथैवंपाभूपाश्चारैर्दिगन्तरे ।
पौरुपार्थयिण सर्वेविशिष्टकुलसम्भवा ॥२७
बिभेतिकोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमर ।
विचिन्त्यैतन्नहातव्यपौरुषशस्त्रवृत्तिभि ॥२८
एतन्निशम्यतेभूपाविस्पष्टामर्षपूरिता. ।
उचु परस्परसर्वेसमुत्तस्थुश्चनायुधाः ॥२९
केचिद्रथानारुरुहु केचिन्नागास्तथाहयान् ।
अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेता पदातय ॥३०

इस पर वे राजा बारम्बार पराजय होने से दुखी होकर परस्पर कहने लगे कि इतने राजाओ के इस स्थान पर एकत्रित होने पर भी इस अकेले ने बलपूर्वक इस कन्या को ग्रहण कर लिया और तुम सब देखते रह गये यह धिक्कारने योग्य बात है । दुर्मद मनुष्य के आघात करने पर भी अन्य की रक्षा-रूप कर्तव्य पालन मे तत्पर रहता है वही वास्तविक क्षत्रिय है अन्यथा क्षत्रिय का नाम धारण करना व्यर्थ है । २२-२४॥ पर तुमतो दूसरे की क्या अपनी रक्षा का उद्योग भी नही कर पाते । क्षत्रिय कहलाने पर भी यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? सूत, मागध,वन्दीगण तुम्हारी शूर वीरता की जो प्रशसा करते हैं उसे असत्य सिद्ध मत करो वरन् शत्रु का पराभव करके उसे यथार्थ सिद्ध करके दिखलाओ । तुम ससार मे 'भूप' के नाम से प्रसिद्ध हो इसे वृथा मत होने दो । तुम सबने श्रेष्ठ कुलो में जन्म लिया है और तुम सभी वीरता और पराक्रम मे प्रसिद्ध हो ॥२५-२७॥ वीर पुरुष मृत्यु का भय कब करते हैं और युद्ध मे विमुख होने वाला कौन अमर होता है ? इन सब बातो पर विचार कर क्षत्रिय नाम-धारी को कभी पौरुष का त्याग नहीं करना चाहिये । ऐसे उत्तेजना पूर्ण वचनो को सुनकर राजागण क्रोध से भर गये और आपस में उत्साहपूर्ण वार्तालाप करके हथियार लेकर तैयार होगये । कोई रथ पर, कोई हाथी पर, कोई घोड़े पर सवार होगये और कोई पैदल ही अवीक्षित के समीप आये ॥२८-३०॥

११०—अवीक्षित चरित्र (२)

इतिसंग्रामसज्जास्ते भूपाभूपसुतस्तथा ।
निराकृता सुबहुशस्तत्कालश्चाप्यविक्षिता ॥१
ततोबभूवसंग्रामस्तस्यतैः सहदारुण ।
एकस्यबहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥२
तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तसुदुर्मदा ।
अभिघ्नन्तोयुयुधिरेतं समस्तैरसावपि ॥३
सताञ्छरशतैरुग्रैर्विभेदनृपनन्दन ।
कृतास्त्रोबलवान्बाणैस्तेचतविभिदुः शितैः ॥४
कस्यशिच्चिच्छिदेबाहुमन्यस्यचशिरोधराम् ।
हृदिविव्याधचैवान्यवक्षस्यताडयत् ॥५
करश्चिच्छेदकरिणस्तुरगस्यतथाशिर ।
रथस्येपान्तथैवाश्वान्रथस्यान्यस्यसारथिम् ॥६
बाणानापततश्चके द्विधाबाणैस्तथाद्विपाम् ।
चिच्छेदान्यस्यखड्गश्चधनुरन्यस्यलाघवात् ॥७
सनुनेपहृतेतेननाशान्योनृपात्मज ।
अविक्षिताहतश्चान्य पदाति प्रजहौरणम् ॥८

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस अवसर पर अवीक्षित द्वारा पराजित हुए वे कितने ही राजा एक साथ मिल कर भयकर संग्राम करने लगे। वे खड्ग, शक्ति, गदा, बाणों आदि से आघात करने लगे और अवीक्षित भी अकेला ही उनके साथ युद्ध करने लगा। प्रसिद्धवीर नन्दन ने सैंकड़ो बाणों से अवीक्षित पर आघात किया और उसने तीक्ष्ण बाणों से उनको विद्ध किया। अवीक्षित ने किसी की भुजा, किसी का मस्तक काट दिया और किसी का हृदय छेदकर छाती पर आघात किया। किसी के हाथी की सूँड काट डाली, किसी का घोड़ा मार दिया किसी के रथ के सारथी को मार दिया। उन्होंने शत्रुओं के

दान-दान बाणों को बीच में ही दो खण्ड करके गिरा दिया, किसी के खड्ग और किसी का धनुष काट डाला कोई वीर कवच के कट जाने से मारा गया और कोई पैदल युद्ध करने वाला घायल होकर युद्ध क्षेत्र से हट गया ॥१–८॥

इत्याकुलीकृतेनस्मिन्समग्रे राजमण्डले ।
तस्थुःसप्तशतवीरामरणोकृतनिश्चयाः ॥९
आभिजात्यवय शौर्य्यलज्जाभारसमन्विता ।
निर्जितेमक्लेसैन्येपलायनपरायणे ॥१०
तं समेत्यमहीपालं सनुपुनोमहीभृत ।
युयुधेधर्मयुद्धेनतेनतनातिकोपित ॥११
विच्छिन्नयन्त्रकवचान्सतानपिमहावल ।
कर्त्तुं व्यवस्थितस्तेचततक्रुद्धा महामुने ॥१२
धर्ममुत्सृज्ययुयुधुर्युध्यमानेनवर्मत ।
नरेन्द्रपुत्रा प्रस्वेदजलविलग्नानना ममम् ॥१३
विव्याधकश्चिद्बाणौघं कश्चिच्छेदकार्मुकम् ।
ध्वजमस्यापरोबाणैश्छित्त्वाभूमावपातयत् ॥१४
जघ्नुरन्येतथैवाश्वान्बभञ्जुश्चापरेरथम् ।
गदापातेनायचान्येबाणै पृष्ठमताडयन् ॥१५

जब अवीक्षित ने इस तरह समस्त राजाओं को व्याकुल कर दिया और उनकी सेना भाग ने लगी तो सात सौ वीर अपने वंश, कीर्ति और वीरता का विचार करके मरने का भय त्याग कर युद्ध में तत्पर हुए। अवीक्षित भी अत्यन्त क्रोधित हो उनके साथ धर्म युद्ध करने लगा। जब वह उनके अस्त्रों और कवच आदि काटने लगा, तब, व पसीने से लथपथ राजा लोग धर्म विरुद्ध साथ मिलकर उन पर अस्त्रों का आघात करने लगे। किसी ने शरीर में बाण मारे, किसी ने धनुष को तोड़ दिया, किसी ने ध्वजा को काट डाला, किसी ने घोड़ों को मार दिया, किसी के रथ को तोड़ा किसी ने पीछे से शस्त्र का आघात किया ॥९–१५॥

छिन्नेधनुषिसक्रोध सतदानृपते सुत. ।
जग्राहासितयाचर्मनदप्यन्योन्यपातयत् ॥१६
च्छिन्नासिचर्माजग्राहसगदागदिनावरः ।
तामप्यन्य क्षुरप्रेणचिच्छेदकृतहस्तवत् ॥१७
अन्येशरसहस्रेणशतेनान्येनराधिपाः ।
विव्यधु कोष्टकीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखा. ॥१८
सविह्वल पपातोर्व्यमिकोबहूभिरर्दित. ।
राजपुत्रामहाभागाववन्धुस्तेचततत. ॥१९
तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपतेःसुतम् ।
विशालेनसमराज्ञावैदिशविविशु.पुरम् ॥२०
दृष्ट्वा प्रमुदिताबद्ध समादायनृपात्मजम् ।
स्वयवराचमाकन्यान्यस्तातेनतत पुरः ॥२१

धनुष के कट जाने पर क्रोधित होकर अवीक्षित ढाल तलवार लेकर युद्ध करने लगा, पर एक अन्य वीर ने उसे भी काट गिराया। इस पर गदा लेकर सग्राम मे प्रवृत्त हुआ तो एक अन्य ने गदा को भी काट दिया। इसके पश्चात् उन धर्म विमुख राजाओ ने उस शस्त्रहीन को घेर कर हजारो और सैकडो बाण मारे। उनसे विद्ध होकर जब वह व्याकुल होकर गिर गया तब सब ने मिल कर उसे बाध लिया और [illegible] विशाल राजा के नगर वैदिशपुर मे उपस्थित हुए और बन्धनयुक्त [illegible] अवीक्षित [illegible] विशाल नृप के सामने खडा किया ॥१९—२१॥

इतिपृष्टोनरेन्द्रेणमदं वज्ञोविमृश्यतत् ।
दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराण्यहदिनानिपृथिवीपते ।
प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
करिष्यसिविवाहत्वंतेषुप्राप्तेपुमानद ।
अलमेतेनयग्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितों ने उस स्वयंवरा कन्या से कहा विवाह इन राजाओं में से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप में स्वीकार नहीं किया। तब राजा ने इस सम्बन्ध में ज्योतिषियों की सम्मति मांगी। उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इसमें अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त बतलावें। राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध में विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होंने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा। उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमें जो यह महाविघ्न पड गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःशुश्रावतद्वृत्तंतनयमकरन्धमः ।
तस्यपत्नीतयावीराग्रन्येचापिमहीभृत. ॥१
तमधर्मेणतनयंवद्धं श्रुत्वामहीपति ।
सामन्तं. पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
केचिद्बचुर्महीपालावध्या सर्वेमहीभृतः ।
यैरेक.समयुगेवद्ध समस्तैस्तैरधर्मतः ॥३
युज्यतावाहिनोसोद्यमूचुरन्येकिमास्यते ।
विशालोवध्यतांदुष्टस्तत्रयेऽन्येसमागता. ॥४

छिन्नेधनुषिसक्रोध सतदानृपते सुत ।
जग्राहासितथाचर्मतदप्यन्यान्यपातयत् ॥१६
च्छिन्नासिचर्माजग्राहसगदागदिनावर ।
तामप्यन्य क्षुरप्रेणचिच्छेदकृतहस्तवत् ॥१७
अन्येशरमहस्रेणशतेनान्येनराधिपा ।
विव्यधु कोष्टकीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखा ॥१८
सोविह्वल पपातोर्व्यमिकोवहुभिरर्दित ।
राजपुनामहाभागावबन्धुस्तेचततत ॥१६
तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपते सुतम् ।
विशालेनसमराज्ञावैदिशविवशु पुरम् ॥२०
दृष्टा प्रमुदिताबद्ध समादायनृपात्मजम् ।
स्वयवराचमाकन्यान्यस्तातेनतत पुर ॥२१

धनुष के कट जाने पर क्रोधित होकर अवीक्षित ढाल तलवार लेकर युद्ध करने लगा, पर एक अन्य वीर ने उसे भी काट गिराया। इस पर गदा लेकर संग्राम मे प्रवृत्त हुआ तो एक अन्य ने गदा को भी काट दिया। इसके पश्चात् उन धर्म विमुख राजाओं ने उस शस्त्रहीन को घेर कर हजारों और सैकड़ों बाण मारे। उनसे विद्ध होकर जब वह व्याकुल होकर गिर गया तब सब ने मिल कर उसे बांध लिया और उसे लेकर विशाल राजा के नगर वैदिशपुर में उपस्थित हुए और बन्धनयुक्त राजकुमार अवीक्षित को विशाल नृप के सामने खड़ा किया ॥१६-२१॥

पुन पुनश्चापत्रोक्तातथापिचपुरोधसा ।
आलम्ब्यतां मतिवरायस्तेराजसुरोचते ॥२२
यदामामानिनीदृश्चिन्नजग्राहवरमुने ।
तदापप्रच्छदैवज्ञ विवाहार्थनरेश्वर ॥२३
विशिष्टान्मेतस्याविवाहार्थदिनवद ।
गर्व तदीदृक्सजातयुद्ध विघ्नोपपादकम् ॥२४

इतिपृष्टोनरेन्द्रेणसदैवज्ञोविमृश्यतत् ।
दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराणीहदिनानिपृथिवीपते ।
प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
करिष्यसिविवाहस्त्वतेषुप्राप्तेपुमानद ।
अलमेतेनयत्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितो ने उस स्वयंवरा कन्या से कहा विवाह इन राजाओ मे से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप मे स्वीकार नही किया । तब राजा ने इस सम्बन्ध मे ज्योतिषियो की सम्मति मागी । उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इससे अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त बतलावें । राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध मे विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होंने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा । उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमे जो यह महाविघ्न पड गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःशुश्रावतद्बद्धं तनयंसकरन्धमः ।
तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृत ॥१
तमधर्मेणतनयंबद्धं श्रुत्वामहीपति ।
सागन्तं पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
केचिद्बुर्महीपालावध्या मर्त्येमहीभृतः ।
यैरेकःसयुगेबद्धःसमस्तैस्तैरधर्मतः ॥३
युज्यतावाहिनीशीघ्रमूचुरन्येकिमास्यते ।
विशालोवध्यतांदुष्टस्तनयेऽन्येसमागता ॥४

अन्येत्वथोचुर्धर्मोऽयत्यक्त.पूर्वंमहीक्षिता ।
अन्यायेनवलाद्येनगृहीतातमवाञ्छनी ॥५
स्वयवरेष्वशेषेपुतेनराजसुतास्तदा ।
खिलीकृतास्तत.सर्वेसमेत्यसवशीकृत. ॥६

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जब राजकुमार अवीक्षित के बाँध लिये जाने का समाचार महाराज करन्धम और राजमहिषी वीरा को मिला तो वे बहुत चिन्तित होकर अपने सामन्तों और मन्त्रियों से सलाह करने लगे। किसी ने कहा कि जिन बहुत से राजाओं ने मिलकर अकेले वीर को अधर्म युद्ध में पराजित करके बाँध लिया है वे सब मार देने योग्य हैं। दूसरे ने सम्मति दी कि अब निश्चित क्यों बैठे हो, अब तुरन्त विशाल राज और वहाँ एकत्रित अन्य राजाओं पर आक्रमण करके उन सब को बाँध लेना चाहिये। किसी किसी ने यह भी कहा कि इस अवसर पर राजकुमार ने भी वरण करने को अनिच्छुक राज-कन्या को बलपूर्वक ग्रहण करके धर्म विरुद्ध कार्य किया है। उन्होंने पहले भी कई स्वयवरों में ऐसा ही कार्य करके अन्य राजपुत्रों से शत्रुता मोल ले ली है और इसी कारण उन सब ने मिल कर उन्हें पराजित किया है ॥१–६॥

तेपामेतद्वच.श्रु त्वावीरावीरप्रजावती।
वीरगोत्रसमुद्भू तावीरपत्नीप्रहर्पिता ॥७
उवाचभर्तु प्रत्यक्षमन्येषाचमहीक्षिताम् ।
भद्र कृतभद्रभुजाममपुत्रेणपार्थिवा ॥८
गृहीतायद्वलात्कन्याजित्वासर्वमहीक्षित ।
तदर्थयुध्यमानोऽयवद्धएकोनधर्मत: ॥९
तदप्यस्मत्सुतस्याजौमन्येनापचयदप्रदम् ।
एतदेवहिपौरुष्ययदमर्पवशान्नर ॥१०
नीतिनगणयत्येवजिघासुरिवकेसरी ।
स्वयवरायविन्यस्तामामपुत्रेणकन्यका ॥११
वह्वचोगृहीताभूपानापश्यतामतिमानिनाम् ।
क्षत्रक्षत्रियकुलेजन्मक्वयाच्ञाहीनसेविता ॥१२

वलादेवसमादत्तं क्षत्रियोवलिनांपुरः ।
लोहशृङ्खलवद्धावानवशयान्तिकातरा ॥१३
प्रसह्यकारिणोयान्तिराजानोधर्मशालिन ।
तदलन्दौर्मनस्येनश्लाघ्यमेवास्यवन्धनम् ॥१४

इस प्रकार की बात सुन कर अवीक्षित की माता वीर वशीय वीरा देवी बहुत प्रसन्न हो कर महाराज करन्धम तथा अन्य सामन्तों के सामने कहने लगी कि मेरे पुत्र ने यदि सब राजाओं को हरा कर कन्या को बल पूर्वक ग्रहण किया तो यह कार्य प्रशंसा योग्य ही है। इसके फलस्वरूप वह अधर्मयुद्ध में बाँध लिया गया तो इसमे भी मेरी सम्मति मे उसकी कोई हानि नहीं हुई। पुरुषार्थी का तो यही कर्त्तव्य है कि वह अधर्म से मार ने की इच्छा रखने वालों से भी भयभीत न हो और सिंह के समान सब का मुकाबला करता रहे। अगर मेरे पुत्र ने अनेक स्वयंवरों में सम्मानित राजागणों के सम्मुख कन्याओं को बलपूर्वक ग्रहण किया तो इसे भी मैं क्षत्रियोचित कार्य ही मानती हू। तुच्छ व्यक्तियों के समान किसी वस्तु को मांगने की अपेक्षा उसे और शक्ति प्रकट करके ग्रहण करना श्लाघनीय ही है। क्षत्रियों की शोभा तो इसी में है कि वह बलवानों के सम्मुख भी अपना पराक्रम दिखलाकर बल-पूर्वक ग्रहण करे इस प्रकार के कार्य मे अगर जञ्जीर से बाँध भी लिया जाय, तो भी वह भयभीत होकर किसी की वश्यता स्वीकार नहीं करता। यदि मनुष्य निडर हो कर पूर्ण दिखलाने के बाद बन्धन ग्रस्त भी हो जाय तो मैं इसमें कोई बुराई नहीं समझती, वरन् मैं तो ऐसी पराजय को भी प्रशंसा का कारण मानती हूँ ॥७-१४॥

युष्मावमपियेपूर्वंकृत्वारीणानिपातनम् ।
दृष्ट्वैवपृथिवीशानापृथ्वीपुत्रादिकवसु ॥१५
भार्य्यावीर्यनिमित्तानिततोयाताविगौरवम् ॥
तत्वयंतारणायायुम्यन्दनान्यधिरोहत ॥१६
सज्जीकुरुतनागाश्वमचिरेणससारथिम् ।
मन्यध्वंकिमहीपालैर्बहुभिःसहविग्रहम् ॥१७

प्रगृह्य एवतोपायश्च स्यात्ल्पगेऽक्रिया ।
कस्यनाल्पेपुसामर्थ्यनरेन्द्रादिपुजायते ॥१८
येष्योनविद्यतेभीतिर्विक्रांतस्यापिशत्रुषु ।
व्यरोचतेनिशूरःसतमासीवदिवाकर ॥१९
इत्थमुद्धर्षितोराजाऽनयापत्न्याकरन्धमः ।
चकारसवलोद्योगहन्तुंपुत्राहितान्मुने ॥२०
ततस्तस्यसमभूपैर्विशालेनचसङ्गरः ।
बभूवबद्धपुत्रस्यतैरशेषैर्महामुने ॥२१

वीरा ने कहा कि आपके पूर्वजो ने भी इसी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उनके राज्य, कोष और पुत्र आदि पर अधिकार किया था। राजा लोग पृथ्वी धन, भार्या आदि समानता वालो से ही छीन कर इकट्ठी करते हैं और उसके लिये आघात सहना भी श्लाघनीय मानते है। इसलिये आप शीघ्र रथ, हाथी, घोडो को सजाकर युद्ध के लिये तैयार हो। वीरगण छोटे युद्ध मे भी अपनी पूरी वीरता दिखला कर गौरव प्राप्त करते हैं। तो फिर ऐसे स मान्य राजाओ पर आक्रमण करने मे आप लोगो को क्या भय हो सकता है? सूर्य जिस प्रकार समस्त दिशाओ के अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार जो शूरवीर हर प्रकार के शत्रु को पराजित करने के लिये तैयार रहता है, वही सच्चा बहादुर है। मार्कण्डेय जी ने कहा कि राज महिषी द्वारा इस प्रकार उत्साह और प्रेरणा दिलाये जाने पर महाराज करन्धम तुरन्त पुत्र के शत्रुओं पर आक्रमण करने को रवाना हो गये और शीघ्र ही विशाल राजा नगर के समीप पहुच कर वहाँ एकत्रित सब राजाओ से युद्ध करने लगे ॥१५–२१॥

दिनत्रयमभूद्युद्धंतेनराज्ञासमंतदा ।
करन्धमेनभूपानांविशालस्यानुकुर्वताम् ॥२२
यदापराजितप्रायतत्सर्वंभूपमण्डलम् ।
तदाविशालोऽर्ध्यकर करन्धमभुपस्थितः ॥२३

करंधमोऽपिसप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजित ।
विमुक्ते तनयेतत्रनिशातासुखमावसत् ॥२४
ताचकन्यामुपादायविशालसमुपस्थितम् ।
अविक्षित्प्राहविप्रर्षे विवाहार्थपितु पुर ॥२५
नाहमेताग्रहीष्यामिनचान्यांयोपितनृप ।
परैर्यस्यानिरीक्षन्त्या सग्रामेऽहपराजित ॥२६
अन्यस्मैसप्रयच्छेमामियश्चान्यवृणोतुतम् ।
अखण्डितयशोवीर्य्योय परैर्नापमानित ॥२७

विशाल राजा तथा उसके साथी राजाओं से करन्धम का युद्ध तीन दिन तक चलता रहा और अन्त म वे सब पूर्णत पराजित होगये। तब विशालराज पूजा सामग्री लेकर करन्धम के सामने उपस्थित हुए। करन्धम ने इस पर शत्रु-भाव त्याग दिया और राजा द्वारा पूजित होकर तथा पुत्र को छुड़ा कर उस दिन वहीं ठहरे। जब विशालराज अपनी कन्या का विवाह अवीक्षित से करने को प्रस्तुत हुए तो उसने इसे अस्वीकार कर दिया और पिता के सामने ही कहा कि—हे महाराज! जिस कन्या के सामने मैं शत्रुओं से परास्त होगया उसको तो कभी ग्रहण कर ही नहीं सकता, साथ ही अब किसी अन्य कन्या से भी विवाह नहीं करूँगा। आप इसका विवाह किसी ऐसे वीर से कीजिये जो कभी शत्रुओं से पराजित न हुआ हो और जिसका यश अखण्डित बना हो ॥२२-२७॥

परैः पराजितोऽहयत्कातरेयथाऽबला ।
किमत्रमानुपत्वमेनैतस्याममचान्तरम् ॥२८
स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रामदाऽबला ।
नरोऽपिपरतन्त्रोयस्तस्यकीदृड्मनुष्यता ॥२९
सोऽहमस्यामुखभूयोदृष्ट दर्शयिताकथम् ।
योऽहमस्या पुरोभूमौपरैर्भू पैः खिलीकृतः ॥३०
इत्युक्ते तेनतनयामुवाचजगतीपति ।
श्रु तेतेवचनवत्सेवदतोऽस्यमहात्मन ॥३१

वयवासप्रयच्छामोयस्मिरतस्मिस्तवाद्दति ।
एतयोंह्य्र्यमातिष्ठमार्गयो रुचिराननने ॥३२
पराजितोऽप्यवहुभिनसम्यग्सम्यगाचरन् ।
सग्रामेतद्यशोवीर्य्यहानिकारिनपार्थिव ॥३३
एकोवहूनांयुद्धायगजानामिवकेसरी ।
यत्सस्थितः परशौर्य्यंतेनास्यप्रकटीकृतम् ॥३४
नकेवलमयतस्थोयुद्धे तेऽप्यखिलाजिताः ।
वहुशोऽनेनयत्नेनविक्रमोऽपिप्रकाशितः ॥३५
शौर्य्यविक्रमसयुक्तगिम्सर्वमहीक्षित ।
धम्मयुद्धमधर्मेणजितवन्तोऽनकाःनपा ॥३६

अवीक्षित ने कहा—हे राजन् ! जब मैं इसके सामने एक कातर अबला के सामने शत्रुओं द्वारा बन्धन ग्रस्त होगया तो मेरा पुरुषत्व ही क्या रहा ? अतएव अब मुझ में और इस कन्या में कोई भेद नहीं रहा। पुरुष का मुख्य लक्षण तो स्वाधीन होना है और नारियाँ सर्वत्र पराधीन मानी गई हैं। इसलिये पुरुष होकर जो पराधीन होगया उसका पौरुष कहाँ रहा ? जिसके सामने मैं समस्त राजाओं से पराजित होगया हूँ उसको अपना मुँह किस साहस से दिखाऊँगा ? महीपाल विशाल ने अवीक्षित के वचन सुनकर कन्या से कहा कि तुमने राजकुमार की बात सुनली। अब तुम्हारी इच्छा हो तो किसी भी राजा को स्वेच्छा पूर्वक वरण करलो अन्यथा पिता के कर्तव्य का ध्यान रखता हुआ मैं जिसके योग्य समझूँ उसके साथ तुम्हारा पाणिग्रहण सस्कार कर दूँ। इन दोनों बातों म से तुमको जो स्वीकार हो वह कहो ॥२८–३२॥ कन्या ने कहा—पिताजी ! इन राजकुमार ने बहुत से वीरों के साथ सग्राम किया और फिर भी पूर्णत पराजित नहीं हो सके। इन्होंने जो अकेले ही इतने, राजाओं के साथ घोर युद्ध किया इससे ही इनका सर्वोत्कृष्ट शौर्य प्रकट होगया। केवल युद्ध में निर्भीक भाव स स्थित ही नहीं रहे वरन् समस्त राजाओं को इन्होंने अनेक बार हराया भी। फिर इन धर्म युद्ध के नियम का पालन, करने वाले को अनेक

राजाओं ने मिलकर प्रथम युद्ध में हराया, इसमें मुझे लज्जा की कोई बात नहीं जान पड़ती ॥३३-३६॥

नचापिरूपमात्रेऽह्लोभमस्यंगताऽपित ।
शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणिहरन्त्यस्यमनोमम ॥३७
तत्किमुक्तेनबहुनायाच्यतामत्कृतेनृप ।
त्वयामहानुभावोऽयनान्योमेभवितापति ॥३८
राजपुत्रसुताप्राहममैतच्छोभनवचः ।
एवचवरत्वयातुल्य कुमारोनमहीतले ॥३९
अविसवादितेशौर्य्यमतीवचपराक्रमं ।
पावयास्मत्कुलवीरदुहितुर्मेपरिग्रहात् ॥४०
नाहमेताग्रहीष्यामिनचान्यायोषितनृप ।
आत्मन्येवहिमेबुद्धि स्त्रीमयीमनुजेश्वर ॥४१
ततःकरन्धम प्राहपुत्रेयगृह्यताःत्वया ।
विशालतनयासुभ्रू स्त्वयिहार्दवतीदृढम् ॥४२
नाज्ञाभङ्ग कदाचित्तेकृत पूर्वमयाप्रभो ।
तथाऽऽज्ञापयमातातयथाज्ञाकरवाणिते ॥४३

कन्या ने कहा—मैं इनके रूप को देखकर ही विवाहोद्यत नहीं हुई हूँ वरन् इनके शौर्य तथा पराक्रम ने मेरे मन में घर कर लिया है। इसलिये पिताजी! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं कभी अन्य किसी को वरण नहीं करूँगी। आप इनको ही मेरे लिये समझाइये। इस पर राजा विशाल ने अवीक्षित से कहा—राजकुमार! मेरी कन्या ने जो कुछ कहा वह बिल्कुल ठीक ही है। तुम्हारे समान राजकुमार मुझे कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। तुम्हारी वीरता में कुछ भी सन्देह नहीं और तुम्हारा पराक्रम भी प्रत्यक्ष ही है, इसलिये तुम्हारे द्वारा मेरी कन्या का पाणिग्रहण किये जाने से मेरा कुल पवित्र होगा। यह सुनकर अवीक्षित ने कहा—"राजन्! अब मैं इस अथवा किसी भी अन्य स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि मैं अब अपने को स्त्री ही समझता हूँ।" तब महाराज करन्धम ने भी अपने पुत्र को समझाया कि तुम

इस कन्या का पाणिग्रहण करो, क्योंकि इसको तुम्हारे प्रति हार्दिक अनुराग उत्पन्न होगया है। अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! मैंने आज तक कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। इसलिये आप मुझे ऐसी कोई आज्ञा न दें जिसे पालन करने में समर्थ न होऊँ ॥३७-४३॥

अत्यन्तनिश्चितमतौतस्मिन्राजसुतेसुताम् ।
तामुवाचविशालोऽपिव्याकुलीकृतमानस ॥४४
निवर्त्यतामन पुत्रिएतस्मात्त्वप्रयोजनात् ।
अन्यवरयभर्त्तारसन्त्यनेकेनृपात्मजा ॥४५
वरवृणोम्यहतातमामेपयदिनेच्छति ।
तपसाऽन्योनमेभर्त्ताजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥४६
तत करन्धमोराजाविशालेनसममुदा ।
स्थित्वादिनत्रयतत्रनिजमभ्याययोपुरम् ॥४७
अविक्षितोपितेनैवपित्रान्यैश्चनराधिपै ।
निदर्शनै पुरावृत्तं सान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ॥४८

जब विशाल राजा ने देखा कि अवीक्षित ने विवाह न करने का दृढ निश्चय कर लिया है तो उसने अपनी पुत्री से कहा कि जब इस राजपुत्र की ऐसी भावना होगई है तो अब तू इस विचार को त्याग कर किसी अन्य राजपुत्र का वरण करले। कन्या ने उत्तर दिया—पिताजी ! यदि ये राजपुत्र विवाहार्थी नहीं होते तो मेरा निश्चय भी यही है कि इस जन्म में मेरा पति 'तपस्या' के अतिरिक्त और कोई न होगा। मार्कण्डेय जी कहने लगे—राजा करन्धम तीन दिन तक विशाल राजा के यहाँ अतिथि सत्कार ग्रहण करके अपनी राजधानी को वापस चले गये और उनके तथा अन्य सामन्तों के समझाने से अवीक्षित भी उनके साथ चले गये ॥४४-४८॥

सापिकन्यानगत्वानिसृष्टानिजबान्धवै ।
तपस्तेपेनिराहारावैराग्यपरमास्थिता ॥४६
निराहारायदासातुमासत्रयमवस्थिता ।
सम्प्रापपरमामार्तिकृशाधमनिसन्तता ॥५०

मन्दोत्साहातितन्वङ्गीमुमूर्पुरपिबालिका ।
देहत्यागायमाचक्रे तदावुद्धिनृपात्मजा ॥५१
घात्मत्यागायतान्ज्ञात्वाकृनवुद्धिसुरान्तत ।
समेत्यप्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिकम् ॥५२
समुपेत्यसताप्राहदूतोऽहपार्थिवात्मजे ।
प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यमत्त्यायंतन्निशामय ॥५३
नभवत्यापरित्याज्यशरीरमतिदुर्लभम् ।
त्वभविष्यसिकल्याणिजननीचक्रवर्तिन ॥५४
पुत्रेणत्वमहाभागेभोक्तव्यानिहतारिणा ।
अव्याहताज्ञे नचिरसप्तद्वीपवतीमही ॥५५
हन्तव्यस्तेनतरुजिद्‌वानापुरतोरिपुः ।
भय नकुस्तथाकृ रोधमेस्थाप्यास्तत प्रजा ॥५६
प रपालनीयमखिलचातुर्वर्ण्यंस्वधर्मतः ।
हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छायेचान्येदुष्टचेष्टिना ॥५७
यष्टव्यविविधैर्यज्ञै समाप्तवरदक्षिणै ।
वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रं श्रसख्यया ॥५८

उधर वह विशाल राजा की कन्या भी परिवार वालों से विदा ले वन में निवास करती हुई बड़े सयम-नियम के साथ तपस्या करने लगी। इस प्रकार तीन महीने तक निराहार रहने से वह अत्यन्त दुर्बल होगई और उसके शरीर की नसें दिखलाई पड़ने लगीं। अपने शरीर की ऐसी दशा देखकर उस कन्या ने निराश हो प्राण त्याग का निश्चय किया। जब देवताओं ने उसको ऐसा कार्य करते देखा तो उन्होंने एक देवदूत उसके पास भेजा, जिसने उस तपोवन में आकर कहा—हे राजकुमारी! मैं देवताओं का दूत हूँ। उन्होंने कहलाया है कि यह दुर्लभ शरीर सहज में नहीं मिलता तुम प्राण त्याग मत करो, तुम आगे चलकर एक चक्रवर्ती राजा की जननी बनोगी। हे महाभागे! तुम्हारा पुत्र अपने बाहुबल से समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अनेक वर्षों तक समस्त पृथ्वी का अधीश्वर बना रहेगा। वह देवताओं के शत्रु तरुजित् और

अप शत्रु को भी मारकर उनका हितकारी होगा। वह प्रजा को धर्माचरण के लिए प्रेरित करेगा, चातुर्वर्ण्य धर्म को प्रतिष्ठित करेगा और म्लेच्छ, दस्यु आदि दुष्टों को नष्ट करके प्रजा को सुखी करेगा। वह बड़ी दक्षिणा वाले अश्वमेध और अन्य प्रकार के छ हजार यज्ञ करेगा ॥४६-५८॥

तद्दृष्ट्वासास्तीरक्षस्थदिव्यस्रगनुलेपनम् ।
देवदूतमुवाचेदराजपुत्रीततोमृदु ॥५६
सत्यत्वमागत स्वर्गाद्देवदूतोनसशय ।
किन्तुभर्त्राविनापुत्र सकथमेमविष्यति ॥६०
अविक्षितमृतेभर्त्तामिमनान्योऽत्रजन्मनि ।
भवितेतिप्रतिज्ञातमयैतत्सन्निधौपितु ॥६१
सचनेच्छतिमाप्रोक्तोमरिपत्राजनकेनच ।
करन्धमेनायसम्यग्याचितश्चमयातथा ॥६२
विमनेनमहाभागेबहुनोक्तं नतेसुत ।
समुत्पत्स्यतिमात्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मत ॥६३
अत्रैवकाननेतिष्ठनतु क्षीणाचपोषय ।
तप प्रभावादेतत्तेसर्वंसाधुभविष्यति ॥६३
इत्युक्त्वादेवदूतोऽसौयथागतमगच्छत ।
चकारानुदिनसुभ्रू साप्यात्मतनुपोषणम् ॥६५

मार्कण्डेय जी कहने लगे—वह राज्य कन्या उस दिव्य विहारों से युक्त देवदूत को आकाश में देखकर मीठी वाणी से कहने लगी—आप स्वर्ग के देवदूत हैं और इस कारण आपकी बातें असत्य नहीं हो सकतीं, पर पति के बिना मेरे पुत्र किस प्रकार होगा? मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि अवीक्षित के अतिरिक्त मैं किसी और को वरण नहीं करूँगी और उन्होंने मेरे पिता, अपने पिता तथा मेरे अनुरोध को भी स्पष्ट अस्वीकार करके विवाह न करने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया है। देवदूत ने कहा—देवगण का कथन अन्यथा नहीं हो सकता, निःसन्देह तुमको पुत्र उत्पन्न होगा। इसलिये तुम इस आत्म-हत्या रूपी पाप के विचार को त्याग कर इस वन में रहकर ही अपनी देह की रक्षा करो। तपस्या

के प्रभाव से तुम्हारे सभी मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे। इस प्रकार विशाल राजा की कन्या को समझा कर देवदूत अपने स्थान को चला गया और वह भी आहार ग्रहण करके शरीर का पोषण करने लगी ॥५६—६५॥

११२—अवीक्षित चरित्र (४)

अथसाऽविक्षितोमातावीरावीरप्रजावती ।
पुण्येऽह्निसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥१
पुत्राहमभ्यनुज्ञाताततवपित्रामहात्मना ।
उपवासकरिष्यामिदुष्करोऽयकिमिच्छकः ॥२
सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ।
प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रततस्तत्रयताम्यहम् ॥३
द्रव्यस्यार्द्धमहाकाशात्तवदास्याम्यहपितु ।
धनतेपितुरायसमनुज्ञाताऽस्मितेनच ॥४
क्लेशसाध्योमदा-त्त सहिश्रे योभविष्यति ।
साध्योभवेद्वायदितेकश्चिद्वलपराक्रमं ॥५
सनेऽसाध्योह्यन्यथावादु त्साध्योभविष्यति ।
तन्वप्रतिज्ञाकुरुयेयदिपुत्राश्चैवते ।
तदेतदहमावाप्स्येकच्छतायम्ततव ॥६

मार्कण्डेय जी कहने लगे—किसी समय अवीक्षित की माता वीरादेवी ने अपने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा ! मैं 'किमिच्छिक' नाम का दुष्कर व्रत करना चाहती हूं और तुम्हारे पिताने उसकी आज्ञा देदी है। यह व्रत तुम्हारे पिता, मेरे और तुम्हारे सहयोग स पूर्ण हो सकता है, इसलिये जब तुम उसकी प्रतिज्ञा कर लोगे तभी मैं उसे आरम्भ करूँगी। इस व्रत म मुझे राज्यकोप का आधा धन दान करना है और इसके लिये तुम्हारे पिता न स्वीकृति देदी है। शरीर के कष्ट का सहन करना मेरा काम है, उसे मैं भली प्रकार सम्पन्न करूँगी

और बल तथा पराक्रम से होने वाला जितना कार्य है वह तुम्हारे अधीन है। यह कार्य सुसाध्य, दुःसाध्य और असाध्य भी हो सकता। इसलिये तुम समस्त कार्यों को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो तो मैं इस धन को आरम्भ करूँ। इस-लिये तुम्हारा जैसा विचार हो वह स्पष्ट कहो ॥१-६॥

वित्तमेषितुमायत्तमस्त्वामित्यनघ ब्रवे ।
यन्मयाद्धरीरनिष्पाद्य तत्त्वारिप्येत्ययोदितम् ॥७
किमिच्छन्प्रतमातनिश्चिन्ताभवनिर्यया ।
रामाचिन्ताऽभ्यनुज्ञातयदिवित्तस्वरेणुमे ॥८
तत गाङ्गजमहिषीनद्धतगमुपोदिता ।
यथोक्तमाऽवराःसूजाराराजराजगमनगमना ॥९
निधीनामस्यदेवपाणां निधिपालगणस्य च ।
नरःस्वाम्भपरयाभवप्रावनवारवायमानगा ॥१०
विविक्ते तुष्टहृष्टोऽयममराज्ञापरस्य च ।
प्राचीनज्ज सविवर्णौस्त्रिशाम्बविशारदे ॥११
राजाऽपद्म परिगमन्तवंतचद्यासनोमहीम् ।

बड़े उत्साह पूर्वक उस व्रत को आरम्भ किया और उपवास रखकर काम, मन, वचन से पूर्ण संयम करते हुए शास्त्र विधि से निधि समूह, निधिपालगण और लक्ष्मी देवी का पूजन करने लगी। इस अवसर पर महाराज करन्धम अपने सुयोग्य मन्त्रियों के साथ मन्त्रणागृह में बैठ कर सब व्यवस्था करते रहते थे। उस समय मंत्रियों ने राजा से कहा—हे महाराज ! राज्य का पालन करते हुए आपकी अवस्था पूर्ण हो चली है और आपके एकमात्र पुत्र ने स्त्री सम्पर्क त्याग कर कोई सन्तान उत्पन्न नहीं की है। यदि वे आजन्म इसी प्रकार ब्रह्मचारी बने रहे तो अन्त में आपका यह राज्य शत्रुओं के अधिकार में चला जायगा। इस प्रकार आपका वंश क्षय होकर पितरों का श्राद्ध और तर्पण बन्द हो जायगा। इस प्रकार सब क्रियाओं के रुक जाने पर शत्रुओं का भय उपस्थित होगा। इसलिये जैसे भी सम्भव हो आप ऐसा उपाय कीजिये जिससे आपका पुत्र गृहस्थ आश्रम स्वीकार करके पितरों के श्राद्ध और तर्पण को स्थिर रख सके ॥७-१५॥

एतस्मिन्नन्तरेशब्द शुश्रावजगतीपति. ।
पुरोहितस्यवीरायागदतोह्यर्थिनप्रति ॥१६
क किमिच्छतिदु साध्यकस्यंकिसाध्यतामिति ।
करन्धमस्यमहिपीकिमिच्छिकमुपोपिता ॥१७
राजपुत्रोऽप्यविक्षित् श्रुत्वापौरोहितवच ।
प्ररयुवाचार्थिन भर्त्राश्राजद्वारमुपागतान् ॥१८
मयासाध्यशरीरेणयस्यकिञ्चिद्ब्रवीतुस. ।
ममभातामहाभागाकिमिच्छकमुपोपिता ॥१९
श्रृणुवन्तुमेर्थिन. सर्वेप्रतिज्ञातमयातदा ।
किमिच्छथददाम्येपक्रियमाणेकिमिच्छके ॥२०
ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यपुत्रमुखाच्छ्रुतम् ।
तमुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे ॥२१
दातव्ययन्मयातातभवतेतद्ब्रवीहिमाम् ।
कर्तव्यदुष्करवातेसाध्यदु साध्यमेववा ॥२२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—उसी समय राजा के कानों में पुरोहितों के ये शब्द आये कि 'करन्धम की राजमहिषी 'किमिच्छक' व्रत करती है—तुम क्या इच्छा करते हो ? जिसका जो कठिन कार्य पूरा किया जाने को हो वह उसके सम्मुख कहो।" राजपुत्र अवीक्षित ने भी पुरोहितों के इन वचनों को सुना और तब वह भी द्वार पर आकर कहने लगे—'हे अर्थीगणो ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरी भाग्यवती माता जो 'किमिच्छक' व्रत कर रही हैं उसके सम्बन्ध में मैं भी प्रत्येक कार्य, जो कुछ मेरे शरीर से सम्भव है, पूरा करने को प्रस्तुत हूं। जब राजा करन्धम ने अवीक्षित को इस प्रकार कहते सुना तो उसने अवीक्षित के सामने जाकर कहा—'पुत्र ! मैं भी अर्थी हूं, मेरी अभिलाषा को भी पूर्ण करो।" अवीक्षित ने कहा—पिताजी ! मैं आपको क्या दूं ? आप जो चाहते हों उसकी आज्ञा दें वह कार्य कैसे भी दुःसाध्य या असाध्य भी क्यों न हो मैं उसे पूरा करूंगा ।।१६–२२।।

यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वददासिचकिमिच्छकम् ।
पौत्रस्यदर्शयमुखममोत्सङ्गगतस्यतत् ।।२३
अहन्तवैकस्तनयोब्रह्मचर्य्यंचमेनृप ।
नमेपुत्रोऽस्तिपौत्रस्यदर्शयामिकथमुखम् ।।२४
पापायब्रह्मचर्य्यन्तेयदिदं धार्य्यतेत्वया ।
तस्मात्त्वमोचयात्मानममपौत्रंचदर्शय ।।२५
विषमस्यान्महाराजयदन्यत्तत्समादिश ।
वैराग्येणमयात्यक्तः स्त्रीसंभोगस्तथास्तुसः ।।२६
बहुभिर्युध्यमानानांदृष्टोवैवैरिणाजय ।
तत्रापियदिवैराग्यमुपैपितदपण्डित ।।२७
किंवानोबहुनोक्तेनब्रह्मचर्य्यंपरित्यज ।
मातुस्त्वमिच्छयावक्त्रंपौत्रस्यममदर्शय ।।२८

राजा ने कहा—"अगर तुमने किमिच्छक व्रत में दान करने की प्रतिज्ञा सचमुच की है तो मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।' अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! आपका एकमात्र पुत्र तो मैं ही हूं और मैंने सर्वव के लिये ब्रह्मचर्य

पालन का निश्चय किया है और मेरे कोई पुत्र नहीं है। इस कारण आपको पौत्र का मुख कैसे दिखा सकता हूं ?" महाराज करन्धम ने कहा—तुमने जो ब्रह्मचर्य धारण किया है वह नीति विरुद्ध पाप कार्य है। इसलिये उसे त्याग कर मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।" अवीक्षित ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग मेरे मन के बहुत विरुद्ध है। मैंने वैराग्य भावना से स्त्री-सम्पर्क का त्याग किया है, अतएव आप मुझे ऐसी आज्ञा दें जिससे मेरा व्रत खंडित न हो। राजा ने कहा—तुमने बडी-बडी सेनाओं सहित प्रबल वैरियों को हराया है, इस पर भी तुम वैराग्य धारण करते हो तो कोई तुमको बुद्धिमान् नहीं कह सकता। कुछ भी हो, इस विषय में अधिक विवाद न करके अपनी माता के व्रत का पालन करने के लिये मुझे पौत्र का मुख दिखाओ ॥२३-२८॥

यदासबहुशस्तेनप्रोक्त पुत्रेणपार्थिवः ।
नान्यत्प्रार्थयतेकिंचित्तदापुनोऽब्रवीत्पुन ॥२६
दत्वाकिमिच्छकतुभ्यप्राप्तोऽहंतातसङ्कटम् ।
तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ॥३०
स्त्रिया समक्षविजित पतितोधरणीतले ।
स्त्रीपतिर्भविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥३१
तथापिकिकरोम्येपसत्यपाशवङ्गतः ।
करिष्यामियथाऽऽज्ञप्तभुज्यतानिजशासनम् ॥३२

मार्कण्डेय जी कहने लगे—यद्यपि अवीक्षित ने बार-बार अपनी कठिनाई बतलाई और राजा से कोई दूसरी बात मांग लेने को कहा—पर जब वे न माने तो उसने कहा—"पिताजी ! मैं 'किमिच्छक' व्रत के लिये इच्छानुसार दान देने की प्रतिज्ञा करके सङ्कट में पड गया हूं इसलिए निर्लज्ज होकर फिर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होना ही पडेगा। अन्यथा सच्ची बात तो यह है कि जब मैं स्त्री के सामने पराजित होकर पृथिवी में गिर गया तो अब मैं स्त्री और वह पति के समान होगी, वास्तव में यह मेरे लिये बडा कठिन कार्य है। तोभी जब मैं आपसे प्रतीज्ञा-बन्धन में बंध गया हूं, तो आपने जो कहा है उसे अवश्य

करूँगा। आप अब इस विषय में निश्चिन्त हो जायें और अपना राज्य-कार्य यथापूर्व करते रहें ॥२६-३२॥

११३—अवीक्षित चरित्र (५)

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च शार्दूलादींश्च द्विपान् ॥१
शुश्राव महतीं नादं त्राहि त्राहीति योषितः ।
विमोचयत्या मुहुर्मुहुर्भयगद्गदमुच्चकैः ॥२
मा भैर्मा भैरितीत्युक्त्वा राजपुत्रः स वेगितः ।
चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः ॥३
तत्र प्राप विभुस्तत्र कन्यकां विजने वने ।
गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥४
करन्धमसुतस्याहं भार्या पापेन विहिता ।
हृता दानवेनाविविक्ते पृथिवीशस्य धीमतः ॥५
यस्य गन्धर्वमहीपाला मानवा गन्धर्वगुह्यकाः ।
गमनर्वा पुत्रः स्यात्तु तस्य भार्या हृतास्म्यहम् ॥६
यस्य गृहाणि विभवा पातालस्वर्गपतयः ।
करन्धमसुतस्यैव तस्य भार्या हृतास्म्यहम् ॥७

आदि देवगण भी शत्रुभाव से नहीं ठहरते हैं, मैं उनकी ही पत्नी होकर हरण की जा रही हूं। जिनके क्रोध में पड़कर कोई बचकर नहीं आ सकता और जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं, उन महाराज करन्धम के पुत्र की भार्या को यह पापी हरण कर रहा है ॥१-७॥

इत्याकर्ण्यंमहीपालतनयःसशरासनी ।
चिन्तयामासकिमिद ममभार्य्यात्रकानने ॥८
मायेयरक्षसांनूनंदुष्टानांकाननौकसाम् ।
अथवागतएवाहंसर्वं वेत्स्यामिकारणम् ॥९
त्वरित सततोगत्वाहदर्शातिमनोरमाम् ।
काननेकन्यकामेकासर्वालङ्कारभूपिताम् ॥१०
गृहीतांदनुपुत्रेणहृढकेशेनदंडिना ।
त्राहित्राहीतिकरुणविक्रोशन्तीपुनःपुनः ॥११
माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंवदन् ।
शासतीमांमहीदुष्टःकोदूयेतकरंधमे ॥१२
यस्यप्रतापावनताभुविसर्वेमहीक्षितः ।
ततस्तमागतदृष्ट्वागृहीतवरकामुंकम् ॥१३
मांत्राहीत्याहतन्वङ्गीहृतास्म्येपेतिचासकृत् ।
राज्ञःकरन्धमस्याहस्नुषाभार्य्याप्यविक्षितः ।
हृतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाऽनाथवद्वने ॥१४

मार्कण्डेयजी कहने लगे—अवीक्षित इन शब्दों को सुनकर विचार करने लगा कि इस वन में मेरी पत्नी कहाँ से आयी। हो न हो यह राक्षसों की माया है। तोभी जब आगे बढ़ कर उन्होंने देखा कि दृढकेश नामक दानव अनेक आभूषणों से युक्त एक अत्यन्त मनोहर कन्या को पकड़ रहा है और वह बार-बार 'त्राहि-त्राहि' कहकर रो रही है तो उन्होंने कन्या से कहा—'डरो मत।' फिर वे उस दानव से बोले—अब तेरी मृत्यु आ चुकी है, महाराज करन्धम के शासन-काल में कौन इस प्रकार अत्याचार कर सकता है। जिन महाराज करन्धम के सम्मुख पृथ्वी के समस्त नृपतिगण मस्तक झुकाते हैं, उनके शासन

मे कोई दुष्ट जीवित नहीं रह सकता। उस समय उन प्रचण्ड धनुष धारण किये हुये राजकुमार को वहाँ आया देखकर वह कुमारी बार बार कहने लगी—"मेरी रक्षा करो—यह दुष्ट मुझे अपहरण कर रहा है। मैं करन्धम पुत्र अवीक्षित की भार्या हूँ और सनाथ होकर भी इस समय अनाथ के समान हरण की जा रही हूँ ॥८–१४॥

ततोविमममृशेवाक्यमविक्षित्ततयोदितम् ।
कथमेपाहिमेभार्य्यास्नुपातातस्यवाकथम् ॥१५
अथवामोचयाम्येतातन्वीवेत्स्यामितत्पुनः ।
क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रमार्त्तानांत्राणकारणात् ॥१६
तत क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवंतसुदुर्मतिम् ।
जीवन्गच्छविमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि ॥१७
तत सतांविहायोच्चै दंण्डमुत्क्षिप्यदानवः ।
तमप्यधावत्सोऽप्येनशरवर्षैरवाकिरत ॥१८
सवार्य्यमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वित ।
राजपुत्रायचिक्षेपदण्डशंकुशतावृतम् ॥१९
समापतन्तंचिच्छेदशरैर्भूपसुतस्ततः ।
सोऽप्यासन्न गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौव्यवस्थितः ॥२०
सृजतः शरवर्षाणितचिक्षेपततोद्रुमम् ।
सचतंतिलशश्चक्रे भल्लैः कार्मुकमोचितैः ॥२१
ततश्चिक्षेपचशिलाराजपुत्रायदानवः ।
सापिमोघापपातोर्व्यांमुक्तानातेनलाघवात् ॥२२
राजपुत्रायकुपितोयद्यच्चिक्षेपदानवः ।
ततच्चिच्छेदबाणौघैर्भूभृत्सूनुः सलीलया ॥२३

व्यक्तियों की रक्षा के लिए ही क्षत्रीगण शस्त्र धारण करते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस दुष्ट दानव से कहा यदि तुझे अपनी जान बचानी हो तो यहाँ से शीघ्र भाग कर चला जा, अन्यथा मैं तुझे अभी यमालय पहुँचाता हूँ। राजपुत्र की बात सुनकर वह उस कन्या को छोड़ दण्ड हाथ में ले उन्हें मारने दौड़ा। अवीक्षित ने उसे बीच में ही बाणों से रोक दिया। दानव ने उन बाणों को रोक कर बड़े अहङ्कार के साथ राजपुत्र पर दण्ड को फेंक कर मारा, पर उन्होंने उसे बाणों से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब दानव एक बड़ा वृक्ष उखाड़ कर मारने को चला, पर अवीक्षित ने बाणों द्वारा उसे भी खण्ड-खण्ड कर डाला। तत्पश्चात् वह बड़े-बड़े शिलाखण्ड लेकर उनके ऊपर फेंकने लगा, पर राजकुमार ने उन सबको बाणों द्वारा व्यर्थ कर दिया। उसने मारने के लिये जो कुछ चलाया उसे अवीक्षित ने सहज में काट डाला ॥१५-२३॥

ततोविच्छिन्नदंडोसाविच्छिन्नसकलायुधः ।
मुष्टिमुद्यम्यसक्रोधोराजपुत्रमधावत ॥२४
तस्यापततएवासौकरन्धमसुतःशिरः ।
छित्त्वार्धेन्दुपत्रेणपातयामासवैभुवि ॥२५
तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ।
करन्धमसुतःसर्वैःसाधुसाध्वितिभाषितः ॥२६
वरवृणीष्वेतितदादेवैरुक्तोनृपात्मजः ।
वव्रे पुत्रंमहावीर्य्यंपितुःप्रियचिकीर्षया ॥२७
भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्त्तीमहाबलः ।
अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायांत्वयानघ ॥२८
पित्राहसत्यपादेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ।
राजर्भिर्निर्जितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ॥२९
साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेः सुता ।
तयाचमत्कृतेत्यक्तोमामृतेनरसङ्गमः ॥३०

भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्तीमहाबलः ।
प्रीणयिष्यतियोदेवानसुरांश्चहनिष्यति ॥३७
इतिदेवाज्ञयातेनदेवदूतेनवारिता ।
नसत्यक्तवतीदेहंत्वत्सङ्गममनोरथा ॥३८

देवों ने कहा—"यह वही विशाल नृप की कन्या है। जिसकी तुम प्रशसा कर रहे हो और जो तुम्हारे लिए वनवासिनी होकर तपस्या कर रही है। इसी के गर्भ से तुम को एक ऐसा पुत्र जन्म ग्रहण करेगा जो सातो द्वीपो का शासन, सहस्रो यज्ञो का करने वाला होगा।" जब देवगण यह कह कर अन्तर्धान हो गये तो राजकुमार ने परनी से पूछा—"तुम इस विपत्ति मे किस प्रकार फंस गई" वह कहने लगी—"जब आप मेरे पिता के नगर से मुझे छोड कर चले आये तब मैं भी दु खित चित्त से परिवार वालो को त्याग वन मे रहने चली आई। यहाँ पर निराहार तपस्या करने से जब मैं अत्यन्त दुर्बल हो गई और निराश होकर देह त्याग का विचार करने लगी तो एक देवदूत ने आकर मुझे ऐसा कहा—"तुम्हारे गर्भ से एक महा पराक्रमी पुत्र जन्म लेगा, जो असुरों को मार कर देवताओं का कृपापात्र बनेगा, इसलिये तुम इस प्रकार आत्मघात मत करो। इस प्रकार आशान्वित हो कर मैंने जीवन त्याग करने का विचार छोड दिया ॥३२–३८॥

परश्वश्चमहाभागस्तातुंगङ्कांह्लदंगता ।
अवतीर्णाविकृष्टास्मिवृद्धनागेनकेनचित् ॥३९
ततोरसतलंनीतातेनतत्रचमेपुरः ।
नागाःसहस्रशस्तस्युर्नागपत्न्यःकुमारकाः ॥४०
तुष्टुवुर्मासमभ्येत्यमामन्येऽपूजयस्तथा ।
ययाचिरेसविनयंनागामामङ्गनास्तथा ॥४१
प्रसादंकुरुसर्वेषांत्वमस्माकसुतस्त्वया ।
अपराधमुपेतानांसनिवार्योविधोन्मुखः ॥४२
अपराधंकरिष्यन्तित्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।
तन्निमित्तं निवार्योऽसौप्रसादःक्रियतामिति ॥४३

नागेन्द्रमयाप्रोक्तो दिव्यैः पातालभूषणैः ।
भूषिताहं तथा पुष्पैर्गन्धैर्वासोभिरुत्तमैः ॥४४
समानीतातथालोकमिमन्तेनानिलाशिना ।
पुरायथाकान्तिमतीपूर्ववद्रूपशालिनी ॥४५
इतिरूपवतींदृष्ट्वासर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जग्राहदृढकेशोऽयंहर्तुं काम सुदुर्मतिः ॥४६
युष्मद्बाहुबलेनाहंराजपुत्रविमोचिता ।
तत्प्रसीदमहाबाहोमाप्रतीच्छत्वयासमः ।
भूलोकेराजपुत्रोऽन्योनास्तिसत्यंब्रवीम्यहम् ॥४७

अभी दो दिन पूर्व जब गंगा के निकटवर्ती कुण्ड में स्नान करने गई तो एक बूढ़ा नाग मुझे खींचकर रसातल में ले गया, जब मैं वहाँ पहुँची तो हजारों नाग, नाग-रमणियाँ और बालक मेरे सामने प्रकट हो गये और मेरी पूजा, स्तुति करके कहने लगे कि आप हमारे ऊपर कृपा करें। जिस समय हम किसी अपराध के कारण आपके पुत्र के सम्मुख दण्डनीय हों तो आप उनको रोक कर हमारी रक्षा करना। यदि वायु भक्षण करने वाले नागगण तुम्हारे पुत्र का कोई अपराध करें तो उस समय आप हमारी सहायिका बनें, यही प्रार्थना हम करते हैं ॥३६–४३॥ जब मैंने उनकी बात स्वीकार करली तब उन्होंने पाताल-लोक के दिव्य आभूषणों, मनोहर गंध, वस्त्र, पुष्प आदि से मुझे सजाया और अंततः मुझे पृथ्वी पर पहुँचा गये और नागों के प्रभाव से पूर्ववत् रूपवती और सौन्दर्य युक्त हो गई। आज मुझे इस प्रकार आभूषणों से विभूषित और रूप-सम्पन्न देख कर यह दृढ़केश नामक दुष्ट दानव हरण करने के लिये आ रहा था कि आप आ गये और उसके पंजे से मुझे छुड़ा लिया। आज आपके ही बाहुबल से मेरी रक्षा हो सकी है इस लिये अब आप ही मुझे ग्रहण करके कृतार्थ करें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस समय आपके सदृश गुणवान् राजकुमार कहीं भी कोई नहीं है ॥४४–४७॥

११४—मरुत जन्म वर्णन

इतितस्यावचः श्रुत्वॉसमृत्वॉपितृवच शुभम् ।
किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तं तेनभूभृता ॥१
प्रत्युवाचसतातन्व्यामविक्षिन्नृपतेः सुतः ।
सानुरागमनाःकन्यात्यक्तभोगाश्चतत्कृते ॥
यदाहृत्यक्तवांस्तन्वींत्वामरातिपराजितः ।
विजित्यशत्रून्सप्राप्तात्वंमयाकिंकरोमिकिम् ॥३
ममपाणिगृहाणत्वरमणीयेऽत्रकानने ।
सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणवान्भवेत् ॥४
एवंभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रकारणम् ।
अन्यथाक्वयमन्यत्रत्वामहञ्चसमागतः ॥५

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजकुमार अवीक्षित ने जब राजकन्या के मुख से यह सब वृत्तान्त सुना और किमिच्छक व्रत के अवसर पर पिता से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण किया और यह भी देखा कि विशाल राज-कन्या ने मेरे ही लिये सब भोग त्याग रखे हैं तब उसके चित्त में उस सौन्दर्यमयी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया उसने कहा—हे सुन्दरी ! शत्रुओं से हार जाने पर ही मैंने तुम्हारा त्याग किया था और आज फिर शत्रु को जीत कर ही तुमको प्राप्त किया है, अत अब मैं क्या करूँ ? राजकुमारी ने उत्तर दिया—इस रमणीय वनस्थली में ही आप मेरा पाणिग्रहण करें तो दो सकाम युवक युवती का यह सम्मिलन सुख शान्ति और सत्परिणाम से सिद्ध होगा । राजकुमार अवीक्षित ने कहा—ऐसा ही हो—तुम्हारा मंगल हो । इस घटना के पीछे स्पष्ट-रूप से दैव का हाथ है, अन्यथा तुम और मैं पृथक् पृथक् स्थान में रहते हुए भी आज इस अवसर पर कैसे इकट्ठे हो सकते थे ॥१-५॥

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वस्तनयोमुने ।
राप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैर्नृप ॥६

राजपुत्रसुतेयम्मेभामिनीनाममानिनी ।
अभिशापादगस्त्यस्यविशालतनयाऽभवत् ॥७
बालभावेनयोऽगस्त्य कोपितःक्रीडमानया ।
ततस्तेनतदाशप्तामानुषीत्वभविष्यसि ॥८
प्रसादित सचास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ।
तवापराद्धविप्रर्षेप्रसाद क्रियतामिति ॥९
प्रसाद्यमान सोऽस्माभिरिदमाहमहामुनिः ।
बालेतिमत्वाशापोऽल्पोदत्तोऽस्यानान्यथैवतत ॥१०
इतिशापा गस्त्यस्यविशालभवनेशुभा ।
जातेयमत्सुतासुभ्र भामिनीनामनामत ॥११॥
तदस्याहृकृतेप्राप्तोगृहाणेमानृपात्मजाम् ।
ममात्मजासुतस्तेऽत्रचक्रवर्तीभविष्यति ॥१२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जिस समय अवीक्षित और विशाल राज-कन्या का यह वार्तालाप हो रहा था उसी समय तनय नामक गधर्व अन्य अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ वहाँ आया। उसने कहा—यह कन्या वास्तव मे मेरी ही है और इसका नाम मानिनी है। अगस्त्य ऋषि को इसने एक बार क्रोधित कर दिया था और तब उन्होंने शाप दिया कि तू मनुष्य योनि मे जन्म ले। मैंने उनसे प्रार्थना कि यह एक अबोध—कन्या है इस के ऊपर क्रोधित होना उचित नही, आप इस पर कृपा करें। महामुनि अगस्त्य जी ने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा कि—बालिका समझ कर ही मैंने इसे सामान्य शाप दिया है, पर अब वह सर्वथा मिट नही सकता मेरी प्रिय कन्या ने उसी शाप के कारण विशाल राजा के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। अब मैं इसके लिये ही यहाँ आया हू कि आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण करें, इसके गर्भ से आप को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा ॥६-१२॥

तथेत्युक्त्वेतितस्याश्चसपाणिपार्थिवात्मज ।
जग्राहविधिवद्धोमचक्रे तत्रचतुम्बुरु ॥१३

प्रजगुर्देवगन्धर्वानननृतुश्चाप्सरोगणा ।
पुष्पाणिससृजुर्मेघादेवत्राद्यानिसस्वनु ॥१४
विवाहेराजपुत्रस्यतयातत्रसमेनृप ।
समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥१५
सतोगन्धर्वलोकन्तेसहतेनमहात्मना ।
निःशेपेणययु साचसचराजसुतोमुने ॥१६
भामिन्यामुमुदेसार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दन ।
साचतेनसमतत्रभोगसम्पत्समन्विता ॥१७
कदाचिदतिरम्येश्मोगगनोपवनेतया ।
विक्रीडतिसमतन्व्याकदाचिद्रुपपर्वते ॥१८
कदाचित्पुलिनेनद्याहसमारसशोभिते ।
कदाचिद्भवनस्याग्रेप्रासादेचातिशोभने ॥१९
विहारदेशेष्वन्येपुरमणीयेष्वहर्निशम् ।
सरेमेसहितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ॥२०

राजकुमार अवीक्षित ने गन्धर्व का वचन सुन कर तथाऽस्तु कहा । तब गन्धर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने उन दोनो का पाणिग्रहण सस्कार यथाविधि होम करके सम्पादन कराया । उस अवसर पर देवता तथा गन्धर्व हर्ष से गाने बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगी, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और देव-गण अपने वाद्य बजाने लगे । तत्पश्चात् सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के पालनकर्त्ता (चक्रवर्ती शासक) की जननी होने वाली कुमारी तथा राजकुमार अवीक्षित के विवाह मे आये हुए समस्त गन्धर्व उस प्रमुख गन्धर्व तनय के साथ गन्धर्व लोक को चले गये । राजकन्या और राजकुमार अवीक्षित उन्हीं के साथ गये । वहाँ पर ये दोनो पति पत्नी एक दूसरे के सहवास और प्रेमयुक्त व्यवहार से अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त हुए । वे अपनी उस मनोहर भार्या सहित कभी नगर के उपवनो म कभी उपपर्वतो मे क्रीडा करने लगे । कभी हस-सारस आदि से शोभायमान नदियो के तट पर कभी भवनो मे, कभी ऊँचे महलों और कभी अन्य रमणीय स्थानो मे वे दोनो विहार सुख प्राप्त करने लगे ॥१३-२०॥

भक्ष्यानुलेपनवस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् ।
उपाजह्रुस्तयास्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१
तयाचरमतस्तस्यभामिन्यासहदुर्लभे ।
गन्धर्वलोकेवीरस्यपुत्रं सासुषुवेशुभा ॥२२
तस्मिञ्जातेमहावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः ।
बभूवमनुजव्याघ्र तेनकार्य्यमवेक्षतःम् ॥२३
जगु केचित्तथैवान्येमृदङ्गपटहानकान् ।
अवादयन्तचैवान्येवेणुवीणादिकास्तथा ॥२४
ननृतुश्चतथातत्रबह्वोऽप्सरसांगणाः ।
पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगर्जुःमृदुनिस्वना ॥२५
तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्तमानेऽथतुम्बुरुः ।
प्रणयेनस्मृतोऽभ्येत्यजातकर्माकरोन्मुनिः ॥२६

वहाँ रहने वाले मुनि, गन्धर्व और किन्नर उनके उत्तम भक्ष्य पदार्थ, पानीय, वस्त्र, माला और गंध आदि भेंट स्वरूप देने लगे भोगों से भरपूर गन्धर्व लोक में राजकुमारी मानिनी के इस प्रकार विहार करते हुए राजकन्या ने एक पुत्र को जन्म दिया। (उस महावीर्य वाले पुत्र का जन्म होने पर भविष्य में उसके द्वारा महान् कार्यों के सिद्ध होने की आशा से गन्धर्वों ने महान् उत्सव का आयोजन किया। वहाँ पर कोई गान करने लगा, कोई मृदंग, पटह, ढोल वेणु, वीणा, आदि बजाने लगे। अप्सरायें मनोहर नृत्य करने लगी और मेघ फूलों की वर्षा करते हुए मधुर मन्द शब्द करने लगे।) इस प्रकार जब वहाँ सर्वत्र मंगल शब्द हो रहा था तनय के स्मरण करते ही पुरोहित तुम्बुरु ने वहाँ आकर शिशु का जात कर्म पूरा किया ॥२१-२६॥

देवाःसमाययुः सर्वेतथादेवर्षयोऽमलाः ।
पातालात्पन्नगेन्द्राश्चशेषवासुकितक्षकाः ॥२७
तथादेवासुराणांचयेप्रधानाद्विजोत्तम ।
यक्षाणांगुह्यकानांचवायवश्चतथाऽखिलाः ॥२८

तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः ।
मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणामहत्पुरम् ॥२९
तत स्तुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिका क्रिया ।
चक्रे स्वस्त्ययनतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम् ॥३०
चक्रवर्त्तीमहावीर्य्योमाहाबाहुर्महाबल. ।
महान्तकालमोशिल्वमशेषायाःक्षिते.कुरु ॥३१
इमेशक्रादय सर्वेलोकपालास्तथर्षयः ।
स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्यंचारिविनाशनम् ॥३२
मरुत्तवशिवायास्तुवातिपूर्वेणयोऽरजा ।
मरुत्त विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तुदक्षिण ॥३३
पश्चिमस्तेमरुद्वीर्य्यमुत्तमतेप्रयच्छतु ।
बलयच्छतुचोत्कृष्ट मरुत्तोचनथोत्तर ॥३४

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस समय वहाँ पर सभी देवर्षि, पाताल निवासी शेष, वासुकि, तक्षक आदि नागगण, राजा, देव, असुर, यक्ष, गुह्यकों के प्रधान व्यक्ति और समस्त वायुकुल उपस्थित हुए। उस अवसर समस्त आने वाले समस्त ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियों से गन्धर्वों का सम्पूर्ण नगर भर गया। जातकर्म सम्पन्न हो जाने पर उन तुम्बुरु ने बालक का स्वस्त्ययन इस प्रकार किया—हे वीर तुम महाबली, महावीर्य और महाबाहु होकर पृथ्वी सार्वभौम आधिपत्य प्राप्त करके अब श्रेष्ठ शासक बनो। समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलमय और शत्रुओं को विजय करने वाला वीर्य विधान करें। पूर्व दिशा से चलने वाली स्वच्छ वायु तुम्हारा कल्याण करे। अक्षीण और विमल दक्षिण-पवन तुम्हारे अनुकूल रहे। पश्चिम का मरुत तुमको महावीर्य और उत्तर का पवन उत्कृष्ट बल प्रदान करे ॥२७-३४॥

इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी।
मरुत्तवेतिबहुशोयदिद गुरुरब्रवीत् ॥३५

मरुत्तइतितेनायभुविख्यातोभविष्यति ।
भुविचास्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥३६
एषसर्वक्षितीशानावीर स्थास्यतिमूर्द्ध नि ।
चक्रवर्त्तीमहावीर्य्यं सप्तद्वीपवतीमहीम् ॥३७
आक्रम्यपृथिवीपालानयभोक्ष्यत्यवाग्निल ।
प्रधान पृथिवीशानाभविष्यत्ययायज्वनाम् ।
आधिक्यशौर्य्यंवीर्य्येणभविष्यत्यस्यराजसु ॥३८
इत्याकर्ण्यवच सर्वंकेनाप्युक्त दिवौकसाम् ।
तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्यमातातथापिता ॥३९

इस स्वस्त्ययन का पाठ समाप्त होने पर आकाशवाणी हुई कि गुरु ने बार-बार 'मरुत' शब्द का उच्चारण किया है इसलिये इस बालक का नाम 'मरुत' ही होगा और समस्त संसार विख्यात होगा। सम्पूर्ण राजागण इसके आज्ञावर्ती होंगे इस प्रकार सब राजाओं में शिरोमणि होगा। यह सब राजाओं को हरा कर चक्रवर्ती पदवी पायेगा सातों द्वीपों में विस्तृत पृथ्वी का भोग करेगा। यह सब नरेशों और यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ होगा और समस्त राजाओं की अपेक्षा बल-वीर्य में प्रधानता प्राप्त करेगा। देवगण की इस वाणी को सुनकर सब ब्राह्मण, गन्धर्व और बालक के माता पिता अत्यन्त प्रसन्न और सतुष्ट हुए ॥२५-३९॥

११५- मरुत्त चरित्र (१)

ततः सराजपुत्रस्तमादायदयितसुतम् ।
पत्नी-चानुगतोविप्रगन्धर्वैराययौपुरम् ॥१
स पितुर्भवनप्राप्यववन्देपितुरादरात् ।
चरणौसाचतन्वङ्गीह्रीमतीनृपतेःसुता ॥२
तथाहराजपुत्रोऽसौगृहीत्वाबालकसुतम् ।
धर्मासनगतभूपराज्ञामध्येस्वरन्धमम् ॥३
पूर्वपौत्रस्यपश्यैतदुत्सङ्गस्ययन्मया ।
पितुश्चिह्नेप्रतिज्ञातन्तुभ्यमातु पुरेपुरा ॥४

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गे तंकृत्वातनयंततः ।
यथावृत्तमशेषंसकथयामासतस्यतत् ॥५
सपरिष्वज्यतंपौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ।
सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानप्रशशंसपुनःपुनः ॥६
ततःसोर्घ्यादिनासम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ।
समानयामासमुदाविस्मृतान्यप्रयोजनः ॥७

मार्कण्डेयजी कहने लगे—तत्पश्चात् राजकुमार अवीक्षित अपने नवजात पुत्र तथा पत्नी के साथ अपने नगर में आये। उस समय अनेक गन्धर्व भी उनके पीछे-पीछे थे। उन्होंने राज भवन में जाकर पिता की वन्दना की, विशाल राजकन्या ने भी सलज्जभाव से उनको प्रणाम किया। तदनन्तर अवीक्षित ने पुत्र को लेकर बड़े-बड़े सरदारों के साथ राजसिंहासन पर विराजमान अपने पिता महाराज करन्धम से कहा—"माताजी के किमिच्छक व्रत के अवसर पर मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार पौत्र को गोदी में लेकर इसका मुख देखिये।" यह कहते हुए उन्होंने पुत्र को पिता की गोदी में दे दिया और विवाह तथा पुत्र-जन्म का पूरा वृत्तान्त उनको सुना दिया। पौत्र को देखकर राजा के नेत्रों में हर्ष से अश्रु भर आये और अपने को परम सौभाग्यवान् मानकर स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने साथ में आये गन्धर्वों का सब प्रकार से सम्मान किया। ॥१-७॥

ततःपुरेमहानासीदानन्दःपौरवेश्मसु ।
अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने ॥८
हृष्टपुष्टेपुरेतस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः ।
विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्योननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥९
राजाचद्विजमुख्येभ्योरत्नानिचवसूनिच ।
गावोवस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ॥१०
ततःसबालोववृधेशुक्लपक्षेयथाशशी ।
पितृणांप्रीतिजननोजनस्येष्टश्चसोऽभवत् ॥११
आचार्यात्रासकाशात्सप्राप्वेदाङ्गगृहेमुने ।
ततःशस्त्राण्यशेषाणिधनुर्वेदंततःपरम् ॥१२

कृतोद्योगोयदासोऽभूत्खड्गकार्मुककर्मणि ।
अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रमः ॥१३
ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसम्भवात् ।
विनयावनतोविप्रगुरोप्रीतिपरायणः ॥१४

मार्कण्डेय कहने लगे—उस समय समस्त नगर में भी बहुत बड़े उत्सव होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि "हमारे रक्षक राजा के सन्तान हुई है।" (उस समय नगर के भीतर स्थान-स्थान पर नर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगीं।) महाराज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, वस्त्र, आभूषण और गौओं का दान देने लगे। इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में वह बालक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता का प्रीतिपात्र और अन्य साधारण मनुष्यों का भी प्यारा बन गया। बड़ा होने पर उसने आचार्य के समीप रहकर वेद, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की। जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो खड्ग, धनुष बाण और अन्यान्य शस्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवंशीय भार्गव के निकट जाकर उनका रहस्य सीखने लगा ॥८—१४॥

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओं से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद में पारगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओं में पूर्ण निष्णात होगया। उस समय इन विद्याओं में उससे बढ़कर कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता था। अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करन्धम ने पौत्र का प्राप्त करने की खुशी में अनेक यज्ञ करके अर्थियों बहुत सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया। तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षित से कहा—'पुत्र! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन में रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो। मैं सभी इन्द्रियों से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूँ अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भाँति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ' ॥१९–२०॥

इत्युक्त पितरप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दन ।
प्रश्रयावनतोभूत्वाप्रियासुस्तपसेवनम् ॥२१
नाहंतावकरिष्यामिपृथिव्या.परिपालनम् ।
नापंतिह्रीर्मेमनसिराज्येऽन्यस्त्वनियोजय ॥२२
तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्याद्विहृयत ।
तत्.कियत्पौरुषमेपुरपं पाल्यतेमहीम् ॥२३
योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
सकथपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
सस्त्रीसधर्मापुरुषोग्रश्चान्येनात्रहृतो ।
आत्माऽप्योहायभवताबन्धनात्येनमोक्षित ॥२५
सोऽहंकथभविष्यामिस्त्रीसधर्मामहीपति ।
स्त्रियपुमान्भवेद्भर्ताय सूरसमहीपति ॥२६

कृतोद्योगोयदासोऽभूत्खड्गकार्मुककर्मणि ।
अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रमः ॥१३
ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसंभवात् ।
विनयावनतोविप्रगुरोःप्रीतिपरायणः ॥१४

मार्कण्डेय कहने लगे—उस समय समस्त नगर में भी बहुत बड़े उत्सव होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि "हमारे रक्षक राजा के सन्तान हुई है।" (उस समय नगर के भीतर स्थान-स्थान पर नर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगी।) महाराज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, वस्त्र, आभूषण और गौओं का दान देने लगे। इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में वह बालक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता का प्रीतिपात्र और अन्य साधारण मनुष्यों का भी प्यारा बन गया। बड़ा होने पर उसने आचार्य के समीप रहकर वेद, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की। जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो खड्ग, धनुष-बाण और अन्यान्य शास्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवंशीय भार्गव के निकट जाकर उनका रहस्य सीखने लगा ॥८–१४॥

गृहीतास्त्रःकृतीवेदेधनुर्वेदस्यपारगः ।
निष्णातःसर्वविद्यासुनवभूवततःपरः ॥१५
विशालोऽपिसुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्यचयोग्यताम् ॥१६
अथराजासुतंदृष्ट्वाप्राप्तमनोरथः ।
यज्ञाननेकान्निष्पाद्यदत्त्वादानानिचार्थिनाम् ॥१७
कृतशेषक्रियोयुक्तःसवर्णैर्धर्मतोमहीम् ।
परिपाल्यारिविजयीबलबुद्धिसमन्वितः ॥१८
सपितासुवर्चनपुत्रमविक्षितमभाषत ।
पुत्रवृद्धोऽस्मिगच्छामिवनराज्यंगृहाणमे ॥१९
कृतकृत्योऽस्मिनास्त्यन्यत्किञ्चिद्त्वदभिषेचनात् ।
सुनिष्पन्नमतोराज्यंत्वंगृहाणमयार्पितम् ॥२०

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओं से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद में पारंगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओं में पूर्ण निष्णात होगया। उस समय इन विद्याओं में उससे बढ़कर कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता था। अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करन्धम ने पौत्र का प्राप्त करने की खुशी में अनेक यज्ञ करके ऋषियों बहुत-सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया। तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षित से कहा—'पुत्र! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन में रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो। मैं सभी दृष्टियों से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूँ अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भाँति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ" ॥१६–२०॥

इत्युक्त पितरप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दन ।
प्रश्रयावनतोभूत्वाधिय्यातुत्तपसेवनम् ॥२१
नाहतावत्करिष्यामिपृथिव्या.परिपालनम् ।
नापंतिह्लीर्ममनमिराज्येऽन्यत्वंनियोजय ॥२२
तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्य्यादिहयत. ।
तत्.कियत्पौरुषमेपुरुषं पाल्यतेमहीम् ॥२३
योऽहनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
सकथपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
सस्त्रीसधर्मापुरुषोसश्चान्येत्तानद्र् ह्यते ।
आत्माऽमोहायभवतावन्धनाद्यंनमोक्षित ॥२५
सोऽहकथभविष्यामिस्त्रीसधर्ममहीपति· ।
स्त्रिय पुमान्भवेद्धर्ताय शूर समहीपति ॥२६

पर राजकुमार अवीक्षित स्वयं वन में जाकर तप करने के इच्छुक थे। उन्होंने कहा—'पिताजी ! मैं राज्य का भार ले सकने में असमर्थ हूँ, अभी तक मेरी पहली लज्जा की भावना दूर नहीं हुई है, इसलिये आप इस उत्तरदायित्व को अन्य किसी को दें। जब मैं हार कर बन्धन ग्रस्त होगया और पिता के द्वारा छुड़ाया गया तो मेरे पुरुषार्थ और वीरता का महत्व ही क्या रह गया ? जब मैं स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सका तो पृथ्वी का पालन किस तरह कर सकता हूँ ? बुद्धिमान् और धर्माचरण वाला होने पर भी जो मनुष्य शत्रुओं से पराजित होगया, जो अपनी आत्मा का भी उद्धार न कर सका और पिता की सहायता से ही जो बन्धन मुक्त हो सका, वह पुरुष कहे जाने के योग्य नहीं, वह तो एक प्रकार से स्त्री ही है और कदापि राज्य करने में समर्थ नहीं हो सकता ।।२१-२६।।

नभिन्नएवपुत्रस्य पितापुत्रस्तथापितुः ।
नान्येनमोक्षितोवीरयस्त्वपित्रामोक्षित ।
हृदयनान्ययानेतु मयाशक्यमनेश्वर ।।२७
हृदयेह्रीर्ममातीवयस्त्वहमोक्षितस्त्वया ।।२८
पित्रोपात्ताश्रियभुङ्क्ते पित्राकृच्छ्रात्समुद्धृत ।
विज्ञायतेचय पित्रामानव·सोस्तुनोकुले ।।२९
स्वयमर्जितवित्तानाख्यातिस्वयमुपेयुषाम् ।
स्वयनिस्तीर्णकृच्छ्राणायागति साऽस्तुमेगति ।।३०

करन्धम ने कहा—हे वीर श्रेष्ठ, पिता और पुत्र में कोई अन्तर नहीं

वैभव प्राप्त करता है, स्वय नाम कमाता है और स्वय ही आपत्तियों से छुटकारा पाने में समर्थ है वही सच्चा पुरुष है ॥२७-३०॥

इत्याहत्रहुश.पित्रायदाप्युक्त्वोऽप्यसौमुने ।
तदातस्यसुतराज्येमरुत्तमकरोन्नृप ॥३१
सपित्रासमनुज्ञातराज्यप्राप्यपितामहात् ।
चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३२
राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ।
वनजगामतपसेयतवाक्कायमानस. ॥३३
तत्रवर्षसहस्र सततपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।
विहायदेहनृपति शक्रस्यापसलोकताम् ॥३४
सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरशतम् ।
तपश्चचारविप्रर्षेजटिलामलपकिनी ॥३५
सालोक्यमिच्छतीभर्तुः स्वर्गतस्यमहात्मन ।
फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसश्रया ।
द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजमुख्यपरणाहता ॥३६

मार्कण्डेयजी ने कहा—जब अवीक्षित ने पिता के बारम्बार कहने पर भी राज्य भार ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो महाराज करन्धम ने उसके पुत्र मरुत को राज्य भार दे दिया। मरुत ने पिता की अनुमति पाकर पितामह द्वारा प्रदत्त राज्य भार को स्वीकार किया और ऐसे सुचारु रूप से सचालन करने लगे जिससे उनके समस्त निकटवर्तियों को परम सन्तोष और आनन्द हुआ। तब महाराज करन्धम भी अपनी पत्नी वीरा को साथ लेकर मन, वचन, काया से तपस्या में निरत होने के लिये वन में चले गये वहाँ पर करन्धम के एक हजार वर्ष तक कठिन तप करके देह त्याग करने पर वह इन्द्रलोक को प्राप्त हुए। उनकी पत्नी वीरा देवी इसके पश्चात् भी सौ वर्ष तक तपस्या में निरत रही। वह सदैव इन्द्रलोक में भी पति का सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा करती रहती

और केवल फल, मूल का आहार करके भार्गव के आश्रम में द्विज पत्नियों के साथ सेवा और सम्मान पाती हुई समय व्यतीत करती थी ॥३१–३६॥

११६—मरुत्त चरित्र (२)

भगवन्विस्तरात्सर्वंममैतत्कथितंत्वया ।
करन्धमस्यचरितमविक्षिन्नरितचयत ॥१
आविक्षितस्यनृपतेर्मरुत्तस्यमहात्मन. ।
श्रोतुमिच्छामिचरितश्रूयतेसोऽतिचेष्टित ॥२
चक्रवर्त्तीमहाभाग शूरकान्तोमहामति ।
धर्मविद्धर्मकृच्चैवसम्यक्पालयिताभुव ॥३
सपित्रासमनुज्ञातराज्यप्राप्यपितामहात् ।
धर्मत पालयामासपितापुत्रानिवौरसान् ॥४
इयाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिर्विण्णोमहीपति ॥५
तस्याप्रतिहतचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ।
गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्व पातालजलादिषु ॥६
तत प्राप्यधनविप्रयथावत्स्वक्रियापर ।
अयजत्स महायज्ञं देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! अब मैं सूर्यवंश के राजा मरुत्त के चरित्र को सुनना चाहता हूँ, सुना जाता है कि वह अत्यन्त उद्यमी, प्रतिष्ठावान् ॥२॥ चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कान्त, श्रेष्ठ बुद्धि, धर्मज्ञ, धर्माचारी तथा भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पिता की आज्ञा से मरुत्त ने अपने पितामह से राज्य को प्राप्त किया और प्रजा का पालन अपने पुत्र के समान करने लगे ॥४॥ याज्ञिकों और पुरोहितों की अनुज्ञा पूर्वक

समस्त यज्ञ-स्थान और स्वर्णमय उज्ज्वल भवनों का निर्माण हुआ था ॥१३॥ इन मरुत्त के चरित्र को आधार बना कर ऋषिगण सदा इनका वृतान्त कीर्तन करते और इनके चरित्र का अध्ययन करते थे ॥१४॥

मरुत्तेनसमोनाभूद्यजमानोमहीतले ।
सद समस्तयज्ञ प्रासःदाश्चे वकाचना ॥१५
प्रमाद्यदिन्द्र सोमेनदक्षिणाभिद्विजालय. ।
विप्राणापरिवेष्टार शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमा ॥१६
यथायज्ञे मरुत्तस्यतृप्ता सर्वेमहीपते ।
सुवर्णमखिलत्यक्त रत्नपूर्णगृहेद्विजैं ॥१७
प्रासादादिसमस्तचसौवर्णतस्ययज्ञतौ ।
अयोवर्णाह्यलम्यन्ततस्मात्केचित्तथाददु ॥१८
(तेनत्यक्ते नशिष्टायेजना पूर्णमनोरथा ।
तपियज्ञान्यजतेस्मदेशेदेशेपृथक्पृथक् ।)
यस्यैवकुर्वतोराज्यसम्यक्पालयतःप्रजा ।
तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम ॥१९
पितुर्मातासवाहेददृष्टातापसमण्डलम् ।
विषाभिभूतमुरगैम ेन्मत्तंनरेश्वर ॥२०
पितामहस्तेस्वर्यातःसम्यक्सपाल्यमेदिनीम् ।
पितातवतथाशक्तोहित्वाग्रामवनगत ।
(तपश्चरणशक्ताऽहमिहचौर्वाश्रमेस्थिता) ॥२१

जिनके यज्ञ में समस्त सभा भवन एव प्रासाद स्वर्णमय बनाये गये थे, इन्द्र सोमपान करके और ब्राह्मण दक्षिणा को प्राप्त करके मस्त हो उठे थे, सब प्रधान देवताओं ने ब्राह्मणों को घेर रखा था, उन मरुत्त के समान यज्ञ करने वाला कोई पुरुष पृथिवी पर उत्पन्न नहीं हुआ ॥१५–१६॥ ब्राह्मणों ने जितनी रत्नमय गृह और स्वर्ण राशि उन मरुत्त के यज्ञ में प्राप्त की थी उतनी अन्य किसके यज्ञ में की ? उन्हीं के समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण स्वर्णमय भवनादि को पा सके थे, उनके अतिरिक्त ऐसा दान और किस पुरुष ने

किया है ? ॥१८॥ उनके धन को प्राप्त कर जो मनुष्य पूर्ण काम हुए, उन्होंने भी अपने द्वारा समस्त यज्ञों का सम्पादन किया था) हे मुनिवर ! उनके इस प्रकार के श्रेष्ठ राज्य शासन, एवं प्रजा पालन काल में एक दिन एक तपस्वी उनके पास आकर बोला ॥१६॥ हे राजन् ! तुम्हारी पितामही ने तापस मंडली को मदोन्मत्त सर्पों के विष से पीडित होता हुआ देखा और यह संदेश भेजा है ॥२०॥ तुम्हारे पितामह भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं और तुम्हारे पिता ने भी वन का आश्रय लिया है (मैं भी तप में आसक्त होकर और्वाश्रम में स्थित हूँ) ॥२१॥

साऽहपश्यामिवंकल्यतवराज्यप्रशासत ।
पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वंयाचतेनृप ॥२२
नूनप्रमत्तोभोगेपुसक्तोवाऽसिजितेन्द्रिय ।
चारान्धतायतोस्तीयदुष्टादुष्टनवेत्सियत् ॥२३
पातालादभ्युपेतेस्तुभुजगंदंशशालिभि ।
दष्टामुनिसुता सप्तदूपिताश्चजलाशयाः ॥२४
स्वेदमूत्रपुरीषेणदूपितसुश्रुतहवि ।
अपराधसमुद्दिश्यदत्तोनागवलिश्चिरात् ॥२५
एतेसमर्थामुनयोभस्मीकर्तुं भुजगमान् ।
किन्त्वेपानाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥२६
तावत्सुखभूपतिजैर्भोगजप्राप्यतेनृप ।
अभिषेकजलयावन्नमूर्ध्निविनिपात्यते ॥२७

हे राजन् ! जो घटनाएँ तुम्हारे अन्यान्य पूर्व पुरुषों के शासन काल में घटीं, उन्हें तुम्हारे शासन काल में घटती हुई देख रहा हूँ ॥२२॥ तुम या तो प्रमत्त हो अथवा अजितेन्द्रिय रहकर भोगों के प्रति अनुरक्त हुए हो, तुम दूतों को न रखने के कारण अच्छी-बुरी घटनाओं को जानने में समर्थ नहीं हो ।२३। दशनशील नागों ने पाताल से आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है तथा स्वेद, मूत्र और पुरीष से सब जलाशय और यज्ञ हवि को दूषित कर दिया है, इसलिये अपराध हुआ जानकर मुनिगण सर्पों को बलि दे रहे हैं ॥२४-२५॥

यद्यपि यह मुनिगण सर्पों को स्वयं ही भस्म कर सकते हैं, परन्तु उस कार्य के तुम्हीं अधिकारी हो ॥२६॥ हे राजन्! राजपुत्रों को भोग जनित सुख के भोगने का अधिकार तभी तक है, जब तक उनके शीश पर अभिषेक का जल नहीं सींचा जाता ॥२७॥

कानिमित्राणिक शत्रुर्ममशत्रोवलवियत् ।
कोऽहकेमन्त्रिण पक्षेकेवाभूपतयोमम ॥२८
(कियान्कोशोवलंकिवाकोनुरक्तोजनोमम) ।
विरक्तोवापरैर्भिन्न परेषामपिकीदृश ।
क सम्यगत्रनरेविषयेवाजनोमम ॥२६
धर्मकर्माश्रयोमूढ क सम्यगपिवर्त्तते ।
कोदण्डश्च परिपाल्य क केचोपेक्ष्यानरामया ।।३०
सामभेदतयादम्यादेशकालमवेक्षता ।
चाराञ्चारयेदन्यैरज्ञातान्भूपतिश्चरं ॥३१
सचिवादिषुसर्वेषुचरान्दद्यान्महीपतिः ।
इत्यादौभूपतिर्नित्यकर्मण्यासक्तमानसः ॥३२
नयेद्दिनतथारात्रिनतुभोगपरायण ।
राज्ञाशरीरग्रहणनभोगायमहीपते ॥३३

मित्र कौन है ? शत्रु कौन है ? शत्रु के पास कितनी शक्ति है ? कौन मंत्री कैसा है ? कौन राजा अपने पक्ष का है ? ॥२८॥ (मेरे पास कितना कोष है ? कितनी शक्ति है ! कौन मुझसे प्रीति करता है ?) शत्रु के द्वारा भेद को किसने पा लिया है ? कौन शत्रु किस प्रकार का है ? अपने नगर अथवा राज्य में धर्म-कर्म का आश्रय लेने वाला कौन है ? ॥२६॥ कौन मूर्ख रहता है ? कौन दण्डनीय है ? कौन पालनीय और कौन उपेक्षणीय है ? ॥३०॥ छिद्र भेद के भय से किसके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इस सबका ज्ञान करने के लिये दूत के अपरिचित गुप्तचर को नियुक्त करना उचित है ॥३१॥ सब सचिवादि पर दृष्टि रखने के लिये भी दूत की नियुक्ति करे, इस प्रकार राज्य काज के प्रति राजा को दत्तचित्त होना चाहिए ॥३२॥ इसी में दिन-रात्रि व्यतीत करे और

भोग-परायण न हो, हे राजन् ! राजाओं का जन्म भोग के लिये नहीं होता है ३३

क्लेशायमहतेपृथ्वीस्वधर्मपरिपालने ।
सम्यक्पालयतःपृथ्वीस्वधर्मंचमहीपतेः ॥३४
इहक्लेशोमहान्स्वर्गेपरमंसुखमक्षयम् ।
तदेतदवबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥३५
पालनायक्षितेक्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ।
इतिवृत्तमृषीणांयद्व्यसनत्वयिशासति ॥३६
भुजङ्गहेतुकंभूपचारान्धोनापिवेत्सितत् ।
बहुनात्रकिमुक्तेनदुष्टेदण्डोनिपात्यताम् ॥३७
शिष्टान्पालयराजस्त्वंधर्मंषड्भागमाप्स्यसि ।
अरक्षन्पारमखिलदुष्टैरविनयात्कृतम् ॥३८
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धंयदिच्छसितत्कुरुष्वतत् ।
एतन्मयोक्तंसकलयत्तवाहपितामही ।
कुरुष्वेवंस्थितेयत्तेरोचतेवसुधाधिप ॥३९

पृथिवी का पालन और अपने धर्म का पालन करने के लिये उन्हें तो महाकष्ट ही भोगने होते हैं, उन्हें अपने धर्म और पृथिवी के पालन से ॥३४॥ इस जन्म मे अत्यन्त क्लेश भोग लेने पर परलोक में उन्हें अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, हे राजन् ! इस पर विचार करके और भोग का परित्याग करके ॥३५॥ तुम्हें पृथिवी का पालन करने के लिये क्लेश को अंगीकार करना चाहिये, तुम्हारे शासनकाल में ऋषियों को सर्पों से जो भय उपस्थित हुआ है ॥३६॥ उस भय को दूतों के न होने के कारण ही जानने में समर्थ नहीं हुए, हे राजन् ! तुम दुष्टों को दण्डित करो ॥३७। और शिष्टजनों का पालन करो, इससे धर्म के षष्ठ भाग की प्राप्ति होगी, दुष्गण जिस उद्दण्डता को करते हैं, उससे सज्जनों की रक्षा न करोगे तो ॥३८॥ तुम अवश्य ही पाप के भागी होगे, अब जो कर्त्तव्य समझो, वह करो. हे राजन् ! मैं तुम्हारी पितामही हूँ, इसीलिये ऐसा कहा है, अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥३९॥

११७ —मरुत्त चरित्र (३)

इतितापसवाक्यसश्रुत्वालज्जापरोनृपः ।
धिड्माचारान्धमित्युक्त्वानि.श्वस्यजगृहेधनु ॥१
तत सत्वरितगत्वाखल्वोर्वस्याश्रमप्रति ।
ववन्देशिरसावीरामातरपितुरात्मन ॥२
तापसाश्चयथान्यायतश्चाशीभिरभिष्टुत ।
दृष्ट्वाचतापसान्सप्तनागैदष्टान्मृतान्भुवि ॥३
निनिन्दात्मानमसकृत्सुरस्तेपामहीपति ।
उवाचचैनदद्याहंमद्वीर्य्यंमवमन्यताम् ॥४
यत्करोमिभुजङ्गानादुष्टानाब्राह्मणद्विषाम् ।
तत्पश्यतुजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥५
इत्युक्त्वाजगृहेकोनादस्त्रसवर्तकनृप ।
नाशायाशेषनागानापातालोर्व्वीविचारिणाम् ॥६
ततोजज्वालसहसानागलोक:समन्तत ।
महास्त्रतेजसाविप्रदह्यमानोनिवारित ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—तापस की बात सुनकर राजा लज्जित हुए और 'मुझ आचारान्ध को धिक्कार है' ऐसा कहते हुए हाथ में धनुष उठाया ॥१॥ और अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक ओर्वाश्रम में जाकर नत मस्तक हो अपनी पितामही वीरा ॥२॥ और तपस्वियों को प्रणाम किया, उन्होंने भी राजा को आशीर्वाद दिये, फिर राजा ने सर्पदंश से मरे हुए सात तपस्वियों को पृथिवी म पड़े देखा ॥३॥ राजा ने मुनियों के समक्ष बारम्बार अपनी निन्दा की और बाले—यह दुष्ट नाग मेरे बल के तिरस्कार पूर्वक ॥४॥ ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं इसलिये अब मैं उनकी जो दशा करता हूं, उसका देवता, दैत्य और सम्पूर्ण विश्व अवलोकन करे ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऐसा कहकर राजा ने पाताल और पृथिवी में रहने वाले सब नागों को नष्ट करने के उद्देश्य से संवर्त्तक अस्त्र को

हाथ में उठाया ॥६॥ उस समय उस महा अस्त्र के तेज से समस्त नागलोक प्रकाशमान हो उठा और भस्म होने लगा ॥७॥

हाहातातेतिहामातहाहावत्सेतिमभ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृतेवाच पन्नगानामथाभवन् ॥८
केचिज्ज्वलद्भि पुच्छाग्रं फणैरन्येभुजङ्गमा ।
गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणवासस ॥६
पातालमुत्सृज्ययय शरणभामिनीतदा ।
मरुत्तमातर पूर्वंयादत्ततदाभयम् ॥१०
तामुपेत्योरगा सर्वेसप्रमाणभयातुरा ।
सगद्गदमिदप्रोचु स्मर्यतान पुरोदितम् ॥११
प्रणम्याभ्यर्थितपूर्वंयदस्माभीरसातले ।
तस्यकालोऽयमायातस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥१२
पुत्रोनिवार्य्यतारात्रिप्राणं सयोज्यमस्तुन ।
दह्यतेसकलोलोकोनागानामस्त्रवह्निना ॥१३
एवसदह्यमानानामस्माकतनयेनते ।
त्वामृतेशरणनान्यत्कृपाकुरुयशस्विनि ॥१४

इस अस्त्र के भय से भीत हुए नागगण माता, तात, वत्स आदि पुकारते हुए चीत्कार करने लगे ॥८॥ किसी की पूँछ और किसी का फण दग्ध होने लगा, किसी ने वस्त्राभरणों को परित्याग कर स्त्री पुत्र सहित ॥६॥ पाताल-लोक को छोड़ राजा मरुत्त की माता भामिनी की शरण ग्रहण की, क्योंकि उसने इनको कभी अभय दान दिया था ॥१०॥ सभी नाग उसके समक्ष उप-स्थित होकर गद्गद वचनों से कहने लगे—आप रसातल में हमारे द्वारा की हुई प्रार्थना का स्मरण करिये, उसके निर्वाह का यही समय है, आप हमारी रक्षा करिये ॥११–१२॥ हे राजमाता ! अपने पुत्र को रोक कर हमारे प्राणों की रक्षा करिये, समस्त नागलोक उनके अस्त्रों से उत्पन्न अग्नि से भस्म हुआ जाता है ॥१३॥ हे यशस्विनी ! आपका पुत्र इस विधि से हमें जलाता है, इस-

लिए आपके अतिरिक्त अन्य किसी की शरण हम नहीं ले सकते, आप हम पर दया करें ॥१४॥

इतिश्रुत्वावचस्तेषासस्मृत्यादौचभाषितम् ।
भर्त्तारमाहसासाध्वीससम्भ्रममिदवच ॥१५
पूर्वमेवत्तवाख्यातपातालेयद्भुजङ्गमै ।
प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वममासीत्तनयप्रति ॥१६
तइमेऽभ्यागताभीतादह्यन्तेतस्यतेजसा ।
मामेतेशरणपूर्वदत्तमेभ्योमयाऽभयम् ॥१७
येमाशरणमापन्नास्तेत्वाशरणमागता ।
अपृथग्धर्मचरणायाताहशशरणतव ॥१८
तन्निवारयपुत्रत्वमरुत्त वचनात्तव ।
मयाचाभ्यर्थितोऽवश्यशममभ्युपयास्यति ॥१९
महापराधेनियतमरुत्त क्रोधमागत ।
दुर्निवर्त्यमहमन्येतस्यक्रोधसुतस्यते ॥२०

मार्कण्डेयजी ने कहा—सर्पों के करुणापूर्ण वचन सुन कर उस साध्वी स्त्री को सर्पों को दिया अपना अभय वचन स्मरण हो आया तो वह सम्भ्रम-सहित अपने स्वामी से बोली ॥१५॥ मानिनी ने कहा—पाताल स्थित सर्पगणों ने विनय-पूर्वक जो कुछ मेरे पुत्र के सम्बन्ध मे कहा वह पूर्व ही मैंने आपसे वर्णन किया ॥१६॥ वही सर्पगण इस काल मेरे पुत्र के तेज के कारण दग्ध हुए जाते हैं मैंने पहले ही इन्हें अभय-वर दिया था इसलिए भयभीत होकर वे मेरी शरण मे आये हैं ॥१७॥ जो मेरी शरण में आये हैं वे आपके भी शरणागत हैं क्योंकि एक धर्माचरण के कारण मैं आपकी शरणागत हुई हूँ ॥१८॥ इसलिए आप पुत्र मरुत्त को रोकिये। आपके आदेश और मेरे आग्रह से वह निश्चित ही शान्त हो जायगा ॥१९॥ अवीक्षित बोले—इनकी सदैव अपराधी प्रवृत्ति के कारणवश ही मरुत क्रोधित हुआ है इस कारण तुम्हारे पुत्र का क्रोध सरलता से शान्त हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता ॥२०॥

शरणागतास्तववयप्रसाद क्रियतानृप ।
क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ॥२१
नागानांतद्वच श्रुत्वाभूतानाशरणैषिणाम् ।
तयाचाभ्यर्थित.पत्न्याप्राहावीक्षिन्महायशाः ॥२२
गत्वाक्षयौमितंभद्रे तनयंत्वरयातव ।
परित्राणायनागानानत्याज्याःशरणागता. ॥२३
नोपसंहरतेसोस्त्रंयदिमद्वचनान्नृपः ।
तदास्त्रैर्वारयिष्यामितस्यास्त्रतनयस्यते ॥२४
ततोगृहीत्वासधनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः ।
भार्य्यायासहितःप्रायास्त्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥२५

सर्प बोले—हे राजा ! हम आपके शरणागत हैं, आप हम पर कृपा कीजिये, क्षत्रिय मनुष्य सदैव त्रसित मनुष्यों की रक्षार्थ ही अस्त्र ग्रहण करते हैं ॥२१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यशस्वी अवीक्षित ने पत्नी का निवेदन और शरण में आये सर्पों के वचन सुनकर कहा—॥२२॥ हे भद्रे ! मैं तुरन्त ही तुम्हारे पुत्र मरुत के निकट जाकर नागों की रक्षा हेतु उससे कहता हूँ, शरण में आये को शरण न देना कभी उचित नहीं है ॥२३॥ यदि तुम्हारा पुत्र राजा मरुत मेरे कहने पर ही अस्त्र त्याग नहीं करेगा तो मैं उसके विरुद्ध अस्त्र का प्रयोग करूँगा ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् नरश्रेष्ठ अवीक्षित धनुष धारण करके भार्या को संग लेकर भार्गवाश्रम गये ॥२५॥

११८—मरुत्त चरित्र (४)

सतुतत्रसुतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ।
धनुःशस्त्रचतस्योग्रंज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१
उद्गिरन्तमहावह्निदीपिताखिलभूतलम् ।
पातालान्तर्गतंप्राप्तमहास्त्रंघोरमीपणम् ॥२

सतदृष्ट्वामहीपालभृकुटीकुटिलाननम् ।
माक्रु धस्त्वमरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥३
प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधी ।
सनिशम्यगुरोर्वाक्यंदृष्ट्वातंचपुनःपुनः ॥४
गृहीतकार्मुक पित्रोःप्रणिपत्यसगौरवम् ।
प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशपन्नगाःपिता ॥५
शासतोमाममयिमहोपरिभूयबलमम ।
सप्ताश्रममुपागम्यदष्टामुनिकुमारकाः ॥६
ऋषीणामाश्रमस्थानाममीपामवनीपते ।
मयिशासतिदुर्वृत्तं दूषितानिहवीषिच ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—अवीक्षित ने वहाँ आकर देखा कि मरुत धनुष पर शस्त्र चढ़ाये हुए हैं, जिस की तीव्र ज्वाला से समस्त दिशामण्डल प्रकाशित है ॥१॥ उस उग्र शस्त्र में से तीव्र अग्नि उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रदीप्त कर रही है, जो कि अत्यन्त भीषण व असहनीय है एवं पाताल तक पहुंच रही है ॥२॥ यह देख कर कि महीप मरुत की मुखाकृति व भ्रकुटि कुटिल हैं, तो वे बोले—हे मरुत ! अस्त्र त्याग दो और क्रोध समाप्त करो ॥३॥ बार बार इस प्रकार कह कर जब चुप हो गये तो उस बुद्धिमान मरुत ने उनकी ओर देख कर ॥४॥ पिता व माता दोनों को प्रणाम सहित आदर पूर्वक बोला—हे पिता ! यह सर्पगण मेरे घोर अपराधी हैं ॥५॥ मेरे पराक्रम की अवहेलना करके इन्होंने मेरे राज्य-काल में आश्रम में आकर सात मुनिकुमारों को काटा

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
ब्रह्मेवगमिष्यामिनरकयदिपापिनाम् ।
ननिग्रहेयताम्येषामानिवारयमापित ॥१०
मामेतेशरणप्राप्ता पन्नगाममगौवात् ।
उपसंह्रियतामस्त्रमलक्रोधेनतेनृप ॥११
नाहमेषाक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
स्वधर्ममुल्लध्यकथकरिष्यामिवचस्तव ॥१२
दण्डयॅ निपातयन्दण्ड भूपःशिष्टाश्चपालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकाश्चाप्युपेक्षणात् ॥१३

इसलिए आप इन सर्पगणों के विषय में कुछ भी न कहें और ब्रह्म-हत्यारे नागों के संहार-कार्य से मुझे न रोकें ॥९॥ अवीक्षित बोले—यदि इन्होंने ब्रह्म-हत्या की है तो मरने के पश्चात् नरक को जायेंगे किन्तु तुम अस्त्र का प्रयोग न करके मेरे वचन की रक्षा करो ॥१०॥ मरुत बोले—यदि इन पापियों पर नियन्त्रण का यत्न छोड़ दूँ तो मुझे ही नर्क की प्राप्ति होगी, इसलिए हे पिता जी आप मुझे इनके संहार से मत रोकिये, मैं इन दुष्टों को क्षमा नहीं करना चाहता ॥११॥ अवीक्षित बोले—यह नाग मेरी शरण को प्राप्त हुए हैं, इसलिए मेरे गौरव की रक्षा के निमित्त क्रोध छोड़ कर अस्त्र त्याग दो ॥११॥ मरुत बोले—इन दुष्टों को मैं क्षमा करके अपने धर्म का उल्लंघन कैसे करूँ और आपके वचन को कैसे निभाऊँ ॥१२॥ दण्ड योग्य जीवों को दण्ड देकर और शिष्ट पुरुषों का पालन करके ही राजा पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं अन्यथा उन्हें नर्क की प्राप्ति होती है ॥१३॥

एवमबहुश पित्रावार्य्यमाणोम्वयासह ।
नोपसहृतेसोऽस्त्रततोऽस्योपुनरब्रवीत् ॥१४
हिंससेपन्नगान्भीतान्ममैतान्छरणागतान् ।
वार्यमाणोऽपितस्मात्तेकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥१५
ममाप्यस्त्राण्यवार्यानिनत्वमेकऽस्त्रविद्भुवि ।
ममाग्रतःसुदुर्वृत्तपौरुषञ्चकियत्तव ॥१६

तत कार्मुकमारोप्यकोपताम्रविलोचन ।
प्रविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गव ।।१७
ततोज्वालापरीवारमनिसघघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रतुमहावीर्यंयोजयामासकार्मुके ।।१८
ततश्चुक्षोभजगतीसवनस्त्रप्रतापिता ।
साब्धिशैलाऽखिलाविप्रकालस्यास्त्रसमुद्यते ।।१९
कालास्त्रमुद्यतपित्रामरुत्त सोऽपिवीक्ष्यतत् ।
प्राहोर्ध्व रस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ।।२०
नस्वद्वधायकालास्त्रमयिमु ञ्चतिविभवान् ।
स्वधर्मचारिणिसुतेसदेवाज्ञापरतव ।।२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—पिता के द्वारा बारम्बार निषेध किये जाने पर भी मरुत्त ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब अवीक्षित ने उनसे पुन कहा ।।१४।। ये नाग भयभीत होकर मेरी शरण को प्राप्त हुए मेरे द्वारा निवारण किये जाने पर भी तुम इनकी हिंसा म प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिकार करूँगा ।।१५।। पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र विज्ञाता नहीं हो, मैंने भी अनेक शस्त्र प्राप्त किये हैं मेरे द्वार [illegible] पौरुष सराहनीय है ।।१६।।

शरणागतसत्राणकर्तुं व्यवसिताबयम् ।
तस्यव्याघातकर्त्तात्वनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३
मावाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ।
त्वावाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥२४
धिक्तस्यजीवितपु स शरणार्थिनमागतम् ।
योनार्तमनुगृह्णासिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥२५
क्षत्रियोऽहमिमेभीता शरणमामुपगता ।
अपकर्त्तात्वमेवंषाकथवध्योनमेभवान् ॥२६
मित्रवावान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरु ।
प्रजापालनविघ्नाययोहन्तव्य सभूभृता ॥२७
सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यत्वयापित ।
स्वधर्मं परिपाल्योमेनास्तिक्रोधस्तवोपरि ॥२८

हे महाभाग ! प्रजा पालन ही मेरा परम कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे संहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित बोले—मैंने शरणागतों की रक्षा का दृढ़ निश्चय किया है, तुम उस कार्य में विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र बल से मार-कर दुष्ट नागों को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सर्पों की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु पक्ष के मनुष्य भी आर्त होकर शरण ग्रहण करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हूं, भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यों नहीं हो ॥२६॥ मरुत बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन में विघ्न उपस्थित करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता ! मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हो, मैं अपने धर्म के पालन के लिये ही ऐसा करने को तत्पर हुआ हूँ। यह मेरा क्रोध आपके प्रति नहीं है ॥२८॥

तत कामु'कमारोप्यकोपताम्रविलोचनः ।
अविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥१७
ततोज्वालापरीवारमनिसघघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रतुमहावीर्य्यंयोजयामासकामु'के ॥१८
ततश्चुक्षोभजगतीसवर्त्तास्त्रप्रतापिता ।
साब्धिशैलाऽखिलाविप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥१९
कालास्त्रमुद्यतपित्रामरुत्तःसोऽपिवीक्ष्यतत् ।
प्राहोच्चै रस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥२०
नत्वद्वधायकालास्त्रमयिमु ञ्चतिकिमवान् ।
स्वधर्मचारिणिसुतेसदैवाज्ञाकरेतव ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—पिता के द्वारा बारम्बार निषेध किये जाने पर भी मरुत ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब अवीक्षित ने उनसे पुनः कहा ॥१४॥ ये नाग भयभीत होकर मेरी शरण को प्राप्त हुए मेरे द्वारा निवारण किये जाने पर भी तुम इनकी हिंसा में प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥१५॥ पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र विज्ञाता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्र प्राप्त किये हैं, मेरे सामने तुम्हारा पौरुष नगण्य है ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अवीक्षित ने ऐसा कह कर क्रोध से ताम्रवर्ण नेत्र कर धनुष उठा कर कालास्त्र ग्रहण किया ॥१७॥ ज्वाला से परिपूर्ण शत्रुओं के नाश करने वाला वह श्रेष्ठ कालास्त्र धनुष पर चढ़ाया ॥१८॥ हे महान् ! मरुत के संवर्त्तकास्त्र से तप्त हुए पर्वत एवं समुद्र से युक्त सम्पूर्ण विश्व कालास्त्र के संधान से क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१९॥ मरुत भी धनुष पर चढ़ाये हुए उस कालास्त्र को देख कर उच्च स्वर में बोले—मेरा संवर्त्तकास्त्र दुष्टों का शमन करने के लिए तत्पर हुआ है ॥२०॥ वह आपके हनन के लिए नहीं है, तो फिर सदा सत्पथ का आश्रय लेने वाले और अपनी आज्ञा-पालन में तत्पर रहने वाले पुत्र के प्रति आप इस कालास्त्र को क्यों छोड़ते हैं ॥२१॥

मयाकार्यंमहाभागप्रजानांपरिपालनम् ।
त्वयंवक्रियतेकृस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ॥२२

शरणागतसत्राणकर्तुं व्यवसितावयम् ।
तस्यव्याघातकर्त्तात्वनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३
मावाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ।
त्वावाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥२४
धिक्तस्यजीवितपुंसःशरणार्थिनमागतम् ।
योनार्तमनुगृह्णासिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥२५
क्षत्रियोऽहमिमेभीता शरणमामुपगताः ।
अपकर्त्तात्वमेवेषाकथंवध्योनमेभवान् ॥२६
मित्रश्चावान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरु ।
प्रजापालनविघ्नाययोहन्तव्यःसभूभृता ॥२७
सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यस्त्वयापित ।
स्वधर्मं परिपाल्योमेनास्तिक्रोधस्तवोपरि ॥२८

हे महाभाग ! प्रजा पालन ही मेरा परम कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे संहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित बोले—मैंने शरणागतो की रक्षा का दृढ निश्चय किया है, तुम उस कार्य मे विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र बल से मार-कर दुष्ट नागो को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सर्पों की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु-पक्ष के मनुष्य भी आर्त होकर शरण ग्रहण करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हू, भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यों नहीं हो ॥२६॥ मरुत बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन मे विघ्न उपस्थित करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता ! मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हों, मैं अपने धर्म के पालन के लिये ही ऐसा करने को तत्पर हुआ हूँ। यह मेरा क्रोध आपके प्रति नहीं है ॥२८॥

तनस्तौ निश्चितौदृष्ट्वापरस्परवधप्रति ।
समुत्पत्यान्तरेतस्थुर्मुनयोभार्गवादयः ॥२६
ऊचुश्चैननमोक्तव्यत्वयास्त्र पितरप्रति ।
त्वयाचनायहन्तव्य पुत्र प्रख्यातचेष्टितः ॥३०
मयादुष्टानिहन्तव्या.सन्तोरक्ष्यामहीक्षिता ।
इमेचदुष्टाभुजगा कोपराधोऽत्रमेद्विजा ॥३१
शरणागतसन्त्राणमयाकार्यंमयत्त्वमे ।
अपराध्यःसुतोविप्रायोहन्तिशरणागतान् ॥३२
इमेवदन्तिभुजगास्त्रासलोलविलोचना ।
सजीवयामस्तान्विप्रान्येदष्टादुष्टपन्नगैः ॥३३
तदलविग्रहेणोभौराजवर्यौप्रसीदताम् ।
उभावपिनिर्व्यूढप्रतिज्ञौ धर्मकोविदौ ॥३४
सानुकीरासमभ्येत्यपुत्रमेतदभाषत ।
मद्वाक्यादेपतेपुत्रोहन्तु नागान्कृतोद्यमः ॥३५
तन्निष्पन्नयदाविप्रास्तेजीवन्तितथामृता ।
सजीवन्तश्चामुच्यन्तेयद्युष्मच्छरणंगताः ॥३६

मार्कण्डेय जी ने कहा—उन दोनों को परस्पर संहार करने में प्रवृत्त देख कर भार्गवादि मुनि शीघ्र आकर दोनों के मध्य खड़े हो गये ॥२६॥ और मरुत से कहा—पिता के ऊपर अस्त्र चलाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है और अवीक्षित से कहा कि आपको भी इस श्रेष्ठ कर्मा पुत्र को नष्ट करना अनुचित है ॥३०॥ मरुत बोले—हे द्विजो ! मैं राजा हूँ, दुष्टों का वध करना और शिष्ट जनों का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है। ये नाग भी दुष्ट हैं, इसलिये इनके विषय में मेरा क्या अपराध है ॥३१॥ अवीक्षित बोले—हे विप्रो ! शरणागतों की रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ, जो पुत्र मेरे शरणागतों का वध करने को तत्पर है, वह मेरा अपराधी है ॥३२॥ ऋषि बोले—भय से चंचल नेत्र हुए भुजगों ने कहा कि जिन ब्राह्मणों को दुष्ट नागों ने डस लिया है, हम उनको जीवित कर रहे हैं ॥३३॥ इसलिये अब युद्ध की

आवश्यकता नहीं रह गई, आप दोनों ही राजश्रेष्ठ, धर्मज्ञानी और प्रतिज्ञा-पालक हैं, आप प्रसन्न हों ॥३४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी वीरा ने आकर अपने पुत्र अवीक्षित से कहा कि मेरे कहने से ही तुम्हारा पुत्र सर्पों को नष्ट करने में तत्पर हुआ था ॥३५॥ और अब जब ये मृतक ब्राह्मण जीवित हो रहे हैं, तब उसका कार्य भी सम्पन्न होगया और तुम्हारे ये शरणागत भी मुक्त हो गये ॥३६॥

सहमभ्यर्थितापूर्वमेभि पातालसश्रयै ।
तन्निमित्तमयभर्त्तामिपात्रविनियोजित ॥३७
तदतदार्यैनिवृ त्तमुभयोरपिशोभनम् ।
ममभतु श्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यार जस्यच ॥३८
तत सजीवयामासुस्तान्विप्रास्तेभुजङ्गमा ।
दिव्यैरोपधिजातैश्चविपसहरणेनच ॥३९
पित्रोर्नंनामचरणौसततोजगतोपति ।
मरुत्तश्चमतप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥४०
मानहाभवशत्रूणाचिरपालयमेदिनीम् ।
पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विप ॥४१
ततोद्विजैरनुज्ञातौवीरयाचनरेश्वरौ ।
समारुढौरथसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥४२

भामिनी बोली—पाताल में रहने वाले इन सभी सर्पों ने पहले मुझ से अभय याचना की थी, इसीलिए मैंने अपने स्वामी से तद्विषयक अनुरोध किया था ॥३७॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्र अथवा तुम्हारे पुत्र और पौत्र का यह श्रेष्ठ रीति से पूर्ण हुआ है ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर सर्पों ने उन मरे हुए ब्राह्मणों का विष दिव्य औषधियों के द्वारा दूर करके उन्हें जीवित कर दिया ॥३९॥ फिर राजा मरुत्त ने भी माता पिता के चरणों में प्रणाम किया और अवीक्षित ने भी मरुत्त को आलिंगन करके प्रीति-पूर्वक यह आशीर्वाद दिया ॥४०॥ शत्रुओं के मान-मर्दक होओ, पृथ्वी का सदा

पालन करो, पुत्र-पौत्र सहित सुख-पूर्वक समय व्यतीत करो तुम्हारे शत्रु नष्ट हों ॥४१॥ फिर ब्राह्मणों और वीरा की आज्ञा प्राप्त कर दोनों राजा और भामिनी रथारूढ होकर अपने नगर को चले गये ॥४२॥

वीराऽपिकृत्वासुमहत्तपोधर्मभृतांवरा ।
भर्तुं सलोकताप्राप्तामहाभागापतिव्रता ॥४३
मरुत्तोऽपिचकारोर्व्यांधर्मत परिपालनम् ।
विनिर्जितारिषड्वर्गोभोगाश्चबुभुजेनृप ॥४४
तस्यपत्नीमहाभागाविदर्भतनयातथा ।
प्रभावतीसुवीरस्यसौवीरीचाभवत्सुता ॥४५
सुकेशीकेतुवीर्य्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ।
सुताचसिन्धुवीर्य्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥४६
केकयस्यचसैरन्ध्रीसिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ।
चेदिराजसुताचाभद्भार्य्यातस्यसुशोभना ॥४७
तासांपुत्रास्तस्यचासन्भूतोऽष्टादशद्विज ।
तेषांप्रधानोज्येष्ठश्चनरिष्यत सुतोऽभवत् ॥४८
एववीर्य्योमरुत्तोऽभून्महाराजामहाबल ।
तस्याप्रतिहतचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥४९
यस्यतुल्योऽपरोराजानभूतोनभविष्यति ।
सत्यविक्रमयुक्तस्यरार्परमितौजस. ॥५०
तस्यैतच्चरितश्रुत्वामरुत्तस्यमहात्मन ।
जन्मचाग्र्यद्विजश्रेष्ठमुच्यतेसर्वकिल्विषै ॥५१

फिर धार्मिक-श्रेष्ठ परम भाग्यवती पतिव्रता वीरा देवी घोर तपस्या का आचरण करके अपने स्वामी के सालोक्य को प्राप्त हुई ॥४३॥ राजा मरुत ने भी छः हो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन और विभिन्न प्रकार के सुख भोग किये ॥४४॥ विदर्भसुता प्रभावती तथा सुवीर की की पुत्री सौवीरी, मगधेश्वर केतु-वीर्य की पुत्री सुकेशा, मद्रराज सिंधुवीर्य की पुत्री केकयी, सिंधुनरेश की पुत्री सैंधवी, चेदिराज की पुत्री वपुष्मती, ये

पराक्रमी वीर्यवान् थे उनका वृत्तान्त आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहता हूँ ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—मरुत के अठारह पुत्र हुए, जिनमें नरिष्यन्त सबसे बड़ा और श्रेष्ठ पुत्र हुआ ॥३॥ क्षत्रिय श्रेष्ठ मरुत ने सत्तर सहस्र पंद्रह वर्ष पर्यन्त समस्त भूतल पर राज्य किया ॥४॥ धर्म के अनुसार शासन कर और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ एवं अनुष्ठान करके वह अन्त में अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्त को राज्याभिषेक करके वनवास करने चले गये ॥५॥ हे द्विज ! तदुपरान्त दत्तचित्त से वन में तपस्या करते हुए पृथ्वी से यश प्राप्त करके राजा मरुत ने स्वर्ग प्राप्त किया ॥६॥

नरिष्यतःसुतःसोस्यचितयामासबुद्धिमान् ।
पितुर्वृ`त्तंसमालोक्यतथान्येषांचभूभृताम् ॥७
अस्मद्वंशेमहात्मानोराजानोममपूर्वजाः ।
यज्विनोधर्मतःपृथ्वीपालयामासुरूर्जिताः ॥८
दातारश्चापिवित्तानासंग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
तेषांकश्चरितशक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥९
किन्तुतैर्यत्कृतकर्मधर्म्यंमाहवनादिभिः ।
तदहकर्तु मिच्छामितन्नास्तिकोगेमिकिम् ॥१०
धर्मात्पालयन पृथ्वीकोगुणोत्रमहीपतेः ।
असम्यक्पालनात्पापीनरेन्द्रोनरकंव्रजेत् ॥११
सतिवित्ते महायज्ञाःकर्तव्याएवभूभृता ।
दातव्यचार्थकिचित्रसीदतामीश्वरोगति ॥१२
आभिजात्यतथालज्जाकोपश्चारिजनाश्रयः ।
कार्यंतिम्यधर्मश्चसंग्रामादपलायनम् ॥१३
एतत्सर्वयथासम्यङ्मत्पूर्वै पूर्व कृतम् ।
पितामचमेमरुत्ते नतथातत्केनशक्यते ॥१४

परम विद्वान् पुत्र नरिष्यन्त ने अपने पिता व अन्य दूसरे अधिपतियों के व्यवहार देखकर विचार किया ॥७॥ कि इस कुल में मेरे समस्त पूर्वज महान् आत्मा नृपगण यज्ञ व अनुष्ठान करने वाले, महा पराक्रमी, वीर्यवान्, धनदाता

संग्राम में कभी भी मुख न मोड़ने वाले थे एवं सभी ने धर्म के अनुसार भूतल का पोषण किया था, उन महान् आत्माओं के चरित्र का अनुसरण करने की सामर्थ्य किस में होगी ? ॥८-९॥ आह्वानादि से उन्होंने जो धार्मिक कृत्य पूर्ण किये उन्हें करने की मेरी भी आकांक्षा है परन्तु वह भी तो सहज नहीं है, इसलिए मैं कैसे करूँ ॥१०॥ यदि नृप धर्म व न्याय पूर्वक भूतल का पालन न करे तो फिर उसमें नृप के क्या गुण हैं ? उसके गुण में वह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि न्यायिक प्रकार से पृथिवी का पालन न करने वाला राजा पाप का भागी बनकर नरक प्राप्त करता है ॥११॥ धन युक्त होने पर नृप को दान और यज्ञ करने चाहिये, इसमें भी कोई अद्भुत बात नहीं है, राजा के लिए तो ईश्वर ही एकमात्र गति है ॥१२॥ अपने धर्म में स्थित रहने से ही राजा अपनी जाति के श्रेष्ठत्व और लज्जा के कारण शत्रु के भार और संग्राम में पीछे नहीं मुड़ता है॥१३॥ यह सब कार्य मेरे पूर्व पुरुषों और मेरे पिता मरुत ने जिस प्रकार किये हैं, वैसे कार्य अन्य कौन कर सकता है ? ॥१४॥

तदहं किं करिष्यामि यत्तु तैः पूर्वजैः कृतम् ।
ये यज्विनो वदान्याश्च संग्रामाच्चानिवर्तिनः ॥१५
महत्संग्रामसम्मर्दं न्यविमवादिपौरुषा ।
क्रमेणाहयतिष्यामि वस्मै तानभिनन्दितुम् ॥१६
अथवा तैः स्वयं यत्ना कृता पूर्वजनेश्वरैः ।
प्रविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७
इति संचिन्त्य यज्ञं स चकारैव नरेश्वरः ।
यादृशं न त्रकागन्यो जितो सर्गोपशोभितम् ॥१८
द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम् ।
तेन शतगुणं नेपायनार्थं मददान्नृप ॥१९
गात्रोविस्त्राप्य नवार धान्यागारादि रनया ।
प्रत्येकमददात्तेषामर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०

मेरे सभी पूर्व पुरुष श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले, दानशील सम-गुण युक्त तथा युद्ध में विमुख होने वाले न थे ॥१५॥ तथा युद्ध उपस्थित होने

पर शत्रुओं को अपना पराक्रम दिखाते थे, मैं इस समय ऐसा कौन कार्य करूँ, जिसे उन्होंने नहीं किया ? मैं कर्म द्वारा ही निष्काम धर्म को करूँगा ॥१६॥ अथवा जो यज्ञ मेरे पूर्व पुरुषों ने स्वयं किये थे, किसी अन्य को नहीं कराये, उन्हीं यज्ञों को मैं करूँगा ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा ने ऐसा विचार करके विपुल धन द्वारा एक ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसे पूर्व में कोई भी नहीं कर सका था ॥१८॥ उस यज्ञ में उन्होंने ब्राह्मणों को अत्यधिक धन प्रदान किया और उससे भी सौ गुणा अन्नदान किया ॥१९॥ पृथिवी पर जितने भी ब्राह्मण थे, उनमें से प्रत्येक को उन्होंने गौ, वस्त्र, अलंकार, घर, धान्य आदि प्रदान किया था ॥२०॥

ततस्तेनयदायज्ञ प्रारब्धोभूभुजापन ।
प्रारब्धेसमखेयष्टु ततोनालभतद्विजान् ॥२१
यान्यान्वृणोतिसनृपोविप्रानार्त्विज्यकर्मणि ।
तेतेतमूचुयज्ञायवयमन्यनदीक्षिता ॥२२
अन्यवरययद्वित्त त्वयास्माकविसर्जितम् ।
तस्यातोनास्तियज्ञपुद्यास्त्वनृपतेक्वथम् ॥२३
नचापश्यदृत्विजोविप्रास्तदाशेपक्षितीश्वर ।
वह्हिर्वेद्यातदादाननदातुमुपचक्रमे ॥२४
तथापिजगृहुर्नैवधनसपूर्णमदिरा ।
द्विजायदातु भूयोऽसोनिर्विण्णइदमब्रवीत् ॥२५
अहोतिशोभनपृथ्व्यायद्विप्रोनाधन क्वचित् ।
अशोभनचयत्कोपोविफलोयमयज्विन ॥२६
नार्त्विज्यकुरुतेकश्चिद्यजमानोखिलोजन ।
द्विजानानचनोदानददतासप्रतीच्छते ॥२७

जब राजा ने पुन. यज्ञानुष्ठान किया तब उन्हें कोई भी ब्राह्मण यज्ञ के लिए उपलब्ध नहीं हुआ ॥२१॥ उन्होंने जिस-जिस को भी ऋत्विक् के रूप में वरण करने की इच्छा की, उसी-उसी ने कहा कि मैं यज्ञ के लिये अन्यत्र वरण किया जा चुका हूँ ॥२२॥ आप किसी अन्य को वरण कर लें हे राजन् ! आपने

आपने यज्ञ मे हमे जितना धन दिया, वह अनेकानेक यज्ञो मे भी समाप्त नही हो सका ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सम्पूर्ण पृथिवी के राजा होकर भी जब उन्हे ऋत्विक् बनने के लिये कोई ब्राह्मण न मिला, तब वह बहिर्वेदी मे दान करने को उद्यत हुए ॥२४॥ फिर भी धन से युक्त घर का दान ब्राह्मणो ने ग्रहण नही किया, जब राजा दान करने मे सफल नही हुए और उनका श्रम व्यर्थ गया तब वे अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगे ॥२५॥ पृथिवी मे कही कोई भी इस समय धनहीन ब्राह्मण नही है यह अत्यन्त सन्तोष की बात है, परन्तु यज्ञानुष्ठान के बिना मेरा मेरे पास राजकोष का होना सार्थक नही है, यही कष्ट का कारण है ॥२६॥ सभी ब्राह्मण इस समय स्वयं ही यज्ञ कार्य मे प्रवृत्त हैं, इसलिए ऋत्विक् होने मे कोई ब्राह्मण सहमत नही है, इस समय वह स्वयं ही दान कर रहे हैं, इसलिये मेरा दान स्वीकार नही करते ॥२७॥

ततः कांश्चिद्द्विजान्भक्त्याप्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्वयज्ञेऽऋत्विजश्चक्रे तेप्रचक्रुर्महामखम् ॥२८
अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदा तस्यमहीपतेः ।
सयज्ञोभूत्तदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥२९
द्विजन्मनामभूद्यासीत्सर्वस्यस्तत्र कश्चन ।
यजमानाद्द्विजा केचित्केचित्ते पातुयाजकाः ॥३०
नरिष्यतोनरपतिर्नियाजसयदावदा ।
तत्प्रदातुर्धनैर्यागंचक्रुः पृथ्व्यामशेषतः ॥३१
प्राच्यांकोटयस्तुयज्ञानामसप्तष्टादक्षाधिका ।
प्रतीच्यासप्तवैकोट्योदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥३२
उत्तरस्यांचपञ्चाशदेककालंतदाभवन् ।
मुनेब्राह्मणयज्ञानांनरिष्यतोयदाऽप्यभूत् ॥३३
एवमराजावर्मात्मानरिष्यन्तोऽभवत्पुरा ।
मरुत्तस्तनयोविप्रविख्यातबलपौरुषः ॥३४

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर बारम्बार परम भक्ति और प्रणाम पूर्वक उन्होंने कोई ब्राह्मणो को अपने यज्ञ मे ऋत्विक् होने का सहमत कर लिया और

तब उन ब्राह्मणों ने उस महायज्ञ का सम्पादन किया ।।२८।। यह अत्यन्त विस्मय की बात थी कि राजा द्वारा सम्पादित उस महायज्ञ में सभी ब्राह्मण स्वयं ही यजमान हुए ।।२६।। उस यज्ञ में कोई सभासद नहीं हुआ था, ब्राह्मणों में से ही कोई स्वयं यजमान और कोई याजक हुआ ।।३०।। जब राजा नरिष्यन्त ने यज्ञ किया तब उन्हीं के धन से ब्राह्मणगण अनेक यज्ञों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए थे उस समय अट्ठारह करोड़ से भी अधिक यज्ञ किये गये, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ ।।३१-३२।। तथा उत्तर में पचास करोड़ यज्ञ हुए, ब्राह्मणों के सभी यज्ञ एक ही अवसर में सम्पन्न हुए ।।३३।। हे ब्रह्मन् ! पुराकाल में विख्यात बली एवं पराक्रमी मरुत्त पुत्र नरिष्यन्त ऐसे धर्मज्ञ थे ।।३४।।

१२०—दम चरित्र (१)

नरिष्यतस्यतनयोदुष्टारिदमनोदमः ।
शक्रस्येवबलतस्यदयाशीलमुनेरिव ।।१
बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायासजज्ञेतस्यभूभृत ।
नववर्षाणिजठरेस्थित्वामातुर्महायशा ।।२
यद्ग्राहयामासदममातरजठरेस्थित ।
दमशीलश्चभवितायनश्चायनृपात्मज ।।३
ततस्त्रिकालविज्ञानःसहितस्यपुरोहित ।
दमइत्यथरोन्नामनरिष्यतसुतस्यतु ।।४
सदत्तोराजपुत्रस्तुधनुर्वेदमशेषत ।
जगृहेसुराजस्यसकाशाद्वृषपर्वण. ।।५
दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्यतपोवननिवासिनः ।
सकाशाज्जगृहेऽस्त्रमस्त्रग्रामश्चास्त्रवत ।।६
शक्तेःसकाशाद्वेदांश्चवेदाङ्गान्यखिलानिच ।
तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहेयोगमात्मवान् ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा नरिष्यन्त के पुत्र दम हुए, वे इन्द्र के समान बली, मुनि के समान दयावान् और शीलवान् तथा शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे ॥१॥ बभ्रु की पुत्री इन्द्रसेना के जठर से वभ्रु नरिष्यन्त के वीर्य से उत्पन्न हुए, यह नौ वर्ष पर्यन्त माता के गर्भ में ही रहे ॥२॥ इनके गर्भ में स्थित रहने के समय माता को इन्द्रिय निग्रह पूर्वक रहना पड़ा था और यह राजकुमार भी दमशील हुए ॥३॥ यह देखकर तीनों काल के जानने वाले राज-पुरोहितों ने उनका नाम दम रखा, इस राजकुमार ने राजा वृषपर्वा से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की ॥४-५॥ तथा तपोवन में रहने वाले दैत्यवर दुंदुभि से उन्होंने समस्त अस्त्र ग्राम के प्रयोगों को मन्त्र सहित प्राप्त किया ॥६॥ शक्ति मुनि से सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग और आर्ष्टिषेण से योग शिक्षा प्राप्त की ॥७॥

तसुरूपमहात्मानगृहीतास्त्रमहाबलम् ।
स्वयंवरेवृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥८
सुतादशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः ।
पश्यतांसर्वभूपानांयेतदर्थमुपागताः ॥९
तस्याश्चसानुरागोऽभून्मद्रराजस्यवैसुत ।
सुमनायामहानादोमहाबलपराक्रम ॥१०
तथाविदर्भाधिपते पुत्र संक्रन्दनस्यच ।
वपुष्मानाजपुत्रश्चमहाधनुरुदारधी ॥११
तेनदातनृतदृष्ट्वादुष्टारिदमनंदमम् ।
मन्त्रयामासुरन्योऽन्यसतानङ्गविमोहिता ॥१२
एतामस्यबलात्कन्यांगृहीत्वारूपशालिनीम् ।
गृहंयामस्तस्येयमस्माकंयग्रहीष्यति ॥१३
भर्तृं बुद्ध्यावरारोहास्वयंवरविधानत ।
तस्यच्छ्रयानोभवितोभार्याधर्मोपपादिना ॥१४
अथनेच्छतिमाकश्चिदस्माकंमदिरेक्षणा ।
ततस्तस्यभविष्यामोदमस्यानविप्य ते ॥१५

दशार्णाधिपति चारुवर्मा की कन्या सुमना ने अपने पिता के द्वारा स्वयंवर किये जाने पर, महाबली महात्मा दम को ही अपना पति बनाया ॥८-९॥ मद्रराज के पुत्र महानन्द, विदर्भ राज के पुत्र वपुष्मान् तथा महाधनु नामक राजपुत्र ने उस सुमना की कामना की थी ॥१०-११॥ परन्तु शत्रुओं का दमन करने वाले 'दम' को राजकन्या ने वरण किया, यह देखकर वह राजकुमार परस्पर विचार करने लगे ॥१२॥ हम इस रूपवती राजकुमारी को इससे बल पूर्वक छीन कर ले जायेंगे ॥१३॥ इसके पश्चात् यह राजकुमारी स्वयंवर की विधि से हममें से जिसे चाहे स्वेच्छापूर्वक वरण करे, तब यह उसी की धर्म से उपलब्ध पत्नी मानी जायगी ॥१४॥ यदि यह हममें से किसी को भी ग्रहण नहीं करेगी तो जो दम का वध कर देगा, यह उसकी पत्नी होगी ॥१५॥

इतितेनिश्चयंकृत्वात्रय.पार्थिवनन्दनाः ।
जगृहुस्तांसुचार्वङ्गींदमपार्श्ववर्त्तिनीम् ॥१६
तत केचिन्नृपास्तेपायेतत्पक्षा विचुक्रुशुः ।
चुक्रुशुश्चापरेभूपा केचिन्मध्यस्थतागता ॥१७
ततोदमस्तान्भूपालानवलोक्यसमन्तत ।
अनाकुलमनावाक्यमिदमाहमहामुने ॥१८
भोभूपाधर्मकृत्येषुयद्वदन्तिस्वयंवरम् ।
दशार्णपतिनाभूपाःकृतेधर्म्येस्वयंवरे ।
अधर्मोवाऽथवाधर्मोयदेभिर्गृह्यतेबलात् ॥१९
यद्यधर्मोनमेकार्यंमन्यभार्याभविष्यति ।
धर्मोवातदलप्राणैर्यैरक्ष्यन्तेरिलघने ॥२०
ततोदशार्णाधिपतिश्चारुवर्मानराधिप. ।
नि.शब्दकारयित्वातत्सद.प्राहमहामुने ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—उन तीनो राजकुमारो ने ऐसा विचार करके दम के पार्श्व में बैठी हुई उस राजकुमारी का हरण कर लिया ॥१६॥ उस समय दम पक्षीय राजाओ ने उनकी निन्दा और भर्त्सना की, बहुत से राजा अत्यन्त क्रोधित हुए और बहुत से तटस्थ रहे ॥१७॥ फिर अपने चारो ओर राजाओ को स्थित

देखकर दम ने व्याकुलता पूर्वक कहा ॥१८॥ दम बोले—हे राजाओ ! जिस स्वयंवर को धर्म कार्य समझा जाता है वह यथार्थ में धर्म है अथवा अधर्म है ! इन्होंने स्वयंवर द्वारा प्राप्त हुई कन्या का जो हरण बलपूर्वक किया है ॥१९॥ तो यदि स्वयंवर धर्म-कार्य नहीं है तो अवश्य ही यह अन्य की पत्नी बने, परन्तु यदि आप इसे धर्म कहते हो, तो शत्रु से तिरस्कृत हुए इस शरीर को प्राण रखने की क्या आवश्यकता है ? फिर दशार्णाधिपति चारुवर्मा ने सभाभवन को शब्द रहित कराते हुए कहा ॥२१॥

दमेनयदिद प्रोक्त धर्माधर्माश्रितनृपा ।
तद्वदध्वयथाधर्मोममाम्यचनलुप्यते ॥२२
तत केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् ।
परम्परानुरागेणगान्धर्वोविहितोविधि. ॥२३
क्षत्रियाणापरमयनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ।
दनमाश्रित्यनिष्पन्न सचास्यादुहितुस्तव ॥२४
इतिधर्माद्दमस्यैपादुहितातवपार्थिव ।
योऽन्यथावर्त्त तेमोहात्कामात्मासम्प्रवर्त्तते ॥२५
तयाऽपरेतदाप्रोचुर्महात्मानोहिभूभृताम् ।
पक्षेयेभूभृतोविप्रदशार्णाधिपर्तिवच ॥२६
मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयगान्धर्वक्षत्रजन्मनः ।
नयेप्रशस्तानान्योहिराक्षस शस्त्रजीविनाम् ॥२७
बलादिमायोऽरनिहृत्यातुपरिपन्थिन ।
तस्यैपास्याद्राक्षसेनविवाहेनावनीश्वरा ॥२८

हे राजाओं ! दम ने धर्म अधर्म विषयक जो बात कही है उस पर आप अपनी सम्मति दीजिये, जिससे आप धर्म से च्युत न हों ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अनेक राजा उनसे बोले कि परस्पर की प्रीति से गान्धर्व विवाह का विधान है ॥२३॥ यह विवाह क्षत्रियों के लिये उत्तम है, ब्राह्मण वैश्य या शूद्र के लिये नहीं, आपकी इस कन्या का विवाह उक्त विधान से दम के साथ हो सम्पन्न होगया है ॥२४॥ इसलिये हे राजन् ! आपकी पुत्री दम की

भी पड़ी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह गान्धर्व विवाह तो है ही नहीं, अन्य विवाह में उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, शस्त्रजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भा होगी ॥२८॥

प्रधानतरएषोऽत्रविवाहक्षितयेमत. ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहात्मभ्दादिभि कृत ॥२९
अथप्रोचु पुनर्भूपाये पूर्वमुदितोनृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवचः ॥३०
सत्यशस्ताराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि. ।
किन्त्वसोजनकस्याम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हत्वातुपितृसम्बन्धवलेनह्रियतेह्यिा ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनानमतृं करेम्यिता ॥३२
पश्यतासर्वभपानामनयायदवतोदम ।

मे 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमे कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर या घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उसे राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालो के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गान्धर्व विवाह ही है, इसम राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद मे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽसौदम कोपकषायीकृतलोचन ।
आरोपयामासधनुर्वचनचेदमब्रवीत् ॥३६
ममाभिभार्य्यावलिभि पश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्यावाकोगुण क्लीबजन्मन ॥३७
धिड्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छगमनम् ।
धिग्जन्मैमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मन ॥३८
यदिभार्य्यामिमेमूटा समादायबलान्विता ।
प्रयान्तिजीवनोधिक्ताममघ्यर्थमनुत्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दसुतान्वली ।
अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदम ॥४०
एपातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
किन्तस्यजन्मनाभार्य्यानयस्येयकुलोद्भवा ॥४१
इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्तथायत्तसयुगे ।
यथानिर्जित्यमामेतापत्नीकुरुमानिन- ॥४२

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीव ही हुआ समझो इस प्रकार मेरे वश के गौरव और दोनो भुजाओ मे कोई गुण ही नहीं है ॥३७॥ मेरे जीवित

ही पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे है ? क्षत्रियो के हित मे यह गान्धर्व विवाह तो है ही नही, अन्य विवाह भी उनके लिये प्रशस्त नही हैं, शस्त्रजीवियो के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी ॥२८॥

प्रधानतरएवोऽत्रविवाहद्वितयेमत. ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभि कृतः ॥२९
अथप्रोचु पुनर्भू पाये पूर्वमुदितोनृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितरचः ॥३०
सत्यशस्तोराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि. ।
किन्त्वसौजनकस्वाम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हरवातुपितृसम्बन्धवलेनह्रियतेह्रिया ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनात्रभर्तृ करेस्थिता ॥३२
पश्यतासर्वभूपानामनयायद्वृतोदम. ।
गान्धर्वस्येहनिष्पत्तोविवाहोराक्षसोऽत्रक ॥३३
विवाहितायाःकन्यायायान्यात्रवनैवविद्यते ।
कन्यायाश्चविवाहेनसम्बन्ध पृथिवीश्वरा ॥३४
तइमेयेबलादेनादमादादातुमुद्यता ।
वलिनस्तेयदितत कुर्वन्तुनतुमाधुनत् ॥३५

क्षत्रियो मे जब राक्षस विवाह की ही प्रमुखता है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—जिन राजाओं ने पहिले परम्परागत धर्म और जाति धर्म के विषय मे कहा था, उन राजाओं ने पुन कहा ॥३०॥ यह भी सत्य है कि क्षत्रियो मे राक्षस विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इस राजकुमारी ने तो अपने पिता की अधीनता

मे 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमे कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर या घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति द्वारा प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उसे राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालो के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गान्धर्व विवाह ही है, इसमे राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद मे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽमोदम कोपकषायीकृतलोचन ।
आरोपयामासधनुर्वचनचेदमब्रवीत् ॥३६
ममापिभार्य्याबलिभि पश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्यावाकोगुण क्लीवजन्मन ॥३७
धिङ्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्शराान्धिक्धरासनम् ।
धिग्जन्यर्थमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मन ॥३८
यदिभार्य्यामिमेमूढा समादायबलान्विता ।
प्रयान्तिजीवनोधिक्नाममध्यर्थमनुप्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दसुतान्वलो ।
प्रयाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदम ॥४०
एषातिशोभनावालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
क्त्तिस्यजन्मनाभार्य्यानियस्येयकुलोद्भवा ॥४१
इतिसङ्क्रन्त्यभूपालास्तथाय-तसयुगे ।
ययानिर्जित्यमामेताप्तत्नींकुरुत्मानिन ॥४२

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीव ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वश के गौरव और दोनो भुजाओ मे कोई गुण ही नही है ॥३७॥ मेरे जीवित

ही पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह गांधर्व विवाह तो है ही नहीं, अन्य विवाह भी उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, शस्त्रजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी ॥२८॥

प्रधानतरएषोऽत्रविवाहद्वितयेमत. ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभि कृत ॥२९
अथप्रोचु पुनर्भू पार्थे पूर्वमुदितोनृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितरचः ॥३०
सत्यशस्ताराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि. ।
किन्त्वसौजनकस्वाम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हृत्वातुपितृसम्बन्धबलेनह्रियतेह्रिया ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनानभर्तृ करेस्थिता ॥३२
पश्यतासर्वभूपानामनयायद्वृतोदम ।
गान्धर्वस्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽनक ॥३३
विवाहितायाः कन्यायायान्यात्वनैवविद्यते ।
कन्यायाश्चविवाहेनसम्बन्ध पृथिवीश्वरा ॥३४
तइमेयेबलादेनादमादादातुमुद्यता ।
वलिनस्तेयदितत कुर्वन्तुनतुसाधुतत् ॥३५

क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की ही प्रमुखता है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—जिन राजाओं ने पहिले परम्परागत धर्म और जाति धर्म के विषय में कहा था, उन राजाओं न पुन कहा ॥३०॥ यह भी सत्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इस राजकुमारी ने तो अपने पिता की अधीनता

मे 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमे कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर या घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उस राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालो के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गांधर्व विवाह ही है, इसमे राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नही रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद मे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽसौदम कोपकषायीकृतलोचन ।
आरोपयामासधनुर्वचनचेदमब्रवीत् ॥३६
ममाभिभार्य्यावलिभि पश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्यावाकोगुण क्लीवजन्मन ॥३७
धिङ् ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छरासनम् ।
धिग्जन्मयमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मन ॥३८
यदिभार्य्यामिमेमूढा समादायजनान्विता ।
प्रयान्तिजीवतोधिक्तामामश्यर्थमनुष्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दसुतान्बली ।
अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदम ॥४०
एषातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
विन्तस्यजन्मनाभार्य्यायस्येयकुरोद्भवा ॥४१
इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्त्रयायत्तसयुगे ।
यथानिर्जित्यमामेनापत्नीपुरुमानिन ॥४२

मार्कण्डेयजी न कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीव ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वश के गौरव और दोनों भुजाओ मे कोई गुण ही नहीं है ॥३७॥ मेरे जीवित

रहते हुए यह पत्नी का हरण कर लेजाँय तो मेरे अस्त्रो, बाणो और धनुष को धिक्कार है तथा महात्मा मरुत्त के वश मे उत्पन्न होने और मनुष्य बनने को भी धिक्कार है ॥३८-३६॥ शत्रुओ का दमन करने वाले महाबली दम ने ऐसा कहकर महानन्दादि के प्रति कहा ॥४०॥ हे सम्मानित राजागण! यह सत्कुल में उत्पन्न हुई सुन्दरी बालिका जिसकी पत्नी नही हुई, उसका जन्म ही वृथा हुआ है ॥४१॥ यह सोचकर मुझे पराजित करके इसे अपनी पत्नी बना सको, वैसा ही प्रयत्न सग्राम भूमि मे करो ॥४२॥

इत्याभाष्यततस्तत्रशरवर्षममु'चत ।
छादयन्पृथिवीपालास्तमसेवमहीरुहान् ॥४३
तेऽपिवीरामहीपाला शरशक्तयष्टिमुद्गरान् ।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्ताश्चदमश्चिच्छेदलीलया ॥४४
तेऽपितत्प्रहितान्बाणास्तेपाचासौशरोत्करान् ।
चिच्छेदपृथिवीशानांनरिष्यन्तात्मजोमुने ॥४५
वर्त्तमानेतदायुद्धे दमस्यक्षितिपात्मजै. ।
प्रविवेशमहानन्दःखड्गपाणिर्यतोदम ॥४६
तमायान्तदमोदृष्ट्वाखड्गपाणिमहामृधे ।
मुमोचशरवर्षाणिवर्षाणीवपुरन्दर. ॥४७
तदस्त्राणिततस्तानिशरजालानितत्क्षणात् ।
महानन्द प्रचिच्छेदखड्गे नाग्यानवचयत् ॥४८
ततोरोषात्समारुह्यतदमस्यतदारथम् ।
महानन्दोमहावीर्योदमेनयुयुधेसह ॥४६

ऐसा कहकर दम ने उन राजाओ के आच्छादन पूर्वक बाण-वृष्टि की ॥४३॥ उन राजाओ ने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि, मुगदर आदि इन पर चलाये, परन्तु इन्होने उन सब शस्त्रास्त्रो को लीलापूर्वक ही नष्ट कर दिया ॥४४॥ हे मुने! उस समय सब राजा दम के अस्त्रो को और दम भी उनके अस्त्रो को काटने लगे ॥४५॥ दम और उन राजपुत्रो के मध्य इस प्रकार सग्राम हो ही रहा था, तभी हाथ मे खड्ग ग्रहण किये हुए महानन्द उनके सामने हुआ ॥४६॥

उसे हाथ में खड्ग लिये आता देखकर, इन्द्र द्वारा जल वृष्टि करने के समान, दम ने बाणों की वर्षा प्रारम्भ की ॥४७॥ महानन्द ने उनके सब अस्त्रों और बाणों को अपने खड्ग से काट डाला, उसने यह कार्य इस चतुराई से किया कि अन्य राजागण उसे देख भी न सके ॥४८॥ फिर क्रोध में भरा हुआ वह महानन्द दम के रथ पर चढ़कर उसके साथ लड़ने लगा ॥४९॥

वहुधायुध्यमानस्यमहानन्दस्यलाघवात् ।
दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥५०
तलग्नमात्मनोरकृष्यविभिन्नेनततोहृदा ।
दमप्रतिविचिक्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१
पतन्तचैनमुल्कामशक्त्याचिक्षेपतदम ।
शिरोवैतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥५२
तस्मिन्हतेमहानन्देप्राचुर्य्येणपराङ्मुखा ।
बभूवु पार्थिवास्तत्रोवपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥५३
दमेनयुयुधेचासौबलगर्वमदान्वित ।
दाक्षिणात्यमहीपालतनयोरणगोचर ॥५४
युध्यमानस्यतस्योग्र करवालसवेलघु ।
चिच्छेदमारयेद्वैवशिर मन्येनयाघ्नजम् ॥५५
विभ्रखड्गोगदासोऽथजग्राहवहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्यसचिच्छेदकरस्यामितमत्नर ॥५६

बहुत समय तक इस प्रकार युद्ध करते हुए दम ने उसके हृदय में कालाग्नि के समान जलने वाला छोड़ा ॥५०॥ महानन्द ने हृदय में लगे हुए उस बाण को स्वयं ही निकाला और दम पर अपना उज्ज्वल खड्ग का वार किया ॥५१॥ दम ने विद्युत् के समान गिरते हुए उस खड्ग को शक्ति द्वारा काट कर तुरन्त ही वैतसपत्र बाण के द्वारा उस महानन्द का शीश काट डाला ॥५२॥ महानन्द के समाप्त होते ही कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् के अतिरिक्त अधिकतर नृप रण से विमुख हो गये ॥५३॥ वह राजपुत्र दाक्षिणात्य एवं अपने पराक्रम के प्रति अभिमानपूर्ण वपुष्मान् रण-क्षेत्र में दम से युद्ध करने लगा ॥५४॥ युद्ध

क्षेत्र में दम ने तुरन्त वपुष्मान् की तीक्ष्ण तलवार एवं उसके सारथी का सिर व रथ की ध्वजा काट डाली ॥५५॥ तलवार के नष्ट होने पर वपुष्मान् ने अनेक कांटों से युक्त गदा धारण की और उससे वार करने से पूर्व ही दम ने वह गदा उसके हाथों में खण्ड-खण्ड कर डाली ॥५६॥

यावदन्यत्समादत्ते सवपुष्मान्वरायुधम् ।
तावच्छरेणतविद्धादमोभूमावपातयत् ॥५७
सपातितस्ततोभूमौविह्वलाङ्ग सवेपथु ।
विनिवृत्तमतिर्युद्धादबभूवक्षितिपात्मज ॥५८
तमालोक्यतथाभूतमयुयुद्धमतिमात्मवान् ।
उत्सृज्यादायसुमनासुमना प्रययौदम ॥५९
ततोदशार्णाधिपति प्रीतिमानकरोत्तयो ।
दमस्यसुमनायाश्चविवाहंविधिपूर्वकम् ॥६०
कृतदारोदमस्तत्रदशार्णाधिपतेःपुरे ।
स्थित्वाऽल्पकालप्रययौसभार्योनिजमन्दिरम् ॥६१
दशार्णाधिपतिश्चासीद्दत्त्वानागास्तुरङ्गमान् ।
रथगोऽश्वरोष्ट्राश्चदासीदासास्तथाबहून् ॥६२
वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमासनम् ।
अन्येस्तैश्चतथाभाण्डे परिपूर्णंव्यसर्जयत् ॥६३

इसके पश्चात् वपुष्मान् द्वारा सर्वोत्तम अस्त्र ग्रहण करने पर भी दम ने उसे अपनी बाण-वर्षा द्वारा टुकड़े कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥५७॥ तब राजपुत्र वपुष्मान् ने व्याकुल व कम्पित शरीर को पृथ्वी पर गिरा दिया व युद्ध की तत्परता त्याग दी ॥५८॥ दम ने उसकी ऐसी स्थिति एवं उसकी युद्ध के लिए तत्परता न देख उसे छोड़ दिया एवं आनन्दपूर्ण हृदय से सुमना को लेकर चले गये ॥५९॥ इसके पश्चात् दशार्णाधिपति ने आनन्दित चित्त होकर सुमना व दम का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न किया ॥६०॥ भार्या ग्रहण करके दम कुछ समय तक दशार्णाधिपति के महल में रहे तदनन्तर पत्नी के साथ अपने गृह को चले गये ॥६१॥ उनको विदा करते समय दशार्णाधिपति ने उन्हें अनेकों हाथी,

घोडे, रथ, गौ, खर, ऊँट, दास, दासी ॥६२॥ वस्त्र, आभूषण, धनुष आदि विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुऐं भेंट स्वरूप एवं दानस्वरूप धन, रत्न आदि प्रदान किये ॥६३॥

१२१—दम चरित्र (२)

मतालब्ध्वातथापत्नीसुमनांसुमहामुने ।
प्रणम्यसपितु पादौमातुश्चक्षितिपात्मज. ॥१
साचतौश्वशुरौसुभ्रू नंनामसुमनातदा ।
ताभ्यातौचतदाविप्रश्र सीभिरभिनन्दितौ ॥२
महोत्सवश्चसजज्ञे नरिष्यन्तस्यवैपुरे ।
कृतदारेचसप्राप्ते दशार्णाधिपतेपुरात् ॥३
सम्बन्धिनदशार्णेशजिताश्चपृथिवोश्वरान् ।
श्रुत्वापुनेणमुमुदेनरिष्यतोमहीपति ॥४
सोऽपिरेमेसुमनयामहाराजसुतोदमः ।
वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥५
अथकालेनमहतारममाणादमेनसा ।
अवापगर्भंसुमनादशार्णाधिपते सुता ॥६
सोऽपिराजानरिष्यन्तोभुक्तभोगोमहीपति ।
वय परिणतिप्राप्यदमराज्येऽभिपिच्यच ॥७
वनजगामेद्रमेनापत्नीचास्यतपस्विनी ।
वानप्रस्थविधानेनमतत्रसमतिष्ठत ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा— हे महर्षि ! दम ने अपनी भार्या सुमना सहित आकर अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया ॥१॥ एवं इसी प्रकार सुमना ने भी उन्हें प्रणाम किया । हे द्विज ! उन दोनों माता पिता ने भी आशीर्वाद प्रदान करते हुए उनका अभिनन्दन किया ॥२॥ सुमना के भार्या के

रूप मे ग्रहण करके दम दशार्णाधिपति के महल से आये, तो नरिष्यन्त के महल मे आनन्दोत्सव प्रारम्भ हो गया ॥३॥ नराधिपति नरिष्यन्त को दशार्णराज के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने एव अपने पुत्र द्वारा अन्य राजाओ को हराने का वृतात सुनकर अत्यन्त सतोष हुआ ॥४॥ इसके पश्चात् राजकुमार दम अनुपम उद्यानो, वनो, महलो एव पर्वत आदि स्थलो पर भार्या सुमना के साथ विहार करने लगे ॥५॥ इस प्रकार विहार करते हुए कुछ समय पश्चात् दशार्ण सुता ने गर्भ धारण किया ॥६॥ उसी काल नृपेन्द्र नरिष्यन्त ने वैभव का उपभोग कर अपनी वृद्धावस्था को देखकर दम को राज्याभिषेक कर दिया ॥७॥ अपनी भार्या रानी इन्द्रसेना को साथ लेकर वन मे प्रस्थान कर गये एव *वहाँ विधिपूर्वक वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने लगे ॥८॥*

दाक्षिणात्य सुदुर्वृत्त सक्रन्दनसुतोवने ।
वपुष्मान्समृगान्हन्तुयया वल्पपदानुग ॥९
सतदृष्ट्वानरिष्यन्ततापसमलपाङ्किनम् ।
इन्द्रसेनाचतत्पत्नीतपसातिसुदुर्बलाम् ॥१०
पप्रच्छकस्त्वभोविप्रःक्षत्रियोवावनेचरः ।
वानप्रस्थमनुप्राप्तोवैश्योवाममकथ्यताम् ॥११
ततामौनव्रतीभूपोनहितस्योत्तरददौ ।
इन्द्रसेनाचतत्सर्वमाचष्टाम्भैयथातथम् ॥१२
ज्ञात्वातश्चनरिष्यन्तवपुष्मान्पितररिपो ।
प्राप्तोऽस्मीतिवदन्कोपाज्जटासुपरिगृह्यच ॥१३
हाहेतिचन्द्रसेनायारुदयाञ्याप्यगद्गदम् ।
चकर्षकोपात्खङ्ग चवाक्य चेदमुवाचह ॥१४

एक बार दाक्षिणात्य नृप सक्रन्दन का दुराचारी पुत्र वपुष्मान् अपने कुछ अनुचरो के साथ उन वन मे आखेट के लिए आया ॥९॥ वहाँ वानप्रस्थी नरिष्यन्त की मलिन देह व निर्बलाङ्गी इन्द्रसेना को देखकर ॥१०॥ वपुष्मान् उनसे पूछा तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य मे से किस जाति के हो वानप्रस्थी होकर वनवासी हुए हो, यह मुझे बताओ ॥११॥ राजा मौन

व्रत मे थे, इसलिए इसका उत्तर नही दे सके परन्तु, इन्द्रसेना ने सब बात यथा-वत् बतादी ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वपुष्मान् ने उह शत्रु का पिता नरिष्यन्त जान कर "पा गया" कहते हुए क्रोधपूर्वक उनकी जटा पकड़ली ॥१३॥ उस समय इन्द्रसेना हाहा कर रोने लगी, तभी दुराचारी ने म्यान से तलवार निकालकर कहा ॥१४॥

निर्जित समरेयेनयेनमेसुमनाहृता ।
दमस्यतस्यपितरहंनिप्येऽवतुतन्दमः ॥१५
येनाखिलमहीपालपुना कन्यार्थमागता ।
अवधूताहनिप्येऽहंपितरतस्यदुर्मतेः ॥१६
यौवनास्त्रस्वरुपेपुमदोयस्यदुरात्मन ।
सदमोवारयत्वेपहन्मितस्यरिपोर्गुरुम् ॥१७
इत्युक्त्वासदुराचारोवपुष्मानवनीपति ।
क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायाशिरश्चिच्छेदतस्यच ॥१८
ततोधिग्धिड्मुनिजनाश्चान्येचवनवासिन ।
तमूचु सचतहत्वाजगामस्वपुरवनात् ॥१९
गतेतस्मिन्विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ।
प्रेपयामासपुनस्यसमीपशूद्रतापसम् ॥२०

जिसने मुझे युद्ध मे हरा दिया था और जो मेरी सुमना का हरण कर ले गया है उस दम के पिता का मैं वध करता हू, वह दम यहा आकर इसकी रक्षा करे ॥१५॥ कन्या की कामना से सब राजकुमारो को जिसने अपमानित किया, उस दम के पिता को आज मैं मार रहा हू ॥१६॥ जो योद्धाओ के दमनकारी स्वभाव वाला है, मैं आज उस दुरात्मा शत्रु के पिता को विनष्ट करता हू दम आकर इसको बचावे ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इतना कह कर दुरात्मा राजा वपुष्मान् ने रुदन करती हुई इन्द्रसेना के समक्ष नरिष्यन्त का मस्तक छिन्न कर दिया ॥१८॥ यह देखकर मुनिगण और अन्य सब वन-वासी उसे धिक्कार देने लगे और वह भी नरिष्यन्त को इस दशा में छोड़कर

अपने नगर को चला गया ॥१६॥ जब वपुष्मान् चला गया, तब इन्द्रसेना ने दीर्घ विश्वास लेकर एक शूद्र तपस्वी को अपने पुत्र के पास भेजा ॥२०॥

गच्छेथाआशुमेपुत्रदमन्नू हिवचोमम ।
अभिज्ञोह्यसिमद्भूतं वृत्तान्तप्रोच्यतेऽत्रकिम् ॥२१
तथापिवाच्य पुत्रोमेयदब्रवीम्यतिदु खिता ।
लघनामीदृशीप्राप्ताविलोक्यतामहीपते ॥२२
मद्भर्त्राऽधिकृतोराजाचतुर्णांपरिपालकः ।
स्वमाश्रमाणांकिंयुक्त तापसान्यन्नरक्षसि ॥२३
भर्तामिमनरिष्यन्तस्तापसस्तपसिस्थित ।
विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासिनथात्वयि ॥२४
आकृष्यकेशेपुबलादपराधविनातत ।
हतोवपुष्मतास्त्यासिमितितेभूपतिर्गता ॥२५
एवस्थितेतत्क्रियतायथाधर्मोनलुप्यते ।
सथाचनैवक्तव्यमाताहतापसी५त ॥२६
पितावृद्धस्तपस्वीचनापराधनेदूषित ।
निहतोयेनयत्तस्यकर्तव्यतद्विचिन्त्यताम् ॥२७
सन्तितेमन्त्रिणोवीरा सर्वशास्त्रार्थवेदिन ।
तै सहालोच्ययत्कार्यमेवभूतेकुरुष्वतत् ॥२८

इन्द्रसेना ने उससे कहा कि तुम शीघ्र ही हमारे पुत्र देम के पास जाकर इधर का समाचार कहो, तुम सब वृतान्त को भले प्रकार जानते हो, इसलिए तुम्हें बताने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥२१॥ फिर भी राजा का ऐसा अपमान उपस्थित देखकर और अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कह रही हूँ, वह सब मेरे पुत्र से कहना ॥२२॥ तुम राजा हो, चारो आश्रम के पालन कर्त्ता एव स्वामी नियुक्त हुए हो, फिर भी तुम तपस्वियो की रक्षा करते, क्या यह उचित है ? ॥२३॥ मेरे पति नरिष्यन्त यहाँ तप करते थे, परन्तु, तुम रक्षा करने वाले के होते हुए भी मेरे द्वारा विलाप करते करते वपुष्मान् ने उनका निरपराध ही वध कर दिया है । तुमने राजा होकर प्रसिद्धि उपलब्ध की है ॥२४॥२५॥

इस दशा मे जिससे धर्म लुप्त न हो वैसा ही कार्य करो, इससे अधिक कहना उचित नही समझनो ॥२६॥ तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और सर्वथा निरपराधी थे, ऐसी अवस्था मे उनकी हत्या की गई है। इस विषय मे अपने कर्त्तव्य का भलीभांति निश्चय करो ॥२७॥ तुम्हारे वीर मन्त्री शास्त्र ज्ञाता हैं उनसे परामर्शपूर्वक जो कर्त्तव्य हो वही करना चाहिए ॥२८॥

नास्माकमथिप्रकारोऽनापसानानराधिप ।
कुरुध्वेतदितीत्यत्वमेवभूपतिभाषितम् ॥२६
विदूरथस्यजनकोयवनेनयथाहत ।
तथायतवपुत्रस्यकुलतेनविनाशितम् ॥३०
जम्भस्यासुरराजस्यपितादष्टोभुजङ्गमे ।
तेनाप्यखिलपातालवासिन पन्नगाहता. ॥३१
पराशरेणपितरशक्तिनरक्षसाऽहृतम् ।
श्रुत्वाऽग्नौपातितकृत्स्नरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२
अन्यस्यापिस्ववशस्यलघनाक्रियतेहिया ।
तानालक्षत्रिय सोढु किंपुन पितृमारणम् ॥३३
नायपितातेनिहतोनास्मिन्श्चस्त्रनिपातितम् ।
त्वामत्रनिहतमन्येत्वयिशस्त्रनिपातितम् ॥३४

हे राजन् ! तुम्हारे पिता ने मरत समय कहा है कि मैं तपस्वी हूं, इस विषय मे अनधिकारी हू, इसलिए तुम्हे ही इसका प्रतिकार करना है ॥२६॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने वध किया था, वैसे ही वपुष्मानन् ने तुम्हारे पिता का वध करके कुल को नष्ट किया हैं ॥३०॥ जब दैत्यराज जभ क पिता को सर्पों ने काट लिया था, तब जभ ने पातालवासी सभी नागो को निहत किया था ॥३१॥ और उस असुर के द्वारा पिता शक्ति की मृत्यु हुई सुनकर पराशर जी ने सम्पूर्ण असुर-वश को अग्नि मे दग्ध कर दिया था ॥३२॥ जब क्षत्रियगण अपने कुल के किसी भी व्यक्ति का अपमान सहन नहीं कर पाते तो पिता के वध की बात का तो कहना ही क्या है ॥३३॥

मैं समझती हूँ कि तुम्हारे पिता का वध नहीं हुआ है उन पर शस्त्र नहीं चलाया गया अपितु इस प्रकर तुम्हारा ही वध हुआ है ।।३४।।

विभेत्यस्यहिक शस्त्रन्यस्तयेनवनौकसाम् ।
लवभूपस्यपुत्रस्यमाविभेतुविभेतुवा ।।३५
लवेयलाघनायुक्तायदस्मिस्तत्समाचर ।
वपुष्मतिमहाराजसभृत्यज्ञातिबाधवे ।।३६
इतिसङ्क्रान्तसन्देशमिन्द्रसेनाविसृज्यतम् ।
पतिदेहमुपाश्लिष्यविवेशाग्निमनस्विनी ।।३७

वन वासियों के ऊपर जो हथियार नहीं उठाता है उसका भय कौन करेगा ? अथवा उसका पौरुष ही क्या होगा ? तुम उनके पुत्र तथा पृथ्वी के पालक हो, यदि शत्रु को नष्ट कराेगे तो तुम्हारा भय सभी मानेंगे अन्यथा तुम्हारे शासन मे भी विघ्न उपस्थित हो जायगा ।।३५।। हे राजन् ! ये तिरस्कार हुआ है, इसलिए भृत्यो व वपुष्मान् के प्रति तुम्हे जो करना चाहिये, वही करो ।।३६।। मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना ने उस तापस से यह सदेश कह कर उसे विदा किया और पति के शरीर का आलिगन करके अग्नि मे प्रवेश किया ।।३७।।

१६२—दम चरित्र (३)

इन्द्रसेनासमाज्ञप्तःसगत्वाशूद्रतापस ।
समाचष्टयथापूर्वदमायनिधनपितु ।।१
तापसेनसमाख्यातेदमस्तेनपितुर्वधे ।
क्रोधेनातीवजज्वालहविषेवाग्निरुद्धन ।।२
सतुक्रोधाग्निनाधीरोदह्यमानोमहामुने ।
करवरेणनिष्पिष्यवाक्यमतदुवाचह ।।३

अनाथइवमेतातोमयिपुत्रेनुजीवति ।
घातित सुनृशंसेनपरिभूयकुलमम ॥४
तापकरोम्यहंकिवाप्येपवलैव्यात्क्षमाम्यहम् ।
दुवृ त्तशातोशिष्टानापालनेऽधिकृतात्वयम् ॥५
पितरंचापिनिहतदृष्ट्वाजीवन्तिशत्रवः ।
तत्किमेतेनबहुनाहातातेतिचकिंपुनः ॥६
विलापेनात्रयत्कृत्यतदेवोऽत्रकरोम्यहम् ।
यद्यहंतस्यरक्तेनदेहोत्थेनवपुष्मतः ।
नकरोमिगुरोस्तृप्तितत्प्रवेक्ष्येहुताशनम् ॥७
तच्छोणितेनोदककमंतस्यामासेनसम्यग्द्विजभोजनच ।
कुर्यापितुस्तस्यचपिंडदानंनचेत्प्रवेक्ष्यामिहुताशनंतत ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना की आज्ञा से शूद्र तापस ने दम के निकट जाकर उनके पिता की मृत्यु का समाचार और रानी इन्द्रसेना ने जो कहा था, वह सब कह सुनाया ॥१॥ पिता की मृत्यु का पूर्ण सम्वाद सुन कर घृताहुति से तीक्ष्ण हुई अग्नि के समान राजा दम क्रोध से लाल हो गये ॥२॥ यद्यपि वह स्वभाव से धीर थे, परन्तु उस समय क्रोधाग्नि मे प्रज्वलित होकर हाथ मलते हुए बोले ॥३॥ मुझ पुत्र के जीवित रहते हुए उस नृशंस ने मेरे कुल के अपमान पूर्वक पिता की अनाथ के समान हत्या की है ॥४॥ मैं क्रोध करूँ या क्लीवता से क्षमा कर दूँ, परन्तु मैं दुष्टो का दमन करने और शिष्ट-जनो का पालन करने के लिये नियुक्त हुआ हूँ ॥५॥ पिता का वध करने पर भी मेरे शत्रु अभी तक जीवित हैं, परन्तु इस प्रकार अधिक वार्ता से क्या लाभ है ॥६॥ अब मुझे जो कर्त्तव्य है। वही करता हूँ। यदि वपुष्मान् के देह से निकले हुए रुधिर से अपने पिता का तर्पण न करूँ तो शरीर में प्रवेश कर जाऊँगा ॥७॥ यदि उसे मारकर उसके रक्त से मृत-पिता का तर्पण न करूँ और पितरो को पिंड दान न करूँ तो मैं अग्नि मे प्रविष्ट होऊँगा ॥८॥

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसघाः ।
कुर्वन्तिचेत्तानपिचास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येपरपासमेतः ॥९

नीशूरमाधार्मिकमप्रशस्ततदाक्षिणात्यसमरेनिहत्य ।
भोक्ष्येततोऽहपृथ्वीचकृत्स्नार्वाह्निप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतवा ।।१०
सुदुर्मतितापसवृद्धघातिनवनस्थगसाधुर्विधिविदग्धगम् ।
हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलै समेतम् ।।११
एषोऽहमादायधनु सखड्गोरथीतथैवारिबलसमेत्य ।
करोमिवंयत्कदनसमस्ता पश्यन्तुमेदेवगणासमेता ।।१२
योय सहायोभवितायतस्यमयासमेतस्यरणायभूय ।
तस्यैवनि शेपकुलक्षयायसमुद्यतोऽहनिजबाहुसैन्य ।।१३
यदिकुलशिखराऽस्मिन्सयुगेदेवराज,
पितृपतिरथचोग्र दण्डमुद्यम्यकोपात् ।
धनपतिवरुणार्कारक्षितुन्त यतन्ते,
निशितशरवरौघैर्घातयिष्येतथापि ।।१४
नियतमतिरदोष काननाखण्डलोका,
निपतितफलभक्ष सर्वभूतेपुमैत्र ।
प्रभवतिमयिपुत्रेहिंसितस्तोयेनत त,
पिशितरुधिरतृप्तास्तस्यसन्त्वद्यगृधा ।।१५

असुर देव, दक्ष, गन्धर्व, विद्याधर अथवा सिद्ध गण जो भी उसकी सहायता करेगा, उसे भी मैं अपने अस्त्रानल से भस्म कर डालूँगा ।।६।। उस अधीर्य अधार्मिक, निंदित, दाक्षिणात्य को युद्ध मे मारकर ही सम्पूर्ण पृथ्वी को भोगूँगा अथवा उसके वध मे असमर्थ होने पर अग्नि मे प्रविष्ट हो जाऊँगा ।।१०।। जिस दुर्मति ने मेरे तपोनिरत वनवासी मौनव्रती वृद्ध पिता के शान्त वचनों के उपरात भी उनकी हत्या की है, उसे मैं अभी उसके सब बन्धुओं मित्रो तथा पैदल और सवार के सहित मार डालूँगा ।।११।। मैं अब असि और धनुष को ग्रहण करता हुआ रथारूढ़ होकर शत्रु सेना के मध्य उपस्थित हो कर उसके सहार कार्य मे लगता हूँ । मेरा वह कृत्य सब देवगण देखें ।।१२।। युद्ध में मेरे साथ भिड़ने पर उसका जो जो भी सहायक होगा उस उसको अपनी बाहु और सेना द्वारा कुल सहित नाश करने के लिये मैं आज तत्पर हुआ। हू

॥१३॥ इस संग्राम में वज्रधारी इन्द्र, उग्र दण्ड देने वाले यम, अथवा कुबेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा का प्रयत्न करेंगे तो मैं अपने श्रेष्ठ बाणों से उनको भी नष्ट कर डालूँगा ॥१४॥ मुझ प्रभावशाली पुत्र के रहते हुए भी जिसने मेरे संयमचेता दोष रहित वनवासी केवल गिरे हुए फल से जीवन-निर्वाह करने वाले एवं सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखने वाले पिता की हत्या की है। आज उसके रक्त और मांस से गृद्ध-गण तृप्ति को प्राप्त होंगे ॥१५

१२३—वपुष्मान् वध

इतीप्रतिज्ञायतदानरिष्यतसुतोदम. ।
कोपामर्षविवृत्ताक्ष.श्मश्रु मावृत्यपाणिना ॥१
हाहतोऽस्मीतिपितरध्यास्वादैवविनिंद्यच ।
प्रोवाचमन्त्रिणः सर्वानानिनायपुरोहितम् ॥२
यदत्रकृत्यतदब्रूततातेप्राप्ते सुरालयम् ।
श्रुत भवद्भिर्यत्प्रोक्त तेनशूद्रतपस्विना ॥३
वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थित ।
मौनव्रतधरोऽशस्त्रोमन्मात्राचेन्द्रसेनया ॥४
प्रोक्त ससृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यवपुष्मते ।
तेनापिखड्गमाकृष्यजटासव्येनपाणिना ॥५
धृत्वाजघानदुष्टात्मालोकनाथमनाथवत् ।
मातावसदिश्यमाधिवच्छन्दब्रु वतीसती ॥६
मदभाग्यचनि श्रीकप्रविष्टाहव्यवाहनम् ।
तमालिग्यनरिष्यत प्रयाताग्निदशालयम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार प्रण करके क्रोध में भरे हुए दम ने घूर्णित नेत्रों से मूँछों पर हाथ फेर कर उन्हें ऊँची किया ॥१॥ और अपने पिता का चिन्तन तथा दैव की निन्दा करने लगे, फिर पुरोहितों और कुलक्रम

और अमात्यों के समक्ष उनसे बोले ।।२।। दम ने कहा—पिता जो स्वर्गवासी होगये, वृद्ध तापस के द्वारा यह बात आप सब को ज्ञात हो चुकी है, अब क्या कर्त्तव्य, वह मुझे बताइये ।।३।। तब पर शासन करने वाले वह महाराज वृद्धावस्था में वानप्रस्थी होकर मौन व्रत का अवलम्बन कर रहे थे, वपुष्मान् द्वारा परिचय पूछने पर मेरी माता इन्द्रसेना ने ।।४।। उसे अपना सम्पूर्ण परिचय यथार्थ रूप से दिया, तभी उस दुष्ट ने तलवार निकाल कर अपने वामहस्त से ।।५।। मेरे पिता को अनाथ के समान पकड़ लिया और उनकी हत्या कर दी, तब मेरी सती माता ने मुझ मंदभाग्य और निःश्रीक को धिक्कारा और मेरे पिता का आलिंगन करके अग्नि में प्रविष्ट होगई ।।६-७।।

सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम् ।
हस्त्यश्वरथपादातसैन्यं च परिकल्प्यताम् ।।८
अनिर्यात्य पितुर्वैरमहत्वा पितृघातकम् ।
अकुर्वाणश्च वचो मातुर्जीवितुं किमिहोत्सहे ।।९
मन्त्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हा हेत्युक्त्वा तथा च तत् ।
चक्रुरस्तोकमनसः सभृत्यबलवाहनाः ।।१०
निर्ययुः सपरीवाराः पुरस्कृत्य दमं नृपम् ।
गृहीत्वा चाशिषो विप्राद्धित्रकालज्ञात्पुरोधसः ।।११
प्रहिणवन् जिघांसुः स्वस्य दम प्रायाद्वपुष्मतम् ।
सीमापालादिसामन्तान् निघ्नन्याम्यां दिशं त्वरा ।।१२
निरीक्ष्य तं समायातं वपुष्मान् सपरिच्छदः ।
संक्रन्दनसुतेनापि दमोऽज्ञातो वपुष्मता ।
आयातः सपरीवारः सामात्यः सपरिच्छदः ।।१३
अनन्वितेन मनसा स सैन्यं निर्दिदेश ह ।
दूतं च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहिः ।।१४

माता ने जो आज्ञा मुझे भेजी है अब मुझे तदनुसार कार्य करना है, रथ, अश्व, पैदल आदि से युक्त यह चतुरंगिणी सेना सुसज्जित की जाय ।।८।।

पितृ-द्वेषी और पितृ घातक को मारे बिना और माता की आज्ञा का पालन किये बिना जीवित रह ने पर मुझ में उत्साह नहीं रह सकता ॥६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—उनके वचन सुन कर मन्त्रिगण ने वाक व्यक्त कर राजाज्ञा का पालन किया और वे भृत्य, सेना, वाहनादि के सहित ॥१०॥ सपरिवार चल पड़े और त्रिकालज्ञ पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर दम भी ॥११॥ नागराज के समान श्वासोच्छ्वास छोड़ते हुए भीमपालक सामन्तों को मारते हुए दक्षिण दिशा में गये ॥१२॥ सपरिवार और मन्त्रिगण के साथ वीर वेश में दम का आगमन सुन कर सक्रन्दन पुत्र वपुष्मान् ने भी क्रोध पूर्वक ॥१३॥ दृढ़चित्त से अपनी सेना का युद्ध करने का आदेश दिया और नगर से बाहर निकल कर दूत के द्वारा यह सन्देश भेजा ॥१४॥

त्वशीघ्रतरमागच्छनरिष्यत प्रतीक्षते ।
सभार्यकश्चवधोत्वसमायाहिममांतिकम् ॥१५
इमेमद्बाहुनिर्मुक्ता.शितावाणा पिपासिता ।
भित्वाशरीरसग्रामेपास्यतिरुधिरतव ॥१६
श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वंदूतप्रोक्त यथोत्वरन् ।
स्मृत्वाप्रतिज्ञापूर्वोक्तानिःश्वसन्नुरगोयथा ॥१७
आहूतसमरेचवपुष्मान्मेनाविकत्यनः ।
ततोयुद्धमतीवासीद्दमस्यचवपुष्मत ॥१८
रथीनरथिनानागीनागिनाहयिनाहयी ।
अयुध्यतचविप्रर्पेतद्युद्ध तुमुलह्यभूत ॥१६
पश्यतासर्वदेवानासिद्धगवर्वरक्षसाम् ।
चकपेवसुधाव्रह्मन्युध्यमानेदमेयुधि ॥२०
नगजोनरथोनाश्वस्तस्यबाणसहस्नुयः ।
ततोदमेनयुयुधेमेनाध्य क्षावमुष्मत ॥२१

अरे क्षत्रियाधम ! तू शीघ्र हो सामने आ, अरिष्यन्त भी पत्नी के सहित तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये तुरन्त ही मेरे पास आ ॥१५॥ यह रक्त-पिपासु नाण शिला पर पैनाये गये हैं और अब मेरी भुजाओं द्वारा चलाये

जाकर तेरे देह को विदीर्ण कर रक्तपान करेंगे ॥१६॥ दूत की बात सुन कर और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण कर सर्प के समान श्वास त्याग करते हुए द्रुतगति से दम वहाँ पहुँचे ॥१७॥ तथा युद्ध के लिये ललकारते हुए कहा—प्रकृत पुरुष आत्मश्लाघा कभी नहीं करते, इसके पश्चात् वपुष्मान् के साथ दम का अत्यन्त घोर संग्राम हुआ ॥१८॥ रथी से रथी, हाथी सवार से हाथी सवार और अश्वारोही से अश्वारोही भिड गये और घोर युद्ध होने लगा ॥१९॥ हे ब्रह्मर्षे ! उस युद्ध को अपने सामने ही सब देवता, सिद्ध, गंधर्वादि देख रहे थे, जब अत्यन्त क्रोध सहित दम युद्ध में प्रवृत्त हुए, तब पृथिवी कम्पायमान हो उठी ॥२०॥ उनके बाणों को सभी हाथी, अश्व या रथारोही सहन करते थे, दम के साथ वपुष्मान् का सेनापति भिड रहा था ॥२१॥

हृदिविव्याधचदमइपुणागाद्यमातिकम् ।
तस्मिन्निपतितेसैन्यपलायनपरह्यभूत् ॥२२
सस्वामिनतत प्राहदमःशत्रु दमस्तथा ।
क्वयासिदुष्टपितरघातयित्वातपस्विनम् ॥२३
अशस्त्र चतपस्यतक्षत्रियोसिनिवर्तताम् ।
ततोनिवृत्यसदमयोधयामाससानुज ॥२४
सपुत्र सहसवधिवाधवैर्युयुधेरथी ।
तत शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततोदिश ॥२५
दमचसरथचाशुशरजालैरपूरयत ।
तत पितृवधोत्थेनकोपेनसदमस्तथा ॥२६
चिच्छेदताञ्छरास्तेषाविव्याधान्यैश्चतानपि ।
एकेनैकेनबाणेनसप्तपुत्रास्तथाद्विज ॥२७
सवधिवाधवान्मित्राणिनाययमसादनम् ।
वपुष्मान्सरथीकोधाग्निहतात्मजबाधव ॥२८
युयुधेचसनातेजोशरैराशीविषोपमैः ।
चिच्छेदतस्यतान्बाणान्सदमश्चमहामुने ॥२९

उसके हृदय को दम ने बींध दिया, उसके गिरते वपुष्मान् के सहित समस्त सेना भाग ने लगी ॥२२॥ तब शत्रुनाशक दम बोले—अरे दुष्ट मेरे पिता की हत्या करके तू किधर जा रहा है ॥२३॥ तूने शस्त्र रहित तपस्वी पिता का वध किया है, भाग मत, यह सुन कर वपुष्मान् अपने अनुज, पुत्र एवं बाधवादि के सहित डट कर रथ पर चढ़ा हुआ युद्ध करने लगा और उसने अपने धनुष के द्वारा बाण वर्षा करके सभी दिशाओं को ढक दिया ॥२४-२५॥ उसने अपने बाणों के जाल से रथ अश्व सहित दम को आवृत्त कर और दम ने भी अपने पिता की हत्या से उत्पन्न हुए क्रोध मे उत्तेजित होकर ॥२६॥ उसके सब बाणों को काट कर, शत्रुओं के देह बाणों से बींध कर, एक-एक बाण से उसके सात पुत्र ॥२७॥ अनुज, सम्बन्धी आदि का वध कर दिया, जब वपुष्मान् ने अपने आत्मज तथा बन्धु आदि का मरण देखा, तब वह भी अत्यन्त क्रोध मे भर कर ॥२८॥ नागो के समान बाणों के द्वारा दम से युद्ध करने लगा, परन्तु दम ने वे सभी बाण काट दिये ॥२९॥

युयुधातेऽसरब्धौपरस्परजयैषिणौ ।
परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौवरा ॥३०
गृहीतखङ्गावुत्तीर्यविक्रीडातेमहाबलौ ।
दम क्षणान्नृपघ्नास्त्वापितरनिहतवने ॥३१
केशेष्वाकृष्यचाक्रम्य निपात्यधरणीतले ।
शिरोधारायापादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥३२
पश्यंतुदेवता.सर्वामानुषाःपन्नगा खगाः ।
पाट्यमानचरद्दयक्षत्रवधोर्वपुष्मतः ॥३३
एवमुक्त्वाचसदमोऽहृदयचव्यदारयत् ।
पातुकामश्चससुरं क्षतजेननिवारतः ॥३४
तनश्चकारतातस्यारक्तेनैवोदकक्रियाम् ।
आनृण्यप्राप्यसपितु.पुन प्रायात्स्वमन्दिरम् ॥३५
वपुष्मतश्चमासेनपिंडदानचकारह ।
ब्राह्मणान्भोजयामासरक्ष.कुलसमुद्भवान् ॥३६

एवंविधाहिराजानोबभूवु सूर्यवंशजाः ।
अन्येपिसुधिय.शूरायज्विनोधर्मकोविदा ॥३७
वेदातपारगास्ताश्चनसंख्यातुमिहोत्सहे ।
एतेषाचरित्त श्रुत्वानरःपापै.प्रमुच्यते ॥३८

इस प्रकार क्रोध पूर्वक एक दूसरे को मारने की इच्छा से घोर संग्राम करने लगे, दोनो ही महाबली थे, दोनों के ही धनुष टूट गये थे, तब दोनो ही तलवार से युद्ध करने लगे, वन में मारे गये पिता की क्षण भर याद करके दम ने वपुष्मान् के ॥३०-३१॥ केश खींच कर पृथिवी मे डाल दिया और उसकी ग्रीवा को पाँव से दाब कर भुजा उठा कर दम ने इस प्रकार कहा ॥३२॥ मैं इस क्षत्रियाधम वपुष्मान् के हृदय को विदीर्ण करता हू, इसे सभी देवता, मनुष्य, सिद्ध और नागगण देखें ॥३३॥ ऐसा कह कर दम ने तलवार से उस का हृदय चीर डाला और उसका रक्त पीने को उद्यत हुए, तब देवताओं ने उन्हें रोका ॥३४॥ उसके रक्त से दम ने अपने पिता को उदक दान और मांस से पिंड-दान किया, इस प्रकार पितृ-ऋण से मुक्त हुए दम अपनी राजधानी मे लौट आये ॥३५-३६॥ सूर्यवंश मे ऐसे पराक्रमी राजा हुए तथा अन्य अनेक राजा यज्ञवान्, धर्मात्मा, ज्ञानी एवं वीर हुए हैं ॥३७॥ ऐसे-ऐसे वेदान्त पारगत हुए, जिनका वर्णन नही हो सकता और न उनकी गणना की जा सकती है, इनके चरित्र को सुनने वाला मनुष्य पापो से मुक्त हो जाता है ॥३८

११३—पुराण श्रवण पठन फल

एवमुक्त्वाजैमिनेयंमार्कण्डेयोमहामुनि. ।
विसृज्यक्रोष्टुकिमुनिचक्रे माध्याह्निकींक्रियाम् ॥१
अस्माभिश्चश्रुतंतस्मायत्ते प्रोक्त महामुने ।
अनादिसिद्धमेतद्धिपुराप्रोक्तं स्वयंभुव

मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदाहृतम् ।
पुण्यपवित्रमायुष्यधर्मकामार्थमिद्धिदम् ॥३
पठनाश्रृण्वतासद्य सर्वपापप्रमोचनम् ।
ग्रादावेवकृतायेचप्रश्नाश्रत्वारएवहि ॥४
पितु पुत्रस्यसवादस्तथासृष्टि स्वयभुव ।
तथामनूनास्थितयोराज्ञाचचरितमुने ॥५
अस ।भिरेतत्तेप्रोक्त किमद्यश्रोतुमिच्छसि ।
एतान्सर्वान्नर श्रु त्वापठतेवासभासुच ॥६
विधूयसर्वपापानिब्रह्मणोह्यालयव्रजेत् ।
अष्टादशपुराणानियानिप्राहपितामह ॥७॥

पक्षियो ने कहा—हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डयजी ने इस प्रकार कह कर क्रौष्टुकि मुनि को विदा किया और मध्याह्न क्रिया सम्पन्न की ॥१॥ हे महामुने ! जो हमने आपसे कहा है वह सब स्वय भगवान् मार्कण्डेय जी ने कहा था, हमने भी उन्ही से सुना है ॥२॥ आपसे कहा गया यह मनोहर पुराण मार्कण्डेय जी के द्वारा कहा गया एव अत्यन्त पवित्र है, इसके पढने या सुनने से आयु की वृद्धि और सभी कामनाओ की सिद्धि होती है ॥३॥ और इसके पाठ करने से सभी पापो से मुक्ति होती है पहिले आपने जो चार प्रश्न किये थे, उन सब का उत्तर ॥४॥ पिता-पुत्र सम्वाद स्वायमुव की सृष्टि, मनुष्यों की उत्पत्ति और राजागण का चरित्र भी ॥५॥ आपके प्रति कहे गये हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? इस सब को सुनने और सभा स्थल मे वाचन कराने वाला मनुष्य ॥६॥ सभी पापो से छूट कर ब्रह्म म लीन हो जाता है ॥७॥

तेपातुसप्तमज्ञेयमार्कण्डेयसुविश्रु तम् ।
ब्राह्म पाद्म वैष्णवचशैवभागवततथा ॥८
तथान्यन्नारदीयचमार्कण्डेयचसप्तमम् ।
आग्नेयमष्टमप्रोक्त भविष्यनवमतथा ॥९

दशमब्रह्मवैवर्त्तं लैंगमेकादशस्मृतम् ।
वाराहंद्वादशप्रोक्तं स्कादमत्रत्रयोदशम् ॥१०
चतुर्दशवामनचकौर्मंपंचदशतथा ।
मात्स्यचगारुडचैवब्रह्माड चततःपरम् ॥११
अष्टादशपुराणानानामधेयानियःपठेत् ।
त्रिसध्यंजपतेनित्यसोऽश्वमेधफललभेत् ॥१२
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवशोमन्वतराणिच ।
वशानुचरितंचैवपुराणपचलक्षणम् ॥१३
चतु प्रश्नसमोपेतपुराणह्य तदुत्तमम् ।
श्रु त्वापुनश्चनैपापकल्पकोटिशतं कृतम् ॥१४
ब्रह्महत्यादिपापानियान्यन्यान्यशुभानिच ।
तानिसर्वाणिनश्य तितृणवातहतं यथा ॥१५॥

पितामह ब्रह्मा जी ने अठारह पुराण कहे थे उनमे यह मार्कण्डेय पुराण सातवाँ है, प्रथम पुराण ब्राह्म, द्वितीय पाद्म, फिर वैष्णव, शैव, भागवत ॥८॥ नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य ॥९॥ ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वराह, स्कन्द ॥१०॥ वामन, कौर्म, मत्स्य, गरुड और फिर अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है ॥११॥ इन अठारह पुराणों के नाम का ही पाठ करने वाला तथा तीनो सध्या मे जप करने वाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त करता है ॥१२॥ सर्ग, प्रति सर्ग, वश, मन्वन्तर, वंशानुचरित यह पाँच लक्षण पुराणो के होते हैं ॥१३॥ चार प्रश्न वाला इस मार्कण्डेय पुराण के सुनने सौ करोड़ कल्प के भी पापो का क्षय होता है ॥१४॥ तथा ब्रह्महत्या आदि सब महापाप प्रचण्ड वायु से टूटे हुए तृण के समान ही इसके पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

पुष्करेदानजपुण्यश्रवणादस्यजायते ।
सर्ववेदाधिकफलंसमाप्याचाधिगच्छति ॥१६
य श्रावयेत्पूजयेत्त यथादेवपितामहम् ।
गधपुष्पैस्तथावस्त्रै र्ब्राह्मणानांचतर्पणं. ॥१७

यथाशक्त्याचदातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् ।
एतत्पुराणमखिलवेदार्थरूपवृ हितम् ।
धर्मशास्त्रं कनिलयंश्रु त्वासर्वार्थमाप्नुयात ।।१८
श्रु त्वापुराणमखिलव्यासपूजयेद्बुध ।
धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे ।।१६
दद्याद्गागुरवेस्वर्णवस्त्रालकारसयुताम् ।
श्रवणस्यफलावाप्त्यैदानं सतोषयेद्गरुम् ।।२०
अपूज्यपाठकर्तारश्लोकमेकंशृणोतिय ·
नासौपुण्यमवाप्नोतिशास्त्रचोर स्मृतोहिसः ।।२१

इसके श्रवण करने से वैसा ही पुण्य मिलता है, जैसा पुष्कर में दान करने से मिलता है, इसकी सम्पूर्णता में वेदपाठ की सम्पूर्णता के समान फल की उपलब्धि होती है ।।१६।। इस पुराण को सुनाने वाले पंडित का ब्रह्मा के समान पूजन करे, गंध, पुष्प, वस्त्रादि से पुराण का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन करावे ।।१७।। राजा यथाशक्ति ग्राम तथा वाहनादि प्रदान करे, यह पुराण सम्पूर्ण वेदार्थ से युक्त तथा धर्म का स्थान रूप है, इसके श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है ।।१८।। इस सम्पूर्ण पुराण को सुन कर व्यास पूजन करे तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है ।।१६।। स्वर्ण, वस्त्र, तथा अलंकारादि से युक्त गौ गुरु को दे, क्योंकि सुनने का फल प्राप्त करने के लिये दान द्वारा गुरु को संतुष्ट करे ।।२०।। वाचक की पूजा किये बिना जो पुरुष इसको सुनते हैं, उन्हें कुछ भी पुण्यलाभ नहीं होता, ज्ञानीजन उन्हें शास्त्र चोर कहते हैं ।।२१।।

मतस्यदेवा.प्रीणतिपितरौनैवपुत्रकान् ।
दत्तं श्राद्ध तथेच्छतितीर्थस्नानफलनच ।।२२
लभतेशास्त्रचोरश्चनिदासज्जनसंस द ।
अवज्ञयानश्रोतव्यशास्त्रमेतद्विचक्षणैः ।।२३
पठ्यमानेत्ववज्ञातेसाधुभिः शास्त्रउत्तमे ।
मूकोभवतिजन्मानिससमूर्ख प्रजायते ।।२४

श्रुत्वातत्पूजयेद्यस्तुपुराणसप्तमपुन ।
सर्वंपापविनिर्मुक्त पुनात्येवनिजकुलम् ॥२५
पूतोयातिनमदेहोविष्णुलोक सनातनम् ।
च्युतस्तत पुनर्नेवसभविष्यतिमानव ॥२६
पुराणश्रवणादेवपरयोगमवाप्नुयात् ।
नास्तिकायनदातव्यवृपलेवेदनिंदके ॥२७
गुरुद्विजातिनिंदायतथाभग्नव्रतायच ।
मातापित्रोर्निदकायवेदशास्त्रादिनिंदिने ॥२८

देवता उनसे रुष्ट हो जाते हैं, पितरगण भी अप्रसन्न होकर उनके द्वारा दिया गया श्राद्ध ग्रहण नही करते और उन्हे तीर्थ स्नान के फल से भी वचित होना पडता है ॥२२॥ सज्जनो के समाज मे उनकी निन्दा होती है, इसलिए विद्वानो को अवज्ञापूर्वक श्रवण नही करना चाहिये ॥२३॥ जो मनुष्य साधुओ द्वारा शास्त्र पढने समय अवज्ञा करते हैं वह वई जन्म तक गूगे और सात जन्म तक बधिर होते हैं ॥२४॥ इस सप्तम पुराण का पूजन करने वाले मनुष्य सब पापो से मुक्त होते और अपने कुल को पवित्र करते हैं ॥२५॥ यह पवित्र होकर अवश्य ही विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं, वहाँ से पुन ससार मे नहीं लौटते ॥२६॥ केवल इस पुराण के ही सुनने मात्र से उत्कृष्ट योग की प्राप्ति होती है, परन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक, गुरुद्वेषी, व्रतत्यागी, माता पिता के निन्दक और शास्त्रादि के निन्दक को प्रदान न करे ॥२७ २८॥

भिन्नमर्यादिनेचैवतथावैश्रातिकोपिने ।
एतेपांनैवदातव्यप्राणै करगतैरपि ॥२९
लोभाद्वायदिवामोहाद्भयाद्वापिविशेषत ।
पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकध्रुवम् ॥३०
एतत्सर्वमुपाख्यानधर्म्यंस्वर्गापवर्गदम् ।
य शृणोतिपठेद्वापिसिद्ध तस्यसमीहितम् ॥३१
आधिव्याधिजदु खेनय दाचिन्नाभियुज्यते ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यते नात्रसशय ॥३२

स न स्वजनमित्राणिभवतिहितवृद्धय ।
नारय सभविष्यतिदस्यवोवाकदाचन ॥३३
सदर्योमिष्टभोगीचदुर्भिक्षेनवसीदति ।
परदारपरद्रव्यहिंसादिकिल्विषे ॥३४
मुच्यतेनेकदु खेभ्योनित्यन्वैवद्विजोत्तम ।
ऋद्धिवृद्धि स्मृतिशांति श्री पुष्टिस्तुष्टिरेवच ।
नित्यतस्यभवेद्विप्रय शृणोतिकथामिमाम् ॥३५

मर्यादा के तोडने वाले और जाति को दूषित करने वाले मनुष्य को भी न दे तथा प्राण कण्ठगत होने पर भी इस पुराण को प्रदान न करे ॥२६॥ यदि लोभ, मोह या भय के कारण इनमें से जो कोई पुराण का पाठ करता है या पाठ करा कर श्रवण करता है, तो वह अवश्य ही नरकगामी होता है ॥३०॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—यह समस्त उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और मोक्ष का दाता है, इसे जो पढता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएं सिद्ध होती हैं ॥३१॥ उसे कभी रोगादि से कष्ट नही होता और वह ब्रह्महत्या आदि के पापो से मुक्त हो जाता है ॥३२॥ उसके स्वजन और मित्र उसका हित करने वाले हो जाते हैं, उसका कोई भी शत्रु नही होता और न चोरो की ही बाधा उपस्थित होती है ॥३३॥ उसके यहाँ श्रेष्ठ धन विद्यमान रहता है वह मिष्टान्न का भोजन करता और दुर्भिक्ष से कभी भी पीडित नही होता पर नारी, पर धन, और पर हिंसा के पापो से ॥३४॥ अथवा अन्य अनेक प्रकार के दु खो से मुक्त हो जाता है इस कथा को जो सुनता है, ऋद्धि वृद्धि, स्मृति, शान्ति, श्री, पुष्टि, तुष्टि उसके साथ रहती हैं ॥३५॥

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलशृण्वन्नशो-
च्य पुमान्योवासम्यगुदीरयेद्रसमयशोच्योनसोपिद्विज ।
योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहित स्वर्गादिलोकेप्यसौ-
दामार्थैश्चसुरादिभि परिवृत स्वर्गेसदापूज्यते ॥३६

पुराणमेतच्छ्रुत्वाचज्ञानविज्ञानसंयुतम् ।
विमानवरमारुह्यस्वर्गलोकेमहीयते ॥३७
पुराणाक्षरसंख्याचप्रख्याततत्त्वबुद्धिना ।
श्लोकानांषट्सहस्राणितथाचाष्टशतानिच ॥३८
श्लोकास्तत्रनवाशीतिरेकादशसमाहिता. ।
कथितामुनिनापूर्वंमार्कण्डेयेनधीमता ॥३९
भारतेनाभवद्यन्मेसंशयस्फोटनंद्विजा ।
तद्भवद्भिःकृतयन्नकश्चिदद्यकरिष्यति ॥४०
यूयदीर्घायुषःस्यातप्रज्ञाबुद्धिविशारदा. ।
सांख्ययोगेतथाचास्तुबुद्धिरव्यभिचारिणी ॥४१
पितृशापकृताद्दुःखाद्दोर्मनस्यंव्यपेतुवः ।
एतावदुक्त्वावचनंजगामस्वाश्रममुनिः ।
चिंतयन्परमोदारपक्षिणावाक्यमीरितम् ॥४२

इस सम्पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का श्रवण करने वाला कभी शोचनीय नहीं रहता, इसके कहने वाले विप्रगण भी शोचनीय नहीं रहते, वे योग, ज्ञान और सिद्धि के सहित स्वर्गादि लोको को प्राप्त होते हैं तथा इन्द्रादि देवताओ के साथ रह कर सदा पूजे जाते हैं ॥३६॥ इस ज्ञान-विज्ञान से युक्त पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ विमान मे चढ कर स्वर्ग को गमन करते हैं ॥३७॥ पहिले सूक्ष्मदर्शी श्री मार्कण्डेय जी ने इस पुराण में छः हजार नौ सौ श्लोक कहे थे ॥३८–३६॥ जैमिनि ने कहा—हे खगगण ! महाभारत में जो सन्देह था, वह सब तुमने मित्रभाव से दूर कर दिया, इस प्रकार अन्य कौन कर सकता था ? ॥४०॥ तुम अत्यन्त दीर्घायुष्य, नीरोग और बुद्धि विशारद हो, तुम्हारी बुद्धि सांख्य योग में श्रेष्ठ गति वाली हो ॥४१॥ तुम पिता के वचन से ही दुःखों प्राप्त नहीं हुए हो, ऐसा कह कर और उन खगो के वचनों का स्मरण करते हुए मुनि अपने आश्रम में लौटे ॥४२॥

मार्कण्डेय पुराण का नैतिक व सांस्कृतिक अध्ययन

पुराण रचना की पात्रता और मार्कण्डेय की दूरदर्शिता

इस पुराण के प्रणेता अथवा वक्ता महर्षि मार्कण्डेय हैं। उन्हीं के नाम से यह पुराण अभिहित हुआ है। मार्कण्डेय उच्चकोटि के साधक और आत्मानुसधान के प्रवीण पात्र थे। वे आत्मसाक्षात्कार की अन्तिम सीढी तक पहुँच चुके थे। नारायण उनके इष्ट देव थे। उनके साक्षात् दर्शन होने के सम्बन्ध मे स्वय नारायण ने प्रकट होकर महाभारत मे मार्कण्डेय को सम्बोधित करते हुए कहा "हे मार्कण्डेय ! तुम्हारे ब्रह्मचर्य की महानता अवर्णनीय है। मेरे जिस रूप को देवता भी तत्व रूप से नही समझ सकते, उसे तुम अपने प्रत्यक्ष नेत्रो से देख रहे हो। मैं नारायण हूँ, विश्व का शाश्वत और अव्यय प्रसव स्थान हूँ। इन्द्र, प्रजापति, कुबेर शिव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, सोम सब मैं ही हू। चारो वेद मुझ से ही आविर्भूत होते हैं और मुझ मे ही समा जाते हैं। जो कुछ भी स्थावर और जगम वस्तुओं को तुमने देखा है, उन्हें मेरी ही आत्मा समझो, "मैं नारायण हू।"

मार्कण्डेय ने महाभारत में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर मे कहा है "एकार्णवीभूत स्थिति में एक वटवृक्ष की शाखा पर मैं ने एक बालक के दर्शन किए जो स्वय नारायण थे। उन्होंने स्वयं कहा—मार्कण्डेय ! मैं तुम से सन्तुष्ट हू, तुम थक गये होगे, तुम मेरे शरीर मे विश्राम लो।" कथा के अनुसार मार्कण्डेय उस नारायण रूपी बालक के मुख में चले गये, वहाँ उन्होंने भारत वर्ष के दिव्य दर्शन किये—उसके जनपद, नगर, नदियाँ और पर्वत।" जिस तरह से भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को पात्र समझ कर विराट् रूप के

दर्शन दिये थे, उसी तरह से नारायण ने मार्कण्डेय को उत्तम पात्र जानकर उन्हें अपना साक्षात् दर्शन दिया और भारत वर्ष का विराट् रूप दिखाया। दूसरे शब्दो मे उन्होने मार्कण्डेय को भारत वर्ष की भौगोलिक समीक्षा और उसके निवासियो का नैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और आत्मिक विश्लेषण कर के मार्ग दर्शन करने का अधिकार दे दिया हो। नारायण को मार्कण्डेय उत्तम पात्र दिखाई दिये। ऐसा लगता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना का भार स्वय नारायण ने मार्कण्डेय को सौंपा हो। इससे स्पष्ट है कि मार्कण्डेय पुराण के प्रणयन की पृष्ठभूमि मे स्वय नारायण उपस्थित हैं। प्रस्तुत पुराण मे जो भी शिक्षाएँ और प्रेरणाएँ दी गई हैं, वे मार्कण्डेय के मस्तिष्क मे नारायण के प्रकाश से ही आई हैं। पुराणो को वैसे भी वेदो की सरल व्याख्या मानी जाती है। वेदो मे जो सिद्धान्त गहन रूप मे प्रतिपादित किये गए हैं, उन्हें कथाओं, कहानियो और रूपको के माध्यम से पुराणो मे वर्णित किया गया है ताकि वे सर्व साधारण की समझ मे आ सकें। वेदो को ईश्वरीय रचना मानने मे किसी को सन्देह हो नही हो सकता। अत यदि मार्कण्डेय पुराण की रचना के लिये नारायण ने मार्कण्डेय को पात्र समझ कर आदेश दिया हो तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति नही है।

पुराण की रचना मे मार्कण्डेय ने अपनी पात्रता सिद्ध कर दी। उन्होने युगानुरूप सामग्री का चयन किया, पुराणो को सस्कारित किया, जो दोष कुछ अन्य पुराणों मे थे, उन्हें दूर किया, साम्प्रदायिक विद्वेष से दूर रहे, किसी भी सम्प्रदाय के देवी देवता का उन्होने खण्डन नही किया, उनके लिए सभी देवता समान हैं, वे तो सभी को नारायण रूप देखते थे। जिसे नारायण का स्वय साक्षात्कार हो गया हो, उसके मन मे भेदभाव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? वे तो सभी प्राणियो में अपने ही रूप के दर्शन करके उनके कल्याण की योजना मे मग्न रहते होंगे और यहाँ मार्कण्डेय ने किया भी ऐसे ही।

मार्कण्डेय दूरदर्शी थे, उन्होंने मानव मन का गहन अध्ययन किया था, वे स्वय साधक थे और क्रियात्मक रूप से देखा था कि किस तरह से शुद्ध से

महान अथवा नीचे से ऊपर चढने की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। वे ऋषि थे, आत्मसाक्षात्कार किए हुए थे, उन्हें स्वयं आत्मा के अतिरिक्त संसार में कुछ सूझता ही न होगा। वे इस जगत की अनित्यता को भली भांति अपने खुले नेत्रों से देखते होंगे परन्तु जगत से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा। वे जानते थे कि स्थूल शरीर की सुरक्षा के लिए हर प्रकार की भौतिक सामग्री की अपेक्षा रहती है। उनसे घृणा करना अपने मार्ग को अवरुद्ध करना होगा। अभ्युत्थान के लिए दोनों का समन्वय अभीष्ट है। मार्कण्डेय ने अपने पुराण में यही किया है। भौतिक, नैतिक, सामाजिक और आत्मिक सभी विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

भौतिक विद्याओं के विकास का समर्थन—

महर्षि ने भारत वर्ष के भूगोल का विस्तृत विवेचन किया है। जिससे भारत की प्राचीन सीमाओं का दिग्दर्शन होता है। पर्वतों और नदियों का भी विस्तार से वर्णन है। सम्पूर्ण जनपद सूची भी दे दी गई है। मार्कण्डेय राष्ट्रवादी संत थे। आज तो पढ़े-लिखे लोग अपने देश की उपेक्षा करते हैं और इङ्गलैंड, अमेरिका की प्रशंसा के पुल बाँधते नहीं थकते परन्तु मार्कण्डेय ने भारत को कर्म भूमि और शेष भू-भाग को भोग-भूमि घोषित किया है। ब्रह्मपुराण २७।७२-७८ में भी कहा है कि भारत में जन्म लेने वाले धन्य हैं। यहाँ सब पुण्यों के फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। स्वर्ग के देवता यहाँ जन्म लेने में गौरव का अनुभव करते हैं। जो कार्य यहाँ के लोग कर सकते हैं, वे देवताओं और असुरों किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।" वास्तव में प्राचीन भारत का गौरव ऐसे ही था जिसकी समृद्धि, विकास और उत्थान की ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। आज भी यदि ऋषियों के पदचिह्नों पर चलने लगें तो उस खोए गौरव को पुन प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि ने भौतिक विद्याओं की उपेक्षा नहीं की। जीवन के पूर्ण विकास को भी आवश्यक मानते हैं। तभी उन्होंने धन संग्रह करने के सभी उपायों का वर्णन किया है जिसे पद्मिनी विद्या का नाम दिया गया है। व्यापार द्वारा

धन कमाने के जितने भी साधन हो सकते हैं, उन सब का ब्यौरा पुराण में दिया गया है। आशय यह है कि व्यक्ति को घोर परिश्रम करके भौतिक जीवन को सुखी बनाने के लिए धन का सञ्चय करना चाहिए परन्तु अनैतिक उपायों से नहीं। वे धन को व्यक्तिगत सम्पत्ति भी नहीं मानते। जब राष्ट्र को उसकी आवश्यकता पड़े तो उससे मोह न करके राष्ट्रहित में सारी सम्पत्ति का दान कर देना चाहिए। हरिश्चन्द्र का लम्बा आख्यान इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि धनवानों को अपने धन से मोह नहीं करना चाहिए। यह ईश्वर द्वारा सत्कार्यों के लिए उन्हें दिया गया है। यदि वह इसका दुरुपयोग करेंगे तो उनसे छीन लिया जायेगा। मार्कण्डेय धन कमाने के पक्ष में तो हैं पर हरिश्चन्द्र को आदर्श मान कर समय आने पर सर्वस्व लुटाने के लिए तैयार रहने की प्रेरणा भी देते हैं।

महर्षि जगत को अनित्य, क्षणभङ्गुर और अस्थायी मानते हैं परन्तु आत्मा के इस मन्दिर शरीर की सुरक्षा पर भी पूरा ध्यान देते हैं। पुराण में शरीर विज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, जो आधुनिक विज्ञान से मिलता है। इस सम्बन्ध में लिखा है कि रज और वीर्य के मिलने से किस तरह नये शरीर की रचना प्रारम्भ होती है और किस तरह उसका क्रमिक विकास होता है। गर्भ में शरीर का पोषण किस प्रकार से होता है, माता और गर्भस्थ शिशु के शारीरिक सम्बन्ध की अद्भुत व्यवस्था का वर्णन है। आयुर्वेद चिकित्सा का भी वर्णन है जिससे शरीर का असाध्य रोग होने पर भी स्वास्थ्य बनाया जा सके। आयुवृद्धि के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है। दम के पुत्र राज्यवर्धन की रानी ने उसके सर पर सफेद बाल देखा तो दुखी हुई। राजा ने समझा कि अब मृत्यु निकट है और वानप्रस्थ में प्रवेश कर वन में तप करने चलना चाहिए। प्रजा चाहती थी कि वही राजा राज्य शासन की बागडोर सम्भालते रहें। प्रजा ने राजा की आयुवृद्धि के लिये सूर्यदेव की सामूहिक आराधना का निश्चय किया और कामरूप पर्वत पर अनुष्ठान में लग गई। तीन मास की उपासना के बाद सूर्यदेव प्रसन्न हुए और राजा को आयु दस हजार वर्ष बढ़ने का वरदान दिया। अतिशयोक्ति शैली में वर्णित

यह कथा आयुवृद्धि के लिए सूर्य की शरण में जाने को इङ्गित करती है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि सूर्य ही समस्त भौतिक शक्तियों का स्रोत है और शरीर के विकास, सुरक्षा, सुदृढ़ता और चिकित्सा के लिए सभी आवश्यक तत्व इसमें विद्यमान हैं। सूर्य किरणें शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती हैं। जो लोग सूर्यदेव से विमुख रहते हैं, उन पर ही रोग आक्रमण करने का साहस करते हैं। सूर्य किरणों से रोग मुक्ति को एक नवीन चिकित्सा पद्धति का भी आविष्कार हो चुका है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर मानव का जीवन असम्भव है। सूर्य के अभाव में जीवधारी अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते। जहाँ सूर्य के यदाकदा दर्शन होते हैं, वहाँ पर जब सूर्य निकलता है तो उत्सव मनाए जाते हैं। तभी भारत में सूर्य को देवता की संज्ञा दी गई है और मार्कण्डेय पुराण में भी उसका भव्य स्तवन किया गया है।

(पुराणकार मनोरंजन के साधनों को आवश्यक मानते हैं और कला की प्रशंसा करते हैं।" जिसमें गुण रूप नहीं होता, उसे नाटक में सफलता प्राप्त नहीं होती। नृत्य का सुन्दर अधिष्ठान आवश्यक है। उसके बिना नृत्य एक विडम्बना ही रह जाती है।")

ऐसा लगता है कि प्राचीनकाल में सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या का विकास हो चुका था तभी विभावरी ने जब स्वरोचिष को आत्म-समर्पण किया तो विभावरी ने सब प्राणियों की बोली समझने की विद्या को शुल्क रूप में प्रदान किया।

जिस समय पुराण की रचना हुई, उस समय मंत्र विज्ञान की प्रक्रिया उच्चशिखर पर थी। मंत्र-विज्ञान की एक शाखा-इष्टि क्रिया का उल्लेख किया गया है। एक राजा की पत्नी किसी कारण से राजा को छोड़ कर चली गई। एक ब्राह्मण व राजा से मित्रविन्दा नाम की इष्टि करादी और जब वह साधना पूरी हो गई तो ब्राह्मण ने राजा से कहा "अब आपकी पत्नी आप में पूर्ण अनुरूप रहेगी, अतः आप उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कोजिए" यह मंत्रविज्ञान का ही चमत्कार है।

कर्तव्य परायणता का निर्देश—

पुराणों मे क्षत्रिय राजाओं के शौर्य, साहस और जीवन चरित्रों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उनमें क्षत्रियों के चरित्र का पूर्ण परिचय मिलता है। वे अपने शरीर की आहुति देकर भी कर्तव्य पालन करते हैं और प्रजा की सुरक्षा को अपना आवश्यक धर्म मानते हैं। तभी कहा है "*हम बलवान क्षत्रियों के सामने यदि इस कन्या का अपहरण हो जाये तो हमारे जीवन को धिक्कार है।* जो दुष्ट लोगों से दुःखी व्यक्ति की सुरक्षा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है।"

अलर्क के पूछने पर मदालसा ने ब्राह्मण के धर्म का विवेचन करते हुए कहा "*दान, अध्ययन और यज्ञ यह ब्राह्मण के निरपेक्ष धर्म हैं*' चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का उल्लेख है।

राजा के कर्तव्य तो विस्तार से वर्णित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल की तरह उस समय भी शासक वर्ग मे स्वार्थपरता का *अवगुण आ चुका था तभी वह कड़े शब्दों में शासकों को चेतावनी देते हैं कि* "वैश्य अपनी आयका १२ वाँ भाग राजा को इसलिए देता है कि उसके जान माल की सुरक्षा हो सके। ग्वाले, घी, तक्र आदि का तथा किसान अनाज का छटा भाग इसीलिए देते हैं। जो राजा व्यापारियों से उसकी आय *का अधिकांश भाग लेते हैं, वह चोर हैं। यदि कर लेकर भी राजा प्रजा* की सुरक्षा में असमर्थ रहता है और प्रजा को अन्य उपायों का सहारा लेना पड़ता है तो राजा निश्चय ही नरक जाता है। यदि चोरों से रक्षा नहीं कर सकता तो वह पापी कहलाता है।"

इस तरह से मार्कण्डेय एक स्वतन्त्र और निर्भीक विचारक की तरह अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनका उद्देश्य जनता की भलाई है। उसमें उन्हें कष्ट भी सहना पड़े तो उसके लिए वे तैयार हैं। शासक वर्ग का कड़ा *विरोध करने पर क्या परिणाम निकलते हैं, इससे सभी परिचित हैं।* फिर भी अपनी आत्मा की आवाज को बन्द नहीं करते वरन् निर्भय रूप से उसका प्रचार करते हैं। वास्तव में ऐसे विचारक ही जनहित मे सफल होते हैं।

मार्कण्डेय आध्यात्मवादी हैं, आत्म-साक्षात्कार कर चुके हैं, परन्तु भौतिक वाद की ओर आंख मूंदना उन्हें अभीष्ट नहीं है। इसीलिए अनेकों प्रकार की भौतिक विद्याओं की ओर उन्होंने अपने पाठकों को आकृष्ट किया है। वे चेतावनी भी देते हैं कि इन में लिप्त रहना निरी मूर्खता होगी, केवल भौतिक विकास पर ही सन्तुष्ट न हो जाना, मानव का बहुँमुखी विकास होना आवश्यक है। पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और आत्मिक सभी धाराओं में उनका प्रवेश होना चाहिये और बिना विश्राम के प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। केवल भौतिक या आध्यात्मिक—दोनों एकांगी हैं। दोनों का विकास ही पूर्ण विकास माना जाता है।

पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान—

मार्कण्डेय योग्य चिकित्सक थे। वे उलझी गुत्थियों को सुलझाना जानते थे और हवा का रुख देख कर उसी के अनुसार अपनी नीति का निर्धारण करते थे। उनके सामने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था। जनता का झुकाव प्रवृत्ति मार्ग की अपेक्षा निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक होने लगा था। परिणामतः गृहस्थ में प्रवेश की अपेक्षा लोग सन्यास ग्रहण करना अधिक पसन्द करते थे। गृहस्थ में प्रत्यक्ष रूप से लौकिक सुख की उपलब्धि थी परन्तु सन्यास में पारलौकिक कल्याण का लोभ निहित था। इससे अनीश्वरवादी धारा का प्रवाह बह चला। समाज में एक अजीब पागलपन आ गया। भारतीय ऋषियों ने चार आश्रम बड़ी सूझ बूझ से बनाये थे। उसमें भी सन्यास का विधान है परन्तु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के बाद जब साधक उसकी पात्रता प्राप्त कर लेता है। जब तक मन स्थिति में सन्यास का रंग न आए, तब तक उससे अपेक्षित लाभ की आशा करना व्यर्थ है भले ही घर बार छोड़ने और त्यागमय जीवन व्यतीत करने का ढोंग रचा जाये। मार्कण्डेय ने इस अव्यवहारिक प्रवृत्ति का विरोध किया, अपने पक्ष में व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत किया, गृहस्थ के आदर्श कर्तव्यों का निरूपण किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार से गृहस्थ आश्रम में रहकर ही

लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इनके सभी पक्षों का प्रतिपादन किया। मदालसा के माध्यम से उन्होंने अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए कहा है कि जिसने गृहस्थ आश्रम ग्रहण किया, यह समझना चाहिए कि उसने विश्व के पालन का भार अपने कन्धों पर ले लिया है। देव, पितर, मुनि, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी सभी गृहस्थ आश्रम से ही जीवित रहते हैं और उसी से तृप्त होते हैं। तेरहवें मनु रौच्य की जन्म कथा में प्रजापति रुचि और पितरों के संवाद में भी यह चर्चा आई है। पितरों ने रुचि को सम्बोधित करते हुए कहा "वत्स! तुमने गृहस्थ को छोड़ कर अच्छा काम नहीं किया। गृहस्थाश्रम स्वर्ग और मोक्ष दोनों का साधन है। इसी आश्रम में रहकर ही व्यक्ति देवता, ऋषि, पितर और अतिथियों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाते हुए उत्तम लोकों की प्राप्ति कर सकता है।"

सन्यास मार्गियों की दृष्टि तो एक ओर थी परन्तु मार्कण्डेय ने चारों ओर घूम कर देखा तभी एक सुनिश्चित नीति को अपनाया। यदि युवक सन्यासी हो जाएँ तो लोक की युवतियों का क्या होगा। यौवन के प्रवेश पर काम भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, यदि उनकी पूर्ति की सामाजिक व्यवस्था न हो पाये तो अमंगल उपायों की ओर मन का दौड़ना कौन रोक सकता है? हर एक में संयम की साधना कहाँ से आए? इसका कुप्रभाव चरित्र पर पड़ेगा और स्वच्छ जल में कीचड़ के छींटे पड़ जायेंगे। इस कुप्रवृति का विरोध करते हुए मार्कण्डेय ने व्यवस्था दी कि सन्यास

दूसरा मार्ग यह है कि जब युवक सन्यासी हो रहे हैं तो युवतियाँ भी उसी मार्ग पर चलने लगें। सन्यास ग्रहण करने पर भी जब युवक और युवतियाँ साथ २ रहेंगे तो वहाँ पर भी वही प्राकृतिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होगी, जिन्हें दोष, व्यभिचार और चरित्रहीनता की संज्ञा दी जाती है। मठो मे जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों निवास करते हैं, वहाँ ऐसी घटनाओं की चर्चा प्राय: सुनी जाती है। युवक सन्यासियों के पास यदि स्त्रियों का आना जाना बना रहता है, वहाँ भी दबा हुआ काम उभर पडता है और अपने बाह्य वेष को लज्जित करने मे संकोच नहीं करता। सम्भव है उस समय भी ऐसी घटनाएँ घटी हों और दूरद र्शी ऋषि ने समाज को नया मोड देना चाहा हो। कुछ भी हो, वे विवाह के पक्ष मे थे। तभी उन्होने कहा कि स्त्रियो को बहुत दिन तक पिता के घर बन्धु बान्धवो के बीच रहना यशस्कर नही होता। उनका अपने पति के घर रहना ही बन्धु बान्धवो को अभीष्ट होता है। विवाह हु मे पर भी स्त्री का अधिक दिन तक बन्धु बान्धवो के बीच रहना ठीक नहीं माना गया है। सातवें मनु की कथा में इसका विवेचन है। त्वष्टा की पुत्री सज्ञा का पाणिग्रहण-संस्कार सूय से हुआ था। एक बार सज्ञा को पिता के घर अधिक दिन हो गये तो पिता ने पुत्री से कहा—"इस तरह से तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु बान्धवो के बीच स्त्री का अधिक दिन तक रहना ठीक नहीं है। तुम मेरे लिए पूज्य हो और मैं तुम से प्रसन्न भी हू पर तुम्हारा पतिग्रह मे जाना ही ठीक है।"

विवाह के नियमों का विस्तृत विवेचन है। पिता के अभाव मे स्त्रियों को अपने पति के चुनाव की स्वतन्त्रता दी गई है। कैसी कन्या से विवाह करना चाहिए, उसके लक्षणो का भी वर्णन किया गया है। पुत्र प्राप्ति के वैज्ञानिक नियम का भी उल्लेख है कि "जो पुरुष कन्या जन्म नहीं चाहता। वह पाँचवीं रात छोड कर छटवीं रात में स्त्री संग करे क्योंकि इसके लिए युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गई है।" ऋतुकाल के दिन, चौदस, अमावस्या, अष्टमी एवम सक्रान्ति काल में नारी समागम का निषेध किया गया है।

विवाह एक पवित्र आयोजन है, सामाजिक सुव्यवस्था का साधन है, सृष्टि सचलन की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है, ऋषियों ने इसे पूर्णता प्राप्ति का साधन बताया है भोग का नही। भोग की सीमा स्त्री के ऋतुमती होने पर ही है अन्यथा नही। नारी को केवल भोग की सामग्री मात्र मान लेना उसका अपमान है। जो नारी को केवल अपनी वासना की तृप्ति का साधन मानते हैं, वे अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नही होते और नित्य नया स्थान देखने की टोह मे रहते हैं। इसी दूषित विचारधारा ने बहुपत्नी प्रथा को जन्म दिया। राजाओ मे इसका अधिक प्रचलन था। इस से पारिवारिक क्लेश की वृद्धि होती है। दोनो पत्नियाँ द्वेष की अग्नि मे जलती रहती हैं। उनकी सन्तान भी इसी महारोग का शिकार होती हैं। यह छूत का रोग पीढियो तक चलता है। राम वनवास की पृष्ठभूमि मे इसी कुप्रथा का दोष झलकता है। कैकयी के द्वेष ने ही राम को राजतिलक की बजाय वन जाने को बाध्य किया। ऋषि ने स्वरोचिष के सम्बन्ध मे कहा है कि यह पुरुष धन्य नही कहा जा सकता क्योकि "एक स्त्री के समक्ष दूसरी स्त्री के सम्पर्क करने मे इसे लज्जा नही आती। यह अन्य स्त्री से भी सम्पर्क रखता है। इसका चित्त किसी मे अनुरक्त नही है। *किसी एक आलम्बन मे अनुराग होना चित्त का स्वभाव है,* अतः अनेक भार्याओ में इसकी प्रीति कैसे हो सकती है। यह निश्चय जानो कि न इन स्त्रियो में इसका प्रेम है और न इसमे इन स्त्रियो का प्रेम है। इनका परस्पर प्रेम व्यवहार एक विनोद मात्र है।" स्वरोचिष ने अपनी पत्नी मनोरमा के अतिरिक्त विभावरी और कलावती से भी विवाह कर लिया था। पति-पत्नी मे हार्दिक प्रेम न होने पर पारिवारिक सुख शान्ति की उपलब्धि सम्भव नही।

पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए दोनो को अपने कर्तव्यो पर ध्यान देना चाहिए। पुराणकार ने दोनो का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। कहा है "वेद की आज्ञा है कि पति को अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए *क्योकि पत्नी की रक्षा से सन्तान की रक्षा होती है।* पत्नी मे व्यक्ति तनय के रूप मे स्वय जन्म लेता है। अत पत्नी की रक्षा से स्वय अपनी

रक्षा होती है।" एक और स्थान पर कहा है। 'पति को सदैव अपनी पत्नी का भरण और रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में पत्नी पति की सहायिका होती है। जब पत्नी और पति प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, तभी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। पत्नी को त्यागने से धर्म का त्याग हो जाता है। व्यक्ति किसी भी वर्ण का क्यों न हो, वह पत्नी के अभाव में किसी भी कर्म के योग्य नहीं रह जाता।

आदर्श पत्नी के कर्तव्य का बोध कराते हुए ऋषि ने अनसूया जी से कहलवाया है 'पुरुष महान कष्ट उठाकर जो पुण्य प्राप्त करते हैं, स्त्रियाँ केवल पति सेवा से ही उसका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियों के लिए यज्ञ, श्राद्ध और उपवास के लिए प्रथक विधान नहीं है, वे पति की सेवा से ही इहलोकों को प्राप्त कर लेती है। पति नारी की श्रेष्ठ गति है।" एक कौशिक नाम के कोढ़ी ब्राह्मण की कथा दी गई है जिसकी पतिव्रता पत्नी ने सूर्य का उदय रोक दिया था क्योंकि सूली पर चढ़े एक अन्य ब्राह्मण ने उसके पति को शाप दिया था कि सूर्य उदय होते ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। ऐसी पतिव्रता नारियों की कथाएँ अन्य पुराणों में भी वर्णित हैं। पत्नी पति की सच्ची मित्र और सलाहकार होती है। हरिश्चन्द्र के आख्यान में जब विश्वामित्र को दक्षिणा देने का कोई साधन दिखाई नहीं देता और वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है, तो पत्नी उनसे कहती है—महाराज! चिन्ता छोड़ दो, सत्य का पालन करो, सत्य से च्युत मनुष्य श्मशान के समान त्याज्य होता है। पुरुष के लिए सत्यता से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि समस्त पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। धर्म शास्त्रों में सत्य से उत्थान और असत्य से पतन होना बताया है।" आदर्श पत्नी के यह विविध रूप दिखाए गए हैं।

पत्नी का एक और महत्वपूर्ण रूप माता का है। मदालसा की प्रसिद्ध कथा इसका माध्यम चुना गया है। मदालसा अपनी संतान को इच्छानुसार बनाती है। स्तन्य की पवित्र धारा के साथ अपने उद्देश्य के अनुरूप बच्चे

को लोरियाँ देती है। परिणाम स्वरूप बच्चे मे वैसे ही संस्कार उत्पन्न होते है। मनोविज्ञान के पाश्चात्य पण्डितो ने तो आज इस तथ्य की खोज की है परन्तु हमारे ऋषियो ने हजारों वर्षो पूर्व इसे प्रकट कर दिया था। मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को लोरियों और उपदेशो से आध्यात्मवादी बनाया तो राजा को चिन्ता होने लगी कि हमारे सभी पुत्र विरक्त होते गए तो हमारे बाद राज्य का सचालन कौन करेगा? राजा के अनुरोध पर मदालसा ने चौथे पुत्र को धर्म की शिक्षा दी। वह पुत्र आदर्श शासक निकला।

परिवार मे माता-पिता के साथ पुत्र का भी अपना स्थान है। सभी को मिलाकर एक परिवार बनता है। अतः सभी को अपने-अपने कर्तव्यो का पालन करना चाहिए। ऋषि ने कहा है "पिता द्वारा अर्जित यश, धन और वीर्य को जो कम नही होने देता, वह मध्यम कोटि का पुत्र है। जो अपनी शक्ति से पिता के वीर्य आदि से अधिक वीर्य आदि का सम्पादन कर लेता है, वह उत्तम कोटि का पुत्र है और जो अपनी अकर्मण्यता से पिता के यश, धन को कम कर देता है, वह अधम कोटि का पुत्र है।" कुपुत्र की अनेक स्थानों पर भर्त्सना की गई है। "मनुष्य का पुत्रहीन होना अच्छा पर कुपुत्रवान् होना अच्छा नहीं क्योकि कुपुत्र माता-पिता के हृदय को सदा सन्तप्त करता रहता है और स्वर्गस्थ पितरों को नीचे गिरा देता है। उस कुकर्मी का जन्म माता-पिता के लिए दुःखदायक होता है। वह माता-पिता की चिन्ता से असमय मे ही वृद्ध बना देता है।" सुकृप नाम के ब्राह्मण के पास एक बार इन्द्र पक्षी के रूप मे आए और अपने आतिथ्य के लिये मनुष्य का मास अथवा रक्त मांगा। ब्राह्मण ने अपने पुत्रो से पक्षी का आतिथ्य कराना चाहा परन्तु शरीर के मोह में पड़कर उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्रो को पक्षी होने का शाप दिया।

परिवार को स्वर्गीय बनाने के लिए जहाँ पति पत्नी का प्रेममय व्यवहार आवश्यक है, वहाँ सतान को भी आज्ञाकारी होना चाहिए। शरीर के सभी अंग पुष्ट होने पर ही शरीर स्वस्थ रह सकता है। एक छोटा सा फोड़ा भी सारे शरीर के लिए दुःखदायी हो जाता है। परिवार मे जब एक

भी सदस्य अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है तो स्वर्ग को नरक बनने में देर नही लगती ।

उत्थान के व्यक्तिगत व सामाजिक नियमों का विवेचन—

परिवार की शान्ति सदस्यो के आपसी नम्र व्यवहार पर निर्भर करती है परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। सुख वृद्धि के लिए उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होने चाहिये। स्वस्थता के नियमो की जानकारी होनी चाहिए। सभी को सदाचारी, चरित्रवान और शिष्ट होना चाहिए तभी समाज मे उनका सम्मान स्थिर रह सकता है। चरित्र को सम्पत्ति माना गया है। परिवार की यह शोभा है। जहां इसका अभाव रहता है, वह निर्धन परिवार कहलाता है। आस्तिकता का सदाचार से घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानने वाला दुराचारों से भय खाकर दूर रहता है।

स्वस्थ और सभ्य नागरिक बनने के लिए महर्षि मार्कण्डेय ने विस्तृत नियमो का प्रतिपादन किया है जो विज्ञान और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं। प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र त्याग, दंत धावन, तेल मर्दन और स्नान के नियम बताये गये हैं। स्नान करने पर विशेष बल दिया गया है। स्वच्छता को स्वास्थ्य का एक आवश्यक नियम बताया गया है। यहां तक कि दूसरे के पहने हुए अनेऊ विभूषण और कमंडलु को भी ग्रहण करने की मनाही की गई है।

ब्रह्ममुहूर्त में उठने का आदेश देकर स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर पूर्वभिमुख बैठकर नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही सन्ध्या करने का उपदेश दिया गया है। सायंकालीन सन्ध्या भी सूर्य के स्थित रहते बताई गई है। प्रातः साय हवन करने को भी कहा गया है। पांच महायज्ञो और पितृ तपर्ण करने की भी शिक्षा दी गई है। आत्मतत्व का चिन्तन भी आवश्यक बताया गया है। पूजा उपासना करने के बाद ही भोजन की आज्ञा दी गई है। अधिक नमक, अत्यन्त गरम अन्न का व बहुत दिनो का रखा हुआ अथवा बासी भोजन का निषेध किया गया है।

सद्विचारों का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। बुरे विचारों वाला व्यक्ति कभी पूर्ण स्वस्थ नहीं रह सकता। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि गृहस्थ को सदाचार परायण होना चाहिए, पर नारी को बुरी दृष्टि से न देखे सब से शिष्ट व्यवहार करे, अहंकार, उद्दण्डता की गन्ध न हो, वाणी से प्रेम झलकता हो। ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है "आचार का पालन गृहस्थ का नित्य कर्तव्य है। जिसमें आचार नहीं, उसे न यहाँ सुख मिलता है न वहाँ। सदाचार के बिना यज्ञ, दान, तप कोई करे भी तो क्या लाभ? जिस पुरुष में आचार का नियम नहीं बँधा, उसे दीर्घ आयु नहीं मिलती।"

अतिथि सत्कार को भी आचार का एक अंग माना गया है, आतिथ्य का अभिप्राय केवल भोजन कराना ही नहीं है वरन् अभावग्रस्त के अभाव को दूर करना, संकटग्रस्त के संकट को दूर करना और दुखी प्राणी की हर प्रकार से सहायता करना है। जो सामर्थ्य रखते हुए ऐसा नहीं करता, वह निन्दा का पात्र माना गया है। ऋषि के अतिथिसत्कार में समाजवाद के दर्शन होते हैं। वह अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं "समाज में धनवान व्यक्तियों के रहते अन्य लोगों को धनाभाव के कारण जो कुकर्म करने पड़ते हैं, उनका उत्तरदायित्व धनी व्यक्तियों पर ही होता है।" परिश्रम-पूर्वक धन कमाने की सलाह भी दी गई है परन्तु उसका कुप्रभाव किसी अन्य पर न पड़े, इसकी चेतावनी भी दे दी गई है अन्यथा समाज में परस्पर असंतोष और द्वेष की भावनाओं को जन्म मिलेगा।

महर्षि मार्कण्डेय अपने पाठक को आध्यात्म की साधना प्रारम्भ करने के पूर्व उत्तम नागरिक बनाना चाहते हैं। उनके मतानुसार नागरिकता के नियमों की उपेक्षा कर के अध्यात्म पथ पर बढ़ना असम्भव है क्योंकि यह तो उसकी पहली सीढ़ी है। उत्तम स्वास्थ्य तो उसकी नींव है ही।

अवगुणों के प्रति चेतावनी—

मनुष्य सर्वोत्तम सामाजिक प्राणी है क्योंकि उसे बुद्धि जैसी महानतम सम्पत्ति से विभूषित किया गया है। अपने इस गौरव की स्थिरता के लिये

आवश्यक है कि वह बुद्धिमानों जैसे कार्य करे। बुद्धिमान वही है जो अपने विचारों को स्वस्थ और पवित्र रखता है क्योंकि मानव जीवन की समस्त सुख-शान्ति उसके विचारों पर ही निर्भर करती है, इन्हीं से वह अपने भविष्य की, अपने भाग्य की रेखाओं का निर्माण करता है। विचारों को जो तत्व गन्दला बनाते हैं, उन्हें दूर करना आवश्यक है। बुरे विचारों को आसुरी शक्तियों की संज्ञा दी जाती है। इनसे सुरक्षा के लिये हमारे शास्त्रकारों ने बारबार चेतावनी दी है। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनने के लिये भी यही करना पड़ा था।

आध्यात्म पथ के पथिकों को आत्म निरीक्षण की शिक्षा दी जाती है ताकि मन में एक करने में घुसे हुए दुर्गुणों को छांट छांट कर बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इनसे बढ़कर अपना और कोई शत्रु नहीं है। यह ऐसे शत्रु हैं जो निरन्तर अपने साथ रहते हैं और पग-पग पर चोट पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अपनी धार्मिक शान्ति खो बैठता है क्योंकि उसे बाह्य जीवन में सब ओर लाछना, असफलता और तिरस्कार ही मिलता है। जिस प्रकार कन्हे, क्लीज, छिनौने और छूत के रोगी से बचन का हर कोई प्रयत्न करता है, इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति जिधर जाता है, उधर से दुत्कारा जाता है। शरीर में घुसे हुए रोगों को दूर करने की हम चेष्टा करते हैं परन्तु अन्तः क्षेत्र को अस्त-व्यस्त कर डालने वाले दुर्गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। वास्तविकता यह है कि शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक दोष दुर्गुणों से अधिक हानि की सम्भावना होती है। दुर्गुण मानव के लिये एक अभिशाप हैं, एक कलङ्क हैं।

समाज में सर ऊँचा उठाकर चलने के लिये दुर्गुणों से रक्षा आवश्यक है। मार्कण्डेय ने बार-बार चेतावनी दी है, दुर्गुणों के दुष्परिणामों के भयङ्कर चित्र खीचे हैं सम्भव है उन्हें असम्भव की संज्ञा दी जाने लगे। परन्तु ऋषि का उद्देश्य केवल उन दुर्गुणों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा मात्र है कि इनसे यह परिणाम भी निकल सकते हैं। उदाहरण के लिये मद्यपान से बचने के लिये बलराम की कथा दी गई है कि जब महाभारत युद्ध में उन्होंने पाण्डवों और कौरवों में से किसी का भी पक्ष लेना उचित नहीं समझा तो वह तीर्थ

यात्रा को चल पडे । एक दिन उन्होने अधिक मद्यपान कर लिया और रैवत वन मे प्रवेश किया जहाँ पर ऋषियो के समक्ष सूतजीकी कथा हो रही थी। ऋषि बलराम जी के सम्मान मे उठ खडे हुए परन्तु सूतजी ने व्यास जी की मर्यादा का पालन किया और आसन पर बैठे रहे । इससे बलराम जी को क्रोध आ गया और उन्होने सूतजी का वध कर दिया । थोडी देर के बाद उन्हे होश आया तो इस कुकृत्य पर लज्जित हुए और प्रायश्चित के रूप मे नये सिरे से तीर्थाटन का आरम्भ किया ।

शराब को भी लोग पीते हैं । वह गाली,गलोच और लडाई-झगडा तो करते देखे जाते हैं परन्तु ऐसा कभी नहीं सुना कि किसी शराबी ने नशे मे चूर होकर किसी का वध कर दिया हो । यदि दो-चार हत्यायें इस तरह की हो जायें तो इसे कानून से ही बन्द करना पडे क्योकि इससे लोगों के जानमाल की सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो जायगा । परन्तु वास्तव में ऐसा होता नही है । महर्षि मार्कंडेय भी इस तथ्य से अवश्य परिचित होगे परन्तु उन्होने अतिशयोक्ति शैली मे अपरोक्ष मे मद्यपान के दोष का ही वर्णन किया है कि नशे मे जब ज्ञान तंतु सज्ञा शून्य हो जाते हैं तो उस क्षणिक पागलपन का प्रवाह किसी भी ओर वह सकता है और वह व्यक्ति मारपीट से लेकर हत्या तक कर सकता है ।

काम भी एक नशा है जो मनुष्य को अन्धा बना देता है । मन मे इसकी उत्तेजना इतनी तीव्र होती है कि कामी व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओ का उल्लघन कर बडे दु साहस कर बैठता है । आजकल युवतियो से छेड-छाड तो साधारण बात हो गई है । सडक पर जाती हुई युवती का अपहरण कर लिया जाता है और उससे मनमाने कुकृत्य किये जाते हैं । वह युवती अपने दुर्भाग्य और फिर भगवान को कोसती होगी कि उसने यह पशुरूप में कैसे मानव बना दिये जो मानव शरीर को भी लज्जित करते हैं । वह इस समाज से भी घृणा करने लगती है जो पतन की पराकाष्ठा में पहुंच गया हो, फिर शासन को दोष देती है जहां किसी की लाज सुरक्षित नहीं है । इन घटनाओं पर सभी विचारक खेद प्रकट करते हैं परन्तु यह वातावरण उत्पन्न करने वाले जो माध्यम हैं,

उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। अश्लील फिल्में और उपन्यास, पत्रिकायें जिनसे इस विषय की उत्पत्ति होती है, उनमें सुधार की आवश्यकता है ताकि युवकों में यह सद्विचार उत्पन्न हो कि समाज की हर युवती उनकी बहिन है। यही सभ्य समाज की निशानी है अथवा तथाकथित विकसित युग की दुहाई देने से कोई लाभ नहीं है।

इतिहास साक्षी है कि काम भावना से प्रेरित होकर रावण ने सीता का हरण किया और एक महान् युद्ध को निमन्त्रण दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये भीषण नर संहार कराया। काम के कारण हत्याओं के समाचार आज भी प्राप्त होते रहते हैं। इसी ओर महर्षि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। एक कथा इस प्रकार से दी गई है कि नरिष्यन्त के पुत्र दम को दशार्ण के राजा चारुवर्मा की पुत्री राजकुमारी सुमना के स्वयंवर में अपना पति चुना परन्तु मद्रप्रदेश के राजकुमार महानंद,विदर्भ के राजकुमार वपुष्मान व महाधनु को यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा जिसके अनुसार सुमना को बलपूर्वक छीन लेना था और यह निश्चित किया गया कि वह हम तीनों में से जिसको भी चुन लेगी,उसकी पत्नी हो जायेगी। यदि वह हममें से किसी को चुनेगी तो उसका वध करने वाला ही उसका पति माना जायगा। एक सुन्दर स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के लिये वह घोर अन्याय और अधर्म पर उतारू हो गये। जब सुमना ने स्वयंवर में अपना पति चुन लिया तो इस दिशा में कोई भी पग जिसकी लाठी उसकी भैंस की सज्ञा में आ जाता है। दम और उसके शत्रुओं में घोर युद्ध हुआ। दम ने महानन्द का मस्तक काट दिया और वपुष्मान को बाणों से बींध दिया और सुमना को अपने घर ले गया। यदि कथा का मोड़ इस प्रकार से होता कि वह तीनों दम को कैदी बना लेते, या उसका वध कर देते और सुमना को भगा कर ले जाते और तीनों में कोई समझौता न हो पाता तो वह भी परस्पर युद्ध की लपेट में आकर नष्ट हो जाते तो और भी सुन्दर होता क्योंकि काम वासना के अन्तिम परिणामों तक कथा पहुंच जाती।

पर स्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाले को पारलौकिक भय भी दिखाया गया है। कहा है कि ऐसे कामी व्यक्ति को नरक में तो जाना पड़ता है परन्तु वहाँ पर वज्र की चोंच वाले पक्षी उनकी आँखें नोंचते हैं। यह यातना बार-बार दी जाती है और लम्बे समय तक चलती है। जितने क्षणों तक यह पाप किया जाय, उतने वर्षों तक इसका फल भुगतना पड़ता है। नेत्रों से दोष करने वाले को नेत्रों की ही यातना दी जाती है। नियम यही है जिस अङ्ग से दोष किया जाता है, उसके सुधार के लिये उस अङ्ग को ही प्रताड़ना दी जाती है ताकि उसे अपने किये पर पछतावा हो और फिर उसकी पुनरावृत्ति न करने का सङ्कल्प ले।

महर्षि ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि भले व्यक्तियों को कभी परीक्षा की घड़ी भी आती है जब उनको काम वासना की ओर घसीटा जाता है परन्तु इस समय विवेक से काम लेना चाहिए। महर्षि दुर्वासा को पतित करने के लिये वपु नाम की अप्सरा ने सब तरह की काम चेष्टायें की तो ऋषि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु जब वह फिर भी अपने हाव भाव प्रदर्शित करने में लगी रही तो दुर्वासा ने उसे शाप दिया कि तुम सुपर्ण गोत्र में पक्षिणी बनो। मार्कण्डेय ने काम बाणों से सुरक्षा के लिये सजग रहने की प्रेरणा दी है क्योंकि किसी समय भी आक्रमण होने का अवसर आ सकता है।

क्रोध मानव का दुर्जय शत्रु है। सब जानते हैं कि इससे मस्तिष्क की नसों में उत्तेजना उत्पन्न होती हैं, वह जलती हैं जिनका कुप्रभाव सारे शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है, मन व इन्द्रियां भी इस अग्नि की लपेट में आती हैं, बुद्धि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। गांधीजी ने इसे शराब और अफीम के नशे की सज्ञा दी है क्योंकि इनके लक्षण मिलते जुलते हैं। कवियों ने भी कहा है कि पाप का मूल क्रोध है और क्रोध के मिटे बिना जीव का सन्ताप नहीं मिट सकता। गीता में क्रोध से अविवेक की उत्पत्ति कही है क्योंकि क्रोधी को उस दौरे के बाद ही वास्तविकता से परिचय होता है। इसे नरक द्वार भी बताया गया है। यह अध्यात्म साधना को तो नष्ट ही करने वाला है। इन

दुष्परिणामों के कारण ही महर्षि मार्कण्डेय ने इस महारोग के प्रति सावधान किया है। इसके लिये उन्हें अनेको कथाओ का सहारा लेना पड़ा।

वैवस्वत मनु के पुत्र पृषध्र एक बार मृगया के लिये वन में गये, तो एक ब्राह्मण की गौ को गलती से मार दिया। तब ब्राह्मण ने पृषध्र को शूद्र हो जाने का शाप दिया। क्रोध से क्रोध की वृद्धि होती है। राजा को भी क्रोध आ गया। राजा भी ब्राह्मण को शाप देने लगा। इस पर ब्राह्मण राजा को नष्ट करने के लिए दूसरा शाप देने को प्रस्तुत हुआ। उसी समय उसका पिता वहाँ पहुँच गया और उसे समझाया कि ब्राह्मण का भूषण क्रोध नही क्षमा है। क्रोध से तो धर्म, अर्थ और काम तीनो का नाश होता है। यदि ब्राह्मण का पिता बीच में न आ जाता तो दोनो की उत्तेजना बढ़ती ही जाती और दोनो एक दूसरे को शाप देते ही जाते, जब तक कि उन दोनो मे से कोई एक नष्ट न हो जाता।

विश्वामित्र और वशिष्ठ का द्वंद्व और संघर्ष पुराण प्रसिद्ध है। इस पुराण में भी उसे दिया गया है परन्तु बदले हुए रूप में। वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जब विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से राज्य लिया तो वह जल मे तपस्या कर रहे थे। जब वह बारह वर्षों के बाद तप करके आए तो उन्हे हरिश्चन्द्र के भीषण कष्टों से परिचय कराया गया। उन्हें क्रोध का आवेश आया और विश्वामित्र को बक पक्षी होने का शाप दिया। विश्वामित्र तो क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उन्होंने वशिष्ठ को सारस हो जाने का शाप दे डाला। मनुष्य से पक्षियों की योनि प्राप्त होने पर भी दोनो को शान्ति न मिली और युद्ध पर उतारू हो गये। इससे सारे विश्व मे हाहाकार मच गया और देवताओ की प्रेरणा से ब्रह्मा को बीच बचाव के लिए आना पड़ा, तब कही वह शान्त हो पाए। इसमें क्रोध की पक्षियो के अज्ञान से तुलना की गई है और बताया है कि क्रोध से मानव कितना गिर जाता है। वह इसके आवेश में आकर घोर से घोर अपराध कर सकता है।

एक अन्य कथा मे विश्वामित्र के क्रोध से विद्याओ का नाश बताया गया है। विद्या का अभिप्राय ज्ञान और विवेक है। क्रोध की उत्पत्ति ही अज्ञान और

अविवेक की नींव पर होती है। अतः शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वास्थ्य के इच्छुक व्यक्ति को इससे बचना चाहिए, तभी आध्यात्म साधना में कुछ प्रगति की आशा की जा सकती है।

क्रोध का आधार अहङ्कार होता है। जब अहङ्कार को ठेस पहुँचती है तो क्रोध से उसकी शान्ति करने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु उसका परिणाम अशान्ति ही होता है। जो व्यक्ति इन दोनों के पजे में फँस जाता है, उससे बड़े बड़े अपराध हो जाते हैं। बलराम जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति भी इससे नहीं बच पाए, जिनको भगवान् का अवतार भी माना जाता है। उनकी शक्ति, सामर्थ्य व अन्य कार्यों को दृष्टि में रखते हुए ही यह उच्च सम्मान दिया गया होगा परन्तु सूतजी जैसे कथावाचक उनके आगमन पर सम्मान के प्रदर्शन के लिए खड़े नहीं होते तो उनके अहङ्कार को ठोकर लगती है। जैसे दुःखी और चिन्तित व्यक्ति अपने दुःख को कुछ क्षणों के लिए भुलाने के लिए शराब पीता है, उसी तरह से अहकार की पुष्टि न होने का जो दुःख होता है, उसकी निवृत्ति के लिए क्रोध के नशे की आवश्यकता आ पड़ती है। क्रोध का परिणाम कुछ भी हो, उससे अहकार का रोग तो दूर हो ही जाता है। एलोपैथिक दवाओं का भी यही प्रभाव पड़ता है। प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रोग को वह शीघ्र ही दबा देती हैं परन्तु निश्चित रूप से अन्य भयकर रोगों की उत्पत्ति होती है। उसका परिणाम कुछ भी हो परन्तु रोगी व अभिभावक को यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि रोगी जिस रोग से पीड़ित हो रहा था, वह ठीक हो गया। अहंकार की औषधि क्रोध है परन्तु क्रोध तो मार-पीट, गाली गलौच, युद्ध, सघर्ष और हत्या आदि से ही शान्त होता है, उसका आहार बहुत ही भयकर राक्षसों का सा है। इसका कारण तो अहकार ही है। यदि अहङ्कार की उत्पत्ति न हो तो क्रोध का जन्म लेना भी सम्भव नहीं है। अतः अहङ्कार रूपी जड़ को तो काट देना चाहिए जिससे अन्य दोषों की वृद्धि न होने पाए।

पुराणकार ने लोभ के भीषण रूप को भी प्रस्तुत किया है। एक राजा बिना कारण दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उस पर आक्रमण करता है, घोर युद्ध और नर-सहार होते हैं और शक्तिशाली

राजा कमजोर को दवा देता है। अनेको बार राजाओ के मन मे सारी पृथ्वी का सम्राट बनने की लालसाएं उत्पन्न की गई हैं। लोभ के भयङ्कर परिणामो को भी प्रस्तुत किया गया है।

भोग से पुण्य का क्षय बताया गया है। एक कथा में इससे शक्ति का नाश होना भी व्यक्त किया गया है। सुव्रत तपस्वी ने राजा विदूरथ को कुजम्भ नाम के एक राक्षस के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि जिस दिन उसे कोई स्त्री छू देती है, उसकी शक्ति कम हो जाती है, दूसरे दिन पुन. बढ जाती है। इससे स्पष्ट है कि स्त्री के ससर्ग से शक्ति का व्यय होता है। भोग मानव पर अपना बहुँमुखी प्रभाव डालते हैं। इसीलिए प्राचीन काल में वानप्रस्थ और सन्यास की व्यवस्था बनाई गई थी ताकि भोगो से निवृत्त होकर आत्मकल्याण की साधना में अपना पूरा समय लगाया जा सके। यह तभी सम्भव है जब शक्ति के व्यय को रोका जाए। राजा राज्य वर्धन का जब एक बाल पक गया तो उसने समझा कि यह यमराज का दूत है और मृत्यु का सन्देश लेकर आया है। अत. मुझे अपने राज्य का भार अपने पुत्रो को सौंपकर विषय-भोगों से निवृत्त होकर वन मे जाकर तप करना चाहिए।" गृहस्थ में रहकर इस साधना को किया जा सके तो अत्यन्त उत्तम है।

इस तरह से पतन के जितने भी मार्ग हो सकते हैं, उनका ऋषि ने दिग्दर्शन कराया है और दुष्ट भावों से बचने की प्रेरणा दी है क्योंकि दुर्गुणो के रहते हुए इस लोक और परलोक दोनो में शान्ति की सम्भावना नहीं हो सकती, चाहे सैंकडो प्रकार के भौतिक साधन उपलब्ध हो। दुराचारी सदैव अशान्त रहता है। शान्ति के लिए सदाचारी बनना आवश्यक है। उस मार्ग पर चलने के लिए मार्कण्डेय प्रेरित करते हैं।

मानव दोषो का पुतला है। अपने प्रबल सस्कारो व बुरे सङ्ग के कारण वह बुरे काम करता है परन्तु जब रोग उत्पन्न होते हैं, तो उनको दूर करने के लिए दवाओ की भी खोज कर ली गई है। शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोगो के भी उपचार हैं। भारतीय मनीषियो ने मानसिक विकारो की निवृत्ति का अमोघ उपाय यह बताया है कि पापी अपने पाप की घोषणा सार्वजनिक

परायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बांधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए। इनके अतिरिक्त भृत, भृत्य, पशु पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैसे प्रार्थना करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करे तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है।"""गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर ससार मार्ग मे प्रवृत्त होता है उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं।""""""दुराचार मे प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नही हो सकता, इसलिये सदाचार मे ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं।""""""गृहस्थ को उपार्जित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये सचित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग को मूलधन के रूप में वृद्धि करे"""" गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्तालाप करे। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे।"" द्विजाग्नि की निंदा न करे।"""गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे।"""" किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दंभ, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड़ दे। मूर्ख, उन्मत्त, दुखी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिक अङ्ग को हंसी उड़ा कर न छेड़े।""""""परनारीगमन न करे क्योंकि परनारीगमन से इष्टापूर्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है। इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है। """पूर्वाह्न मे देवताओं का, मध्याह्न मे मनुष्यों एवं अपराह्न मे पितरों का पूजन करे।"""" "देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे। सावधान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न

रूप से कर दे। यदि वह अपने मन में उसे दबाए रखता है तो उसकी ग्रन्थि बन जाती है जो जन्म-जन्मान्तरों तक कष्ट का कारण बनती है। तभी विधान बनाया गया है कि जब किसी से गो हत्या हो जाय तो ग्राम में घूमकर और उस गाय की पूँछ पकड़ कर चिल्ला २ कर कहे कि मैंने इस गाय का वध किया है। यह उस पाप का प्रायश्चित्त मान लिया जाता है। दण्ड से पाप नहीं धुलता है और न ही पापी को फिर पाप करने से बचाया जा सकता है। पाप एक मानसिक रोग है, उसी का उपचार भी इसके अनुरूप ही होना चाहिए। मार्कण्डेय ने भी यही दवा बताई है। जब बलराम जी से मद्यपान के नशे में सूतजी का वध हो गया तो नशा उतरने पर वह अपने कुकर्म पर लज्जित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि इस पाप का क्षय करने के लिए अपने कुकर्म का बखान करता हुआ बारह वर्ष का भ्रमण करूँगा। वही मेरे पाप का सर्वोत्तम प्रायश्चित्त होगा। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी इस सिद्धान्त को अपनी स्वीकृति प्रदान की है।

सद्गुणों के विकास पर बल

अवगुणों के प्रति सावधान रहने के साथ साथ सद्गुणों का विकास भी आवश्यक है। सद्गुणों को बहुमूल्य सम्पत्ति, मानव जीवन की सबसे बड़ी विभूति मानी जाती है। सद्गुणों को सच्ची सम्पत्ति इसलिये कहा जा सकता है कि उन्हीं के आधार पर समस्त प्रकार की प्रगति कर सकना सम्भव होता है। दूसरों की सहानुभूति, श्रद्धा एवं सद्भावना केवल उन्हें मिल सकती है जो सद्गुणी हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल आदि के आधार पर आमतौर पर कुछ कमाया जाता है पर सच्ची शिक्षा और चिरस्थायी समृद्धि केवल सद्गुणों के आधार पर ही सम्भव होती है। ऐसी ही समृद्धि से मनुष्य का लौकिक और पारलौकिक जीवन सुख शान्तिमय बनता है।

पुराणकार ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। वह अपने पाठक को सत्यवादी, सदाचारी, चरित्रवान्, श्रेष्ठ, परिश्रमी और स्वावलम्बी देखना चाहते हैं। मार्कण्डेय का भिन्न-भिन्न स्थानों पर आदेश है कि—"गृहस्थ को सदाचार

परायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बांधवो का पूजन करने वाला होना चाहिए। इनके अतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैसा प्रार्थना करे, गृहस्थों यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लघन करे तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है।'''गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं।''''''दुराचार में प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकता, इसलिये सदाचार में ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं।''''''गृहस्थ को उपार्जित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये संचित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग को मूलधन के रूप में वृद्धि करे''''' गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्त्तालाप करे। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे।''' द्विजाति की निन्दा न करे।'''गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे।'''' किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दम्भ, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड़ दे। मूर्ख, उन्मत्त, दुखी आपदग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिक अङ्ग की हसी उड़ा कर न छेड़े।''''''परदारागमन न करे क्योंकि परदारागमन से इष्टापूर्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है। इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है। '''पूर्वाह्न में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यो एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे।''''''देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे। सावधान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न

मनुष्य की शय्या अथवा आसन पर न बैठे। अमंगल वेश न धारे, अमंगल वचन न कहे।...गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है।

दुर्वासा की तरह अपने चरित्र की सुरक्षा के लिये किस प्रकार सजग रहना चाहिए, ऋषि एक ब्राह्मण की कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। लोग यह समझ सकते हैं कि दुर्वासा तो ऋषि थे, वह तो हर प्रकार की सामर्थ्य रखते हैं परन्तु एक साधारण गृहस्थ कैसे पतन के मार्ग पर चलने से बच सकता है। एक ब्राह्मण के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर वरूथिनी नाम की अप्सरा प्रणय—प्रार्थना करती है। निर्जन पर्वतीय स्थान और युवती का प्रणय प्रस्ताव, स्वीकृति के लिये कोई बाधा नहीं, समाज का कोई बन्धन नहीं, अपमान का कोई अवसर नहीं, फिर भी जिनका विवेक जाग्रत रहता है और उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं, वह कोई देखता हो या नहीं, कदापि दुष्कर्म नहीं कर सकते क्योंकि वह ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं और उसके सहस्र नेत्रों का अनुभव करते हैं। ब्राह्मण कुमार ने बाह्य रूप का मूल्यांकन न किया और प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा दिया। ब्राह्मण के शब्द ध्यान देने योग्य हैं —

'ब्राह्मण के लिये भोग चेष्टा, प्रशस्त नहीं मानी गई है अपितु धर्मनुष्ठान और कर्तव्यपरायणता का प्रयत्न ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह इस लोक में क्लेश देने वाली होने पर भी परलोक में उत्तम फल देती है। मेरे गुरुजनों की यह शिक्षा है कि परायी स्त्री की अभिलाषा कभी नहीं करनी चाहिए। अतः मैं तुम्हें किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकता भले ही तुम रोती चिल्लाती रहो और निराशा के शोक से सूख जाओ।"

ब्राह्मण की प्रार्थना पर ही उसके चरित्र का परिचय मिलता है। "यदि मैंने कभी भी ठीक समय पर वैदिक कर्म का त्याग न किया हो और कभी भी मेरे मन में पराये धन और परायी स्त्री की इच्छा न हुई हो तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो, चरित्रवान् की का मन सबल और आत्मा शक्तिशाली होती है, उसका कोई भी कठिन से कठिन कार्य रुका नहीं रहता। जीवन में हर पग पर सफलता उसका स्वागत करती है।

सद्गुणों के विकास और चरित्र के उत्थान व स्थिरता के लिए अच्छे सङ्ग की अपेक्षा रहती है। सङ्ग का प्रभाव अपरिहार्य है। अच्छा सङ्ग भाग्यवानों को ही प्राप्त होता है। ऋषि ने भी शिक्षा दी है कि "सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे। वेदज्ञान से युक्त विद्वान्, व्रत परायण और स्नातक का सङ्ग करे," बुद्धिमान् मदालसा ने भी कष्ट आने पर सत्पुरुषों का सङ्ग करने की शिक्षा दी है। मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक अंगूठी दी थी कि जब सङ्कट आए तो इसमें लिपटे कागज पर लिखी शिक्षा का सहारा लेना। एक बार अलर्क के बड़े भाई सुबाहु ने काशीश्वर की सहायता से अलर्क के राज्य पर आक्रमण करके उसे राज्य-च्युत कर दिया तो उसने माता की अंगूठी में लिपटी शिक्षा खोली। उसमें लिखा था "प्रत्येक को सङ्ग का त्याग करना चाहिए। ऐसा सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ ही सङ्ग करना चाहिए। सज्जन पुरुषों का सङ्ग औषधि है।" माँ की इस शिक्षा को शिरोधार्य कर अलर्क योगीराज दत्तात्रेय के पास गए। वहाँ से उसके दुःख का समाधान हुआ।

सत्सङ्ग का प्रभाव यदि मनुष्य के व्यवहार पर अनुकूल नहीं पड़ता तो उस सङ्ग से क्या लाभ ? मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में उच्च सम्मान का इच्छुक रहता है परन्तु झूठ, छल, कपट से वह मान मिट्टी में मिल जाता है, और सरल सत्य व्यवहार से सम्मान की वृद्धि होती है। लोग उस पर विश्वास करते हैं। कपटी और छली व्यक्ति पर अपने बन्धु-बान्धव भी विश्वास नहीं करते और उसके हर व्यवहार को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए पुराणकार ने घोर से घोर सङ्कट में भी सत्य का परित्याग न करने की शिक्षा दी है। इसके लिए राजा हरिश्चन्द्र का लम्बा आख्यान देना पड़ा है। रानी के मुख से ही सत्य पालन के प्रति दृढ़ निष्ठा की प्रेरणा दिलाई गई है। "राजन् ! चिन्ता का त्याग करो, सत्य का पालन करो। सत्य से च्युत व्यक्ति श्मशान की तरह त्याग योग्य होता है। व्यक्ति के लिए सत्य पालन से बड़ा कोई धर्म नहीं है। सत्य पालन न करने वाले के अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान और समस्त पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म शास्त्र कहते हैं कि सत्य से

पराजित होने पर लज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्वर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्य राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध संघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा वन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि 'मैं इस योग्य नहीं हूँ, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूँ। मुझ बन्दी का आपने मुक्त कराया था, मैं स्वयं मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सङ्कट से उबारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सङ्कटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ', ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सद्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्त्व का निरूपण

दान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन में कितनी ठोकरें खानी पड़ेगी? निर्धन व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस-नस में ऐश-आराम ओत-प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड़

उत्थान और असत्य से पतन होता है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सर्व श्रेष्ठ धर्म है। स्वर्ग का अधिष्ठान भी सत्य ही है। एक पलड़े पर सत्य को और दूसरे पर एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल रख दिया जाय तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।" ब्राह्मण का तो यह विशेष गुण घोषित किया गया है। कहा है, "ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व इसी में है कि वह पक्षों के सामने भी सत्य का पालन करे। ब्राह्मण को जो पुण्य सत्य व्यवहार से होता है वह अच्छी दक्षिणा वाले यज्ञों से अथवा किसी उत्तम कार्य से नहीं प्राप्त हो सकता।"

सत्यवादी ही सच्चा मित्र समझा जा सकता है, उस पर कोई भी विश्वास कर सकता है। उसके सामाजिक सम्बन्ध विस्तृत हो जाते हैं। जन मनुष्य के भाग्य भी वही होता है। मित्रता की कसौटी उपकार बताई गई है। ऋषि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है 'मित्रता का स्वार्थ जिससे अपूर्ण नहीं रहता, वह मनुष्य धन्य है, उसका जन्म और जीवन धन्य है। मित्रों के उपकार का बदला चुकाए बिना जो अपने को जीवित समझता है, उसके जीवन को धिक्कार है।" इसकी पुष्टि के लिए एक रोचक कथा का भी सहारा लिया गया है। मदालसा ने जब अपने पति राजा ऋतध्वज की मृत्यु का समाचार सुना तो वह उसी क्षण मूर्छित होकर यमपुर पहुँच गई। यह समाचार गलत था। जब ऋतध्वज आए तो उन्हें बहुत दुःख हुआ और जीवन भर विवाह न करने का निश्चय किया। नागराज अश्वतर के पुत्र इनके मित्र थे। उन्होंने यह घटना अपने पिता को सुनाई। पिता अपने पुत्रों को अपने मित्र का स्वागत सत्कार व उपकार करने की शिक्षा देते थे परन्तु पुत्रों की दलील थी कि संसार की हर वस्तु उसको उपलब्ध है, केवल पत्नी का उसे अभाव है जो सर्वथा असम्भव है। पिता ने सोच दी कि पुरुषार्थ करने पर हर असम्भव वस्तु भी सम्भव हो जाती है। पिता के प्रयत्न से यह भी सम्भव हो गया। मित्रता मानवता का एक आवश्यक लक्षण है।

पुरुषार्थ की महिमा का गान भी स्थान २ पर किया गया है। लक्ष्मी की प्राप्ति का अधिकारी भी उसे ही बताया गया है।

पराजित होने पर लज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्वर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्य राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध सघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा वन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि 'मैं इस योग्य नहीं हूं, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूं। मुझ बन्दी को आपने मुक्त कराया था, मैं स्वय मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सङ्कट से उबारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सङ्कटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूं', ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सत्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्व का निरूपण

दान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन प कितनी ठोकरें खानी पड़ेगी? निर्धन व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस नस में ऐश-आराम ओत प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड

टूट पड़े', तो उनका आत्म-हत्या जैसी निराशाजनक बातों के सोचने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। किसी करोड़पति को एक दिन में कङ्गाल कर दिया जाय तो उससे हृदय की गति बन्द हो जायगी परन्तु हरिश्चन्द्र ने सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक झेला। कारण स्पष्ट है, उनके मन में दिव्यता छाई हुई थी, उसकी प्रवृत्ति देने की थी। यदि वह स्वार्थी स्वभाव का होता, तब तो वह अवश्य जीवन से निराश हो जाता। ऋषि प्रेरित करते हैं कि यदि समाज हित के लिये घोर कष्टों का सामना करना पड़े तो भी उनका स्वागत करना चाहिए।

दान से परमार्थ की सद्प्रवृत्ति का उदय होता है। मन स्थिति में उदारता आती है, स्वार्थपरता का नाश होता चलता है और मनुष्य अपने अतिरिक्त दूसरों के बारे में भी सोचता है। उनके हित को अपना हित मानने लगता है। पुराणकार ने लिखा है कि जो दूसरों के अहित की योजना बनाता है उसका स्वयं ही अहित होता है। एक कथा में राजा खनित्र के मन्त्री विश्ववेदी ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर चार पुरोहितों से अभिचारक प्रयोग करवाये जिससे चार कृत्यायें उत्पन्न हुई परन्तु वह खनित्र का कुछ भी न बिगाड़ सकी। परिणाम स्वरूप उन्होंने लौटकर चार पुरोहितों और विश्ववेदी पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला।

पुराणकार ने इस बुरी भावना से बचने और परमार्थ भावना को मन में स्थिर रखने पर बल दिया है। हरिश्चन्द्र के कष्टों के नाटक का जब अन्त हुआ तो देवता उन्हें स्वर्ग लेने के लिये आये परन्तु राजा ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं अयोध्या की प्यारी प्रजा को व्यथित छोड़ कर अकेला नहीं जा सकता। वह अपनी पुण्य राशि का उपयोग अपनी प्रजा के साथ करना चाहते हैं। यदि वह सब के सब मेरे साथ स्वर्ग जा सकें तभी मैं वहाँ जा पाऊँगा अन्यथा उनके साथ मुझे नरक जाना ही पसन्द होगा।"

एक बार किसी कारण से विदेहराज को थोड़े समय के लिये नरक जाना पड़ा। उसके पहुँचते ही नरकवासियों को बहुत सुखद प्रतीत हुआ। राजा ने उसका कारण पूछा तो यमदूत ने कहा—"आपके पुण्य अनगिनत हैं,

आपने बहुत से अश्वमेध यज्ञ किये हैं। समुद्र में जल की बूँदों, आकाश में तारों, मेघ में से जल की बरसती हुई जलधाराओं और गंगा में बालू के कणों की तरह आपके असंख्य पुण्य हैं। उसके कारण आपको स्पर्श करके जो वायु चल रही है, उससे नरकवासियों को अपने कष्टों में कमी अनुभव हो रही है।" यह सुनकर विदेहराज ने नरक से जाने को मना कर दिया और स्पष्ट कहा कि जब तक यह लोग नरक में पड़े हैं, मैं भी यहीं रहूँगा।" यह कहना सरल है करना कठिन है। जिसने जीवन भर सुख ही देखे हों उसके लिये दुःख की एक घड़ी भी युग के बराबर होती है परन्तु जिसके मन में ऐसी उच्च भावनायें उठती हैं, वह मानव नहीं महामानव है। मार्कण्डेय ऐसा ही महामानव अपने पाठकों को देखना चाहते हैं तभी भिन्न-भिन्न कथाओं द्वारा इस प्रकरण को दुहराया गया है।

राजा राज्यवर्धन की आयु बढ़ाने के लिये प्रजा ने सूर्यदेव की सामूहिक प्रार्थना की। इससे राजा की आयु दस हजार वर्ष बढ़ गई। राजा इससे चिन्तित हुए कि 'मैं तो दस हजार वर्ष तक जीवित रहूँगा, मेरे प्रजाजन यमराज के शिकार होते रहेंगे। मुझे यह आयु तभी ग्राह्य है जब मेरी प्रजा की भी यही आयु हो।" इस परमार्थ भावना से ओत प्रोत हो राजा ने सूर्यदेव की एक वर्ष तक आराधना की और सारी प्रजा की आयु भी दस हजार वर्ष की हो गई तभी वे सन्तुष्ट हुए।

ऋषि ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि स्वार्थ आसुरी वृत्ति है, परमार्थ दैवी गुण है। इस गुण के विकास के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे जो मानसिक शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस शान्ति को हीरे-पन्नों से नहीं खरीदा जा सकता, इसे तो अपनी भावनाओं को उदार बनाकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखेर देने से आर्जित किया जा सकता है। इस भावना की पुष्टि व संवर्धन के लिये विश्व कल्याण की प्रार्थना को बड़े ढङ्ग से संजोया गया है "सब प्राणी सुखी हों, अन्यों में स्नेह रखें, समस्त प्राणियों का कल्याण हो और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

जीवों को किसी प्रकार का शारीरिक व मानसिक रोग न हो, सब लोग सबके मित्र हो"'तुम्हारी बुद्धि में सब प्राणियों के कल्याण की भावना हो। जिस प्रकार अपना और अपनी सन्तान का हित चाहते हो, उसी तरह सब प्राणियो के कल्याण की बात सोचो।""""जो मुझसे प्रेम करता है उसका सदैव हित साधन हो। मुझसे द्वेष करने वाले का भी सदैव कल्याण हो।"

इन पवित्र भावनाओ को अपने जीवन का अङ्ग बनाने वाले ही विश्व हितैषी महामानव बन पाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

इस भावना के विकास के लिये ऋषि ने एक अनुभव सिद्ध साधना का भी निर्देश किया है। वह है यज्ञ। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परमार्थ, निःस्वार्थता। यज्ञ का लाभ शत्रु और मित्र सभी को एक समान पहुँचता है। यह समस्त प्राणी जगत् के हित साधन की साधना है। यज्ञ करने वाले का कोई शत्रु नही रह जाता, उसे सब ओर अपना ही रूप दिखाई देता है तभी तो वह अपने गाढ़े पसीने की कमाई को वायु मे बिखेरने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। वह जानता है कि अपने द्वेषियों को भी लाभ पहुँचने से वह रोक नहीं सकता। अत वह शत्रु को शत्रु मानना ही छोड़ देता है। यज्ञ से वह सारे ब्रह्माण्ड से अपना नाता जोड़ता है। पहले वह केवल अपने परिवार तक ही सीमित था परन्तु यज्ञ का प्रभाव तो ईथर तत्व के माध्यम से सारे विश्व मे फैल जाता है, अत वह अपने शरीर को ही ब्रह्माण्ड शरीर मानने लगता है।

जात-पांत, रङ्गभेद और सम्प्रदाय के सङ्कीर्ण विचारो से ऊपर उठकर विश्व मैत्री की उच्च भावना को जागृत करने के लिये यज्ञ सरल व श्रेष्ठ साधन है। प्राचीन काल में इसी माध्यम से जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जाता था। पुराणकार का कहना है कि नरिष्यन्त ने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जनता ने असंख्यों यज्ञ किये। पूर्व मे अठारह करोड़, पश्चिम मे सात करोड़, दक्षिण मे चौदह करोड़ और उत्तर में पन्द्रह करोड़ यज्ञ सम्पन्न हुए। इन महान् योजनाओं के फलस्वरूप ही जन-साधारण की सङ्कीर्ण भावनाओं का परिष्कार हो पाया और राम राज्य का साकार रूप देखने को मिला जहाँ पाप, ताप, चोरी, डकैती, छल कपट, आदि का नाम

निशान न था। लोग इस लोक की अपेक्षा परलोक का अधिक ध्यान रखते थे। आज उसके विपरीत है। वह युग पुन आ सकता है यदि हम ऋषियो की योजनाओ के अनुसार अपने जीवन को मोड दें तो।

जीवन निर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन—

मार्कण्डेय पुराण मे विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तो का उल्लेख है जिनका प्रगति पथ पर आरूढ होने वाले हर मानव के लिए समझना आवश्यक है।

भौतिकवादी स्थूल नेत्रो से दिखाई देने वाले इस पञ्चभौतिक शरीर को ही सर्वस्व मानते हैं, उससे आगे की वे कल्पना भी नही कर सकते। वे उस सूक्ष्म, चेतन तत्व से अपरिचित हैं जिसके आधार पर समस्त क्रियाओ का सञ्चालन होता है। भारतीयों ने उस जीवनतत्व का नाम आत्मा रखा। जो इसे समझता नही, वह दु.खी रहता है क्योकि शरीर अनित्य व नष्ट होने वाला है, उस पर अपने भविष्य को निभर करने वाला कभी शाश्वत सुख की आशा नही रख सकता। शान्ति के लिए मूल तत्व को जानना होगा। उसके लिए प्रयत्न करने होंगे। आत्मा को जान कर उस के उत्थान की योजनाओं को क्रियान्वित करना होगा। जो विघ्न बाधाएँ इसके मार्ग मे आती हैं उन्हें हटाना होगा, अपनी विचारधारा और जीवन पद्धति को परिष्कृत करना होगा।

पुराणकार ने दु ख की निवृत्ति के लिए शरीर भावना के त्याग का परामर्श दिया है। जब मदालसा पुत्र अलर्क के राज्य पर सुबाहु और काशि-राज ने आक्रमण करके उसके राज्य को छीन लिया तो उसे अपनी मा की उस शिक्षा का स्मरण हो आया कि सकट के समय इस अगूठी मे लिपटी शिक्षा के मार्गदर्शन मे चलना। उसमे सत्पुरुषों के सग की प्रेरणा दी गई थी। अलर्क योगी दत्तात्रेय के पास गया। दत्तात्रेय ने कहा कि तुम अपने दु ख का कारण बताओ, मैं आज ही उसे नष्ट कर दूँगा। जब अलर्क ने उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया तो लगा कि उसने सारी भूल की, दु ख तो शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियो से सम्बन्ध रखता है और वास्तव मे

मैं इन से भिन्न हूं। दुःख तो मेरे बाह्य उपकरणों को था, मुझे नहीं, मैं तो इनसे सर्वथा भिन्न हूं। मुझे तो दुःख छू भी नहीं सकता। मेरे अज्ञान के कारण उस ने मुझे दबाये रखा। अब मैं शरीर से सम्बन्धित नहीं हूं। इसलिये दुःख से परे हूं।

जब तक मनुष्य शरीर भावना से लिप्त रहता है, तब तक वह शारीरिक परिवर्तनों से प्रभावित होता रहता है। इस से ऊपर उठकर जब आत्म भावना में स्थित होता है तभी उसे आनन्द का मार्ग मिलता है। इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा ऋषि देते हैं।

इस सम्बन्ध में साधना का भी पथ प्रदर्शन किया है। आत्मा को खोजने के लिए लिखा है "प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे। जैसे अग्नि में पड़कर सब धातु दोष-रहित होती हैं, वैसे ही प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट होते हैं।" यह आत्मदर्शन में बाधक तत्व हैं, इन्हें दूर करना आवश्यक है।

जिसे आत्मदर्शन हो जाते हैं, वह सांसारिक दुःखों से अलिप्त रहता है। मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। वे मृत्यू का प्रसन्नता पूर्वक, आलिंगन करते हैं, अपने सम्बन्धियों की मृत्यू पर शोक नहीं मनाते। मृत्यु को तो वे केवल वस्त्रों का बदलना मात्र मानते हैं। जीवन तो एक अखण्ड तत्व है। शरीर नाश से उसका नाश असम्भव है। एक शरीर के नाश के बाद आत्मा दूसरा शरीर धारण करेगी, उस के भी नष्ट होने पर तीसरा धारण करेगी, जब तक जीवन का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता, यह यात्रा चलती ही रहेगी। यह तो यात्रा के भिन्न-भिन्न पड़ाव हैं, इनकी वास्तविकता से आँखें मूंदकर रोना पीटना अज्ञानता है। मदालसा ने अपने पति की मृत्यु के समाचार सुन कर शरीर त्याग दिया तो राजा ने कहा कि "सब प्रकार के सम्बन्धों की अनित्यता पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि क्या पुत्र के लिये रोऊँ और क्या पुत्र बधु के लिये रोऊँ? अर्थात् दोनों में किसी के लिय रोने का कोई कारण नहीं है।"

इन विचारों की पुष्टि के लिये पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उभारा गया है। सुमति नाम के एक ब्राह्मण कुमार की कथा दी गई है कि जब उसका उपनयन संस्कार किया गया तो उसे उपदेश दिया गया कि उसे क्रमश: ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रमों में प्रवेश करना होगा। इनके कर्तव्यों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने पर ही उसे ब्रह्म प्राप्ति होगी। इस पर सुमति ने अपने अनेकों जन्मों का वृत्तान्त सुनाया। उन जन्मों में वेदाध्ययन और आश्रम धर्मों के पालन की बात कही, कैसे एक बार नरक की यातना भोगनी पड़ी, उसका भी वृत्तान्त है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त बताता है कि शरीर के नाश से हमारी प्रगति अवरुद्ध नहीं हो जाती। जितना विकास हम ने इस शरीर के माध्यम से कर लिया है, वह भी नष्ट नहीं होता, उसके संस्कार हम सूक्ष्म शरीर के साथ ले जाते हैं और आगामी जीवन में हम इस विकास का उपयोग करते हैं। कई व्यक्तियों में जन्मजात विलक्षण प्रतिभा बाल्यकाल से ही प्रस्फुटित होने लगती है, वह उनके इस जन्म के कारण नहीं वरन् पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण होता है।

इसीलिए मार्कण्डेय ने जीवन निर्माण के प्रमुख सूत्र कर्म को प्रमुखता दी है। कर्म को ही समस्त सफलताओं का श्रेय दिया है। कहा है "कर्म का बल पृथ्वी के मानव की श्रेष्ठतम शक्ति है। यही उसकी विजय का रहस्य है। यही कारण है कि स्वर्ग के देवता भी पृथ्वी पर जन्म लेने को उत्सुक रहते हैं। जिनके पास कर्म का हथियार होता है, वह उसकी सहायता से देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व सभी को प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं। जिन व्यक्तियों का चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वश में हैं और जो कर्म करने के लिये उद्यत हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं होता। चलती हुई चींटी हजारों योजन चल जाती है, बिना चले गरुड़ भी एक पग नहीं जा पाता।"

इन गद्यात्मक शब्दों में ऋषि आशा की जीवन ज्योति जलाते हैं और आश्वासन देते हैं कि जैसी भी परिस्थितियाँ इस जीवन में उपलब्ध हुई हैं,

उनसे निराश न होना चाहिये, उनके लिये भाग्य और भगवान को कोसना कायरता और निबलता की निशानी है, कर्म का विस्तृत क्षेत्र मानव के लिये खुला पड़ा है, वह स्वतन्त्रता पूर्वक अपने कर्मों का जाल बिछा सकता है उन्हें नष्ट करने का अधिकार किसी भी मानव को नहीं दिया गया। यह अलग बात है कि उनमें विघ्न बाधाएँ उपस्थित हों, जिन्हें दूर करने के लिये कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ करना पड़े परन्तु उस दयालु परमात्मा ने उन्नति का मार्ग हमारे लिये खुला छोड़ दिया है। हम अपने कर्मों के द्वारा उच्चतम आसन पर स्थित हो सकते हैं। यदि हम आगे नहीं बढ़ रहे तो इसका कारण हम स्वयं हैं न कि भाग्य और भगवान। किसी को हमारे लिये कुछ नहीं करना है। करने वाले हम स्वयं हैं। अपने भाग्य को हमें स्वयं लिखना है, बनाना है। इसी पर ऋषि ने विशेष बल दिया है।

जब राजा शत्रुजित के पुत्र अपने मित्र ऋतध्वज के दुःख निवारण के लिये कुछ नहीं कर सकते तो पिता ने कहा "पुत्रो! तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं है। बुद्धिमानों के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं होता, पुरुषार्थ से सब कुछ उपलब्ध किया जा सकता है—उद्योगी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान गम्य और कोई स्थान अगम्य नहीं होता। कहाँ भूतल और कहाँ ध्रुव का पद? फिर भी इस भूतल पर निवास करने वाले ध्रुव ने उद्योग द्वारा ध्रुव का पद पा ही लिया।"

एक राजकुमार ने कामना की है कि "जो अपने बल पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति अर्जित करते हैं और अपने पौरुष से ही संकटों को पार करते हैं मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ।' पुरुषार्थ ऐसा अस्त्र है जिससे सांसारिक विघ्न बाधाओं, कठिनाइयों व रुकावटों को दूर करके मानव लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। उसी की ओर ऋषि ने हमें आकृष्ट किया है।

मानव को कुमार्ग से बचाने और सद्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये अनेकों प्रकार के उपाय अपनाये जाते हैं। उनमें एक नरकों के भय

दिखाना भी है। कर्मफल के सिद्धान्त को तो हर भारतीय स्वीकार करता ही है। वर्तमान बुरी या अच्छी परिस्थितियों का श्रेय भी पिछले जन्मों के बुरे या अच्छे कर्मों को ही होना है। नरक अथवा स्वर्ग का सम्भोग तो वह यहाँ भी कर लेता है। यदि इन्हीं तथ्यों को भीषण रूप से वर्णित करके नरक और स्वर्ग पृथ्वी से दूर किसी दूरस्थ लोक में बताये जाते हैं तो उन पर साधारणजन विश्वास कर लेते हैं और उनमें दी जाने वाली यातनाओं की भयङ्करता को सुनकर वह भयभीत हो जाते हैं और बुरे कर्मों से बचते हैं। इसी उद्देश्य से मार्कण्डेयपुराण में नरकों का विस्तृत वर्णन है जिसमें लाखों करोड़ों जीव अपने दुष्कर्मों के भोग भोगते दिखाये गये हैं। वहाँ की लोमहर्षक यातनाओं को सुनकर हृदय काँप उठता है। उदाहरण के लिए "जिन नराधम मनुष्यों ने पर नारी को दूषित नेत्रों से देखा है अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रों से देखा है, उनके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते हैं, इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये हैं, उतने ही सहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिए अन्याय पूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है।"

"*जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है, यह वज्र-तुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी बार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रों में या पिता-पुत्र में भेद डलवाया है अथवा याजिक-यजमान में, माता-पुत्र में या पति पत्नी में मन-मुटाव करा दिया है, वे इस करपत्र से आहत होते हैं अथवा जो किसी को क्रोध दिलाते या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते हैं, जो ताड़ का पंखा या खस या चन्दन का हरण करते अथवा साधुओं को प्राणान्तक पीड़ा देते हैं, वे पापी तप्त रेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथवा जो एक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते हैं।*"

पुनर्जन्म का सिद्धान्त सर्वमान्य है। यह निश्चित है कि हजारों प्रकार

की पशु, पक्षी, कीट, पतग आदि की नीच योनियों से होकर मानव को यह योनि प्राप्त होती है। इस योनि मे आकर भी यदि वह पतित कार्य करता है तो पुन उन योनियो मे उसे जाना पडता है। कैसे कर्म से किस योनि में जाना पडता है, इसकी विस्तृत सूची पुराणकार ने दी है। उदाहरण के लिए "पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित मनुष्य को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्त होकर कृमि योनि पाता है। उपाध्याय के प्रति छल करने, उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है। माता पिता का अपमान करने वाला गधा और उन्हे गाली देने वाला मैना होता है। भाई की पत्नी का अपमान करने वाला कबूतर होता है उसे पीडित करने से कछुआ होता है। स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उसका अभिलिषित नही करता,वह मोह मे भरकर मरणान्तर बन्दर बनता है। किसी की धरोहर हडपने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त मे राक्षस होता है।"

नरको, उसमे दी जाने वाली यातनाओं और विभिन्न प्रकार की योनियो के वर्णन का उद्देश्य यह है कि मानव दुष्कर्मों से बचे और सत्कार्यों का सम्पादन करे ताकि उसे श्रेष्ठतम योनि मे आकर पुन क्षुद्र योनियो मे न जाना पडे। यह मानव की पतित अवस्था का ही परिणाम हो सकता है। पतन से बचने के लिए ही मार्कण्डेय ने यह सत्प्रयास किया है।



साधनात्मक प्रक्रियाएँ

इस सिद्धान्त से हर व्यक्ति परिचित है कि इस जीवन की सुख-सुविधाएँ पिछले उदार कार्यों के कारण प्राप्त हुई हैं और कठिन परिस्थितियों का कारण सङ्कीर्ण और क्षुद्र भावनाएं रही हैं। स्वर्गीय सुखों का भोग करना तो हर कोई चाहता है परन्तु उसके अनुरूप सद्कार्यों का करना हर किसी के बस की बात नहीं है। मनुष्य न चाहते हुए भी पाप करता है। बुरे कार्यों को बुरा समझते हुए भी उनमें फँसता है। इसका कारण उसका अपवित्र और निर्बल मन है। पवित्र और सबल मन में ही सद्विचार उठते हैं। परन्तु मन को अपनी इच्छा-नुसार चलाना सरल नहीं है। उसकी गति वायु से भी तीव्र है। इसकी चञ्चलता तो प्रसिद्ध है ही। इसे पवित्र, शक्तिशाली और अपने नियन्त्रण में रखने के लिए अनेकों प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं का आविष्कार किया गया है जिन्हें अपना कर हितसाधन किया जा सकता है। जप, तप, योग और विचार-साधना के अनेकों मार्ग हैं जिनमें से कुछ का मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने प्रणव की साधना की ओर साधकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह मन्त्रों का सेतु व शिरोमणि है। योगियों ने समाधि अवस्था में देखा कि सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो ध्वनि निरन्तर हो रही है, वह प्रणव की ध्वनि से मिलती जुलती है। अतः उस ध्वनि को अपने दिव्य कर्णों द्वारा श्रवण करके उन्होंने मानव के हितार्थ साधना का रूप दे दिया ताकि मानव उसके अनुरूप अपने को बना सके। अनुकूलता में शक्ति का विकास और प्रति-कूलता में उसका ह्रास होता है। इसलिए प्रणव को श्रेष्ठतम साधना माना गया है जिसकी महिमा का गान स्वयं पुराणकार ने किया है—"जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वपावन हैं तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं, उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी उनको पाने के लिये 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे। यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार का श्रवण करना चाहिये...... योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने" ...ओंकार ही त्रिवेद,

त्रैलोक्य और तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋक्, यजु साम स्वरूप है……केवल 'ॐ' का उच्चारण करने से ही सदैव सत् असत् का ग्रहण हो जाता है……जो योगी ओंकार स्वरूप या ब्रह्म को जानकर उसका ध्यान करते हैं वह संसार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़ कर उस पर-ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। यदि उनके कर्म बन्धन क्षीण न हों तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु जानकर उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुनः प्राप्त होते हैं।" वेद शास्त्रों में वर्णित ऋषियों के अनुभवों से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

योग साधना की भी विस्तृत शिक्षा पुराणकार ने दी है। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा के पाँच यमों और अक्रोध, गुरुसेवा, शौच, लघु आहार और नित्य स्वाध्याय के पाँच नियमों के पालन को आवश्यक माना गया है। इसी स्थिति पर आगामी क्रियाओं का सफल सञ्चालन सम्भव है। योग की नींव को दृढ़ करने के लिए इन नैतिक नियमों का पालन आवश्यक है। प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करने की प्रेरणा दी गई है। प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के समस्त दोषों का नष्ट होना बताया गया है। आत्मा पर विजय प्राप्त करने का साधन योग की इन साधनाओं को माना गया है। इन सभी क्रियाओं को खोलकर समझाया गया है। इनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी वर्णन है। अष्ट सिद्धि की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है और इन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली कहा गया है। ध्यान के सम्बन्ध में कहा है—"निखिल वेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से जप श्रेष्ठ है, जप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से निःसङ्ग और रागहीन 'ध्यान' श्रेष्ठ है क्योंकि इस ध्यान के द्वारा ही शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो सावधानी से ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योग साधन करते हैं, वे आत्मा में आत्मा के संयोग को पाकर मोक्ष लाभ करते हैं।" इन साधनाओं को क्रिया रूप देकर निश्चित रूप से आत्मा और परमात्मा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

तप की प्रेरणा तो पग-पग पर दी गई है। जितने भी राजाओं के जीवन-चरित्रों अथवा कथाओं का पुराण में वर्णन है, लगभग सभी ने वृद्धावस्था आने पर राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर तपश्चर्या के लिए वन के लिए प्रस्थान किया। तपस्वी का वेष धारण करके वे क्रोध, हिंसा, बदले की भावना से बचते रहे हैं। कई बार जब वन में मुनियों को नागों, राक्षसों व अन्य आसुरी शक्तियों ने परेशान किया तो उन्हें शाप द्वारा स्वयं भस्म करने की शक्ति-सामर्थ्य रखते हुए भी वे राजा के पास रक्षा की प्रार्थना के लिये जाते हैं क्योंकि क्रोध से उनकी आध्यात्मिक शक्ति के क्षय होने की सम्भावना थी। तप द्वारा शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है।

आत्मोत्थान के लिये चिन्तन मनन एक उच्चकोटि की साधना है। इसमें दोनों पक्षों की ओर ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो अपनी भावनाओं में सात्त्विकता लानी चाहिये। नागराज ने जब ऋतध्वज से वर माँगने के लिये कहा तो उसने उत्तर दिया—'यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मेरे हृदय से धर्म की भावना कभी दूर न हो।" वास्तविकता के धारण करने को धर्म कहते हैं। कर्तव्य पालन ही सच्चा धर्म है। धर्म भावना तो आत्म-विकास की नींव है। इसका पुष्पित-पल्लवित होना आवश्यक है।

आत्म-दर्शन के लिए शरीर-भावना से ऊपर उठकर आत्म भावना के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है तभी मोक्ष का—स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। जब साधक आत्मभावना में दक्ष हो जाता है तो उसका कोई शत्रु मित्र नहीं रह जाता, सबको वह समान दृष्टि से देखता है, किसी से घृणा-द्वेष नहीं करता। वह जगत् के कल्याण के लिए अपनी समस्त शक्तियों के व्यय के लिए तत्पर रहता है। जब मदालसा पुत्र अलर्क को दत्तात्रेय के सम्पर्क से आत्मज्ञान हुआ तो उसकी भी यही स्थिति हो गई। वह चारों ओर अपनी आत्मा के ही दर्शन करने लगा। यह आत्म साधना की उच्च स्थिति है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए आत्म संयम की साधना एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसकी प्रेरणा पुराणकार ने दी है। इसे मोक्ष का साधन माना गया है। संयम से शक्तियों की सुरक्षा होती है। शक्ति ही साधना का मूल है।

उसको सुरक्षा के लिये विरोधी सांसारिक भावनाओं के प्रति सावधान रहना पड़ता है। इनमे अनित्यता, असग और ममता के त्याग पर ऋषि ने विशेष बल दिया है। अनित्यता की भावना से सांसारिक वस्तुओं के क्षय होने पर दुःख नही होता। उनकी स्वाभाविक गतियों को वह भली प्रकार जानता है, उनमे लिप्त नही रहता, अलिप्तता की भावना से ओत-प्रोत रहता है। ममता के प्रति विशेष रूप से सजग रहने को कहा गया है क्योंकि "ममता मनुष्य के हृदय मे एक महान् वृक्ष के रूप मे स्थित है। अज्ञान को इसका बीज, अहङ्कार को अकुर और ममक र को तना कहा गया है। घर-द्वार, खेती-बाड़ी को शाखाएँ, धन सम्पत्ति को पत्ते, स्त्री पुत्र को पल्लव, पाप पुण्य को पुष्प, सुख दुःख को फल, इच्छाओं को भ्रमर की सज्ञा दी गई है। यह आदि काल से खड़ा है और निरन्तर बढ रहा है। यह साधक को आत्म विस्मृत करता है। सत्सङ्ग और विद्या के अस्त्रों से इसको काटा जाना सम्भव है तभी मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा।"

प्रलय के विस्तृत वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि हम नित्य के मनन चिन्तन और ध्यान मे यह अनुभव करें कि इस विश्व की जितनी वस्तुओं से हमारा सम्बन्ध है, वह धीरे धीरे नष्ट होती जा रही हैं। बन्धु बान्धव साथ छोड़ते जा रहे हैं, पञ्चभौतिक शरीरों का निरन्तर क्षय होता जा रहा है, ये विनाश की ओर तीव्र गति से बढ रहे हैं, बड़े-बड़े भवन और प्रासाद ध्वस्त होते जा रहे हैं, असख्यो जीव-जन्तु अपने प्राण छोड रहे हैं, बडे बडे राजा-महाराजा और 'धन' कुवेर भी इस प्रवाह मे बहे जा रहे हैं। किसी मे रुकने की क्षमता नही है। स्थिति यहाँ तक पहुच गई है कि सारा विश्व जल कर भस्म हो गया है और चारों ओर जल ही जल दिखाई दे रहा है।

यह भावना दृढ होने पर साधक झूठ, छल, कपट, फरेब, धोखेबाजी घूस, मिलावट आदि धन एकत्रित करने के अनुचित उपायों से विरत हो जाता है और सद्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है। उसका किसी से लगाव नहीं रहता, अलिप्त भावना से वह जगत् मे विचरता है।

देवी उपासना का निर्देशन इस पुराण की एक प्रमुख विशेषता है। देवी के आविर्भाव, उद्देश्य, आसुरी शक्तियों से सङ्घर्ष आदि का विस्तृत वर्णन

है। देवता देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं। "इस प्राणी जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणित हुई हैं एवम् जो समस्त सुरगणों एवम् महामुनियों की पूज्या हैं, अनन्त भगवान्, ब्रह्मा, एवम् महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिये और उसके अहित व भय के नाश के लिये आतुर हो। समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं। आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कैटभ शत्रु के वध कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और महादेव के बाएं अङ्क पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं। आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओं को भयदाता एवम् अत्यन्त मनुरम है।"

देवी का आविर्भाव देव शक्तियों के संग्रह से हुआ है। जब-जब राष्ट्र पर घोर सङ्कटों के बादल छाए हैं, तब-तब दिव्य पुरुष एकत्रित होकर अपने समस्त सामर्थ्यों को राष्ट्र हित के लिय समर्पित कर देते हैं। परन्तु पृथक् प्रयत्न का कोई भाग्य अनन्त फल नहीं प्रतीत होता। सङ्गठन से ही शक्ति का विकास होता है। जब महिषासुर, मधु कैटभ, शुंभ निशुंभ आदि शक्तिशाली विरोधियों ने सर उठाया तो देव शक्तियों ने उनसे अलग अलग जूझने में अपने को असमर्थ पाया। वह सब मिलकर एक हो गए तब असुरों को पराजित होना पड़ा। भगवान् कृष्ण ने भी ग्वालों को कहा था, तुम अपनी-अपनी अंगुली लगा दो, यह गोवर्धन सहज में ही उठ जायगा। यह सङ्गठन शक्ति की ओर ही संकेत था। भगवान् राम ने वानरों की निम्न स्तर की जाति का संगठन करके ही लङ्का पर आक्रमण किया और सिद्धहस्त सेना को परास्त कर दिया। आज हमारा सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक ढांचा अस्त-व्यस्त हो रहा है। चारों ओर से आसुरी शक्तियां इसे घोर ध्वस्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। अब यह लड़खड़ाती स्थिति में है। इसे स्थिर रखने के लिये आवश्यक है देवी की उपासना की जाए, देव शक्तियों को एकत्रित किया जाए और असुरों के नगरा

व मठों को नष्ट भ्रष्ट किया जाए ताकि देवता सुख की सांस ले सकें । अर्थात् राष्ट्र का नैतिक व सांस्कृतिक विकास हो । ऐसे संगठन बनाये जायें या बने हुओं का सहयोग किया जाए तो सामाजिक रोगों और कुरीतियों के विरुद्ध अभियान चलायें, उन से घोर संघर्ष करें, उन्हें नष्ट करके ही दम लें, ताकि सारे राष्ट्र में नैतिकता की अजस्र धारा प्रवाहित हो ।

देवी उपासना का एक उद्देश्य यह भी है कि जब हम देवी को जग-जननी मानते हैं तो समस्त स्त्री जाति को ईश्वर रूप मानना होगा । आज दूषित दृष्टि की कमी नहीं है । कहीं भी इसका अनुभव किया जा सकता है । नारी जाति के प्रति आदर व सम्मान की भावनायें रखना और उन्हें पुत्री, भगिनी और मातृत्व की पवित्र भावना से देखना ही सच्ची देवी उपासना है । इसी की ओर पुराणकार ने इंगित किया है । अश्लीलता, युवतियों का अपहरण, बलात्कार, कामवासना के ताण्डव नृत्य चारों ओर होते दिखाई दे रहे हैं । इनका शमन इस देवी उपासना से ही सम्भव है ।

समन्वयात्मक दृष्टिकोण

मार्कण्डेय पुराण के रचयिता एक सांसारिक बन्धनों से मुक्त महर्षि हैं जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हैं । वह चाहते तो इसमें अपने पक्ष का प्रतिपादन करते और बुद्ध व नारद की तरह सब को ही गृह त्याग की शिक्षा देकर सन्यासी बना देते । गीता का प्रतिपाद्य विषय तो कर्म-योग है परन्तु हर टीकाकार आचार्य ने अपनी मान्यताओं के अनुसार उसे अपने अनुकूल मोड़ दे दिया । मार्कण्डेय चाहते तो वे भी सुविधापूर्वक कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । उन्होंने तो जगत् के कल्याण की पवित्र भावना से इसका निर्माण किया था । जन-साधारण का हित इसी में है कि उनके बौद्धिक स्तर और पात्रता के अनुसार ही उन्हें शिक्षा व प्रेरणा दी जाय ताकि वह उसे सुविधापूर्वक अपना सकें । शिक्षायें ऐसी व्यवहारिक होनी चाहिये जिन्हें जन-साधारण के लिए असम्भव न कहा जा सके । मार्कण्डेय दूरदर्शी थे । उन्होंने जगत् में प्रवाह का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया और अपने अनुयाइयों को इस धारा के अनुरूप ही

हर व्यक्ति को उपदेश दिया। धारा के विरुद्ध चलने मे कड़ा सङ्घर्ष करना पड़ता है जो सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। इसलिये उन्होने ऐसे मार्ग का निर्देशन किया जिसे अपनाकर हर कोई क्रमिक विकास करता हुआ उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है।

मार्कण्डेय स्वय विरक्त थे परन्तु उन्हे गृहस्थ से विद्वेष नही था। उन्होंने भौतिक जीवन को हर प्रकार से समुन्नत करने की प्रेरणा दी, सभी साधनो को पूर्णरूप से विकसित करने पर बल दिया परन्तु इन समस्त प्रक्रियाओ का आधार धर्म और कर्तव्य ही माना है। गृहस्थ की उन्होंने प्रशसा की है क्योंकि इसमें सघर्षमय जीवन की क्रियात्मक शिक्षा मिलती है। सङ्घर्ष से ही सब प्रकार की शक्तियो का विकास होता है जिन्हें आध्यात्मिक भाषा म सिद्धियाँ कहा जाता है। यही जीवन-निर्माण की आधार शिला बनती हैं। प्रगति पथ पर आरूढ होने के लिये अवश्यक नियमों का विवेचन किया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। साथ ही साथ अवगुणों के प्रति चेतावनी भी दी गई है ताकि उपार्जित शक्तियाँ सुरक्षित रह सकें, उनका व्यय होकर वह मानव को दीन हीन न बनादें।

ऋषि व्यक्तिगत उत्थान के समस्त सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु इन उत्थान को वे अधूरा मानते हैं जब तक कि परहित की उदार भावनायें मन क्षेत्र मे जाग्रत न हो जायें। पूर्णता की प्राप्ति के लिये वह सारे विश्व को अपना परिवार मानने पर बल देते हैं। इन स्थिति तक पहुँचने के लिये महत्वपूर्ण साधनाओं का भी मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन का उचित मूल्याङ्कन किया है। वे भौतिकवाद की उपेक्षा नहीं करते, उसे भी आवश्यक समझते है परन्तु केवल उन्हीं के लिये जीवन नष्ट करने को अज्ञानता मानते हैं। उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। यही जन-साधारण के अनुकूल है। इसीलिये इसे एक उच्चकोटि का पुराण माना जाता है।

भारतीय संस्कृति के गौरवशाली धर्म-ग्रंथ

हिन्दी अनुवाद सहित

१. चारों वेद ८ जिल्दों में—

ऋग्वेद ४ खण्ड	···२७)
अथर्व वेद २ खण्ड	···१३)५०
यजुर्वेद १ खण्ड	··· ६)७५
सामवेद १ खण्ड	··· ६)७५

२. १०८ उपनिषदें (३ खण्डों में)

ज्ञान खण्ड	··· ७)७५
ब्रह्म-विद्या खण्ड	··· ७)७५
साधना खण्ड	··· ७)७५

३. षट् दर्शन (६ जिल्दों में)

वेदान्त दर्शन	··· ४)
सांख्य दर्शन	··· ४)
योग दर्शन	··· ४)
वैशेषिक दर्शन	··· ४)
न्याय दर्शन	··· ४)
मीमांसा दर्शन	··· ५)

४. २० स्मृतियाँ २ खण्ड	···१४)
५. शिव पुराण	···१२)७५
वायु पुराण २ खण्ड	···१४)
विष्णु पुराण २ खण्ड	···१४)

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ.प्र.)

देव वाद

का

वैज्ञानिक स्वरूप

भाग–१ विष्णु रहस्य

**

हिन्दुसस्कृति के जितने भी विवादस्पद विषय हैं, उनमे देव वाद प्रमुख स्थान रखता है। देव वाद ठोस मनोवैज्ञानिक विचार-धारा पर आधारित है। देव देवियो का स्वरूप निर्धारित करते समय साधक के व्यवहारिक व क्रमिक विकास पर ध्यान दिया गया है, परन्तु आज का शिक्षित वर्ग इनके बाह्य रूप को देखकर आलोचना करने लगता है। देव देवियो सम्बन्धी समस्त शकाओ का समाधान करने के लिये देव वाद का वैज्ञानिक स्वरूप चार खण्डो (१ विष्णु रहस्य, २ शिव रहस्य, ३ ब्रह्मा रहस्य, ४ देव रहस्य) मे प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रथम खण्ड विष्णु रहस्य छपकर तैयार हो चुका है। इसमे विष्णु के स्वरूप, क्षीर सागर मे निवास, शेष शय्या, समुद्र मथन, मोहिनी रूप, शालग्राम, चक्र, पद्म, गदा, शख, वैजयन्ती माला, श्री वत्स, बाण, धनुष, लक्ष्मी से सम्बन्ध, वेद, उपनिषदो, रामायण, महाभारत, पुराणो आदि शास्त्रो मे प्रतिपादन, उनके विभिन्न अवतारो का रहस्य आदि समस्त विषयो का प्रमाणित व शास्त्रीय विवेचन दिया गया है जिससे विष्णु साधना एक उच्चकोटि की जीवन निर्माण की प्रक्रिया सिद्ध होती है।

पुस्तक अत्यन्त खोज पूर्ण है। इस विषय पर यह सर्व प्रथम पुस्तक है। मूल्य केवल छ रु० मात्र है।